KESH... MATH...
...rthura (U.P.)

शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध–पूर्वार्धः ।

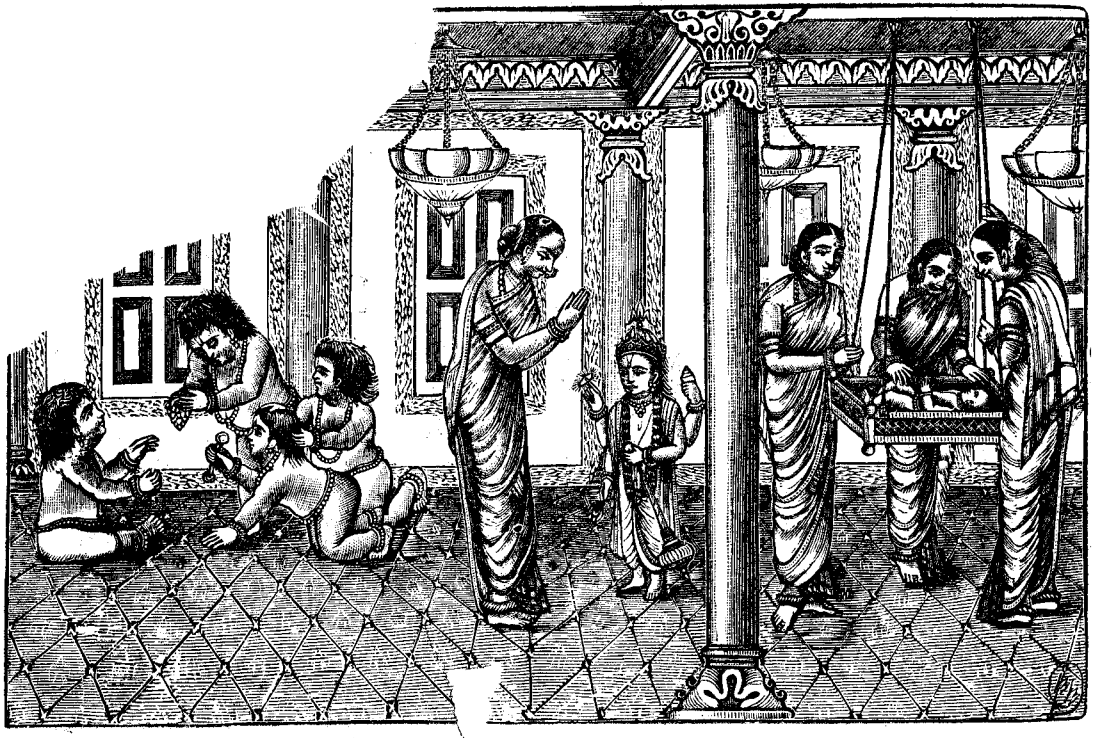

कृष्णजन्म, बाललीला ।

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध–पूर्वार्धः।

प्रथम अध्याय।

कंसके हाथों देवकीके छः बालकोंका वध।

राजोवाच–कथितो वंशविस्तारो भवता सोममूर्ययोः ॥
राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षत्ने कहा। हे मुनिश्रेष्ठ! आपने विस्तारपूर्वक चन्द्रवंश और सूर्य्यवंशका वर्णन किया; दोनो वंशोंमें उत्पन्न राजोंके परम पवित्र विचित्र चरित्र भी सुनाये ॥ १ ॥ धर्मात्मा यदुका वंश भी कहा, अब उसी यदुवंशमें अंशसे उत्पन्न विष्णु भगवान्के चरित्र हमको सुनाइये ॥ २ ॥ प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान्ने यदुवंशमें अवतार लेकर जो जो अद्भुत कर्म्म किये हैं उन सबको विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ जीवन्मुक्त लोग भी उन पवित्र यशवाले हरिके गुणोंका कीर्त्तन करते रहते हैं। मोक्षकी कामनावाले व्यक्तियोंके लिये हरिगुणगानही मुक्तिपानेका एक मात्र उपाय है, क्योंकि वह भवरूप व्याधिकी औषध है और कान व मनका रमणीय विषय है। जड़ अथवा अज्ञानीके सिवा औ

कान पुरुष उसके सुननेमें विरक्त (उदासीन) होगा ? ॥ ४ ॥ अहा ! वह कृष्णचन्द्र हमारे कुल पर बड़ीही कृपा करते थे । देखिये, कारवोंकी सेना सागरके समान अगम्य और अपार थी; क्योंकि समरमें अमरगणको भी जीतनेवाले भीष्मपितामह आदि बड़े २ महारथी योद्धा उसमें तिमिंगिल (एक बड़ी भारी भयानक मछली, जो महा सागरमें रहती है)के समान थे, जिनसे बचना बहुत ही कठिन था। किन्तु हमारे पितामह पाँचो पाण्डव कृष्णचरणरूप नौकाके आश्रयसे गायके खुरके गढ़ेके समान सहजमें उसके पार पहुँच गये ॥ ५ ॥ और देखिये, भारतके बाद कौरव और पाण्डवोंके वंशका अंकुर एक मैं ही बच रहा था, किन्तु जब मैं माताके गर्भमें ही था उस समय मेरे मारनेके लिये अश्वत्थामाने ब्रह्मास्त्र चलाया। उस अस्त्रसे मेरा शरीर नष्ट ही होचुकाथा, किन्तु वैसे ही मेरी माताको शरणमें आये देख कृपालु कृष्णचन्द्रने गर्भमें प्रवेश करके सुदर्शन चक्र द्वारा मेरी रक्षा की ॥ ६ ॥ वह कृष्णचन्द्र सब देहधारियोंके भीतर आत्मारूपसे और बाहर कालरूपसे अवस्थित हैं; वह विषयी जनोंको कालरूपसे मृत्यु(जन्ममरणका बन्धन) और आत्मज्ञानियोंको आत्मारूपसे अमृत अर्थात् मुक्ति देते हैं। ब्रह्मन् ! उन मायामनुष्यरूप हरिकी लीलाएँ मुझको सुनाइये॥७॥भगवन्! आपने पहले संकर्षणजीको, जिनका एक नाम राम भी है, रोहिणीका पुत्र बता कर फिर देवकीके आठ पुत्रोंमें भी गिनाया है। बिना दूसरा शरीर धारण किये रोहिणीके पुत्र संकर्षणजी देवकीके गर्भमें कैसे आसक्ते हैं ? ॥ ८ ॥ इसके सिवा यह भी बताइये कि भगवान् कृष्णचन्द्र पिताके घरसे व्रजको क्यों गये ? यदि कहो कंसके भयसे– तो उनको भय कैसा ? और भक्तवत्सल भगवान् जातिभाइयों सहित कहाँ पर रहे ? ॥९॥ व्रजमें रहकर कृष्णचन्द्रने क्या २ चरित्र किये और मथुरामें क्या २ किया ? अपने मामा कंसको क्यों मारा ? क्योंकि माताके भाईकी हत्या महा अनुचित है ॥१०॥ मनुष्य देह धारण कर यादवों सहित यदुपुरीमें कितने दिन रहे और उनके रानियाँ कितनी थीं ? ॥११॥ हे मुनिवर, ये सब बातें व और सब कृष्णके चरित्र विस्तारपूर्वक कहिये; क्योंकि आप सर्वज्ञ हैं। मुझे कृष्णकी लीलाओं पर बड़ी ही श्रद्धा है ॥१२॥ आप मेरे भूखे प्यासे होनेकी चिन्ता तनिक भी न कीजिये। यद्यपि भूख और प्यासको सहना बहुत ही कठिन काम है, तथापि मुझको कुछ भी भूख और प्यासकी पीड़ा नहीं है। मैंने जलतक त्याग कर दिया है, किन्तु आपके मुखकमलसे निकले हुए हरिकथारूप अमृतके पान करनेसे मुझे कुछ भी कष्ट नहीं है ॥ १३ ॥ सूतजी शौनकादिक ऋषियोंसे कहते हैं कि हे शौनक! राजाके ये अति उत्तम प्रश्न सुन कर भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ भगवान् शुकदेवने पहले परीक्षित्की बड़ाई की और फिर कलियुगके दोषोंको दूर करनेवाला कृष्णचरित्र यों कहने लगे ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजर्षियोंमें श्रेष्ठ! तुमने अन्त समय अपनी

बुद्धिसे बहुत ही अच्छा विचार किया जो कृष्णचन्द्रकी कथा(चर्चा)में दृढ़ताके साथ चित्त लगाया ॥ १५ ॥ भगवान्‌के चरित्रोंका जिससे सम्बन्ध हो वह प्रश्न—पूछनेवाले, उत्तर देनेवाले और सुननेवाले पुरुषोंको गंगाजलके समान पवित्र कर देता है ॥ १६ ॥ अब अपने प्रश्नोंका उत्तर सुनिये । असंख्य दैत्यगण राजोंके यहाँ उत्पन्न हुए एवं राजा बन कर अभिमानके साथ मनमाना अधर्म्म और अत्याचार करने लगे । उन लाखों असुरोंके अन्यायके भारसे पृथ्वी जब बहुत ही पीड़ित हुई तब गायके रूपसे, दुःख और कष्टके कारण आँखोंमें आँसू भरे हुए एवं खेदके कारण दीनस्वरसे विलाप करती हुई ब्रह्माजीकी शरणमें गई । ब्रह्माजीके पास जाकर पृथ्वीने सब अपने कष्टका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १७ ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने पृथ्वीके मुखसे सब वृत्तान्त सुना और उसी समय उसको साथ लेकर शिव आदि देवगण सहित क्षीरसागरके किनारे गये ॥ १९ ॥ वहाँ जाकर पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे जगत्‌के स्वामी, देवतोंके देवता, मंगलरूप परमपुरुषकी एकाग्रमन हो स्तुति करने लगे ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने समाधि लगाई अर्थात् ईश्वरका ध्यान करने लगे, तब उनको अपने ही हृदयाकाशमें एक अलौकिकवाणी सुन पड़ी । उस समय ब्रह्माजीने देवतोंसे कहा कि हे देवगण ! मैंने जो हृदयमें ईश्वरकी आज्ञा सुनी है उसे सुनो और उसीके अनुसार शीघ्रही सब कार्य्य करो;—कुछ भी विलम्ब न हो ॥ २१ ॥ परमेश्वरको पहलेसे ही पृथ्वीके भारका वृत्तान्त विदित है । जब तक परमात्मा परमेश्वर अपनी कालरूप शक्तिसे पृथ्वीका भार उतारते हुए भूलोकमें विहार करें तबतक तुम लोग यदुवंशमें जन्म लेकर पृथ्वीमें रहो ॥ २२ ॥ वसुदेवके भवनमें परमपुरुष साक्षात् विष्णु भगवान् जन्म लेंगे; उनका प्रिय करनेके लिये सब देवतोंकी स्त्रियाँ भी पृथ्वीमें जन्म लें ॥ २३ ॥ वासुदेवकी कला, सहस्रमुख और स्वप्रकाशपूर्ण शेषजी भी हरिका प्रिय करनेके लिये पहले ही अवतार लेंगे ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाली भगवती विष्णुमाया भी प्रभुकी आज्ञाके अनुसार देवकार्य्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वी पर अपने अंशावतारसे प्रकट होंगी ॥ २५ ॥ शुकदेवजी कहते हैं । प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजी देवगणको यों आज्ञा देकर और पृथ्वीको धीरज बँधा कर परमधाम(सत्यलोक)को गये ॥ २६ ॥ अब इधर पृथ्वीपरका हाल सुनिये । यादवपति राजा शूरसेनने मथुरा पुरीमें रह कर शूरसेन देश और मथुरा प्रदेशका शासन किया ॥ २७ ॥ इसी कारण तबसे मथुरा पुरी ही यदुवंशी राजोंकी राजधानी होगई । मथुरा पुरीमें नित्य हरि भगवान् विद्यमान रहते हैं ॥ २८ ॥ एक समय मथुरा पुरीमें शूरवंशी वसुदेवजी बिवाह करके अपने घर जानेके लिये नवविवाहिता देवकी सहित रथ पर सवार हुए ॥ २९ ॥ बहुतसे सुवर्णमण्डित रथों सहित उग्रसेनका पुत्र कंस कुछ दूर पहुँचानेके लिये वसुदेवके साथ होलिया । उसने अपनी बहन देवकीकी प्रसन्नताके-

लिये उनके रथको स्वयं सारथी बन कर हाँकनेकी इच्छासे घोड़ोंकी लगाम थामली ॥ ३० ॥ कन्यावत्सल महाराज देवकने बिदाके समय अपनी कन्या देवकीको यौतुक(दहेज)में सोनेकी मालाओंसे सुशोभित चार सौ हाथी, सजे हुए पन्द्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ एवं विविध भूषणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दीं। वर और वधूके बिदा होते समय दुन्दुभि, शंख, तूर्य्य और मृदंग आदि मंगलकारी बाजे बजने लगे ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ रथको कंस हाँक रहा था, इसी समय मार्गमें कंसके प्रति आकाशवाणी हुई कि "अरे मूर्ख! जिसका तू रथ हाँक रहा है उसी देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक तुझको मारेगा" ॥ ३४ ॥ भोजकुलका कलंक, पापरूप दुष्ट कंस, यह आकाशवाणी सुनते ही बहनके स्नेहको भूल गया और उसने मारनेके लिये देवकीके केश पकड़कर खड्ग निकाल लिया ॥ ३५ ॥ वसुदेवने जब देखा कि निर्लज्ज कंस कसाइयोंका ऐसा निन्दित निठुर कर्म्म करनेपर उतारू है तब वह मीठे वचन कहकर उसे यों समझाने लगे ॥ ३६ ॥ **वसुदेवजी बोले।** कंस! तुम्हारे गुणोंकी और वीरताकी बड़े २ वीर लोग बड़ाई करते हैं; तुमने भोजवंशका यश बढ़ाया है। तुम ऐसे शूरशिरोमणि होकर अपनी बहनका वध करना चाहते हो! तुमको ऐसा नीच निन्दित कर्म नहीं सोहता। देखो तो सही, एक तो स्त्री-जाति, दूसरे बहन, तिसपर बिवाहका उत्सव! ॥ ३७ ॥ हे वीर! जो कहो 'इसके आठवें बालकसे मेरी मृत्यु होगी, इससे इसे ही मार कर झगड़ा मिटाये देता हूँ' तो याद रक्खो मृत्युकी कोई औषध नहीं है! जिसने जन्म लिया है उसे स्मरण रखना चाहिये कि देहके साथ ही मृत्यु भी पैदा होती है, आज हो अथवा सौ वर्षके बाद हो—प्राणियोंकी मृत्यु अवश्य होगी ॥ ३८ ॥ यदि इस देहके छूटनेपर दूसरा देह न मिले तो भी इसकी रक्षाके लिये ऐसा घोर कर्म्म करना ठीक है, किंतु ऐसा नहीं है। एक शरीरके छूटने पर इस जीवको कर्म्मका फल भोगनेके लिये बिवश होकर दूसरे शरीरमें जाना पड़ता है। यह जीव जब मनके द्वारा दूसरे शरीरको ग्रहण करलेता है तब पहला शरीर छूटता है ॥ ३९ ॥ जैसे तृणजलूका (एक प्रकारका कीड़ा) जब किसी तृण आदिको पकड़ लेता है तब पहलेके तृणको छोड़ता है या मनुष्य जब एक पैर आगे जमालेता है तब पिछला पैर उठाता है वैसे ही जीवकी भी कर्म्मानुसार गति है ॥४०॥ जाग्रत् अवस्थामें देखने या सुननेका संस्कार मनमें उत्पन्न होनेसे निविष्टचित्त होकर उस देखे या सुने विषयका ध्यान करते २ पुरुष जैसे स्वप्नमें जाग्रत् अवस्थाके उस देखे सुने विषयके अनुरूप देखने सुननेके विषयोंको देखता है—वैसे ही जीव भी कर्मवश स्मृतिरहित दूसरे शरीरको पाकर पूर्वशरीरको छोड़ता है ॥ ४१ ॥ देहकी पञ्चत्वप्राप्तिके समय विविधविकारमय मन, फलोंकी ओर कर्म्मोंके द्वारा

प्रेरित होकर, मायाके द्वारा अनेक शरीरोंके रूपमें
रूपको प्राप्त होता है उस २ रूपमें यह देही (जीव)
चन्द्रादि ज्योतिर्मय पदार्थ जैसे तैल-घृत-जल आ।
प्रतिबिंबित होने पर वायुके द्वारा काँपते हुए प्रतीत होते है
अविद्यारचित गुणोंके अनुगत होकर उन्हींमें आसक्तिके कारण
है ॥ ४३ ॥ इस लिये ऐसे गुणोंसे युक्त पुरुषको यदि अपने मंगल
तो किसीसे भी द्रोह न करे, क्योंकि जो कोई दूसरेसे द्रोह करते
भी औरोंसे भय होता है एवं परलोकमें यमयातनाका भी भय है ॥
देखो यह तुम्हारी छोटी बहन बालिका है, दीन है, कातर है—भयसे काठकी पुतली
भाँति अचेत हो रही है। तुम दीनवत्सल हो, इस कल्याणरूपिणीको मारना तुम्हारे
योग्य काम नहीं है ॥४५॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! कंस बड़ा ही
निठुर राक्षस स्वभावका मनुष्य था, अतएव वसुदेवके मित्रता दिखलानेसे और
साम व भेदके वाक्योंसे उसका विचार नहीं बदला ॥ ४६ ॥ वसुदेवजी उसके
इस हठको जान कर चिन्ता करने लगे कि कैसे देवकीके प्राणोंकी रक्षा की जाय?।
वसुदेवजीने चिन्ता करके यह कर्त्तव्य स्थिर किया ॥ ४७ ॥ "बुद्धिमान्
पुरुषको चाहिये कि अपनी बुद्धि और बलके अनुसार यथाशक्ति मृत्युको टाले
और यदि ऐसा करनेसे भी मृत्यु न टले तो उसमें मनुष्यका कोई अपराध नहीं
है ॥ ४८ ॥ मैं इस मृत्युस्वरूप कंसको अपने होनहार पुत्र देदेनेकी प्रतिज्ञा करके
इस दीन अबलाके प्राण बचाऊँ; बस इस समय मेरा यही कर्त्तव्य है। फिर
जब मेरे पुत्र होंगे उस समय जो होना होगा सो होगा—इस समय तो देव-
कीके प्राण बच जायँगे। हो सक्ता है कि मेरे पुत्र उत्पन्न होनेके पहले ही कंसकी
मृत्यु होजाय। अथवा यदि कंस न भी मरे तो मेरे पुत्र भी तो (देववाणीके अनु-
सार) इसके विनाशका कारण हो सक्ते हैं। क्या नहीं होसक्ता?—विधाताकी
गतिको कौन जान सक्ता है? पुत्र देनेकी प्रतिज्ञासे इस समय तो आई हुई मृत्यु
लौट जायगी। यदि फिर देवकीकी मृत्यु आवेगी तो मेरा कौन दोष है? ॥४९॥५०॥
अग्नि और काष्ठके संयोग और वियोगका सिवा अदृष्ट (दैव) के जैसे और कोई
कारण नहीं देखा जाता वैसे ही प्राणी और शरीरके संयोग और वियोगका कारण
भी वही अदृष्ट है; अतएव यह विषय हमलोगोंके लिये अचिन्त्य है" ॥५१॥ अपने
ज्ञानके अनुसार यों निश्चय करके वसुदेवजीने पहले खूब सम्मान दिखाते हुए कंसकी
प्रशंसा की ॥ ५२ ॥ फिर यद्यपि हृदय धड़क रहा था तथापि विश्वास दिलानेके
लिये प्रसन्नमुख होकर हँसते २ निर्लज्ज नृशंस कंससे यों कहा ॥ ५३ ॥ **वसुदेव-**
जीने कहा कि हे सौम्य! आकाशवाणीके कथनानुसार देवकीसे तुमको कोई
भय नहीं है; भय केवल इसके पुत्रोंसे है, इस लिये मैं इसके सब पुत्र तुमको दे-

। कहते हैं कि वसुदेवके इस कथनको युक्तियुक्त
. और बहनके वधसे निवृत्त हुआ । वसुदेव भी प्रसन्न
रको गये ॥ ५५ ॥ समय पाकर सर्वदेवमयी देवकीके
करके आठ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई ॥ ५६ ॥ वसुदेवने
८ सहकर भी कीर्तिमान् नाम पहला पुत्रको लेजाकर कंसके
। । सच है, सत्य प्रतिज्ञावाले साधुगण सत्यकी रक्षाके लिये
नहीं सह सक्ते ? विद्वान् लोग किस वस्तुकी अपेक्षा करते हैं ? निन्दित
न, कौन ऐसा अकार्य है जिसे नहीं कर सक्ते ? और धीर हरिभक्तजन
स वस्तुका त्याग नहीं कर सक्ते ? ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ राजन् ! वसुदेवका ऐसा साधुत्व और सत्यमें निष्ठा देखकर कंसने संतुष्ट हो हँसते हुए कहा कि आप इस पुत्रको लेजाइये; इससे मुझे कोई भय नहीं है, आठवें पुत्रसे ही मेरी मृत्यु विहित है ॥ ५९ ॥ ६० ॥ वसुदेव "बहुत अच्छा" कह कर पुत्रको ले घरको चले गये; किन्तु कंसके इस वाक्य पर उनको विश्वास नहीं हुआ । क्योंकि उनको विदित था कि कंस असत् है और उसका मन उसके वशमें नहीं है ॥६१॥ इधर नारदने आकर कंससे कहा कि व्रजवासी नन्द आदिक गोप, उनकी स्त्री गोपियाँ, वसुदेव आदि सब वृष्णिवंशी यादव और उनकी देवकी आदि स्त्रियाँ एवं वसुदेव व नंदके कुलके सब जाति, बन्धु और सुहृद्गण तथा तुम्हारे अनुगत यादवादि अनुचरगण सब देवतुल्य तुम्हारे शत्रु हैं। नारदजीने यह भी बताया कि पृथ्वीके भारस्वरूप असुरोंका संहार करनेके लिये देवतोंके द्वारा यह उद्योग हो रहा है ॥६२॥६३॥६४॥ यह कह कर नारदके चले जाने पर "यादवगण देवता हैं एवं विष्णु मुझे मारनेके लिये देवकीके गर्भसे उत्पन्न होंगे" यह जानकर कंसने उसी समय लोहेकी जंजीर व बेड़ियोंसे वसुदेव व देवकीके हाथ पैर जकड़कर उनको अपने घरमें बन्दी कर रक्खा । देवकीके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसे विष्णु जानकर कंसने उसी समय मार डाला ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ पृथ्वी पर देखा जाता है कि प्रायः सब लोभी और शरीरके सुखको ही सर्वस्व माननेवाले क्रूर राजालोग अपनी भोगवासना चरितार्थ करनेके लिये माता, पिता, भ्राता और बन्धुओंका भी वध कर डालते हैं ॥ ६७ ॥ पूर्वजन्ममें कंस, कालनेमि नाम असुर था—उसको विष्णुने मारा था, यह इस जन्ममें भी कंसको याद था; इसी लिये वह यादवोंसे विरोध करने लगा ॥ ६८ ॥

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ॥
स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥

यदु भोज और अंधक आदि यादवोंके अधिपति अपने पिता महाराज उग्रसेन-को बंदी करके महाबली कंस शूरसेन देशका मनमाना निष्कण्टक राज्य भोग करने लगा ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय अध्याय ।

देवकीके गर्भसे भगवान्‌का जन्म ।

श्रीशुक उवाच—प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! बलदर्पित कंस, जरासंधकी सहायता पाकर प्रलंब, बक, चाणूर, तृणावर्त्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, भौमासुर एवं अन्यान्य राजवेषधारी असुरों सहित यादवोंका नाश करने लगा । उसके दारुण अत्याचारसे पीड़ित यादवगण—कुरु, पाञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह एवं कोशल आदि राज्योंमें भाग गये ॥१॥२॥३॥ केवल कुछ अक्रूर आदि ज्ञातिगण उसके चित्तकी अनुवृत्ति करते हुए मथुरापुरीमें रह कर उसकी सेवा करते रहे ॥ ४ ॥ क्रमशः कंसने जब देवकीके छः बालक मारडाले तब हर्ष और शोक, दोनोंको देनेवाला सातवाँ गर्भ देवकीके रहा । इस गर्भमें विष्णुका अंश अनन्त(शेष)जी आये, दुष्ट कंसके ऐसे घोर अत्याचार करनेपर विश्वात्मा भगवान्‌ने जाना कि मैं ही जिनका नाथ (रक्षक) हूँ उन यदुवंशियोंको कंससे बड़ा ही भय उपस्थित है । तब विष्णु भगवान्‌ने योगमायाको आज्ञा दी कि हे देवि ! हे भद्रे ! गोप और गोकुलसे शोभित व्रजको जाओ । वहाँ नन्दके गोकुलमें वसुदेवकी स्त्री रोहिणी रहती हैं । वसुदेवकी और २ स्त्रियाँ भी कंसके भयसे इधर उधर अलक्षितभावसे रहती हैं । अनन्त नाम मेरा अंश इस समय देवकीके गर्भमें है, तुम उस गर्भको खींच कर रोहिणीके उदरमें स्थापित करो । हे शुभे ! तदनन्तर मैं पूर्णरूपसे देवकीके गर्भ द्वारा जन्म लूँगा एवं तुम भी उसी समय नन्दकी स्त्री यशोदाके गर्भसे जन्म लेओगी । मनुष्यगण, सब कामना व वरोंकी अधीश्वरी एवं देनेवाली जान कर अनेक प्रकारके उपहार तथा बलिसे तुम्हारी पूजा करेंगे । पृथ्वीमें तुम्हारे दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा, अम्बिका इत्यादि अनेकों नाम होंगे । गर्भके संकर्षणसे उस गर्भसे उत्पन्न बालकका नाम 'संकर्षण' होगा । इसके सिवा सब लोगोंका मनोरंजन करनेके कारण 'राम' एवं महाबली

होनेके कारण 'बलभद्र' नाम भी होंगे ॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥ भगवान्‌की यह आज्ञा पाकर भगवतीने कहा कि "बहुत अच्छा, ऐसा ही करूँगी" और भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके पृथ्वी पर आकर उन्होने वैसा ही किया ॥ १४ ॥ योगमायाजी जब देवकीके गर्भको लेजाकर रोहिणीके उदरमें स्थापित कर आईं तब पुरवासी लोग 'हाय! देवकीका गर्भ नष्ट होगया' यों कह कर विलाप करने लगे; किन्तु वे उसका विशेष वृत्तान्त कुछ भी न जानसके ॥ १५ ॥ इधर भक्तोंका भय हरनेवाले विश्वात्मा भगवान्‌ने पूर्णरूपसे वसुदेवके अन्तःकरणमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ वसुदेवजी अन्तःकरणमें ईश्वरका तेज धारण करने पर सूर्य्यके समान प्रकाशमान हुए एवं सब प्राणियोंके लिये दुरासद व दुर्द्धर्ष हो उठे ॥ १७ ॥ तदनन्तर, पूर्वदिशा जैसे पूर्ण चन्द्रको धारण करे वैसे ही शुद्ध मनवाली दीप्तिशालिनी देवकीने सर्वव्यापी एवं अपनेमें पहलेसे ही स्थित अच्युतके अंशको गर्भमें वसुदेवके वीर्य्यरूपसे धारण किया ॥ १८ ॥ जिनमें सब जगत् वास करता है उन विष्णुका आवास होने पर देवी देवकी स्वयमेव आनन्दित हुई, किन्तु सब जगत्‌को नहीं आनन्दित करसकीं, क्योंकि जैसे घटाटिके भीतर दीपशिखा या ज्ञानवञ्चक मनुष्यके अन्तरमें हितकारिणी विद्या निरुद्ध हो वैसे ही वह कंसके भवनमें निरुद्ध थीं ॥ १९ ॥ एक दिन कंसने अजित हरिको गर्भमें धारण किये उन्ही सुन्दर मुसकानवाली देवकीको अपने तेजसे भवनभरका अंधकार हरते देख कर कहा "निश्चय जान पड़ता है कि मेरे प्राणोंका शत्रु हरि इसके गर्भमें आया है, क्योंकि मैंने पहले कभी अपने घरमें देवकीका ऐसा दुर्द्धर्ष तेज नहीं देखा। इस समय इस हरिका नाश करनेके लिये मुझे कौन सा उपाय शीघ्र ही करना चाहिये? पुरुष लोग स्वार्थपर होकर भी कभी स्त्रीवधसे अपने विक्रमको दूषित नहीं करते। देवकीको मारनेसे स्त्रीवध भगिनीवध और गर्भिणीके वधका पातक लगेगा; जिससे क्रमशः यश, श्री और आयुका क्षय होता है ॥ २० ॥ २१ ॥ जो व्यक्ति केवल हिंसाव्रतसे जीवन धारण करता है वह जीते ही मरेके तुल्य है। वह पापी जितने दिन जीता रहता है तब तक जगत्‌में उसकी निन्दा होती है और मरनेपर निश्चय ही नरकको जाता है" ॥ २२ ॥ प्रभावशाली कंस, इसी घोर चिन्ताके कारण, चाहता तो देवकीको मार डालता तथापि इस कुकर्म्मसे निवृत्त हुआ एवं हरिसे वैर बाँधकर उनके जन्मकी राह देखने लगा ॥ २३ ॥ दिन रात घड़ीभरके लिये उसको शान्ति न थी; बैठते, उठते खाते, पीते, घूमते और सोते में, सब समय हृषीकेश विष्णुके ही ध्यानमें मग्न रहता था; यहाँतक कि वह जगत्‌को विष्णुमय देखने लगा ॥ २४ ॥ हे राजन्! उसी समय नारदादि मुनि एवं अनुचर देवगण सहित ब्रह्मा और शिवजी, देवकीके निकट आये और रम्य वचनोंसे सब कामना पूर्ण करनेवाले हरिकी यों स्तुति करने लगे ॥ २५ ॥

"भगवन्! आप सत्य-व्रत हैं; सत्य ही आपका संकल्प है; सत्य ही आपके मिलनेका प्रधान साधन है। आप तीनो कालमें सत्य हैं, सत्यके कारण और सत्यमें अवस्थित हैं, एवं आप सत्यके भी सत्य अर्थात् पारमार्थिक पदके भी अन्तमें अवशिष्ट रहते हैं। आप ऋत और सत्यके नेता अर्थात् प्रवर्त्तक हैं या ऋत और सत्य आपके नेत्र हैं। अतएव आप सत्यमय हैं। हम आपके शरणागत हैं ॥ २६ ॥ यह देहआदिका प्रपञ्च वृक्षरूप है। एक प्रकृति ही इसका आश्रय है; सुख और दुःख दो फल हैं; सत्व-रज-तम ये तीनो गुण, मूल हैं; धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार रस हैं; पाँचो ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान(जानने)के पाँच प्रकार हैं; शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा और प्यास ये छः स्वभाव हैं; रस, रुधिर, मांस, मेदा, मज्जा, अस्थि और शुक्र ये सात त्वचा (आवरण) हैं; पाँच इन्द्रिय व मन, बुद्धि और अहंकार ये आठ विटप (शाखा) हैं; कान आदि नव द्वार नव छिद्र हैं एवं दश प्राण पत्र (पत्ते) हैं। जीवात्मा और परमात्मा ये दो पक्षी इसमें वास करते हैं ॥ २७ ॥ एक आप ही इस कार्य्यरूप वृक्षकी उत्पत्ति और लयका स्थान तथा पालनकर्त्ता हैं। जिनका ज्ञान आपकी मायासे ढँका हुआ है वे आपको अनेक वस्तुओंमें अनेक रूपसे देखते हैं, किन्तु विद्वान् लोग आपको एकरूप ही देखते हैं ॥ २८ ॥ हे भगवन्! ज्ञानस्वरूप आप सब चराचर जगत्के कल्याणके लिये वारम्वार सत्त्वगुणमय विविध रूप धारण करते हैं। उन आपके अवतारोंसे धर्म्मात्मालोगोंको सुख मिलता है और खलदलका दलन होता है ॥ २९ ॥ हे कमललोचन! आप निर्मल सत्त्वगुणका धाम हैं। निर्म्मल सत्त्वनिष्ठ विवेकीजन समाधियोगसे आपमें लगाये हुए चित्तके द्वारा महत्सेवित और बहुमत जो नौकारूप आपके चरण हैं उनका आश्रय लेकर इस अपार संसारसागरको गो-पदके गढ़ेके जलके तुल्य तुच्छ जानते हैं ॥ ३० ॥ हे प्रकाशस्वरूप! भक्तगण पर आप कृपा करते हैं। सब प्राणियों पर प्रेम रखनेवाले भक्तजन स्वयं तो इस, भक्तिहीन लोगोंके लिये भयानक, दुस्तर भवसागरके पार चले ही गये किन्तु और लोग भी जिससे सहजमें ही भवसागरके पार जासकें-इस लिये आपके नौकारूप चरणकमलोंको यहीं छोड़ गये हैं अर्थात् भक्तिमार्ग चला गये हैं ॥ ३१ ॥ आपके भक्तोंसे भिन्न अन्यान्य लोग, जो अपनेको मुक्त मान कर अभिमान करते हैं, वे अनेक कष्ट उठा कर जिस श्रेष्ठ पदको पाते हैं उससे अन्ततः उनको पतित होना पड़ता है, क्योंकि आपमें भक्ति न होनेके कारण उनकी बुद्धि भली भाँति शुद्ध नहीं होती; अतएव आपके श्रीचरणोंकी अवहेला करनेके कारण उनको पूर्णतया मुक्ति नहीं मिलती और बीचमें ही अनेक विघ्नोंके होनेसे भ्रष्ट होजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे केशव! किन्तु जो लोग आपके भक्त हैं वे आपमें ही अनन्य-भावसे प्रेम करते हैं—उनकी ऐसी गति नहीं होती। आप उनके रक्षक बनते हैं, अतएव

वे सम्पूर्ण विघ्नोंके शिर पर पैर धरते हुए निर्भय भावसे विचरते हैं ॥३३॥ प्रभो ! आप लोकपालनके लिये कर्मफलदायिनी सत्त्वमयी अपनी मूर्त्ति लोकमें प्रकट करते रहते हैं। लोग उसी मूर्तिमें वेद, क्रिया, योग, तप और समाधिके द्वारा आपका पूजन करनेको समर्थ होते हैं। यदि आप अपनी मूर्ति न प्रकट करते तो पूजाके अभावसे कर्मफलकी सिद्धि न होती ॥ ३४ ॥ हे विधाता ! यदि सत्त्व आपका शरीर न होता तो अज्ञान व भेदका नाश करनेवाले विज्ञानकी उत्पत्ति न होती; क्योंकि सब गुणोंमें जो प्रकाश लक्षित होता है उसके द्वारा आपका केवल अनुमान ही किया जासक्ता है—साक्षात्कार नहीं होता। 'आप गुणोंके साक्षी हैं, बुद्धिमें आरूढ़ एवं प्रमाता होनेके कारण आपके प्रकाशसे बाह्यगुण (बुद्धिआदि)का प्रकाश होता है'—इस प्रकार आपका अनुमान ही किया जासक्ता है, किन्तु इन्द्रियोंके अगोचर होनेके कारण आपका साक्षात् असंभव है ॥ ३५ ॥ देव ! आप गुण-कर्मादिके साक्षी हैं एवं मन और वाक्यके द्वारा केवल आपकी गतिका अनुमानमात्र होसक्ता है। अतएव नाम, रूप, गुण, कर्म या जन्मके द्वारा आपका निरूपण नहीं किया जासक्ता, क्योंकि आप(सगुण रूप)के नाम-रूपादि अनन्त व अतर्क्य हैं, मन और वाणीसे उनकी इयत्ता नहीं की जासक्ती। तथापि भक्त लोग उपासना आदि क्रियाओंमें हृदयके भीतर आपको देखपाते हैं ॥ ३६ ॥ जो लोग आपके मङ्गलमय नाम व रूपोंका कीर्तन या श्रवण करते हैं, औरोंको सुनाते हैं और स्वयं ध्यान करते हैं एवं आपके दोनो चरणकमलोंकी सेवामें मनको लगा रखते हैं वे फिर संसारमें नहीं आते ॥ ३७ ॥ अहो, कैसे आनन्दकी बात है ! हे सर्वशक्तिसम्पन्न ईश्वर ! आपके जन्मसे ही, आपका चरण जो पृथ्वी है उसका भार दूर होगया। अहो, कैसे मङ्गलकी बात है कि आप कृपा करके अपने श्रीचरणोंके ध्वजा, वज्र, अंकुश आदि पवित्र चिन्होंसे पृथ्वीको सुशोभित व पवित्र एवं स्वर्ग लोक(देवगण)को अनुगृहीत करेंगे और हम आपकी लीला देखेंगे ॥ ३८ ॥ हे ईश ! आप जन्म मरणसे रहित हैं, अतएव आपके जन्मका कारण सिवा क्रीड़ाकौतुकके और कुछ भी नहीं जान पड़ता। हे नित्यमुक्त ! 'आपके जन्मका अन्य कोई कारण नहीं है'—इसके लिये क्या कहना है, क्योंकि आपका अंशमात्र जो जीवात्मा है उसके भी वास्तवमें जन्म आदि कुछ नहीं हैं; प्राणीगण केवल अविद्याके कारण जीवके जन्म व मरणको मानते हैं ॥ ३९ ॥ हे यदुश्रेष्ठ ! आपने पहले समय २ पर जैसे मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वाराह, नृसिंह, हंस, क्षत्रिय और ब्राह्मणोंमें अवतार ले २ कर त्रिभुवनकी और हमारी रक्षा की है वैसे ही इस समय भी पृथ्वीका भारी भार हरिये। हम आपको प्रणाम करते हैं ॥ ४० ॥ हे देवी देवकीजी ! भाग्यवश परमपुरुष श्रीहरि हमलोगोंके मंगलके लिये तुम्हारे गर्भमें आये हैं। अब

तुम कंसका भय न करो, वह शीघ्र ही मरनेवाला है; तुम्हारे यह पुत्ररूप हरि यादवोंकी रक्षा करेंगे" ॥ ४१ ॥

श्रीशुक उवाच-इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥
ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । जिनका रूप (तत्त्व) सबसे परे है उन परम पुरुषकी बुद्धिके अनुसार यथार्थरूपसे इस प्रकार स्तुति करके देवता लोग ब्रह्मा और शिवको आगे कर स्वर्गलोकको लौट गये ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीय अध्याय ।

श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म ।

श्रीशुक उवाच-अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥
यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मके उपयुक्त सब गुणोंसे युक्त अत्यन्त रमणीय समय आकर उपस्थित हुआ । भगवान्‌के जन्मनक्षत्र अर्थात् रोहिणी नक्षत्रका उदय हुआ और अश्विनी आदि सब नक्षत्र एवं ग्रहगण उत्तम स्थानोंमें शान्तरूपसे परममंगलकी सूचना देतेहुए स्थित हुए ॥ १ ॥ उस समय सब दिशाएँ निर्मल होगईं और आकाशमें तारागण स्वच्छ कान्तिसे युक्त होकर प्रकाशित हुए । पृथ्वीमंडलके बीच पुर, ग्राम, व्रज और आकर आदि स्थानोंमें अनेक मंगलमय सगुन देख पड़ने लगे ॥ २ ॥ नदियोंके जल निर्मल होगये, फूले हुए कमलोंसे सरोवरोंकी शोभा बढ़गई । बागोंके बीच वृक्षोंमें कलियोंके गुच्छे खिलगये और उनकी शाखाओं पर बैठे पक्षीगण आनन्दपूर्वक मधुर स्वरसे गाने लगे ॥ ३ ॥ सुखदायक, शीतल, मंद सुगंध वायु डोलने लगा । ब्राह्मणोंके यहाँ अग्निहोत्रके अग्नि जो शान्त होगये थे सो प्रज्वलित हो उठे ॥ ४ ॥ असुरद्रोही साधुजनोंके मन आप ही आप प्रसन्न हो उठे । विष्णु भगवान्‌के जन्मसमयको अत्यन्त निकट देख कर स्वर्गमें देवगण दुंदुभी बजाने लगे ॥ ५ ॥ किन्नर और गंधर्व गान करने लगे, सिद्ध और चारणगण परमात्माकी स्तुति करने लगे एवं विद्याधरी और अप्सराएँ आनन्दके मारे नृत्य करने लगीं ॥ ६ ॥ मुनिगण और देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे । उसी घोर अंधकारमय (भादोंके कृष्ण

पक्षकी अष्टमीकी रात्रिको) अर्धरात्रिके समय हरिने जन्म लिया । उस समय सागरके साथ ही मेघ भी मंद २ गर्जने लगे । पूर्वदिशामें पूर्ण चन्द्रमाका जैसे उदय हो वैसे ही देवी देवकीके गर्भसे सबके अन्तर्य्यामी हरि प्रकट हुए ॥७॥८॥ वसुदेवने देखा कि वह बालक बहुत ही अद्भुत है । नेत्र कमलके पत्तेके समान विशाल हैं, चार भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा आदि आयुध शोभित हैं, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिन्ह विराजमान है, गलेमें कौस्तुभमणिकी अपूर्व कान्ति है, पानीभरे बादलके समान श्यामशरीरमें पीतांबर शोभायमान है ॥ ९ ॥ अनन्त अलकोंकी अवली पर महामूल्यके वैडूर्य्यमणिजटित किरीट मुकुट व कुण्डलोंकी प्रभा पड़नेसे उसकी अद्भुत शोभा है । अति उत्तम मेखला, अङ्गद और कंकण आदि अलंकारोंसे शरीर अत्यन्त मनोहर हो रहा है ॥ १० ॥ विस्मययुक्त वसुदेवके नेत्रकमल प्रफुल्लित हो उठे । हरिको पुत्ररूपसे अपने यहाँ प्रकट हुए देखकर वसुदेवके आनन्दकी सीमा नहीं रही और उन्होने कृष्णावतारके आनन्दसे संभ्रमयुक्त होकर मनसे ब्राह्मणोंको दस हजार गऊ देनेका संकल्प किया; क्योंकि वह उस समय बंदी थे, अतएव प्रत्यक्षरूपसे गोदान असंभव था ॥ ११ ॥ भगवान्के अंगोंकी प्रभासे उस सूतिकाभवनका अंधकार दूर होगया । वसुदेवने जाना कि साक्षात् हरिने जन्म लिया है, तब उनके मनसे कंसका भय जाता रहा, क्योंकि वह हरिके प्रभावको भली भाँति जानते थे । तदनन्तर महात्मा वसुदेवजी शिर झुकाकर, हाथ जोड़कर शुद्ध बुद्धिसे परमपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ १२ ॥

वसुदेवने कहा । "अहो ! मैंने आपको जाना । आप प्रकृतिसे परे साक्षात् परमपुरुष हैं । अहो मेरा कैसा सौभाग्य है जो आज मैं आपको साक्षात् देख रहा हूँ ! भगवन् ! केवल अर्थात् अखंड अनुभव और आनंद ही आपका स्वरूप है । आप सबकी बुद्धियोंके साक्षी अर्थात् अन्तर्य्यामी हैं ॥ १३ ॥ आपने अपनी मायाके द्वारा इस त्रिगुणमय विश्वकी सृष्टि की है; यद्यपि वास्तवमें आप इस विश्वमें अनुप्रविष्ट नहीं हैं तथापि प्रविष्ट ऐसे लक्षित होते हैं ॥ १४ ॥ जैसे, महत्तत्त्व आदि सब तत्त्व इन्द्रियआदि सोलह विकारोंके साथ मिलकर ब्रह्माण्डको उत्पन्न करते हैं; वे पृथक् २ रह कर किसी विशिष्ट कार्य्यका सम्पादन नहीं कर सक्ते । ब्रह्माण्डरचनाके बाद वे तत्त्व उसके भीतर प्रविष्टसे जान पड़ते हैं, किन्तु वास्तवमें देखिये तो उनका उसमें पश्चात् प्रविष्ट होना संभव नहीं है; क्योंकि वे सब तत्त्व पहलेसे ही कारणरूपसे उसमें विद्यमान हैं ॥ १५ ॥ १६ ॥ वैसे, रूपादिज्ञानके द्वारा जिनके स्वरूपका अनुमान करना होता है उन सब विषयोंमें आपके वर्तमान रहने परभी, उनके द्वारा आपका साक्षात्कार नहीं होता । आप सर्वस्वरूप सर्वात्मा सर्वव्यापक और परमार्थ वस्तु हैं, अतएव अपरिच्छिन्न हैं, सुतरां कोई आवरण न होनेके कारण आपमें भीतर बाहरका भेद ही नहीं है, आप सर्वत्र समान भावसे स्थित हैं; तब

प्रवेश आदि कैसा? हे भगवन्! अन्तर्यामी होनेके कारण जब ब्रह्मांडमें प्रवेश ही मुख्य नहीं है तब देवकीके गर्भमें प्रवेश कैसे संभव हो सक्ता है? अतएव आप केवल अनुभवानन्दरूप हैं। मेरे अहोभाग्य हैं जो मुझे आपके तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हुआ ॥१७॥ जो व्यक्ति आत्माके दृश्यगुण देहादिको आत्मासे अलग पृथक् रूपसे वर्त्तमान वस्तु जानता है वह मूर्ख है, क्योंकि उसमें भेदज्ञान है। विचारपूर्वक देखनेसे देहादिक, सिवा वाक्यारंभके अन्य कुछ भी नहीं प्रतीत होते; अतएव वास्तविक कह कर जिसका स्वीकार कभी नहीं हो सक्ता उसको वास्तविक (सत्) माननेके कारण वह व्यक्ति मूढ़ है ॥ १८ ॥ प्रभो! तत्त्वज्ञानी लोग कहते हैं कि आपसे ही इस विश्वकी उत्पत्ति, पालन व संहार (लय) होता है तथापि आप निर्गुण और निर्विकार हैं; अतएव अनीह (चेष्टाशून्य) हैं। यदि कहो कि चेष्टा-शून्य होनेपर उत्पत्ति आदि कर्मोंका कर्तृत्व कैसे सिद्ध हो सक्ता है? तो आप ईश्वर एवं ब्रह्म हैं, अतएव आपमें इन दोनो लोकविरुद्ध बातोंके होने पर भी वास्तवमें कुछ भी विरोध नहीं है, केवल विरोधाभासमात्र है। आप तीनो गुणोंका आश्रयस्थल हैं अतएव गुणकृत सृष्टि आदि कर्मोंका आपमें आरोप होता है ॥ १९ ॥ आप अपनी माया द्वारा त्रिभुवनके पालनके लिये सात्विक शुक्ल वर्ण और सृष्टिके लिये रजोगुण संवर्द्धित रक्त वर्ण एवं ध्वंसके लिये तामस कृष्ण वर्णको स्वीकार करते रहते हैं ॥ २० ॥ हे जगदीश्वर! हे विभो! इस समय आपने त्रिभुवनकी रक्षाके लिये कृष्ण वर्णसे हमारे भवनमें अवतार लिया है। नाममात्रके राजा जो कोटि २ असुरसेनापति हैं उनके नायकत्वमें परिचालित असंख्य असुरसेनाका संहार ही आपके इस अवतारका प्रधान उद्देश्य है। साधुओंकी रक्षाके लिये आप ऐसी असुरसेनाओंका शीघ्र ही संहार करेंगे ॥ २१ ॥ हे सुरेश्वर! इस असभ्य दुष्ट असुर कंसने हमारे घरमें आपके उत्पन्न होनेकी खबर सुन कर आपके अग्रज भाइयोंको निठुराईके साथ मार डाला है। पहरेदार लोगोंसे आपके जन्मका समाचार पाते ही वह अभी शस्त्र लेकर आता ही होगा" ॥२२॥ **श्रीशुकदेवजी** कहते हैं। तदनन्तर सुंदरी देवकी, बालकमें महापुरुष हरिके सब लक्षण देख कर बहुत ही विस्मित हुई और फिर कंसके भयसे बालरूप हरिकी यों स्तुति करनेलगीं ॥ २३ ॥ **देवकीने कहा**। "वेदमें जिस रूप (वस्तु) को सब विश्वका आदिकारण अथ च अनादि बताया है एवं जो अव्यक्त, बृहत्, चेतन, निर्गुण, निर्विकार, सत्तामात्र, विरोधविहीन और निरीह कहा गया है आप वही आत्म-तत्त्वके अथवा बुद्धिआदि आत्मासे संबंध रखनेवाली इन्द्रियोंके प्रकाशक साक्षात् विष्णु हैं ॥ २४ ॥ जब ब्रह्माकी आयुके दोनो परार्द्ध बीत जाते हैं और महा-प्रलयमें सब जगत् नष्ट हो जाता है अर्थात् सब चराचर जगत् पृथ्वी आदि महाभूतोंमें और महाभूत महत्तत्त्वमें एवं महत्तत्त्व भी कालके वेगसे प्रकृति

(माया) में लीन हो जाता है तब एक आप ही अवशिष्ट रह जाते हैं। उस समय अशेषात्मक प्रधान (प्रकृति) में आपकी प्रज्ञा होती है, आप चिन्तन करते रहते हैं कि 'यह प्रधान तत्त्व मुझमें लीन है, फिर इसको यों प्रकट करना होगा' ॥२५॥ हे प्रकृतिके प्रवर्तक ! निमेषसे लेकर वर्ष तक जो यह द्विपरार्द्धरूप महान् काल है, इसमें अनेक प्रकारसे विश्वका परिवर्तन होता है; यही विश्वपरिवर्तन आपकी चेष्टा (लीला) है। आप क्षेम एवं अभयका स्थान हैं, मैं आपके शरणमें आई हूँ ॥२६॥ मृत्युरूप विषधर सर्पके भयसे भीत होकर भागता हुआ मनुष्य किसी निर्भय लोकको नहीं पाता; आज किसी अनिर्वचनीय भाग्यके उदय होनेसे अकस्मात् आपके अभयमय चरणोंको पाकर सुखकी नींद सोवेगा, क्योंकि अब मृत्यु स्वयं इससे भागेगी ॥ २७ ॥ अब आप इस घोर उग्रसेनसुत कंससे डरे हुए जो हम लोग हैं उनकी रक्षा करो, क्योंकि आप अपने जनोंका भय मिटानेवाले भक्तवत्सल हैं। एक प्रार्थना और भी है कि आप इस अपने ध्यानगम्य दिव्यरूपको चर्मचक्षुवाले लोगोंके आगे न प्रकट कीजिये; क्योंकि इस दिव्यरूपके दर्शन दिव्य दृष्टिसे ही हो सक्ते हैं ॥ २८ ॥ हे मधुसूदन ! यह पापरूप कंस जिसमें यह न जान सके कि मेरे गर्भसे आपका जन्म हुआ है—ऐसा कोई उपाय कीजिये । यद्यपि आप अभयमय हैं, कंसके द्वारा आपका कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सक्ता, तौ भी आपके लिये मुझे कंससे भय हो रहा है; क्योंकि मैं स्त्री हूँ, मेरा चित्त स्वाभाविक अधीर है ॥ २९ ॥ हे विश्वरूप ! अब आप शंख, चक्र, गदा और पद्मकी शोभासे युक्त इस अपने अलौकिक चतुर्भुज रूपको छोड़कर लौकिक रूप धारण कर लीजिये ॥ ३० ॥ प्रलयके अन्तमें जब आप अपने विशाल विराट् शरीरमें ब्रह्माण्डको लीन कर लेते हैं तब सब विश्व उसीमें समा जाता है । किसी वस्तुके लिये अवकाशकी कमी नहीं रहती । वही आप मेरे गर्भमें उत्पन्न हुए—इस पर अज्ञानी मनुष्योंको विश्वास न होगा; बरन् उनके आगे यह विडम्बना(उपहास)का विषय होगा । अतएव आप अब इस अद्भुत रूपको छिपा लीजिये" ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान्ने कहा । हे सती देवकी ! पूर्वजन्ममें स्वायंभुव मन्वन्तरके बीच तुम्हारा नाम पृश्नि था और यह निष्पाप वसुदेवजी सुतपा नाम प्रजापति थे । ब्रह्माजीने तुम दोनोको प्रजा-सृष्टि करनेकी आज्ञा दी, उसीके अनुसार इन्द्रियोंको वशमें करके तुम दोनोने घोर तप किया ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वर्षा, वायु, घाम, जाड़ा, गर्मी, आदि सब कालके गुणोंको सहते हुए प्राणायामके द्वारा मनकी मलिनता मिटाकर तुम तपमें निरत थे । केवल वायु या सूखे पत्तोंका आहार करते थे । मुझसे चितचाहा फल पानेकी इच्छा करके इस प्रकार शान्त चित्तसे तुम दोनो पति—पत्नीने मेरी आराधना की । इस प्रकार मुझमें ही तन्मय होकर परम दुष्कर तीव्र तप करते तुमको दिव्य बारह हजार वर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

हे पापरहिते ! तप, श्रद्धा और भक्ति सहित नित्य ध्यान करनेसे वरदानियोंका राजा मैं प्रसन्न होकर इसी रूपसे तुम्हारी कामना पूरी करनेके लिये तुम्हारे आगे प्रकट हुआ। मैंने कहा-वर माँगो, तब तुमने मेरे ही समान गुण-शीलयुक्त पुत्र माँगा ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ तुम दोनो स्त्री-पुरुषोंने विषयभोग किया न था और पुत्र-हीन भी थे, अतएव मेरी मायासे मोहित होकर मुझसे मुक्ति न माँग सके ॥३९॥ वर देकर मेरे चले जाने पर, मेरे सदृश पुत्र पानेका वर पानेसे सफल-मनोरथ होकर तुम दोनो विषयभोग करने लगे ॥ ४० ॥ शील, उदारता और अन्यान्य गुणोंमें अपने समान किसीको किसी लोकमें न देखकर मैं आप ही पृश्निगर्भ नामसे तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ ॥ ४१ ॥ फिर दूसरे जन्ममें तुम अदिति और कश्यप हुए और मैं भी उपेंद्रनामसे तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ। वामन होनेके कारण 'वामन' नाम पड़ा ॥ ४२ ॥ तुम्हारा यह तृतीय जन्म है, इसमें भी वही मैं उसी रूपसे तुम्हारे भवनमें पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ हूँ। हे सती ! यह वृत्तान्त सब मैंने तुमसे सत्य ही कहा है। पहले भी मैं तुम्हारे यहाँ इसी रूपसे उत्पन्न हुआ था, यह याद दिलानेके लिये मैंने पहले तुमको चतुर्भुजरूप दिखाया है। यदि यह अलौकिक रूप न दिखाकर साधारण मनुष्यरूपसे मैं जन्म लेता तो तुम मुझको कभी न पहचान सक्ते ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ पुत्रभावसे या ब्रह्मभावसे सदा मेरा ध्यान और मुझ पर स्नेह करनेके कारण तुमको उत्तम गति प्राप्त होगी ॥४५॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। इतना कह कर भगवान् चुप हो रहे एवं अपनी मायाके बलसे उसी समय माता व पिताके आगे ही साधारण बालक बन गये ॥ ४६ ॥ तब वसुदेवजी भगवान्की आज्ञाके अनुसार बालरूप हरिको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेका उद्योग करने लगे। उधर उसी समय जन्मरहित योगमायाजी नंदरानीके गर्भसे गोकुलमें उत्पन्न हुईं ॥४७॥ उन्ही योगमायाके प्रभावसे द्वारपाल और पुरवासीगणकी सब इन्द्रियाँ अचेत होगईं और वे सब घोरनिद्राके वश होगये। यद्यपि बंदीगृहके द्वार और किंवाड़ोंमें लोहेकी जंजीरें पड़ी थीं और ताले लगे थे—जिससे बाहर निकलना कठिन था, तथापि वसुदेवजी कृष्णचंद्रको गोदमें लेकर बाहर जानेके लिये जैसे ही वहाँ पहुँचे वैसे ही सूर्य्यके उदयमें जैसे अंधकार मिट जाता है उस प्रकार सब द्वार आप ही आप खुलगये। उस समय मेघबृंद मंद २ ध्वनिके साथ जलकी फुहारें बरसा रहे थे, अतएव शेषजी जल रोकनेके लिये वसुदेवके पीछे २ कृष्णचंद्र पर अपने हजारो फनोंकी छाया करके चले; किन्तु वसुदेवजी न जान सके ॥४८॥४९॥ निरन्तर जलकी वर्षा होनेके कारण उस समय यमुना बड़े ही वेगसे बहरही थीं, अथाह जलमें असंख्य तरंगें उठरही थीं-जिनसे जलमें फेना छा रहा था एवं अनेक भयानक भँवर पड़ रहे थे। किन्तु सागरने जैसे श्रीरामचन्द्रको उस पार जानेके लिये मार्ग देदिया था वैसे ही यमुनाने भी थाह

होकर वसुदेवजीको उस पार जानेके लिये राह देदी ॥ ५० ॥ वसुदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रको लेकर नंदके व्रजमें पहुँचे। जाकर देखा कि सब गोप और गोपियाँ निद्रामें अचेत हुए पड़े सो रहे हैं। वसुदेवने कृष्णचन्द्रको यशोदाके पलँगपर सुलादिया और यशोदाकी कन्याको लेकर घरको लौटे ॥ ५१ ॥ बंदीगृहमें आकर वसुदेवने उस कन्याको देवकीकी सेज पर लिटा दिया और अपने पैरोंमें फिर पहलेकी भाँति बेड़ियाँ डाललीं। फिर आप ही आप सब द्वार पहलेकी भाँति बंद होगये ॥ ५२ ॥

यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुध्यत।
न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता निद्रयापगतस्मृतिः ॥ ५३ ॥

उधर नंदरानी यशोदाको यह तो जान पड़ा कि मेरे कुछ सन्तान हुआ, किन्तु यह न जान सकीं कि पुत्र हुआ या कन्या; क्योंकि श्रम और निद्राके कारण उनको इतना चेत न था ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थ अध्याय।

असुरोंका कुपरामर्श।

श्रीशुक उवाच—बहिरन्तः पुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥
ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! वसुदेवके लौट आने पर बाहरके और भीतरके द्वार और पुरके फाटक फिर पहलेके समान बंद होगये। तदनन्तर बालकके रोनेका शब्द सुन कर द्वारपालगण जागे और देवकीके पुत्र उत्पन्न हुआ जान कर जल्दीसे दौड़ते हुए कंसके पास गये। उनके मुखसे देवकीके आठवाँ पुत्र होनेका समाचार पाते ही कंस घबड़ा कर उठ बैठा। कंस यही राह देख रहा था कि कब देवकीके आठवाँ पुत्र होगा? यही उसको बड़ी भारी चिन्ता और घबराहट थी। कंस खबर पाते ही नंगे सिर, बाल खुले, पैर कहीं धरे और पड़े कहीं—इस प्रकार विह्वल भावसे दौड़ता हुआ चला और सूतिकागृहमें एकदम घुस पड़ा ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ इस दशासे निठुर भाईको आते देख, देवकीने दुखी होकर दीन भावसे कहा कि "हे कल्याण! यह कन्या तुम्हारी भान्जी है इसका वध करना तुमको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ भाई! दैवकी दी हुई दुर्मतिसे तुमने अग्निके तुल्य तेजस्वी मेरे कई पुत्र मारडाले हैं, अब यह एक कन्या मुझे माँगेसे देडालो ॥ ५ ॥ हे समर्थ! मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ, पुत्रोंके मारेजानेसे दीन दुखी होरही हूँ।

यह कन्या मेरी अन्तिम प्रजा है; मुझ अभागिनीको यह कन्या देना तुम्हारा कर्त्तव्य है" ॥ ६ ॥ कन्याको गोदमें छिपा कर अत्यन्त दीन भावसे रोते हुए देवकीने बहुत कुछ प्रार्थना की, किन्तु दुष्ट कंसने एक नहीं सुनी और डाँट कर देवकीके हाथसे कन्याको छीन लिया ॥ ७ ॥ स्वार्थवश होकर स्नेहको भूले हुए कंसने तत्कालकी उपजी हुई कन्याको दोनो पैर पकड़ कर एक शिलाके ऊपर पटका ॥ ८ ॥ किन्तु वह कन्या उसके हाथसे छूट कर शीघ्रताके साथ आकाशको चली गई। वह विष्णुकी अनुजा देवी योगमाया आकाशमें जाकर दिव्यायुध-धारिणी अष्टभुजा मूर्त्तिसे विराजमान हुई ॥ ९ ॥ कंसने देखा कि वह देवी दिव्य माला, वस्त्र, चंदन और आभूषण धारण किये हैं एवं हाथोंमें धनुष, शूल, बाण, ढाल, खड्ग, शंख, चक्र व गदा लिये हैं ॥ १० ॥ सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, किन्नर और नाग इत्यादि अनेक प्रकारकी पूजनसामग्रियाँ हाथमें लिये उनकी स्तुति कर रहे हैं। देवीने कंससे कहा कि "हे मंद! मेरे मारनेसे तुझे क्या लाभ होगा? क्योंकि तेरा पूर्वशत्रु (विष्णु) और मारनेवाला कहीं और ही उत्पन्न हो चुका है! अतएव वृथाके लिये अन्यान्य निर्दोष बालकोंका वध न कर" ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ भगवती योगमाया कंससे यों कह कर अन्तर्हित हो गई और वाराणसी आदि अनेक स्थानोंमें अनेक नामोंसे प्रसिद्ध होकर अवस्थित हुई ॥ १३ ॥ देवीके वचन सुनकर कंसको बड़ा विस्मय हुआ। उसी समय कंसने देवकी और वसुदेवको वंदीगृहसे बाहर कर विनयपूर्वक यों कहा कि "हे भगिनी! और हे भगिनीपति! तुम हमारे आत्मीय हो; किन्तु राक्षसोंके समान मुझ पापीने तुम्हारे बहुत पुत्र मारडाले ॥ १४ ॥ १५ ॥ हाय! मैंने करुणा और जातिवाले व सुहृदोंका स्नेह छोड़ दिया। मैं दुष्ट मरने पर किन लोकोंमें पापका फल भोगनेके लिये जाऊँगा! मैं ब्रह्मघातीके समान जीतेही मरेके तुल्य हूँ ॥ १६ ॥ आज मैंने जाना कि केवल मनुष्य ही नहीं बरन् देवता भी झूठ बोलते हैं! जिनके कहने पर विश्वास करके मुझ पापीने अपनी बहनके पुत्रोंकी हत्या की ॥ १७ ॥ हे महाभागो! तुम दोनो पुत्रोंके लिये शोक न करो। उन्होने जैसे कर्म किये थे वैसा ही फल उनको भोगना पड़ा। सब प्राणी दैवके वशवर्ती हैं, अतएव वे सर्वदा एकत्र नहीं रह सक्ते ॥ १८ ॥ जैसे मिट्टीसे घटआदि उत्पन्न होते हैं और नष्ट हो जाते हैं पर मिट्टी वैसी ही बनी रहती है, उसी प्रकार देहादिकी उत्पत्ति और नाश होता है; परन्तु आत्मा अविकृत ही रहता है ॥ १९ ॥ जो लोग यथार्थ रूपसे इस तत्त्वको नहीं जानते उन्हीको देहादि असत् पदार्थोंमें आत्मबुद्धि होती है और इसी भ्रान्तबुद्धिसे भेद-ज्ञान उत्पन्न होता है। भेद-ज्ञानसे ही पुत्रादि शरीरके साथ संयोग व वियोग समझ पड़ता है, अतएव ज्ञानका उदय हुए बिना संसारचक्रकी निवृत्ति नहीं होती ॥ २० ॥ अतएव हे भद्रे! यद्यपि मैंने तुम्हारे

पुत्रोंका वध किया है तथापि तुम उनके लिये दुःख न करो। कोई भी प्राणी स्वाधीन नहीं है, सभीको अपना २ कर्म्मभोग करना होता है ॥ २१ ॥ 'मैं मारनेवाला हूँ' या 'मैं मारा गया'—इस प्रकारका बोध आत्माके प्रति जितने दिन देहाभिमानी अज्ञ व्यक्तिको रहता है तबतक वह देहका नाश होनेसे आत्मनाश समझ कर स्वयं दूसरेका वैरी बनता है और दूसरेको अपना वैरी बनाता है ॥ २२ ॥ तुम दोनो साधुशील एवं बन्धुवत्सल हो, मेरी दुष्टताको क्षमा करो"। यों कह कर कंस नेत्रोंसे आँसू बहाते २ वसुदेव और देवकीके पैरों पर गिर पड़ा ॥ २३ ॥ कन्यारूपिणी योगमायाके वचनों पर विश्वास कर प्रिय वचनोंसे अपना सुहृद्भाव प्रकट करते हुए कंसने देवकी और वसुदेवको बन्धनमुक्त कर दिया ॥ २४ ॥ भाईको इस प्रकार अपने किये पर पछताते देख कर देवकीने अपने हृदयसे कोपको दूर कर दिया और वसुदेवजी हँस कर कंससे कहने लगे कि "महाभाग! देहधारियोंके विषयमें जो कुछ तुमने कहा सो सब यथार्थ है। अविद्यासे ही अहंबुद्धि उत्पन्न होती है। उसी अहंबुद्धिसे 'यह अपना है और यह पराया है' इस प्रकारका भेद भाव होता है ॥ २५ ॥ २६ ॥ इसी प्रकारके भेदभावयुक्त लोग देहाभिमानके कारण शोक, हर्ष, भय, द्वेष, लोभ, मोह एवं मदसे परिपूर्ण होकर परस्पर एक एकके शरीरको नष्ट करते हैं, किन्तु सबका अन्तर्य्यामी जगदीश्वर जो उनके सब कर्मोंको देखता है उसको एक बार भी नहीं विचारते; बरन् 'मैंने मारा और मैं मारागया' ऐसा मानते हैं ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। प्रसन्न होकर शुद्ध भावसे देवकी व वसुदेवके यों कहने पर उनकी आज्ञा लेकर कंस अपने भवनको गया ॥ २८ ॥ वह रात्रि बीतने पर कंसने अपने मंत्रियोंको बुलाया और जो कुछ योगमायाने कहा था सो उनसे कहा ॥ २९ ॥ स्वामी कंसके वाक्य सुन कर मूर्ख एवं स्वाभाविक देवद्रोही दानवगण देवतों पर कुपित होकर कहने लगे कि "हे भोजराज! यदि ऐसा है तो हम अभी संपूर्ण पुर, ग्राम और व्रज आदिमें जाकर दश दिनके और इससे कम अवस्थाके बालकोंका विनाश करते हैं॥३०॥३१॥ अनेक उद्योग करके भी देवगण आपका क्या कर सक्ते हैं? वे तो समरसे डरनेवाले कायर हैं! नित्य आपके धनुषकी प्रत्यञ्चाका शब्द सुनते ही धबड़ा उठते हैं॥३२॥ युद्धमें जब आप बाणवर्षासे उनको घायल करते हैं तब आपके द्वारा मारे जाने पर वे अपने २ प्राण लेकर युद्धभूमिसे इधर उधर भागने लगते हैं ॥ ३३ ॥ और कोई २ शस्त्र फेंक देते हैं तथा कच्छ व शिखा खोल कर दीन भावसे हाथ जोड़े 'हम भयभीत हैं' यों कह कर आपसे दयाकी प्रार्थना करते हैं॥३४॥ आप भी उनको शस्त्र अस्त्र भूले हुए, रथहीन, भयसे नम्रता दिखा रहे, अन्यमनस्क, युद्धसे विमुख, भग्नशरासन एवं युद्धभूमिसे भागते देख कर नहीं मारते ॥ ३५ ॥ जहाँ किसी प्रकारका

भय नहीं होता वहीं देवता लोग अपनी वीरताकी डींग मारा करते हैं, वे लोग युद्धभूमिके सिवा सर्वत्र अपने मुखसे अपनी प्रशंसा किया करते हैं । उनसे हमको कोई भय ही नहीं है । विष्णु सदा निर्जन स्थानमें वास करते हैं और शिव वनवासी तपस्वी हैं, अतएव ये कुछ नहीं करसक्ते ॥ ३६ ॥ इन्द्रका पराक्रम अत्यन्त सामान्य है और ब्रह्मा वृद्ध तपस्वी हैं, इनसे तो कुछ भी खटका नहीं है । किन्तु यद्यपि प्राणपणसे चेष्टा करके भी देवता लोग हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सक्ते—यह बात सत्य है, तथापि वे हमारे शत्रु हैं; अतएव हमारी समझमें उनकी उपेक्षा करना अनुचित और भूल है । अतएव उनका समूल संहार करनेके लिये हम अनुगत सेवकोंको आज्ञा दीजिये । देहमें उत्पन्न रोगकी पहले उपेक्षा करने पर जब उसकी जड़ जम जाती है तब जैसे वह मनुष्योंके लिये असाध्य हो जाता है एवं जैसे इन्द्रियोंकी उपेक्षा करनेसे फिर उनका दमन असाध्य हो उठता है वैसे ही उपेक्षा करनेके कारण बद्धमूल महान् शत्रुका नाश करना भी सुकठिन हो जाता है ॥३७॥३८॥ स्वामी ! देवतोंकी जड़ विष्णु हैं और विष्णुका वहीं वास है जहाँ कि सनातन धर्म है एवं वेद, ब्राह्मण, गो, तप, और दक्षिणायुक्त यज्ञ ही सनातन धर्मके मूल हैं । अतएव हे राजन् ! जैसे बनेगा वैसे हम लोग वेदपाठी तपस्वी यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणों और हव्य देनेवाली गायोंका वध करेंगे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ गो, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और विविध यज्ञ ही विष्णुके रूप हैं ॥ ४१ ॥ विष्णु ही सब देवतोंके अध्यक्ष हैं । दानवद्रोही और अन्तर्यामी विष्णु ही ब्रह्मा, शिव आदि सब देवतोंका आदिकारण या मूल हैं । अतएव ऋषियोंकी हिंसा ही विष्णुके वधका उपाय है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । शिर पर काल सवार होनेके कारण दुर्बुद्धि कंसने दुष्ट मन्त्रियोंकी सलाहसे ब्रह्मवधको ही अपना हित (कल्याण) समझा, ॥ ४३ ॥ हत्याप्रिय एवं इच्छानुसार मायामयरूप धारण करनेवाले दैत्योंको साधुजनोंकी हिंसा करनेके लिये चारो ओर भेजकर कंस अपने भवनमें गया ॥४४॥ दुर्दान्त दानवोंकी प्रकृति रजोगुणपूर्ण थी एवं उनके चित्त तमोगुणसे आच्छन्न थे अतएव शीघ्र ही मरनेवाले वे दानवलोग साधुलोगोंसे द्वेष करने लगे ॥ ४५ ॥

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च ॥
हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः ॥ ४६ ॥

महाराज ! बड़े जनोंका अनादर करनेवालोंकी आयु, श्री, यश, धर्म्म, स्वर्गादिलोक, मंगल और सब प्रकारके श्रेय शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ४६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चम अध्याय।

मथुरामें नंद व वसुदेवकी भेंट।

श्रीशुक उवाच—नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः॥
आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! अपने यहाँ पुत्रका जन्म जानकर उदारचित्त नन्दने आनन्दित होकर वेदपाठी ब्राह्मणोंको बुलाया और स्वयं स्नान करके पवित्र हो कर नवीन वस्त्र व आभूषण पहने॥ १॥ एवं ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्त्ययनपाठ, पुत्रका यथाविधि जातकर्मसंस्कार तथा पितर व देवतोंका पूजन कराया॥ २॥ नन्दने ब्राह्मणोंको दो नियुत (२० लाख) भलीभाँति अलंकृत धेनुएँ व अनेक रत्न तथा सुवर्णमण्डित वस्त्रोंसे ढँके हुए सात तिल-पर्वत* दिये॥ ३॥ काल(समय)से भूमिआदि, स्नानसे देहादि, शौचसे अपवित्र हुई वस्तु, संस्कारसे गर्भादि, तपसे इन्द्रियादि, पूजापाठसे ब्राह्मणादि, दानसे द्रव्यादि, संतोषसे मन और आत्मज्ञान या विद्यासे आत्माकी शुद्धि होती है॥ ४॥ उस आनन्दके दिन नंदके व्रजमें मंगलमय वाणियोंसे ब्राह्मण, सूत[1], मागध[2], बंदीजन[3] स्तुतिवाचन करते हुए आशीर्वाद देने लगे। गायक लोग गानेलगे और चारो ओर भेरी व दुंदुभी आदि मांगलिक बाजे बजने लगे॥ ५॥ सम्पूर्ण व्रजमंडल, विचित्रध्वजा, पताका, माला और रंगबिरंगे वस्त्रोंसे सजे हुए बनावटी द्वारोंसे सुशोभित हुआ॥६॥ गऊ, बैल व बछड़े सब तेल व हल्दीसे रञ्जित एवं चित्र विचित्र गेरू आदि धातु, मयूरोंके पर, माला, वस्त्र तथा सोनेकी जंजीरोंसे विभूषित किये गये॥७॥ बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, जामा और पगड़ियाँ पहन कर अनेक भेंटकी वस्तुएँ हाथमें लिये गोपलोग नंदके भवनमें आने लगे॥ ८॥ यशोदाके पुत्र हुआ, यह सुन कर सब गोपियाँ परम आनन्दित हुईं और वस्त्र, अलंकार तथा अंजन आदिसे अपनेको विभूषित करने लगीं॥ ९॥ विशाल नितम्बवाली गोपियोंके मुखकमल नवकुंकुमरूप परागसे सुशोभित हुए, वे अनेक प्रकारकी भेंटकी सामग्रियाँ लेकर शीघ्रतापूर्वक झपटती हुई नन्दके भवनको चलीं। चलतेमें उनके पीन पयोधर हिलते थे॥ १०॥ गोपियाँ चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये

---

* इतना बड़ा तिलोंका ढेर तिलपर्वत कहलाता है जिसके दोनो ओर दो मनुष्य खड़े हो कर एक एकको न देखपावें।

१ वे लोग जो पौराणिक होते हैं। २ वे लोग जो वंशका बखान करते हैं। ३ वे लोग जो समयानुकूल उक्तियोंसे प्रशंसा करते हैं, जिनको भाट कहते हैं। यथा—"सूताः पौराणिकाः प्रोक्ता मागधा वंशशंसकाः। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः॥"

थीं, कानोंमें मणि कुण्डल हिल रहे थे, कण्ठमें पदक (हमेल) पड़े हुए थे। सुवर्णके विविध रत्नजटित आभूषण पहने सब गोपियाँ नंदभवनको जाती थीं, राहमें उनके केशपाशोंसे सुगंधित पुष्पोंकी वर्षा सी होती जाती थी, हाथोंमें कंकण सुशोभित हो रहे थे एवं चलनेमें हिलरहे कुंडल, कुचमण्डल और हार एक अपूर्व ही शोभा दिखा रहे थे ॥ ११ ॥ नंदभवनमें पहुँच कर वे गोपियाँ "चिरञ्जीव" कह कर कृष्णचन्द्रको शुभ आशीर्वाद देती थीं एवं परस्पर हल्दी-तेल मिला हुआ जल छिड़क कर आनन्द प्रकट करती थीं ॥ १२ ॥ जगत्के स्वामी अनन्त श्रीकृष्णजी जब नंदके व्रजमें आये तो उस महान् उत्सवके समय वहाँ भाँति २ के मंगलमय बाजे बजने लगे ॥ १३ ॥ प्रसन्नचित्त गोपगण परस्पर एक एक पर दही, दूध, घी, जल आदि बर्साते हुए नवनीत (माखन) लेपने और फेंकने लगे ॥ १४ ॥ महा उदार नंदने उनको प्रसादस्वरूप अनेक प्रकारके वस्त्र, अलंकार और गायें दीं। सूत, मागध, बन्दीजन आदि जो २ गुणीजन वहाँ आये उनको मुहमाँगी वस्तुएँ नंदसे मिलीं; नंदजीने उन सबको भली भाँति सन्तुष्ट करके उनका सत्कार किया । उदारचित्त नंदने विष्णुकी प्रसन्नता और अपने पुत्रके कल्याणकी कामनासे आये हुए सब लोगोंको अनेक प्रकारके सत्कारोंसे सन्तुष्ट किया ॥ १५ ॥ १६ ॥ नंदगोपके द्वारा अभिनंदिता महाभागा रोहिणीने भी दिव्य वस्त्र, आभूषण, माला और कण्ठके आभूषणोंसे विभूषित हो, सबका सत्कार किया ॥ १७ ॥ उसी दिनसे रमापति हरिके रहनेके कारण नंदका व्रज सब प्रकारकी समृद्धियोंसे सम्पन्न होकर लक्ष्मीजीके विहारका स्थान बन गया; वहाँ लक्ष्मीजीके सब गुण प्रत्यक्ष देख पड़ने लगे ॥ १८ ॥ हे कुरु-श्रेष्ठ ! तदनन्तर कुछ गोपोंको गोकुलकी रक्षा और देखरेखका भार देकर कंसको वार्षिक कर (सालाना मालगुजारी) देनेके लिये नन्दजी मथुरापुरीको गये ॥ १९ ॥ वसुदेवने जब जाना कि भाईके समान हितकारी मित्र नन्दजी आये हैं और राजा कंसको वार्षिक कर देचुके हैं तब उनके डेरे पर मिलनेके लिये गये ॥ २० ॥ नंदजी अपने परम मित्रको देख कर जैसे प्राण पाकर शरीर उठ-खड़ा हो वैसे सहसा आसनसे उठ खड़े हुए और प्रियतम वसुदेवको हाथ फैला कर प्रसन्नतापूर्वक प्रेमसे विह्वल हो गलेसे लगा लिया ॥ २१ ॥ नंदने आदर-पूर्वक वसुदेवका पूजन किया। हे महाराज ! जब वसुदेवजी सुखपूर्वक बैठे तब कुशलप्रश्नके बाद अपने पुत्रोंमें मन लगारहनेके कारण यों कहने लगे ॥ २२ ॥

वसुदेवजीने कहा—भाई ! तुम वृद्ध हो गये थे, अब तक तुम्हारे कोई पुत्र या कन्या नहीं थी, और सन्तान होनेकी आशा भी जाती रही थी। इस समय तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ, यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है! ॥ २३ ॥ यह भी बड़े भाग्यकी बात है कि इस संसारचक्रमें हम तुम दोनो मित्र फिर मिले; क्योंकि प्रिय मित्रका दर्शन बहुत ही दुर्लभ है। मानो हमारा

तुम्हारा फिरसे जन्म हुआ ॥ २४ ॥ जैसे जलके प्रवाहमें बहरहे तृणोंका एकत्र रहना असम्भव है वैसे ही भिन्न २ कर्म करनेवाले प्रिय आत्मीय सुहृद् जनोंका सदा एकत्र रहना भी कठिन ही नहीं बरन् असंभव है ॥ २५ ॥ तुम बंधु-बांधवों सहित जिस विशाल वनमें वास करते हो उसमें किसी प्रकारकी बाधा तो नहीं है ? वहाँ निर्वाहयोग्य जल, तृण और वृक्ष लता आदि हैं ? ॥ २६ ॥ हमारा एक पुत्र अपनी माता सहित आपके व्रजमें रहता है, भाई ! वह आपको ही अपना पिता जानता है, क्योंकि यशोदा और आपने ही उसका लालन पालन किया है। वह तो सुखसे है ? ॥ २७ ॥ जिस त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) से आत्मीय जनोंको सुख मिले वही त्रिवर्ग पुरुषके लिये शास्त्र-विहित है। किन्तु यदि उससे अपनेको ही सुख मिला और परिवारको क्लेश हुआ वह त्रिवर्ग शास्त्रोक्त प्रयोजनको नहीं सिद्ध कर सक्ता ॥ २८ ॥ नंदजीने कहा । अहो ! देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र दुष्ट कंसने मार डाले। सबसे छोटी एक कन्या बची थी वह भी स्वर्गको चली गई ! ॥ २९ ॥ इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब जनोंके लिये पुत्र आदिका सुख मिलना भाग्य पर निर्भर है एवं भाग्य ही सब लोगोंका सर्वस्व है। जो लोग भाग्यको ही सुख और दुःखका कारण जानते हैं उनको दुःख आ पड़ने पर या सुख मिलनेमें मोह नहीं होता ॥ ३० ॥ वसुदेवजीने कहा। मित्र ! तुम राजा कंसको वार्षिक कर दे चुके एवं हमसे भी भेंट कर चुके; अब तुम्हारा यहाँ बहुत दिन ठहरना अच्छा नहीं है, क्योंकि गोकुलमें अनेक उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुक उवाच—इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः ॥
अनोभिरनडुयुक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥ ३२ ॥

वसुदेवके यों कहने पर उसी समय छकड़े जुतवा कर नंद आदि गोप उन पर सवार हुए और वसुदेवसे बिदा होकर गोकुलकी ओर चले ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठ अध्याय ।

पूतना-वध ।

श्रीशुक उवाच—नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन् ॥
हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! महात्मा वसुदेवके वचन मिथ्या नहीं होते—यह विचारते हुए नंदजी मार्गमें उत्पात होनेकी आशंकासे भयभीत

होकर हृदयसे हरिके शरणागत हुए ॥ १ ॥ वास्तवमें कंसकी भेजी हुई कामचारिणी बालघातिनी घोर स्वभाववाली पूतना राक्षसी उस समय पुर, ग्राम, व्रज आदिमें जाकर बालकोंको मार रही थी ॥ २ ॥ किन्तु हे राजन्! जहाँके रहनेवाले लोग अपने नित्यके कर्मोंमें भक्तपति भगवान्का कीर्त्तन और उनके गुणोंका श्रवण नहीं करते वहीं ऐसी राक्षसियोंका प्रवेश हो सक्ता है ॥ ३ ॥ वह आकाशगामिनी राक्षसी पूतना घूमती हुई नन्दके गोकुलमें भी पहुँची और इच्छानुसार जहाँ जिस रूपसे चाहे चली जाय—इस शक्तिके होनेके कारण मायाबलसे सुन्दर युवतीका रूप धर कर गोकुलके भीतर घुसी ॥ ४ ॥ उसने परम सुन्दर रूप धारण किया। उसकी वेणीमें मल्लिकाके फूल गुँथे हुए थे, विशाल नितंब थे, पीन पयोधरोंमें क्षीण कटि देख ही न पड़ती थी, सुंदर वस्त्र पहने थी, हिल रहे कानोंके कुण्डलोंकी झलकसे शोभायमान अलकोंसे उसके मुखकी अपूर्व शोभा थी ॥ ५ ॥ मनोहर मुसकान और कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे वह व्रजवासियोंके चित्तको चुराए लेती थी। गोपियोंने हाथमें कमलका फूल लिये उसे देख कर समझा कि यह साक्षात् लक्ष्मीजी अपने स्वामी विष्णु(कृष्ण)को देखनेके लिये आई हैं ॥ ६ ॥ राजन्! स्त्रीरूपधारिणी पूतना बालकोंके लिये ग्रहस्वरूप भयदायिनी थी। वह मारनेके लिये बालकोंको खोजती हुई इच्छापूर्वक नंदके घरमें घुस कर इधर उधर घूमने लगी। घूमते २ उसने शय्या पर बालवेष कृष्णचन्द्रको देखा। राक्षसी यह न जानसकी कि यह बालक दुष्टोंके लिये कालरूप है एवं भस्ममें छिपे हुए अग्निके समान अपने असीम तेजको छिपाये हुए है, अतएव कृष्णको देख कर भयभीत नहीं हुई ॥ ७ ॥ चराचर जगत्के अन्तर्यामी कृष्णचन्द्र समझ गये कि यह साधारण स्त्री नहीं है, वरन् मायासे स्त्रीरूप धरे हुए बालघातिनी बालग्रह पूतना है; अतएव उसे मारनेकी इच्छासे उन्होने दोनो आँखें बंद कर लीं (क्योंकि भगवान्के आगे कोई माया नहीं ठहरसक्ती और पूतनाकी माया मिटजाने एवं राक्षसी देह प्रकट होनेसे काम बिगड़जाता)। जैसे कोई व्यक्ति भ्रमसे रस्सी समझ कर सो रहे कालरूप काले साँपको उठाले वैसे ही उस पूतनाने अपने अन्तक अनन्त कृष्णचन्द्रको साधारण बालक जान कर गोदमें उठा लिया ॥ ८ ॥ जैसे सुतीक्ष्ण तर्वार मखमली म्यानमें छिपी होनेसे भली जान पड़े वैसे ही भीतर घोरभाव होने पर भी प्रकटमें अत्यन्त स्नेहपूर्ण माताका ऐसा पूतनाका व्यवहार देख कर यशोदा और रोहिणीने भी उसे न रोका। देखनेमें सुंदर युवतीरूपधारिणी पूतना कोई भद्रमहिला जान पड़ती थी, उसकी प्रभा भी वैसी ही थी। अतएव यशोदा व रोहिणी चुपचाप खड़ी देखती रहीं, कुछ भी न कहसकीं ॥ ९ ॥ उस घोरा पूतनाने कृष्णको गोदमें लेकर दुर्जर विषलिप्त, जीवननाशक स्तन उनके मुखमें दिया। भगवान् हरिने

कुपित हो कर उस स्तनको भलीभाँति दोनो हाथोंसे पकड़ लिया और दूधके साथ उसके प्राण भी खींचने लगे ॥ १० ॥ सब मर्मस्थलोंमें घोर वेदना होनेसे

वह राक्षसी "बस, बस, छोड़दे, छोड़दे" यों वारम्वार आर्त्त स्वरसे कहने लगी। किन्तु कृष्णचन्द्र कब छोड़नेवाले थे? उसके सब अंगोंसे पसीना निकलने लगा और आँखें बाहर निकल पड़ीं। अन्तको अचेत हो कर पृथ्वी पर गिरपड़ी एवं अत्यन्त यातना होनेके कारण बार २ हाथ पैर पटकने व रोने लगी ॥ ११ ॥ उसके अत्यन्त वेगशाली घोर गम्भीर चीत्कार–शब्दसे पर्वतगणसहित पृथ्वी और ग्रहगणसहित आकाश कम्पायमान हो उठा; रसातल और दिशाओंसे प्रतिध्वनि होने लगी एवं वज्रपातकी आशंकासे अनेक लोग पृथ्वी पर गिर गये ॥ १२ ॥ मर्मस्थलमें यों तीव्र वेदना होनेसे उस राक्षसीके प्राण निकल गये और वह अन्तसमय अपना राक्षसी रूप प्रकट करके केश, दोनो पैर और भुजा फैलाकर, इन्द्रका वज्र लगनेसे निहत वृत्रासुरके समान, गोष्ठमें गिर पड़ी ॥ १३ ॥ महाराज! मर कर गिरते समय भी उसके लंबे चौड़े शरीरने छः कोसतकके वृक्ष आदिको चूर्ण कर डाला। लोगोंके लिये यह एक बड़े ही विस्मयकी बात हुई ॥ १४ ॥ उसकी तीक्ष्ण दंष्ट्राएँ हलके समान लंबी चौड़ी थीं, नासिकाके छिद्र पर्वतकी कंदरा जानपड़ते थे, कुच विशाल शिला या छोटे पर्वतके समान थे, रूप बड़ा ही रौद्र था और अरुण वर्णवाले बाल इधर उधर बिखरे हुए थे ॥ १५ ॥ नेत्र अंधकूपके तुल्य गंभीर थे, दोनो जंघाएँ ऊँचे नदीतटके समान होनेके कारण अत्यन्त भयानक थीं, भुजा, ऊरू और

चरण बँधे हुए सेतु(पुल)के तुल्य देख पड़ते थे एवं उदर सूखे हुए सरोवरके समान गहरा था॥१६॥उसके चीत्कारशब्दसे गिरपड़नेके कारण पहले जिनके हृदय, कान और मस्तक फट चुके थे वे गोप-गोपीगण पूतनाके ऐसे भयानक रूपको देख कर बहुत ही भयभीत हुए ॥ १७ ॥ बालकको उस राक्षसीके वक्षःस्थल पर निर्भयतापूर्वक खेलते हुए देख कर गोपियाँ जल्दीसे घबड़ाहटके साथ वहाँ आईं और उसको उठा लिया ॥ १८ ॥ तदनन्तर यशोदा, रोहिणी आदि सब गोपियाँ गोपुच्छ घुमा कर एवं अन्यान्य ढंगोंसे भलीभाँति बालकके सब अंगोंकी रक्षा करने लगीं ॥ १९ ॥ पहले गोमूत्रसे स्नान कराया, फिर सब अंगोंमें गोरज लगाई और ललाट आदि बारहो अङ्गोंकी केशवादि द्वादश नामोंसे रक्षा की ॥२०॥ गोपियोंने हाथ पैर धोकर आचमन किया और अपने शरीरमें "अज" आदि एकादश बीजमंत्रोंसे अंगन्यास व करन्यास करके बालकके भी शरीरमें इस प्रकार बीजन्यास किया ॥ २१ ॥ "तुम्हारे दोनो चरणोंकी अज, जानुओंकी मणिमान्, ऊरुओंकी यज्ञदेव, कटितटकी अच्युत, उदरकी हयग्रीव, हृदयकी केशव, वक्षःस्थलकी ईश, कण्ठकी सूर्यनारायण, बाहुओंकी विष्णु, मुखकी उरुक्रम भगवान् और मस्तक की ईश्वर रक्षा करें ॥ २२ ॥ चक्रधारी मुरारि तुम्हारे आगे, गदाधारी हरि पीछे, धनुषधारी मधुसूदन व असिधारी अज दाहिने बाएँ, शंखधारी विष्णु चारो कोनोंमें, उपेन्द्रजी ऊपर, तार्क्ष्यजी नीचे एवं हलधर पुरुष चारो ओर अवस्थित हो कर तुम्हारी रक्षा करें॥२३॥ [यों बाहरी अङ्गोंकी रक्षा कर भीतरी अर्थात् अन्तःकरण की रक्षा करने लगीं] तुम्हारी सब इन्द्रियोंकी हृषीकेशजी, दशविध प्राणोंकी नारायणजी, चित्तकी श्वेतद्वीपपति देव, मनकी योगेश्वर भगवान्, बुद्धिकी पृश्निगर्भजी एवं आत्माकी परमात्मा भगवान् रक्षा करें। खेलनेमें गोविंद, सोनेमें माधव, जानेमें वैकुण्ठदेव, बैठनेमें श्रीपति एवं भोजन करते समय सब ग्रहोंको भय देनेवाले यज्ञपुरुष देव तुम्हारी रक्षा करें। डाकिनी राक्षसी और कूष्माण्ड आदि सब बालग्रह, भूतगण, प्रेतगण, पिशाचगण, यक्ष, राक्षस, विनायकगण, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, और पूतना आदि मातृकागण, देह व प्राणका नाश करनेवाले अपस्मार, उन्माद आदि भयानक रोग और दुःस्वप्नजनित सम्पूर्ण महाउत्पात एवं वृद्धग्रह व बालग्रह इत्यादि सब विष्णुनामके कीर्तनसे भीत हों और नष्ट हो जायँ" ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ राजन्! स्नेहसे जिनका मन कृष्णमें आसक्त है उन गोपियोंने यों मंगलरक्षा की और तदनन्तर यशोदाने पुत्रको गोदमें लेकर दूध पिलाया एवं दूध पिला कर शय्यापर सुला दिया ॥३०॥ इसी समय नंद आदि गोपगण मथुरासे व्रजको लौटे आरहे थे; वे मार्गमें पूतनाके घोर शरीरको देख कर बहुत ही अचंभेमें आये और कहने लगे—"वसुदेवजी निश्चय ही किसी ऋषि या योगेश्वरका अवतार हैं, क्योंकि जो उन्होने उत्पातकी

बात बताई थी उसीके लक्षण यहाँ देख पड़ते हैं" ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इधर व्रजमें स्थित गोपोंने कुल्हाड़ियोंसे पूतनाके कलेवरके अनेक टुकड़े कर डाले और गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियों पर धर कर उनको जला दिया ॥ ३३ ॥ जलते समय उस शरीरसे जो धूम निकला उसमें अगुरुकी सी सुगंधि थी, क्योंकि कृष्णभगवान्ने स्तनपान किया, इस लिये पापिनी पूतनाके पाप सब नष्ट हो गये और शरीर पवित्र हो गया ॥ ३४ ॥ जब नरशिशुघातिनी, मांस खानेवाली राक्षसी पूतना मारनेकी इच्छासे भी दूध पिला कर उत्तम गतिको प्राप्त हुई तब जिन कृष्णकी माताओंने (यहाँ पर बहुत माताकी उक्ति इस लिये है कि जब ब्रह्माजी ग्वालबाल और बछड़े ले गये तब भगवान्ही बछड़े और ग्वालबाल होगये, उस समय सभी गोपियोंने दुग्धपान कराया) श्रद्धा और भक्तिसे परमात्मा कृष्णचन्द्रको स्नेहपूर्वक चितचाही वस्तुएँ दीं उनकी सद्गतिके लिये क्या कहना है ! ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ जो भक्तोंके हृदयमें निरन्तर विराजमान रहते हैं, लोकवन्दित देवगण जिनकी वन्दना करते हैं उन्ही चरण-कमलोंको जिसके हृदय पर धर कर श्रीकृष्णचन्द्रने दुग्धपान किया वह पूतना राक्षसी होकर भी जब माताकी गति अर्थात् स्वर्गको प्राप्त हुई तब मुक्तिदाता देवकीनन्दन कृष्णने जिन गऊ और मातृतुल्य गोपियोंके पुत्रस्नेहकी अधिकतासे आप ही आप निकल रहे दूधको पिया, उनके उत्तम गति पानेमें क्या सन्देह है ? ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ महाराज ! वे सब गोपियाँ सदा कृष्णचन्द्रको पुत्रकी दृष्टिसे देखती रहीं, अतएव अज्ञानकृत संसारपाशमें उनका बँधना किसी प्रकार संभव नहीं है ॥ ४० ॥ जो सब व्रजवासी गोप नंदके साथ मथुरा गये थे वे चिताधूमके गन्धको सूँघ कर "यह क्या है ? कहाँसे ऐसी सुवास आती है ?" यों कहते हुए व्रजके भीतर आये एवं वहाँ अन्य गोपोंके मुखसे "पूतना आई और मर गई एवं उसके हाथों बालकका कुछ अमंगल नहीं हुआ"—यह सब वृत्तान्त सुन कर बहुत ही विस्मित हुए ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! उदार मनवाले नंदजीने प्रवाससे आकर पुत्रको गोदमें लेलिया और प्रेमपूर्वक उसका माथा सूँघ कर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ ४३ ॥

य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥
शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥

जो मनुष्य 'पूतना-मोक्ष'नामक यह कृष्णचन्द्रकी प्रथम बाललीला श्रद्धापूर्वक सुनता है उसकी कृष्णभगवान्में अटल भक्ति होती है ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तम अध्याय ।

शकट-भंजन और तृणावर्त्तवध ।

राजोवाच-येन येनावतारेण भगवान्हरिरीश्वरः ॥
करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा—ब्रह्मन्! हे प्रभो! भगवान् ईश्वर हरि जिस २ अवतारको लेकर जो २ कर्म करते हैं वे सब चरित्र हमारे कानोंको सुख देनेवाले और मनको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ १ ॥ उन सब चरित्रोंको सुननेसे पुरुषके मनका मैल और अनेक प्रकारकी तृष्णा (कामना) दूर हो जाती है एवं बहुत ही शीघ्र अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, हरिमें भक्ति होती है तथा हरिभक्त जनोंके साथ मित्रता होती है । यदि उचित समझिये तो अनुग्रह करके उन्ही मनोहर हरिचरित्रोंका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ कृष्णचन्द्रने मनुष्य लोकमें आकर मनुष्योंकी भाँति बाल्यावस्थामें और भी जो कुछ अद्भुत लीलाएँ की हैं—अनुग्रह करके उनको भी सुनाइये ॥ ३ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा** । हे राजन्! एक दिन बालकके अंगपरिवर्त्तन तथा जन्मदिनके उपलक्ष्यमें नंदके यहाँ महोत्सवमय अभिषेककृत्य हुआ । उस महोत्सवमें व्रजकी सब गोपियाँ आईं, उनके साथ मिलकर नंदरानी यशोदाने बालकका अभिषेक कराया, गाना बजाना हुआ, ब्राह्मणोंने स्वस्त्ययन मंत्र पढ़े । पुत्रका स्नान आदि जब हो चुका एवं भाँति २ के भोजन कर वस्त्र माला व मनमानी गऊ आदि दक्षिणामें पाकर सन्तुष्ट व पूजित ब्राह्मणगण स्वस्त्ययनपाठ कर चुके तब श्रीकृष्णचन्द्रको निद्रित देख यशोदाने पालनेमें लिटा दिया ॥ ४ ॥ ५ ॥ उदार हृदयवाली यशोदाका मन 'औत्थानिक' उत्सवमें उत्सुक था, वह आये हुए व्रजवासी जनोंके आदर सत्कारमें व्यग्र थीं, इसी कारण उन्होने कृष्णचन्द्रका रोना न सुन पाया । इधर दूधके लिये रोते रोते कृष्णचन्द्रने दोनो पैर ऊपरको उछाले ॥ ६ ॥ पालनेमें कृष्णजी लेटे थे और ऊपर शकट (छकड़ा) धरा था । कृष्णके नवपल्लवसम कोमल छोटे २ पैरोंके प्रहारसे वह छकड़ा उलट पड़ा और उसमें धरे हुए दही, दूध आदि अनेक रसोंसे भरे हुए काँसे आदिके विविध बर्तन गिर कर चूर २ हो गये एवं छकड़ेके भी चक्र, अक्ष और कूबर आदि अंग टूट फूट गये ॥ ७ ॥ उत्सवमें आई हुई गोपियों सहित यशोदा, नंद और अन्यान्य गोपगण इस अद्भुत व्यापारको देख विस्मयसे व्याकुल हो कर कहने लगे कि—"यह क्या है! छकड़ा आप ही आप कैसे उलट पड़ा?" ॥ ८ ॥ गोप और गोपियाँ छकड़ा उलटनेका कोई कारण न निश्चित कर सके । तब वहीं खेल रहे बालकोंने कहा कि "इसी

(कृष्ण) ने रोते २ पैर उछाल कर छकड़ा गिरा दिया है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है" ॥ ९ ॥ किन्तु गोप गोपियोंने 'लड़कोंकी बात' कह कर उस पर विश्वास नहीं किया, क्योंकि उन्हे बालकके अप्रमेय बलका ज्ञान न था ॥ १० ॥ यशोदाने इस घटनाको ग्रहजनित उत्पात समझ कर रोते हुए बालकको गोदमें उठालिया और ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययनमंत्रपाठपूर्वक शान्ति कराकर कृष्णचन्द्रको पय पान कराया ॥ ११ ॥ गोपोंने नवीन कपड़े पहना कर कृष्णको वेदीमें बिठलाया और ब्राह्मणोंने भी फिर बलिदानसहित हवन करके दधि अक्षतसे टीका करके कुशजलसे कृष्णका मार्जन किया ॥ १२ ॥ महाराज! "असूया (गुणोंमें दोष निकालना), झूठ, ईर्षा, दम्भ, हिंसा और अभिमान जिनके हृदयमें छू भी नहीं गया उन सत्यशील ब्राह्मणोंके दिये आशीर्वाद कभी नहीं विफल होते" ॥ १३ ॥ यह समझ कर नंद गोपने अपनी गोदमें बालकको लेकर ब्राह्मणोंके द्वारा साम, ऋक् और यजुःके मंत्रोंसे संस्कृत एवं पवित्र औषधियुक्त जलसे उसका अभिषेक कराया। फिर स्वस्त्ययनपाठ और हवन हो जाने पर पुत्रके अभ्युदयकी कामनासे ब्राह्मणोंको सुस्वादु उत्तम अन्न और सर्वगुणसम्पन्न धेनुएँ, वस्त्र, माला व रत्नोंके हार दिये। ब्राह्मणलोगोंने भी सफल सत्य आशीर्वाद दिये ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ यह बात स्पष्ट है कि वेदके जाननेवाले ज्ञानी ब्राह्मणलोग जो असीस देते हैं उसका निष्फल होना त्रिकालमें असम्भव है ॥१७॥ हे महाराज! एक दिन साध्वी यशोदा पुत्रको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं, इतनेमें उनको कृष्णजी एक पर्वत–शिखरके समान भारी जान पड़े, जिससे वह पुत्रको गोदमें लिये न रहसकीं ॥ १८ ॥ अन्तको भारसे पीड़ित हो कर यशोदाने पुत्रको गोदसे उतार कर पृथ्वी पर बैठा दिया। यशोदाको इस नई बात पर बड़ा ही विस्मय हुआ। तदनन्तर परमेश्वरका ध्यान करती हुई यशोदाजी घरके अन्य कामोंमें लगगईं ॥ १९ ॥ इसी अवसरमें कंसका भेजा हुआ सेवक तृणावर्त्त नाम असुर आँधी बवंडरके रूपसे व्रजमण्डलमें आया और पृथ्वी पर बैठे कृष्णको उठा लेगया ॥ २० ॥ दशो दिशाओंसे उस आँधीरूप असुरके घोर शब्दकी प्रतिध्वनि होने लगी, धूलसे व्रजमंडल छा गया और लोगोंके नेत्र बंद हो गये ॥ २१ ॥ दो घड़ी तक सारा व्रज धूल और अन्धकारसे आवृत रहा। उस समय खोज करने पर यशोदाजीने पुत्रको, जहाँ बैठा गई थीं वहाँ पर, नहीं पाया ॥ २२ ॥ उस समय आँधीरूप तृणावर्त्तकी चलाई हुई कंकड़ियोंके छर्रोंसे सब लोग उद्विग्न हो गये । अंधकारके मारे सब मोहित हो गये, कोई अपने या परायेको नहीं देख सक्ता था ॥ २३ ॥ प्रचण्ड बवण्डरके कारण यों धूलकी वर्षा होने पर अबला माता यशोदा पुत्रको इधर उधर खोजने लगीं, किन्तु कहीं भी उसका पता न पाकर, जिस गऊका बछड़ा मर गया हो उसके समान पश्चात्तापपूर्वक शोच करती हुई पृथ्वी पर गिर कर अत्यन्त

दीन स्वरसे विलाप करने लगीं ॥ २४ ॥ तदनन्तर धूल उड़ना बंद हुआ । अन्य गोपियाँ यशोदाके रोनेका शब्द सुन कर वहाँ आईं और कृष्णके खोजानेका वृत्तान्त जान कर बहुत ही दुःखित हुईं, उनकी आँखोंमें आँसू भर आये एवं वे भी नंद-कुमारको न पाकर विलाप करने लगीं ॥ २५ ॥ वायुरूप तृणावर्त्त कृष्णको लेकर ऊपर आकाशको चला गया, अतएव पृथ्वी पर उसका वेग शान्त हो गया । किन्तु कृष्णने अपने शरीरको इतना भारी कर दिया कि वह उनको लेकर आगे न चल सका ॥ २६ ॥ कृष्ण ऐसे भारी हो गये कि असुरको एक बड़ा भारी पर्वत जान पड़ने लगे । कृष्णने दोनो हाथोंसे उसका गला पकड़ लिया था । उस दैत्यने कण्ठपाश छुड़ानेकी बहुत कुछ चेष्टा की, परन्तु कृष्ण तो अद्भुत बालक थे, उनके हाथोंसे वह अपनेको न मुक्त कर सका ॥ २७ ॥ गला दबनेके कारण दैत्य निश्चेष्ट (बेदम) हो गया, उसकी आँखें बाहर निकल पड़ीं और मरते समय अस्पष्ट शब्द करता हुआ प्राणहीन होकर सहित कृष्णके आकाशसे व्रजमें गिरा ॥ २८ ॥ सब स्त्रियाँ कृष्णके न मिलनेसे व्याकुल हो विलाप कर रही थीं, उन्होने देखा कि वह भयानक राक्षस, रुद्रके बाणसे भग्न हो कर पृथ्वी पर गिरे हुए त्रिपुरके समान आकाशसे एक शिलाके ऊपर गिरा और उसके सब अंग चूर २ हो गये ॥ २९ ॥ कृष्णजी उसकी छाती पर थे । गोपियोंने दौड़ कर कृष्णको उठा लिया और वहाँसे लाकर यशोदाजीको दे दिया । दुष्ट राक्षस बालकको आकाश पर ले गया, किन्तु वहाँसे गिर कर आपही मर गया, बालकके चोट भी न आई । इस प्रकार मृत्युके मुखसे बालकका बचना देख कर सबको विस्मय हुआ ॥ ३० ॥ बालकको ऐसी सुरक्षित अवस्थामें पाकर गोपियाँ और नन्द आदि गोपगण बहुत ही हर्षित हो कर कहने लगे, "अहो आश्चर्य्य है ! कैसी अद्भुत बात है ! इस असुरने बालकको मारना चाहा था, किन्तु बालकका बाल भी न बाँका हुआ, वह फिर कुशल क्षेमसे हमको मिला और यह दुष्ट हिंसाशील अपने पापोंसे आप ही मरगया । सच है-साधुलोग सबको समान मानते हैं, अतएव आई हुई भयानक विपत्तियोंसे सदा बचे रहते हैं, अर्थात् ईश्वर उनकी रक्षा करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हमने कौन तप या विष्णुकी पूजा की थी अथवा पूर्त्त [सरोवर आदि खुदवाना] इष्ट [अग्निहोत्र, पंचयज्ञ आदि] आदिक अच्छे कर्म किये थे या दान किया था या जीवोंसे मैत्री (परोपकार) की थी ? जिसके कारण इस बालकने मृत्यु-मुखमें पड़ कर भी भाग्यवश फिर निकट आकर हम स्वजनोंको आनन्दित किया" ॥३३॥ बृहद्वन अर्थात् गोकुलमें बारम्बार ऐसी अद्भुत घटना होते देख कर नंदजीको बड़ा ही आश्चर्य्य हुआ एवं वसुदेवके वचनोंको यथार्थ देख कर वह बारम्बार विचारने लगे कि "वसुदेवने बहुत ही ठीक कहा था" ॥ ३४ ॥ एक दिन नंदरानी

यशोदा स्नेहपूर्वक बालकको गोदमें लिये दूध पिला रही थीं। भलीभाँति पय पान कर चुकने पर दुलराते हुए यशोदाने पुत्रके मनोहर मुसकानयुक्त मुखका चुम्बन किया। इसी समय कृष्णने जम्हाई ली। जम्हाते हुए कृष्णके मुखमें यशोदाने देखा—आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दशदिशा, सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, सातो महासागर, सातो द्वीप, सब पर्वत, नदियाँ, वनवृंद एवं सम्पूर्ण चराचर प्राणी विराजमान हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥
संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥ ३७ ॥

महाराज! पुत्रके मुखमें अकस्मात् यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड देख कर यशोदाका हृदय आश्चर्य्यकी अधिकतासे धड़कने लगा। मृगनयनी नन्दरानीने अपने दोनो नेत्र बंद कर लिये और ईश्वरका स्मरण करने लगीं ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टम अध्याय।

महर्षि गर्गका आगमन और उनके द्वारा कृष्ण-बलदेवका नामकरण।

श्रीशुक उवाच—गर्गः पुरोहितो राजन्यदूनां सुमहातपाः ॥
व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! यादवोंके कुलपूज्य पुरोहित महातपस्वी गर्गाचार्य्यजी वसुदेवके भेजनेसे नंदके व्रजको गये॥१॥उनको देख कर नंदजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने उठ कर हाथ जोड़ विष्णुबुद्धिसे प्रणाम करके मुनिका पूजन किया। इस प्रकार अतिथिसत्कार करनेके बाद सूखपूर्वक बैठे हुए मुनिको अपनी मनोहर मधुर वाणीसे प्रसन्न करते हुए नंदजीने कहा कि हे ब्रह्मन् आप पूर्ण हैं अर्थात् आपको कोई कामना नहीं है, हम आपकी क्या सेवा करें? ॥ २ ॥ ३ ॥ आप ऐसे महात्मा जनोंका विचरना स्वार्थके लिये नहीं है, वरन् जो लोग गृहस्थ हैं, जिनका चित्त गृहस्थाश्रममें आसक्त होनेके कारण दीन हो रहा है उनके कल्याणके लिये है ॥ ४ ॥ इन्द्रियोंसे अतीत ज्ञान, जिसे ज्योतिःशास्त्र कहते हैं और जिसके अभ्याससे अन्य लोग भी पूर्वजन्म व वर्त्तमान जन्मका शुभाशुभ फल जानते हैं उसकी रचना आपने की है ॥ ५ ॥ भगवन्! आप ज्योतिषियों व ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ट हैं, अतएव इन मेरे बालकोंके नामकरण आदि संस्कार आप ही करिये। यदि कहिये कि हम तो तुम्हारे गुरु नहीं हैं तो ब्रह्मन्! जन्मसे ही ब्राह्मण

सबका गुरु है ॥ ६ ॥ **गर्गजीने कहा** । नंदजी ! पृथ्वीमें सर्वत्र यह प्रसिद्ध है कि मैं यादवोंका आचार्य्य हूँ । यदि मैं तुम्हारे पुत्रोंका संस्कार करूँगा तो संभव है कि कंस तुम्हारे पुत्रको देवकीका पुत्र मानले । इसके और भी कारण हैं । एक तो कंस आप ही पापबुद्धिवाला है, दूसरे उसे यह भी मालूम है कि तुम्हारी और वसुदेवकी गहरी मित्रता है, तीसरे उसे यह भी निश्चय है कि देवकीका आठवाँ गर्भ स्त्री नहीं होसक्ता । इन कारणोंसे और देवकी-की कन्याके कथनसे एवं मेरे संस्कार करनेसे यदि शंका करके कंस तुम्हारे पुत्रोंका वध कर डाले तो यह बड़ा ही अन्याय होगा ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ **नंदजीने कहा** । भगवन् ! इसी एकान्त स्थान गोव्रजमें अलक्षित-भावसे स्वस्ति-वाचनमात्र करके मेरे पुत्रोंके आवश्यक द्विजाति-संस्कार कर दीजिये । दूसरोंकी कौन कहे, मेरे जातिभाई भी इस वृत्तान्तको न जान सकेंगे ॥ १० ॥ **श्रीशुक-देवजी कहते हैं** । गर्गजी तो इस लिये आये ही थे, अतएव नन्दके यों प्रार्थना करने पर छिपकर एकान्त स्थानमें उन्होने इस प्रकार दोनो बालकोंका नामकरण किया ॥ ११ ॥ **गर्गजीने कहा** । यह रोहिणीका पुत्र, अपने गुणोंसे सुहृद् जनोंको रमावेगा-इस कारण इसका नाम 'राम' होगा । और बलकी अधिकतासे लोग इसे बलभद्र भी कहेंगे एवं यादवोंमें अभिन्नभाव होनेके कारण इसका संकर्षण नाम भी होगा॥१२॥और इस दूसरे बालकके गत तीन युगोंमें शुक्ल, रक्त और पीत ये तीन वर्णके तीन अवतार हो चुके हैं, इस युगमें यह कृष्णवर्ण अवतार हुआ है, अतएव इसका नाम कृष्ण होगा । तुम्हारा यह पुत्र पहले कभी वसुदेवके यहाँ उत्पन्न हो चुका है, इस कारण विद्वान् लोग इस श्रीमान् बालकको वासुदेव भी कहेंगे ॥ १३ ॥ १४ ॥ हे महाभाग ! तुम्हारे इस पुत्रके गुण कर्म्मके अनुरूप बहुत से रूप और नाम हैं । उनको मैं ही जानता हूँ-अन्य साधारण लोग नहीं जानते ॥ १५ ॥ यह बालक तुम्हारा कल्याण करेगा । इसके द्वारा गोप और गोगणको आनन्द होगा । तुम लोग इसकी सहायतासे सहजमें ही अनेक संक-टोंके पार लगजाओगे ॥ १६ ॥ हे व्रजराज ! पहले इसने अराजकसमयमें दस्यु-जनों द्वारा पीड़ित साधुओंकी रक्षा की है और इसकी सहायतासे वृद्धिको प्राप्त साधुओंने दस्युजनोंका दमन किया है ॥ १७ ॥ जो महाभाग्यशाली पुरुष इस बालकमें प्रेम करेंगे उनके शत्रु उनको कभी न सता सकेंगे, जैसे देवतोंको दैत्य-लोग ॥ १८ ॥ हे नंद ! यह तुम्हारा पुत्र गुण, लक्ष्मी, कीर्ति और प्रभावमें नारायणके तुल्य है । इससे सावधान रह कर तुम इसकी रक्षा करो ॥ १९ ॥ इस प्रकार आज्ञा देकर गर्गजी अपने घरको चले गये । नंदजी भी अपनेको पूर्णकाम मान कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ २० ॥ थोड़ा ही समय बीतने पर कृष्ण और बलभद्र दोनो भाई गोकुलमें घुटनोंके बल इधर उधर घूम कर

खेलने लगे ॥ २१ ॥ दोनो भाई पैरोंको घिसला कर गोबरकी कीचसे परिपूर्ण गोव्रजमें बारम्बार चलते थे । चलनेमें कमर और पैरके बजनेवाले आभूषण बजते थे; उनके रुचिर शब्दको सुन कर दोनो भाई बहुत ही प्रसन्न होते थे। दोनो भाई उधर उधर आते जाते हुए लोगोंके पीछे २ दो चार पग जाकर भोलेपन और भयभीत भावको प्रकट करते हुए माताओंके पास भाग आते थे ॥ २२ ॥ दोनो माताओंके स्तनोंसे स्नेहकी अधिकताके कारण आप ही आप दुग्ध निकलने लगता था और वे कीचड़ व अंगरागसे जिनका शरीर भला मालूम पड़ता है उन पुत्रोंको गोदमें उठा कर गलेसे लगा लेतीथीं एवं उनको दुग्ध पिलाती थीं। दुग्ध पीते समय भोली मुसकान और छोटी २ दँतियोंसे शोभित बालकोंके मुखारविन्दोंको देख कर माताओंको अपार आनन्द होता था ॥ २३ ॥ जब दोनो बालक और बड़े हुए तब वे व्रजके भीतर क्रीड़ा करने लगे। और उनकी बाललीलाओंको गोपियाँ उत्सुकताके साथ देखने लगीं। कृष्ण और बलराम बछड़ोंकी पूँछ पकड़ लेते थे, बछड़े उनको खींचते हुए इधर उधर चलते थे, यह देख कर सब गोपियाँ बहुत ही प्रसन्न होकर हँसती थीं। इन लीलाओंको देखनेके लिये गोपियाँ अपने २ घर और घरके काम काज छोड़ कर नंदरानीके यहाँ बैठी रहती थीं ॥ २४ ॥ खेलमें तत्पर अत्यन्त चञ्चल अपने बालकोंको बल, अग्नि, काटनेवाले जीव, तर्वार, पक्षी, कंटक आदिसे बचानेके लिये यशोदा और रोहिणी घरके कामकाज भी न कर सक्ती थीं और पुत्रोंकी क्रीड़ा देख कर गृहस्थीके परम सुखका अनुभव करती थीं ॥ २५ ॥ हे महाराज! थोड़े ही समयमें कृष्ण और बलदेव दोनो भाई गोकुलमें खड़े होकर चलने लगे ॥ २६ ॥ तब भगवान् कृष्णचन्द्रजी अपने वयस्य ग्वालबालोंके साथ सहित बलदेवके व्रजनारियोंको आनन्दित करते हुए क्रीड़ा करने लगे ॥ २७ ॥ गोपियाँ कृष्णकी बालसुलभ सुहावनी चपलता देखकर नंदके घर आईं और यशोदाजीको सुनाकर यों कहने लगीं ॥ २८ ॥ "यह कान्हा बड़ी ढिठाई करता है । कभी हमारे घरोंमें घुस कर असमयमें ही बछड़ोंको खोल देता है, यदि बको झको तो हँसने लगता है । फिर चोरीकी चातुरीके ढंगोंसे चुरा कर मीठे दही और दूधको खाता है, आप ही नहीं खाता बरन् बंदरोंको भी खिलाता है, यदि भाँड़ेमें बहुत सा दही दूध नहीं मिलता तो उसे फोड़ डालता है । यदि कुछ भी न मिला तो खीझ कर पलँग पर सोरहे छोटे २ बालकोंको चुटकी काटके रुलाकर चला जाता है ॥ २९ ॥ इसकी चोरीकी चातुरी भी निराले ढंगकी है । जिन छींकोंपर धरे बर्तनों तक हाथ नहीं पहुँचता वहाँ यह उपाय करता है कि पीढ़े और ओखली रखता है, और उन पर खड़े होनेसे भी जब नहीं हाथ पहुँचता तो नीचेसे बर्तनोंमें छेद कर देता है । छेद करनेका ढंग भी इसको खूब मालूम है । देखते

ही जान जाता है कि इस छींकेके बर्तनमें दही दूध धरा है। जब गोपियाँ घरके कामकाजमें व्यग्र होती हैं तब अवसर पाकर भीतर घुस जाता है और ऐसे ही उत्पात करता है। यदि कोठरीके भीतर अँधेरेमें छिपाकर दही दूध धरो तो भी वह नहीं बचता, क्योंकि इसके शरीरके आभूषणोंमें मणि आदि रत्न जड़े हैं, जिनके प्रकाशमें सहज ही दही दूधके छिपाकर धरे माठोंको देख लेता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार ढिठाई करता है और कुछ कहनेसे उल्टे हमको ही डाँटता है एवं लीपे पोते हुए घरोंमें मल मूत्र कर जाता है। हे यशोदाजी! इस प्रकार हमारे यहाँ चोरी और दंगा करता है, किन्तु इस समय तुम्हारे पास बड़ा ही सीधा साधु बना हुआ बैठा है"। भययुक्त नयनोंसे सुशोभित कृष्णचन्द्रके श्रीमुखको देखती हुई गोपियोंने जब यों कहा तो सुन कर यशोदाजी भी हँस पड़ीं और कृष्णचन्द्रको डाँटनेके लिये उनकी इच्छा नहीं हुई ॥ ३१ ॥ एक समय बलभद्र आदि ग्वालबालोंने खेलते २ माता यशोदाके पास जाकर कहा कि आज कृष्णने मट्टी खाई है ॥ ३२ ॥ यशोदाने कृष्णका हाथ पकड़ लिया और पुत्रके हितके लिये डाँट कर यों कहने लगीं। उस समय भयसे पूर्ण कृष्णजीके चंचल चितवन युक्त नयन बहुतही मनोहर देख पड़ते थे ॥ ३३ ॥ **यशोदाने कहा**। क्योंरे ढीठ! तूने निरालेमें मट्टी क्यों खाई? देख तेरे साथी लड़के और तेरा बड़ा भाई साक्षी दे रहे हैं ॥ ३४ ॥ कृष्णने कहा। मैया! मैंने मट्टी नहीं खाई, ये सब मुझे झूठ लगाते हैं। और यदि इनके कहनेको तू सच मानती है तो अपने आगे ही मेरा मुख देखले ॥ ३५ ॥ **यशोदाने कहा**। यदि तू सच कहता है तो मुख फैला। यह कहने पर क्रीड़ा करनेके लिये मनुष्यबालकका रूप धारण किये हुए अखंडित ऐश्वर्यशाली ईश्वरने अपना मुख फैला दिया ॥ ३६ ॥ चलनेवाले और न चलने वाले सब जीव, आकाश, दशो दिशा, पर्वत-द्वीप-समुद्रयुक्त भूगोल, वायु, अग्नि, चंद्र, तारागण, ज्योतिश्चक्र, जल-तेज-वायु-आकाश आदि पञ्चतत्त्व, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता, इन्द्रियाँ, मन, शब्दादि विषय, तीनो मायाके गुण और जीव, काल, स्वभाव, कर्म्म, आशय आदि चराचर शरीरोंके विचित्र भेद एवं सहित अपने सम्पूर्ण व्रजको अपने पुत्रके विस्तृत मुखमें देखकर यशोदाजीको बड़ी भारी शंका हुई ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ यशोदाजी आप ही आप मनमें शङ्का करने लगीं कि "यह क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ? या यह हरि देवकी माया है? या मेरी ही बुद्धिको मोह (भ्रम) हो गया है? अथवा इस मेरे पुत्रका ही कोई अचिन्त्य निजका ऐश्वर्य्य (प्रताप) है? ॥ ४० ॥ जो चित्त, मन, कर्म्म और वाणीसे परे है, जो तर्क द्वारा नहीं पाया जासक्ता, यह जगत् जिसके आश्रयमें है, जिस इंद्रियाधिष्ठाता और बुद्धिस्फुरण करनेवालेके द्वारा इस जगत्की प्रतीति होती है उस अत्यन्त अचिन्तनीय पद(ईश्वर)को मैं

प्रणाम करती हूँ ॥ ४१ ॥ "मैं हूँ, मेरे यह पति हैं, मेरा यह पुत्र है, मेरे गोपी, गोप तथा गोधन हैं, मैं व्रजराजके सर्वस्वकी स्वामिनी हूँ"—जिसकी मायासे इस प्रकारकी कुमति मुझको घेरे हुए है उसी ईश्वरके मैं शरणागत हूँ ॥ ४२ ॥ इस प्रकार यशोदाको तत्त्वज्ञान हुआ देख समर्थ ईश्वर कृष्णचन्द्रने फिर अपनी पुत्रस्नेहरूप प्रबल माया फैला दी ॥ ४३ ॥ तुरन्त ही यशोदाको वह ज्ञान भूल गया, पुत्रस्नेह हृदयमें उमड़ आया, उन्होने पुत्रको गोदमें उठा लिया और पहलेकी भाँति कृष्णचन्द्रको दुलराने लगीं ॥ ४४ ॥ अहो, ईश्वरकी माया कैसी प्रबल है! त्रयी, उपनिषद्, सांख्य, योग आदि शास्त्र और भक्तगण इन्द्रादि देवरूप, ब्रह्म, पुरुष, परमात्मा तथा भगवान् कह कर जिनके माहात्म्यको गाते हैं उनको यशोदाने अपना पुत्र माना ॥ ४५ ॥ **राजा परीक्षित्ने** श्रीशुकदेवजीसे कहा। भगवन्! नन्द गोपने कौन ऐसा सुकृत किया था? और महाभागा यशोदाने ही कौन ऐसा महाफलदायी पुण्य कर्म्म किया था जिससे हरिभगवान्ने उनका दूध पिया? ॥ ४६ ॥ जिन पर प्रसन्न होकर हरिने अवतार लिया वे पिता माता वसुदेव देवकी भी हरिकी अद्भुत बाललीलाको देखकर न नेत्र सफल कर सके। हरिकी लीला त्रैलोक्यके पाप मिटानेवाली है, उसको कवि लोग अब तक श्रद्धाभक्तिपूर्वक गाते हैं। तब जिन्होने उस लीलाको साक्षात् देखा उनके भाग्यका क्या कहना है! ॥ ४७ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** ब्रह्माकी आज्ञासे द्रोण नाम वसु देवताने धरा नाम अपनी स्त्री सहित पृथ्वी पर अवतार लिया। उस समय द्रोणने ब्रह्मासे कहा कि भगवन्! हम पृथ्वीमें जन्म लेंगे, किन्तु कृपा करके यह वर दीजिये कि देवदेव विश्वनायक हरिमें हमारी अचल भक्ति हो, जिससे लोग सहजमें ही दुर्गतिसे छूट जाते हैं ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ब्रह्माने कहा—ऐसाही होगा। वही महायशस्वी द्रोण वसु पृथ्वीपर नंद गोप हुए और उनकी स्त्री धरा यशोदा हुई ॥ ५० ॥ इसी कारण दोनो स्त्री-पुरुषोंकी पुत्ररूपसे उत्पन्न हरिमें अत्यन्त भक्ति (प्रेम) हुई। अन्यान्य गोपी और गोप भी हरिसे प्रेम करते थे ॥ ५१ ॥

कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥
सहरामो वसँश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥

अन्तर्यामी कृष्ण भगवान् ब्रह्माके वाक्यको सत्य करनेके लिये सहित बलदेवजीके व्रजमें रह कर अपनी लीलाओंसे व्रजवासियोंको प्रसन्न करने लगे ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टमोध्यायः ॥ ८ ॥

नवम अध्याय ।

कृष्णका उलूखलबन्धन ।

श्रीशुक उवाच-एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ॥
कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । एक दिन घरकी दासियाँ और २ कामोंमें लगी हुई थीं इससे नन्दरानी यशोदा आप ही दही मथने लगीं ॥ १ ॥ जो २ कृष्णकी बाललीलाएँ कही जाचुकी हैं उनको याद कर २ के दही मथते समय यशोदाजी गानेलगीं ॥ २ ॥ यशोदाजी कटिबंधनयुक्त रेशमीवस्त्र कमरमें पहने हुए थीं । मथतेमें उनके दोनो स्तन हिलते जाते थे और उनमें पुत्रस्नेहके कारण दूध भर आयाथा । रस्सीके बार २ खींचनेसे थकेहुए दोनो बाहुओंमें कंकण और कानोंमें कुण्डल हिलते जाते थे, मुखमें पसीना निकल आया था और चोटीसे गुँथी हुई मालतीकी माला खुल२ कर गिर रही थीं ॥ ३ ॥ यशोदाजी इस दशासे दही मथ रही थीं, उस समय दूध पीनेकी इच्छा करके कृष्णचन्द्र आये और माताको प्रसन्न करते हुए मथानी पड़कर उन्होने दही मथनेसे रोका ॥ ४ ॥ यशोदाने पुत्रको गोदमें लेलिया और स्नेहपूर्ण मुसकानसे युक्त मनोहर (पुत्रका) मुख देखती हुई, स्नेहके कारण जिससे आप ही आप दूध निकल रहा है वह स्तन उनके मुखमें देकर दूध पिलाने लगीं । इतनेमें चूल्हे पर चढ़ा हुआ दूध उफनाने लगा, अतएव यशोदाने कृष्णको वैसे ही छोड़ दिया और आप दूध उतारनेके लिये जल्दीसे गईं,* कृष्णचन्द्र उस समय भी तृप्त नहीं हुए थे, इसीसे उनको क्रोध आगया । कुपित कृष्णने फरक रहे अरुण ओंठ दाँतोंसे दबा कर पास ही पड़े हुए लोढ़ेसे दहीका माठ फोड़डाला और झूठमूठ रोते हुए वहाँसे चलदिये एवं भीतर जाकर एकान्तमें धरा हुआ मक्खन खाने लगे ॥ ५ ॥ ६ ॥ यशोदाजी तपे हुए दूधके कढ़ावको उतार कर पूर्वस्थानमें आईं तो देखा दहीका भाँड़ा फूटा पड़ा है और कृष्णजी वहाँ पर नहीं हैं; अतएव 'यह काम कृष्णने ही किया है'-यह जान कर हँसने लगीं ॥७॥ यशोदाने घूम कर घरमें देखा तो कृष्णजी उलूखल (ओखली) उलटा कर उस पर चढ़े हुए छींके परका माखन मनमाना आप खाते हैं और बानरोंको लुटा रहे हैं एवं चोरी करनेके कारण चारो ओर चकित दृष्टिसे देखते जाते हैं । यह देख कर यशोदाजी दबे पैरों पीछेसे पुत्रके पास पहुँच गईं, फिर कर कृष्णने देखा-छड़ी लिये पकड़नेके लिये माता आ पहुँची है । तब जैसे कोई भयभीत हो

*दूधका आगमें गिरना पुत्रके लिये अनिष्ट मानागया है, इसीसे यशोदाने कृष्णको छोडदिया और दौड़ कर पहले दूधको उतारा ।

वैसे उलूखलसे उतर कर नन्दनन्दन भागे। योगियोंका मन, तपके द्वारा तदाकार में परिणत होकर भी जिनको नहीं पाता उन्ही कृष्णके पीछे पकड़नेकी इच्छासे यशोदाजी दौड़ीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ विचलित विशाल नितम्बोंके भारसे यशोदाजी बहुत दूर न दौड़ सकीं। वेगसे दौड़नेमें हिल रहे शिथिल केशो-बन्ध (जूड़े) से खिसक २ कर अगणित फूल पीछे गिरने लगे और वह कृष्णके पीछे दौड़ने लगीं। थोड़ी ही दूर जाकर यशोदाने कृष्णको पकड़ लिया ॥ १० ॥ यशोदाने देखा, अपराध करनेके कारण भीत हो कर कृष्णजी रोरहे हैं, हाथोंसे दोनो आँखें मलते जाते हैं–जिससे मुख भरमें अंजनकी स्याही फैलगई है। दोनो नेत्र भयसे विह्वल हो रहे हैं। यशोदाने कृष्णके दोनो हाथ पकड़ लिये और छड़ी दिखा कर धमकाती डराती हुई डाँटने लगीं ॥ ११ ॥ पुत्रको अधिक डरा हुआ देख पुत्रवत्सला यशोदाने हाथसे छड़ी फेंक दी और उन्हें बाँधनेके लिये उद्यत हुईं, क्योंकि वह श्रीकृष्णचन्द्रके प्रभावको नहीं जानती थीं। जिनका भीतर या बाहर अथवा पूर्व या पर नहीं है और जो स्वयं जगत्का पूर्व और पर हैं एवं जगत्के भीतर तथा बाहर विद्यमान और जगन्मय हैं उन बालवेष अव्यक्त अधोक्षज भगवान्को अपना पुत्र मानकर, यशोदाजी, साधारण नरशिशुके समान रस्सीसे उलूखलमें बाँधने लगीं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ यशोदाजी अपने अपराधी बालकको जिस रस्सीसे बाँध रही थीं वह गाँठ देतेमें दो अंगुल छोटी पड़गई तब और रस्सी लाईं ॥ १५ ॥ वह रस्सी भी जब दो अंगुल छोटी पड़ी तब यशोदाने और एक रस्सी लाकर उसमें जोड़ी। वह भी दो अंगुल छोटी पड़ी, उससे भी कृष्ण न बँधसके। इसी प्रकार अपने घरकी और अन्यान्य गोपियोंके यहाँकी भी सब रस्सियाँ ला २ कर यशोदाने जोड़ीं, पर किसी भाँति कृष्णको न बाँध सकीं। यह देख कर स्वयं यशोदाको विस्मय और लज्जा हुई एवं और २ गोपियाँ भी बहुत ही विस्मित हुईं ॥ १६ ॥ १७ ॥ बाँधनेके लिये अधिक प्रयास करनेके कारण यशो-दाका शरीर पसीनेसे तर होगया, वेणीके सब फूल खिसक २ कर गिर गये और केश बिखर गये। माताको थका देख कृष्णचन्द्रको दया आई और वह आप ही बँध गये ॥ १८ ॥ महाराज! हरि भगवान् सदैव आत्मवश अर्थात् स्वतन्त्र ही हैं और ब्रह्मादि ईश्वरोंको लेकर सब सांसारिक चराचर पदार्थ उन्हीके अधीन हैं; तथापि इस घटनासे "मैं भक्तोंके वशमें हूँ" यह कृष्णचन्द्रने दिखा दिया ॥ १९ ॥ मुक्तिदाता कृष्णके इस प्रसादको कभी ब्रह्मा शिव या हृदयवासिनी लक्ष्मीने भी नहीं पाया, पर यशोदाजीने प्राप्त कर लिया ॥ २० ॥ गोपिकानन्दन श्रीकृष्णचन्द्रको भक्तगण जैसे सहजमें पा जाते हैं वैसी सुगमतासे आत्मज्ञानी ज्ञानीजन नहीं पा सके ॥ २१ ॥ कृष्णको ओखलीमें बाँध कर यशोदाजी घरके कामकाज करनेमें लग गईं। इधर कृष्णकी दृष्टि नन्दभवनके द्वार पर अवस्थित अतिप्राचीन यमलार्जुन वृक्ष पर पड़ी। ये दोनो वृक्ष पूर्व जन्ममें यक्षपति कुबेरके पुत्र थे ॥ २२ ॥

पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात् ॥
नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥ २३ ॥

मदमत्त होनेके कारण नारदके दिये हुए शापसे ये अत्यन्तसुन्दर मणिकूबर, नलग्रीव नाम कुबेरतनय वृक्ष हो गये थे ॥ २३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशम अध्याय ।

यमलार्जुन-भञ्जन ।

राजोवाच—कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम् ॥
यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । ब्रह्मन् ! दोनो कुबेरके पुत्रोंने किस कारण शाप पाया ? और भगवद्भक्त, शान्तस्वभाव देवऋषि नारदको ही कैसे निन्दनीय क्रोध हुआ ? ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं ।** महाराज ! कुबेरके दोनो पुत्र रुद्रके अनुचर थे, इस कारण उनको बड़ा ही गर्व था । वे मदपान कर मतवाले हो कैलाश पर्वतके रमणीय उपवन और मंदाकिनी(स्वर्गकी गंगा)के तट पर घूमा करते थे ॥ २ ॥ वारुणी मदिराके मदसे सदैव उनके नेत्र लाल रहते थे । एक समय ऐसीही दशामें झूमते हुए दोनो कुबेरके पुत्र फूले हुए उद्यानमें विचर रहे थे, उनके साथ स्त्रियाँ भी थीं, जो मनोहर स्वरसे गाती जाती थीं ॥ ३ ॥ दोनो कुबेरतनय यों विचरते हुए जलकेलि करनेकी इच्छासे कमलावलीमण्डित गंगाजलमें घुस पड़े और जैसे गजराज हथनियोंके साथ क्रीड़ा करे वैसे ही उन सुरसुंदरियोंके साथ जलविहार करने लगे ॥ ४ ॥ उधर अकस्मात् घूमते हुए देवऋषि नारदजी वहाँ पहुँचे । उनकी दशा देख कर नारदजी जान गये कि ये दोनो मतवाले हो रहे हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि नारदजीको देख शापके भयसे स्त्रियोंने तो बाहर आकर जल्दीसे लज्जित हो अपने २ वस्त्र पहन लिये, परन्तु वे दोनो वैसे ही नंगे खड़े रहे ॥ ६ ॥ नारदजीने देखा, यक्षराज कुबेरके पुत्र मदिरा पीकर मत्त हो रहे हैं और श्रीमदसे भी अंधे हो रहे हैं । तब उन पर (वास्तवमें) अनुग्रह करके शाप देते हुए नारदजी बोले ॥ ७ ॥ **नारदजीने कहा**—अहो ! ऐश्वर्यके मदमें स्त्रीसंग, द्यूतक्रीड़ा (जुएँका खेल) और मदिरा-पानकी ही अधिकता होती है; इसी लिये ऐश्वर्यमदसे विषयासक्त पुरुषकी बुद्धि बिल्कुल ही भ्रष्ट हो जाती है । सत्कुलमद, विद्यामद आदि अनेक मदोंमें या राजस

कार्य्य हास्य आदिमें इतना मोह नहीं होता ॥ ८ ॥ ऐश्वर्य्यमद होने पर ही अजितात्मा, अविचारशील निठुर जन, इस एक दिन अवश्य नष्ट होनेवाले शरीरको जरामरणहीन सा मान कर पशुहत्या करते हैं ॥ ९ ॥ यह नाशशील शरीर नरदेव या भूदेव कहला कर भी अन्तको कृमिरूप, विष्टारूप या भस्मरूप हो जाता है । तब जो कोई इस शरीरके लिये प्राणियोंसे द्रोह करता है वह शायद सच्चे स्वार्थ (अपने कर्त्तव्य) को नहीं जानता ॥ १० ॥ इस शरीर पर—अन्नदाता, पिता, माता, मातामह, बलवान्, मोल लेनेवाले, कुत्ता या अग्नि—इनमेंसे किसका स्वत्व है—सो नहीं जानाजाता ॥ ११ ॥ यह शरीर अव्यक्त वस्तुसे उत्पन्न होकर अन्तको उसीमें लीन हो जायगा । जब यह शरीर ऐसी साधारण वस्तु है तब असत् पुरुषके सिवा कौन विद्वान् इसे आत्मा मानकर इसके लिये प्राणियोंकी हिंसा करेगा ? ॥ १२ ॥ जो असत् पुरुष लक्ष्मीके मदसे अंधा हो रहा है उसको दिव्य दृष्टि देनेवाली दरिद्रता ही परम अंजन है । क्योंकि जब वह दरिद्र होता है तो अपने साथ तुलना करके सभीको अपनेसे श्रेष्ठ मानता है ॥ १३ ॥ जिसके अंगमें कभी काँटा लगा है और उसकी व्यथाका अनुभव हो चुका है वह दूसरेकी व्यथाको मुखमलिनता आदि चिन्होंसे अपनी ही व्यथाके समान मानता है और नहीं चाहता कि किसीको ऐसी व्यथा हो; पर जिसके कभी काँटा नहीं लगा वह दूसरेकी व्यथाका अनुभव नहीं कर सक्ता, अतएव दूसरेका दुःख दूर होनेमें सहायता भी नहीं करता ॥१४॥ दरिद्र पुरुषके मनमें "मैं हूँ" "मेरा है" इस प्रकारका अहंभाव नहीं रहता, वह सब प्रकारके मदोंसे विमुक्त रहता है । उसे अनायास जो कष्ट मिलता है वही उसका परम तप है ॥ १५ ॥ अन्नहीन दरिद्र पुरुषका शरीर क्षुधा सहनेसे निर्बल और क्षीण हो जाता है, इन्द्रियोंकी भी प्रबलता जाती रहती है; जिससे हिंसाकी प्रवृत्ति भी निवृत्त हो जाती है ॥ १६ ॥ समदर्शी साधुगण दरिद्रोंसे ही मिलते हैं । उन साधुओंके संगसे सब प्रकारकी तृष्णा त्याग कर दरिद्र पुरुष शीघ्र ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ १७ ॥ समदर्शी एवं मुकुंद भगवान्के चरणोंकी चाह रखनेवाले साधुजन, धनगर्वित एवं असत्का आश्रय लेनेवाले असाधुओंसे क्यों मिलें ? वे तो साधुजनोंकी दृष्टिमें उपेक्षणीय हैं ॥ १८ ॥ अतएव मैं इन मदमत्त, ऐश्वर्य्यके गर्वसे अंधे, स्त्रीजित, अजितात्मा यक्षोंके अज्ञानकृत अहंकारको नष्ट कर दूँगा ॥ १९ ॥ ये लोकपाल कुबेरके पुत्र हैं, किन्तु अज्ञानमें इतना निमग्न हो रहे हैं एवं दुष्ट मदसे ऐसे अंधे हो रहे हैं कि इनको अपने नंगे होनेका भी ध्यान नहीं है ॥ २० ॥ इस लिये इनको स्थावर (जड़) योनि मिलनी चाहिये, जिसमें फिर कभी ऐसे मदांध न हों । किन्तु मेरे अनुग्रह और प्रसादसे जड़ योनिमें भी इनकी स्मरणशक्ति न नष्ट होगी अर्थात् इस जन्मकी याद बनी रहेगी ॥ २१ ॥ एक सौ दिव्य वर्ष बीतने पर हरि भगवान्के

दर्शनको पावेंगे और हरिभक्ति प्राप्त करके फिर इसी स्वर्ग लोकमें आजायँगे ॥२२॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। इतना कह कर देवर्षि नारदजी नारायण भगवान्के आश्रमको चले गये एवं नारदके शापसे नलकूबर और मणिग्रीव नाम दोनो कुबेरपुत्र यमलार्जुन वृक्ष हो गये ॥ २३ ॥ भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ नारदजीके वचनोंको सत्य करनेके लिये भगवान् कृष्णचन्द्रजी, जहाँ यमलार्जुनवृक्ष थे वहाँ पर धीरे २ पहुँचे ॥२४॥ "देवर्षि नारद मेरे प्रियतम भक्त हैं, ये यमलार्जुन वृक्ष भी कुबेरके पुत्र हैं; अतएव महात्मा नारदने जो कुछ भविष्यवाणी कही है उसे मैं पूर्ण करूँगा" ॥ २५ ॥ यह विचार कर भगवान् कृष्णचन्द्र उन दोनो वृक्षोंके बीचसे हो कर दूसरी ओर निकले, उलूखल बेंड़ा हो कर अड़गया। तब बालरूप दामोदरने उलूखलसहित रस्सीको बलपूर्वक अपनी ओर खींचा। हरिके विक्रमसे दोनो महा प्राचीन वृक्ष जड़से उखड़ कर महाप्रचंड शब्द करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े और उनके पत्ते, शाखा, प्रशाखा आदि सब अंग वेगसे हिल गये ॥ २६ ॥ २७ ॥ महाराज! दोनो वृक्षोंके गिर पड़ने पर उनसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्धपुरुष निकले, उनकी विमल कान्तिसे सब दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं। उन निर्मल कुबेरके पुत्रोंने सम्पूर्ण जगत्के स्वामी कृष्णचन्द्रको शिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर यों कहा ॥ २८ ॥ "हे कृष्ण! हे कृष्ण! आप महायोगी हैं। आप बालक नहीं हैं, वरन् आदिम पुरुष परब्रह्म हैं। ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणलोग, इस विश्वको आपका व्यक्त व अव्यक्त (स्थूल व सूक्ष्म) रूप जानते हैं ॥ २९ ॥ एक आप ही सब प्राणियोंके देह, प्राण, आत्मा और इन्द्रियोंके ईश्वर हैं। आप ही अव्यय, ईश्वर, भगवान्, विष्णु हैं। काल आपकी लीलामात्र है। आप ही महत्तत्त्व (कार्य्यस्वरूप) हैं। आप ही त्रिगुणमयी सूक्ष्म प्रकृति (शक्तिस्वरूप) हैं, आप ही पुरुष (जीवात्मा) हैं, क्योंकि वह आपका ही अंश है। आपही सब क्षेत्रज्ञ जीवोंके अध्यक्ष-अन्तर्य्यामी ब्रह्मस्वरूप हैं ॥ ३० ॥ ३१॥ हे विभो! आप द्रष्टा हैं, इसी लिये दृश्यभावको प्राप्त एवं प्रकृतिके रूपान्तर इंद्रियादि आप तक नहीं पहुँच सक्ते। सब जीवोंकी उत्पत्तिके पहलेसे ही आपकी सत्ता वर्त्तमान है; अतएव देहादिसे युक्त कौन जीव आपको जान सक्ता है! ॥ ३२ ॥ आप भगवान् वासुदेव, विधाता और ब्रह्म हैं, आपको नमस्कार है। आपसे ही प्रकाशित गुणसमूह आपके तत्त्वको आच्छन्न किये हुए हैं-आपको प्रणाम है ॥ ३३ ॥ आप यद्यपि शरीररहित हैं तथापि अवतार लेते हैं और अलौकिक तथा अत्यन्त आतिशय्ययुक्त अनुपम वीर्य्य देख कर देहधारियोंमें आपका अवतार जाना जाता है ॥ ३४ ॥ सो इस समय संसारको उन्नत और निर्भय करनेके लिये सबके स्वामी और सब प्रकारकी कामना पूर्ण करनेवाले आपका यह पूर्णावतार हुआ है ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप! हे परममङ्गलमय! आपको प्रणाम है। आप शान्तस्वरूप,

वासुदेव और यदुपति हैं–आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ३६ ॥ हे भूमन्! हम आपके दासानुदास हैं। ऋषिके अनुग्रहसे हमको आपके दुर्लभ दर्शन प्राप्त हुए हैं ॥३७॥ भगवन्! हमारी वाणी आपके गुणानुवाद गानेमें लगी रहे, हमारे कान आपकी कथा सुना करें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और चित्त आपके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें तथा शिर आपकी निवासभूमि जो सम्पूर्ण जगत् है उसको प्रणाम करनेमें एवं दृष्टि आपकी मूर्ति जो साधुजन हैं उनके दर्शनमें लगी रहे ॥ ३८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। राजन्! रस्सीसे ओखलीमें बँधे हुए गोकुलेश्वर कृष्णभगवान्, इस प्रकार स्तुति करनेवाले दोनो यक्षोंसे हँस कर कहने लगे कि "मुझे पहले ही से विदित था कि तुम दोनो ऐश्वर्य्यके मदसे अंधे हो रहे थे, तब देवर्षि नारदने अनुग्रह करते हुए शाप दिया, जिससे तुम्हें वृक्ष होना पड़ा ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जैसे सूर्यका दर्शन करने पर आँखें खुल जाती हैं–वैसे ही अपने धर्म्म पर चलनेवाले आत्मज्ञानी और मुझमें दृढ़तापूर्वक मन लगानेवाले सज्जनोंका साक्षात् होने पर कोई बंधन नहीं रहता और ज्ञानके नेत्र खुल जाते हैं ॥ ४१ ॥ इस लिये अब हे नलकूबर और मणिग्रीव! तुम दोनो अपने घरको जाओ। तुम्हारा मन मुझमें मग्न रहेगा, तुम्हारी भक्ति मुझमें हुई है, अवश्य ही सब लोग जिसकी कामना करते हैं वह मोक्षरूप परमपदार्थ तुम पागये ॥ ४२ ॥

श्रीशुक उवाच–इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥
बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥ ४३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। इस प्रकार भगवान्के कहने पर दोनो यक्षोंने उलूखलमें बँधे हुए कृष्णकी परिक्रमा की और वारम्वार प्रणाम किया तथा उनसे बिदा हो कर उत्तर दिशाको चले गये ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादश अध्याय।

वत्सासुर और बकासुरका वध।

श्रीशुक उवाच–गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥
तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे कुरुकुलतिलक! दोनो वृक्षोंके गिरनेसे ऐसा घोर शब्द हुआ कि नन्दादिक गोप सब "क्या वज्र गिरा!"—यह आशंका करके वहाँ पर आ पहुँचे ॥ १ ॥ उन्होने आकर देखा कि दोनो महावृक्ष जड़से उखड़े

पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। यद्यपि ओखली अड़ाकर वृक्षको गिरानेवाले कृष्णचन्द्र रस्सीसे ओखलीमें बँधे हुए सामने ही खड़े थे, तथापि वे लोग—"यह न निश्चय करसके कि किसने वृक्षोंको गिरा दिया। सब लोग—"यह किसका काम है? कैसे ये पुराने वृक्ष उखड़ गिरे? कैसे अचरजकी बात है!" इत्यादि कहते हुए उत्पातके खटकेसे घबड़ाकर इधर उधर दौड़कर उसका कारण खोजने लगे। वहाँ जो लड़के खेल रहे थे उन्होने कहा कि "इसी कान्हाने वृक्षोंके बीचमें ओखली डालकर जोर लगाया सो ये वृक्ष गिर पड़े। इन वृक्षोंके नीचेसे दो दिव्य पुरुष भी निकले थे" ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ किन्तु गोपोंने लड़कोंके कहने पर विश्वास नहीं किया और कहा कि इतना छोटा बालक इन वृक्षोंको नहीं गिरा सक्ता; कुछ लोगोंको संदेह भी हुआ कि कदाचित् ऐसा ही हो ॥५॥ नंदने अपने पुत्रको देखा कि रस्सीसे बँधे हुए उलूखलको घसीटते हुए आरहे हैं। यह देख कर नंदजी हँसे और कृष्णको ओखलीके बंधनसे छुड़ा दिया ॥ ६ ॥ इसी प्रकार श्रीकृष्णजी बाललीलाएँ करने लगे। कभी गोपियाँ ताली बजा कर नाचनेके लिये प्रोत्साहित करतीं तो भगवान् साधारण बालकोंके समान नाचने लगतेथे और कभी भोले भावसे गोपियोंके वश होकर ऊँचे स्वरसे गातेथे। यों ही कठपुतलीकी भाँति कृष्णचन्द्रजी गोपियोंका कहा करतेथे ॥ ७ ॥ कभी गोपियोंके कहनेसे—जैसे उठालानेकी सामर्थ्य नहीं है—ऐसा भाव प्रकट करते हुए पीठ (पीढ़ा) या खड़ाऊँ उठाते अथवा अपने आत्मीयोंको प्रसन्न करते हुए हाथ फैला कर नृत्य करते ॥ ८ ॥ अपनी यथार्थ महिमा जाननेवाले लोगोंको "मैं अपने भक्तोंके वशमें हूँ"—यह दिखाते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी इसी प्रकार अपनी बाललीलाओंसे व्रजवासियोंको प्रसन्न करने लगे ॥ ९ ॥ महाराज! एक दिन एक फल बेंचनेवाली नंदके द्वार पर आकर कहने लगी कि—"फल लेओ फल"। यह सुन कर सब फल देनेवाले श्रीकृष्ण भगवान् हाथोंमें अन्न लेकर फल लेनेके लिये उसके पास गये। राहमें हरिके हाथोंसे अन्न गिरता गया। उस फल बेंचनेवालीने भगवान्के दोनो हाथ फलोंसे पूर्ण कर दिये और वैसे ही उसकी टोकरी भी रत्नोंसे पूर्ण होगई ॥ १० ॥ ११ ॥ यमलार्जुन उखाड़नेके बाद एक दिन कृष्णचन्द्र यमुनाके किनारे खेल रहे थे। उसी समय रोहिणीजी उनको घर आनेके लिये पुकारने लगीं। किन्तु खेलनेमें तत्पर दोनो पुत्र जब उनका पुकारना सुन कर भी न आये तब पुत्रवत्सला रोहिणीने यशोदाको पुत्रोंको बुलानेके लिये भेजा। उसदिन कृष्ण भगवान् बलदाऊ सहित बहुत दिन चढ़े तक खेलते रहे—यह देख यशोदाजी स्वयं उन्हे बुलानेके लिये चलीं। पुत्रस्नेहसे उनके स्तनोंमें दूध भर आया। यशोदाजी ऊँचे स्वरसे यों कह कर कृष्णको बुलाने लगीं कि "हे कृष्ण! हे कमलनयन पुत्र! आओ, दूध पियो, बहुत खेल चुके, अब भूख लगी होगी, खेलते २

थक गये हो । हे बलदाऊ ! अपने छोटे भाई कृष्णको साथ लेकर शीघ्र आओ । तुम दोनोने बहुत सबेरे कलेवा किया था, अब तुम्हारे भोजन करनेका समय बीतचला है, आओ आओ, भोजन करो । व्रजपति नन्दजी चौके पर बैठे तुम्हारे आनेकी राह देख रहे हैं । आओ हमको प्रसन्न करो और ये तुम्हारे साथी बालक अपने २ घर जावें । वत्स कृष्ण ! तुम्हारे अंगोंमें धूल भर गई है, आओ स्नान करो । आज तुम्हारे जन्मनक्षत्रका दिन है, स्नान आदिसे पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो । अपने साथियोंको देखो । उनकी माताओंने स्नान कराकर उनको उत्तम २ कपड़े और गहने पहनाये हैं । तुम भी स्नान करके अच्छे २ वस्त्र व आभूषणोंसे भूषित होकर भोजन करनेके उपरान्त फिर आकर खेलना" । इस भाँति स्नेहमयी माता यशोदाजी, ब्रह्मादिवन्दित कृष्णचन्द्रको पुत्रभावसे हाथ पकड़ कर सहित बलदाऊके घर ले गईं और सब मांगलिक कृत्य, देवपूजन आदि करके तथा पुत्रोंको भोजन करा कर अत्यन्त आनन्दित हुईं ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ महाराज ! व्रजमें नित्य नवीन उत्पात होते देख नन्द आदि बूढ़े २ सब गोप एकत्रित हुए और विचार करने लगे कि "गोकुलमें किसी प्रकारका अमंगल न हो–इस लिये हम लोगोंको क्या करना चाहिये ?" ॥ २१ ॥ उस सभामें उपनन्द नाम एक ज्ञान और अवस्थामें वृद्ध गोप थे, वह देश, काल और कार्य्यका तत्त्व भली भाँति समझते थे और बलदेव तथा कृष्णके परम हितकारी थे ॥ २२ ॥ उपनन्दने कहा कि "यदि गोकुलका हित चाहते हैं तो हम लोगोंको यहाँसे उठजाना चाहिये, क्योंकि यहाँ नित्य नवीन उत्पात होते हैं; जिनसे बालकोंको बड़ा ही भय है ॥२३॥ देखो, बालक कृष्ण किसी तरह बालघ्नी राक्षसी(पूतना)के हाथोंसे बचगया, और निश्चय ही यह हरिकी कृपा थी जो इसके ऊपर छकड़ा नहीं गिरा । फिर चक्रवात(बवंडर)रूपधारी राक्षस आकाशमें ले गया, किन्तु उस विपत्तिसे भी बचगया, देवतोंने बड़ी रक्षा की, क्योंकि वह दैत्य सहित इस बालकके एक भारी शिलाके ऊपर गिरा था ॥ २४ ॥ २५ ॥ दोनो वृक्षोंके बीचमें दब कर जो बालक कृष्ण नहीं मरा–इसमें भी अच्युत भगवान्ने ही रक्षा की–ऐसा समझना चाहिये ॥ २६ ॥ अतएव जब तक और कोई ऐसा ही उत्पातरूपी अरिष्ट व्रज पर न आवे तब तक पहलेही बालकोंको ले कर सब गोपों सहित हम व्रजको छोड़ देंगे और अन्यत्र जाकर निवास करेंगे ॥ २७ ॥ यहाँसे थोड़ी ही दूर पर वृंदावननाम एक पवित्र वन है, वहाँ पर्वत है, घास और तृण बहुत हैं, अनेक लताएँ भी हैं । वहाँ नवीन २ हरे भरे छोटे २ वन हैं, उनमें पशुगण सुखपूर्वक चरेंगे; गऊ, गोपी और गोपगण भी सुखसे रहेंगे ॥ २८ ॥ सो यदि आपलोगोंको रुचे तो चलो हम सब अभी चलें । विलंबकी आवश्यकता नहीं है, गऊ बछड़ोंको आगे करो और

अपने २ छकड़े जोत लो" ॥ २९ ॥ यह सुन कर सब गोपलोग एकमत हो कर उपनन्दकी प्रशंसा करने लगे और उसी समय अपने २ छकड़े जोत कर उन पर अपनी २ सामग्री रख कर वृन्दावनकी ओर चलदिये। राजन्! गोपोंने अपना २ सामान छकड़ों पर लादा और बूढ़े बालक व स्त्रियोंको भी उन पर बिठलाया एवं आप धनुष बाण आदि अस्त्र शस्त्र ले गऊ बछड़ोंको आगे कर सींग और तूर्य्य (तुरही) बजाते कुलपुरोहितों सहित चल दिये ॥३०॥३१॥३२॥ गोपियाँ सब रथों पर चढ़ कर प्रसन्नतापूर्वक कृष्णकी बाललीलाओंको गाती हुई उनके साथ चलीं। उनके कमनीय कुचमण्डल कुङ्कुमरागसे रञ्जित थे, कानोंमें कनककुण्डल डोलते जाते थे और अंगोंमें चित्र विचित्र वस्त्र सुशोभित थे एवं गलेमें कंठा, पँचलड़ी, हमेल आदि आभूषणोंकी शोभा देखने ही योग्य थी ॥ ३३ ॥ यशोदा और रोहिणी भी एक छकड़े पर कृष्ण और बलदाऊ सहित विराजमान थीं और बड़े चावसे पुत्रोंकी बाललीलाएँ सुनती जाती थीं ॥ ३४ ॥ महाराज! सभी ऋतुओंमें सुख देनेवाले वृंदावनमें पहुँच कर गोपोंने अपने २ छकड़े अर्धचन्द्राकारसे खड़े कर दिये और वहीं गोप गोपियोंके बसनेका स्थान बनाया। राजन्! बलदाऊ और कृष्ण दोनो भाई वृन्दावन और यमुना नदीके रमणीय किनारे देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ३५ ॥३६॥ राजन्! बलदाऊ और कृष्णचन्द्र इसी प्रकार अपनी बाललीलाओं और मधुर वाक्योंसे व्रजवासियोंको आनन्द देते हुए कुछ कालमें वत्सपाल हो गये अर्थात् बछड़ोंको चराने ले जाने लगे ॥ ३७ ॥ कृष्ण और बलदाऊ अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषणोंसे विभूषित हो कर व्रजभूमिके निकट ही ग्वालबालोंके साथ बछड़े चराते हुए भाँति २ के खेल खेलने लगे ॥ ३८ ॥ कभी बाँसुरी बजाते और कभी क्षेपण यंत्र (गोफ)में रख कर आँवले आदिके फल फेंकते, और कभी पैरोंमें घुँघरू बाँधे उनको बजाते थे। कभी कंबल उढ़ा कर ग्वाल बालोंको बैल बनाते और आप भी बैल बनते तथा बैलोंके समान नाद करके परस्पर युद्ध करतेथे। कभी साधारण बालकोंके समान पक्षियों व पशुओंकी बोलीकी नकल करते थे ॥ ३९ ॥ ४० ॥ एक दिन कृष्ण और बलदाऊ वयस्य बालकोंसहित यमुना किनारे अपने २ बछड़ोंको चरा रहे थे। इसी समय उनको मारनेके विचारसे एक दैत्य आया ॥ ४१ ॥ हरिने देखा कि वह दुष्ट दैत्य बछड़ेके रूपसे बछड़ोंके झुंडमें आकर मिल गया। भगवान्ने बलदेवको इशारेसे दिखा दिया और जैसे कुछ जानते ही नहीं, इस भाँति धीरे २ उसके पास पहुँच गये। पीछेसे जाकर भगवान्ने सहित पूँछके उसके पिछले दोनो पैर पकड़ लिये और कई बार शून्यमें घुमाकर एक कैथेके वृक्ष पर दे मारा, जिससे कि उसके प्राण निकल गये। उसके भारी शरीरके आघातसे कई कैथेके वृक्ष भी टूटकर गिर पड़े और वह भी गिर पड़ा ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ यह देख सब ग्वालबाल विस्मित हो 'वाह वाह' कहकर कृष्णकी प्रशंसा करने लगे

और देवता लोग प्रसन्न हो कर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४४ ॥ सब लोकोंका पालन करनेवाले कृष्ण और बलदाऊ वत्सपाल हो कर नित्य प्रातःकाल कलेवा ले कर वनमें जाने और वहाँ बछड़ोंको चराने लगे ॥ ४५ ॥ एक दिन सब ग्वाल-बाल जलाशयके निकट जा कर अपने २ बछड़ोंको जल पिलाने लगे । उन्होने बछड़ोंको जल पिला कर आप भी जलपान किया ॥ ४६ ॥ उसी समय उन्होने देखा कि वहाँ पर एक बड़ा भारी जीव बैठा हुआ है, जैसे वज्रके प्रहारसे फटकर किसी पर्वतका शिखर गिर पड़ा हो । उसे देख कर सब ग्वालबाल बहुत ही भयभीत हुए ॥ ४७ ॥ वह जीव बकासुर नाम महादैत्य था, जो बगलेका रूप धरकर आया था । उस तीक्ष्ण चोंचवाले महाबली असुरने सहसा आकर कृष्ण-चन्द्रको निगल लिया ॥४८॥ बकासुरके द्वारा कृष्णको निगला गया देख, बलदाऊ आदि ग्वालबाल, प्राणके बिना इन्द्रियोंके समान, अचेत हो गये ॥४९॥ बकासुरके कंठमें जाकर कृष्णचन्द्रजी अग्निके समान उसके तालूको जलाने लगे, तब ग्वाल-बालरूप जगत्के गुरु और पिता कृष्णको उसी समय उसने उगल दिया और कृष्णको अक्षत शरीर देख कुपित हो फिर चोंच उठाकर मारने दौड़ा ॥ ५० ॥ इस प्रकार आते हुए कंसके सखा बकासुरकी चोंचको सज्जनोंके स्वामी कृष्णने दोनो हाथोंसे पकड़ लिया और देवगणको प्रसन्न करते हुए सब बालकोंके सामने ही लीलापूर्वक तृणके समान बीचसे फाड़ डाला ॥ ५१ ॥ उस समय बकासुरको मारनेवाले कृष्ण पर देवता लोग नंदनवनके मल्लिकादिक पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और नगाड़े शंख आदि बजाते हुए स्तुति करने लगे । यह देख कर सब ग्वालबालोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥५२॥ कृष्णजी जब बकासुरके मुखसे छूट कर पास आये तब प्राणोंके आने पर इन्द्रियाँ जैसे सचेत हो जाती हैं वैसे सब बल-दाऊ आदि बालक प्रसन्न हो कर उनसे गले मिले । फिर सब लोग अपने २ बछड़े ले व्रजमें आये और वहाँ आकर सब चरित्र कह सुनाया ॥ ५३ ॥ बकासुरवधका वृत्तान्त सुन कर गोप व गोपियोंको बड़ा ही विस्मय हुआ और वे अत्यन्त प्रेम व आदरसे, जैसे कोई मरकर जिये और उसके इष्टमित्र उसको बड़ी चाह और आग्रहके साथ देखें वैसे उत्सुकतापूर्वक एकटक कृष्णचन्द्रको देखने लगे ॥ ५४ ॥ सब नन्दादि गोप कहने लगे कि "अहो इस बालककी बहुत सी मौतें आ आ कर टल गईं ! किन्तु उन्ही मारनेकी इच्छासे आये लोगोंका अनिष्ट हुआ; क्यों कि उन्होने और का बुरा चेता था ॥ ५५ ॥ अहो, बड़े २ घोर दुष्ट दानवादि इसे मारनेकी इच्छासे आ कर स्वयं ही आगमें पतंगके समान नष्ट हो जाते हैं ॥ ५६ ॥ अहो, ब्रह्मज्ञानी ऋषियोंके वचन कभी असत्य नहीं होते, महर्षि गर्ग जैसा कह गयेथे वैसा ही सब होते देख पड़ता है" ॥ ५७ ॥ इसी प्रकार नन्दआदि गोपगण आनन्दपूर्वक कृष्ण बलदाऊके चरित्रोंकी चर्चा करके संसारकी वेदनासे विमुक्त रह कर सुखसे जीवन व्यतीत करने लगे ॥ ५८ ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५९ ॥

इसी भाँति व्रजमें 'निलायन' 'सेतुबन्ध' और 'मर्कटोत्प्लवन' आदि लड़कोंके खेल खेलते २ कृष्ण और बलदेवजीकी कुमारअवस्था बीतगई ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादश अध्याय ।

अघासुर-वध ।

श्रीशुक उवाच-क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजा-
त्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥
प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा
विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । एक दिन कृष्णने विचार किया कि आज वनमें ही चल कर कलेवा करेंगे । उस दिन कृष्णजी सवेरे ही उठे और अपने सुंदर सींगके शब्दसे साथी ग्वालबालोंको जगा कर बछड़े आगे करके वनको चले ॥ १ ॥ उनके साथ ही हजारों सनेही बालक हाथोंमें छींके, बेंत, सींग और वंशी आदि ले ले कर अपने सहस्राधिक बछड़ोंको आगे करके प्रसन्नतापूर्वक वनको चले ॥ २ ॥ उन्होने कृष्णचन्द्रके असंख्य बछड़ोंमें अपने बछड़े मिला कर उनको चरनेके लिये छोड़ दिया और जहाँ तहाँ अनेक प्रकारके खेल खेलने लगे ॥ ३ ॥ यद्यपि वे सब बालक काँच, मुक्ता, मणि और सोनेके आभूषणोंसे विभूषित थे तथापि अनेक फल, नव पल्लव, गुच्छे, फूल, मयूरपुच्छ, घुँघची एवं गेरू आदि विविध धातुओंसे उन्होने अपने शरीरोंको अलंकृत किया ॥४॥ एक दूसरेका छींका पीछेसे उतार लेताथा, यदि वह जान जाता था कि अमुकने छींका ले लिया है तब दूसरा बालक और दूर पर दूसरे बालकके पास छींका पहुँचा देताथा, वहाँके बालक और भी दूर तक उस छींकेको पहुँचा देतेथे एवं पीछेसे हँसते हुए उसी बालकको उसका छींका लौटा देतेथे ॥५॥ वनकी शोभा देखते २ जब कृष्णजी दूर निकल जाते तो सब बालक "मैं पहले छू लूँगा-मैं पहले छू लूँगा" यों कह कर कृष्णको छूनेके लिये दौड़ते और इसी प्रकार आनन्द मनाते थे ॥६॥ कोई वंशी, और कोई सींग बजाता था, कोई बालक भ्रमरके साथ आप भी उसीके समान गुनगुनाता था, कोई बालक कोकिलाओंके साथ उन्हींका ऐसा शब्द करके प्रसन्न होता था ॥ ७ ॥ कोई बालक ऊपर उड़

रहे पक्षीकी छायाके साथ दौड़ता और कोई हंसोंके साथ उनकी गतिका अनुकरण करता चलता, कोई बगलोंके पास उन्हींके समान बैठता, कोई २ मयूरोंके साथ उन्हींके समान नाचता ॥ ८ ॥ कोई बानरोंके बच्चोंकी पूँछ पकड़ कर खींचता और कोई उनके साथ वृक्षों पर चढ़ता एवं कोई वानरोंके ही समान मुख बना कर उनको घुड़कता तथा कोई उनके साथ एक शाखासे दूसरी शाखा पर चला जाता ॥ ९ ॥ कोई झरनोंमें स्नान करता, कोई मेंढ़कके समान उछल २ कर चलता, कोई अपनेही प्रतिबिंबको हँसता और कोई अपने ही शब्दकी प्रतिध्वनि पर आक्रोश करता था ॥ १० ॥ हे राजन् ! जो भगवान् हरि विद्वान् लोगोंकी दृष्टिमें स्वयंप्रकाशमान परमसुखस्वरूप, भक्तजनोंकी दृष्टिमें आत्मप्रसाद परम देवतारूप एवं मायामूढ़ व्यक्तियोंकी दृष्टिमें मनुष्यबालरूप प्रतीयमान हैं उनके साथ ग्वालबाल लोग इस भाँति विहार करने लगे; अवश्य ही उन्होने पूर्वजन्ममें अमित पुण्य किये होंगे ॥ ११ ॥ जितेन्द्रिय योगीजन बहुत जन्मों तक अनेक प्रकारके कष्ट सहकर जिनके चरणोंकी धूलि भी नहीं पाते वह परमात्मा जिनकी आँखोंके आगे रहे और साथ खेले उन व्रजवासी ग्वालबालोंके सौभाग्यका क्या कहना है ? ॥ १२ ॥ महाराज ! एक समय सब ग्वालबाल यों ही सुखपूर्वक वनमें विहार कर रहे थे, इसी अवसर पर 'अघ'नाम एक भयंकर असुर वहाँ आकर उपस्थित हुआ, मानो वह उनके आनन्दयुक्त खेलको न देखसका। अघासुर बड़ा ही दुर्दान्त था। देवगण अमृत पीकर यद्यपि अमर होगये हैं तथापि अघासुरकी ओरसे अपने प्राणोंका खटका उनको बना ही रहता था और वे अघासुरके विनाशकी प्रतीक्षा किया ही करते थे ! ॥ १३ ॥ कंसने अघासुरको व्रजमें भेजा था और वह पूतना तथा बकासुरका छोटा भाई था। उसने कृष्ण आदि बालकोंको देख कर यों निश्चय किया कि यही मेरे सहोदर भाई और बहनको मारनेवाला वैरी है। मैं आज इसे सहित दलबलके मारूँगा ॥ १४ ॥ इन सबको मार कर जब मैं अपने परलोकगत सुहृदोंको तिलाञ्जलि दूँगा तब व्रजवासियोंको मरा हुआ ही जानना होगा। सभी प्राणियोंके प्राण उनके पुत्र और कन्या होते हैं, अत एव ये ही उनके प्राण हैं। तब प्राण न रहनेसे शरीरको नष्ट ही समझना चाहिये—उसके लिये कोई चिन्ता नहीं है ॥ १५ ॥ ऐसा विचार कर वह दुष्ट दानव बालकोंको निगल लेनेकी इच्छासे अद्भुत अजगरके रूपसे राहमें लेट गया। उसका शरीर योजन भर चौड़ा था और मुख पर्वतकी कन्दराके समान फैला हुआ था ॥ १६ ॥ उसका अधर पृथ्वीसे और ओष्ठ अंतरिक्षसे मिला हुआ था। दोनो चौहें कंदरा ऐसी थीं, दाढ़ें शैलशृंग सदृश ऊँची थीं। मुखके भीतर अंधकार ही अंधकार था, जिह्वा एक लाल सड़क जान पड़ती थी, श्वासा दावानलकी झपटके समान कठोर और नेत्र जलते हुए दावानलके तुल्य थे

॥ १७ ॥ उसको देख कर बालकोंको भ्रम हुआ कि यह भी कोई वृंदावनकी शोभा है और वे हँसी करते हुए उस यथार्थ अजगरके मुखकी अजगरके मुखके साथ तुलना करके यों कहने लगे ॥ १८ ॥ "अहो मित्रो ! कहो हमारे आगे यह एक प्राणी ऐसा जान पड़ता है या नहीं ? यह हमें निगलनेके लिये मुख फैलाये साँपका मुख सा जान पड़ता है या नहीं ? ॥ १९ ॥ देखो सूर्य्यकी किरणें पड़नेसे लाल २ मेघजाल इसके ऊपरका ओंठ और उनकी परछाहीं पड़नेसे लाल होगई भूमि नीचेका ओंठ जान पड़ता है ॥ २० ॥ बाईं और दाहिनी ओर दो गिरि-गुहाएँ उसकी चौहें जान पड़ती हैं और पर्वतोंके शिखर दाढ़ोंके समान दिखाई पड़ते हैं ॥ २१ ॥ यह विशाल मार्ग जान पड़ता है कि इसकी जीभ है और इन शैलशिखरोंके बीचका अंधकार मुखका भीतरी शून्यभाग जान पड़ता है ॥ २२ ॥ दावानलसे मिला हुआ आ रहा प्रचण्ड पवन इसकी श्वासा जान पड़ता है और दावानलमें जले हुए जीवोंकी दुर्गन्ध जान पड़ती है कि इस सर्पदेहके अन्तर्गत आमिषकी गन्ध है ॥ २३ ॥ यह क्या वास्तवमें सर्प है और हमको निगल लेगा ? यदि हम इसके भीतर जायँगे और यह हमें निगल भी लेगा तो हमारा कुछ भी अनिष्ट न होगा और यह भी बकासुरके समान कन्हैयाके हाथों मारा जायगा"—यों कहते हुए सब बालकोंने फिर कर पीछे आ रहे कृष्णचन्द्रके सुन्दर मुखकी ओर देखा और कृष्णके देखते ही देखते ताली बजाते हँसते हुए अघासुरके मुखके भीतर घुस गये ॥ २४ ॥ बालकोंने यथार्थ बात बिना जाने इस प्रकार आपसमें कहा, उनके कथनको भगवान् कृष्णने सुना और सोचा कि यथार्थ ही सर्परूपधारी असुरकी ये मूढ़ बालक सर्पके साथ तुलना करते हैं; किन्तु नहीं जानते कि यह सचमुचही सर्प है। यों सोचकर सब प्राणियोंके हृदयोंमें स्थित कृष्णचन्द्रने चाहा कि उनको सर्पके मुखमें जानेसे रोकें ॥ २५ ॥ परन्तु तब तक वे सहित बछड़ोंके उसके मुखमें चले ही गये। तौ भी अघासुरने मुख बंद करके उनको नहीं निगला, क्योंकि वह अपने भाई और बहनका वध करनेवाले वैरी कृष्णके आनेकी राह देख रहा था ॥ २६ ॥ सबको अभयदान करनेवाले कृष्णने देखा कि वे दीन बालक, जिनका सिवा अपने और कोई स्वामी (रक्षक) नहीं है, अपने हाथसे निकल कर मृत्युरूप सर्पके उदराग्निका चारा बन चुके हैं, अतएव उन पर प्रभुको बड़ी ही दया आई और साथ ही भाग्यकी विचित्र लीला पर विस्मय भी हुआ ॥ २७ ॥ भगवान् सोचने लगे कि अब इस अवसर पर क्या करना चाहिये ? इस दुष्ट असुरके प्राण न बचें और ये सज्जन बालक बचजायँ—ये दोनो बातें कैसे सिद्ध होंगी ? तदनन्तर कर्त्तव्य ठीक करके सर्वज्ञ कृष्णचन्द्र आप भी उस सर्पके मुखमें घुसे ॥ २८ ॥ उस समय बादलोंकी ओटसे देख रहे देवगण भयसे हाहाकार करने लगे और इधर उधर मायारूपधारी राक्षसगण जो कि

अघासुर और कंसके बान्धव थे—यह देख कर बहुत ही आनन्दित हुए ॥ २९ ॥ अव्यय कृष्णचन्द्रसहित बालक और बछड़ोंको निगल कर अघासुरने चाहा कि चूर्ण कर डालूँ, उसी समय देवगणका हाहाकार सुन कर भगवान् हरिने एकदम उस असुरके गलेमें अपने शरीरको बढ़ा दिया ॥ ३० ॥ तब असुरका कंठ रुँध गया, श्वासका आना जाना बंद हो गया, नेत्र बाहर निकल पड़े और वह व्याकुल होकर छटपटाने लगा। शीघ्र ही शरीरके भीतर रुका हुआ प्राणवायु उसके ब्रह्माण्डको फोड़ कर बाहर निकल गया ॥ ३१ ॥ इस प्रकार उस दुष्टके मरने पर कृष्णचन्द्रने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे, मरे हुए बछड़े और बालकोंको फिर जीवित कर दिया और सहित उनके अघासुरके मुखसे बाहर निकले ॥ ३२ ॥ उस महासर्पके मुखसे निकली हुई अद्भुत महाज्योति अपनी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशित करती हुई आकाशमें स्थित रही और कृष्णचन्द्र जब सर्पशरीरके बाहर निकले तब सब देवतोंके सामने ही उन्हींमें लीन होगई ॥ ३३ ॥ देवगणने स्वर्गसे फूलोंकी वर्षा की, अप्सराएँ नाचने लगीं, गन्धर्वगण गाने और विद्याधर लोग बाजे बजाने लगे एवं ब्राह्मण(ऋषि)गण स्तुति करने लगे तथा भक्तगण जयध्वनि करते हुए अपने कार्यसाधक हरिकी पूजा करने लगे ॥ ३४ ॥ उस समय अनेक प्रकारके उत्सवों सहित अद्भुत स्तुति, सुंदर बाजे, गीत और जयजयकारकी माङ्गलिक ध्वनिको सुन कर भगवान् ब्रह्माजी अपने लोकसे वहाँ पर आये और ईश्वरकी महिमा देख कर बहुत ही विस्मित हुए ॥ ३५ ॥ महाराज! वह अजगररूप अघासुरके शरीरका चमड़ा वृंदावनमें वैसे ही सूख गया। बहुत समय तक ग्वालबालोंने उस बिलरूपी शरीरमें घुस कर (कभी २) क्रीड़ाएँ कीं ॥ ३६ ॥ हरिने पाँच वर्षकी अवस्थामें यह अद्भुत कर्म्म किया था, अर्थात् अघासुररूपी मृत्युके मुखसे बछड़ों सहित ग्वालबालोंकी रक्षा की थी और उस दुष्ट दानवको मुक्ति दी थी; किन्तु विस्मित ग्वालबालोंने छठे वर्ष अर्थात् एक साल बाद सब वृत्तान्त व्रजमें कहा कि "आज ही यह सब चरित्र हुआ है" ॥ ३७ ॥ किन्तु मायामनुष्यरूप हरिके लिये यह कुछ विस्मयकी बात नहीं है। श्रीकृष्णचन्द्रजी चराचर जगत्में श्रेष्ठ और उसके हर्त्ता कर्त्ता विधाता हैं। देखो, अघासुर भी हरिके स्पर्शसे सारूप्य मुक्ति पागया। अघासुर ऐसे दुष्टोंको ऐसी मुक्ति बहुत ही दुर्लभ है ॥३८॥ जिनकी श्रीमूर्त्तिकी केवल मनोमयी प्रतिकृतिको अन्तःकरणमें बलात् स्थापित करके प्रह्लाद आदि परमभक्तगण भागवती गतिको प्राप्त हुए उन्ही नित्य आत्मसुखानुभवके द्वारा मायाको निरस्त करनेवाले भगवान्ने स्वयं उस असुरके अन्तरमें प्रवेश किया, तब वह कैसे न मुक्त हो? ॥ ३९ ॥ सूतजी कहते हैं। हे द्विजगण! यदुवंशियोंके कुलदेव द्वारा प्रदत्त (रक्षित) राजा परीक्षित्जीने अपने जीवनदाता हरिके इस विचित्र चरित्रको सुन कर शुक-

देवजीसे फिर इसी पवित्र चरित्रके विषयमें प्रश्न किया । क्योंकि हरिचरित सुननेमें उनका मन भली भाँति लगा हुआ था ॥ ४० ॥ **राजा परीक्षित्ने कहा ।** ब्रह्मन् ! भला जो काम साल भर पहले होगया है, उसे, उसी समयका कैसे कोई कह सक्ता या मान सक्ता है ? हरिने जो काम पाँच वर्षकी अवस्थामें किया उसे उनके साथी ग्वालबालोंने छः वर्षकी अवस्थामें उसी दिनका किया हुआ कैसे बताया ? हे महायोगी ! हमारे इस परमकौतूहलको निवृत्त करो । निश्चय ही यह उन्ही हरिकी माया होगी, अन्यथा ऐसा होना संभव नहीं है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ गुरुवर ! हम अधम क्षत्रिय होकर भी परम धन्य हैं, जो वारम्वार आपके मुखारविंदसे निकले हुए पवित्र हरिकथारूप अमृतको पीते हैं ॥ ४३ ॥

सूत उवाच—इत्थं स्म पृष्टः स तु बादरायणि-
स्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ॥
कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः
प्रत्याह तं भागवोत्तमोत्तमः ॥ ४४ ॥

सूतजी कहते हैं । हे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ शौनकजी ! राजा परीक्षित्ने हरिविषयक प्रश्न करके अनन्त हरिका स्मरण करादिया । अनन्त हरिके स्मरणसे शुकदेवजीकी इन्द्रियाँ हरिमें तन्मय होगईं । उन्होने अति कष्टसे इन्द्रियोंको धीरे २ उधरसे हटाया और महाश्रेष्ठ भगवद्भक्त राजाके प्रश्नका यों उत्तर देने लगे ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदश अध्याय ।

ब्रह्माको मोह और उसका नाश ।

श्रीशुक उवाच—साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥
यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । हे महाभाग ! हे भागवतश्रेष्ठ ! तुमने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न किया । तुम हरिकथारूप अमृतको वार २ पीकर भी तृप्त नहीं होते, किन्तु नवीन २ प्रश्नोंसे उसे नवीन बनाते हो ॥ १ ॥ सार ग्रहण करनेवाले साधुओंका स्वभाव ही यह होता है कि वे अपने वाक्य, कान, और अन्तःकरणको हरिचर्चामें ही लगा देते हैं। जैसे स्त्रैण(विषयी)लोगोंमें सदा स्त्रियोंकी ही कथाएँ हुआ

करती हैं वैसे ही उनकी मण्डलीमें नवीन २ हरिकी कथाएँ होती हैं ॥ २ ॥ हे राजन्! सावधान होकर सुनो, गुप्त विषय भी मैं तुमसे कहता हूँ। क्योंकि गुरुजन अपने स्नेही शिष्यसे परम गुप्त बात भी नहीं छिपाते ॥ ३ ॥ पूर्वोक्त प्रकारसे मृत्युरूपी अघासुरके मुखसे बछड़े और बालकोंकी रक्षा करनेके उपरान्त हरि उनको नदीके किनारे पर लाये और वहाँ उनसे कहा कि—"साथियो! यह यमुनातट बहुतही रमणीय है, यहाँ हमारे खेलनेकी सभी सामग्रियाँ हैं, यहाँकी बालू भी बहुत ही कोमल और स्वच्छ है। अत्यन्त कोमल और प्रफुल्लित कमलोंकी सुबाससे खिँचे हुए भौंरे और अनेक पक्षी यहाँ आते हैं और जल पर मधुर शब्द करते हैं; जिसकी प्रतिध्वनि किनारेके वृक्षोंमें व्याप्त हो रही है ॥ ४ ॥ ५ ॥ आओ, हम सब यहीं बैठ कर भोजन करें, क्योंकि दिन बहुत चढ़ गया है, भूख भी लगी है। बछड़ोंको छोड़ दो, वे पास ही पानी पी कर धीरे २ घास चरें ॥६॥ 'ऐसाही सही' कह कर ग्वालबालोंने बछड़ोंको घासमें छोड़दिया और आप अपने२ छींके खोल कर आनन्दपूर्वक भगवान्के साथ भोजन करने लगे ॥ ७ ॥ प्रफुल्लनयन सब ग्वालबाल वनमें कृष्णको चारो ओरसे घेर कर उन्हींकी ओर मुख कर मण्डली बना कर बैठे, उस समय कृष्ण तो कमलकुसुमकी कर्णिका और वे सब पत्तोंके समान शोभायमान हुए ॥८॥ कोई फूलों पर, कोई पत्तों पर, कोई पल्लवों पर, कोई अंकुरों पर, कोई फलों पर, कोई छींकों पर, कोई छालों पर और कोई शिलाओं पर धर कर भोजन करने लगे ॥ ९ ॥ सभी बालक परस्पर अपनी २ भिन्न २ भोजनरुचि दिखाते हुए हँसते हँसाते भगवान्के साथ भोजन करने लगे एवं कृष्णभगवान् यज्ञभागके लेनेवाले हो कर भी लड़कोंकी भाँति बालकेलि करने लगे ॥ १० ॥ कमरमें बँधे हुए पटमें वेणु खोंसे, बाईं बगलमें सींग दबाये, दाहिनी बगलमें बेंत दबाये, बाएँ हाथमें माखन भातका कौर लिये एवं अँगुलियोंकी संधियोंमें खेलनेकी गोली दबाये श्रीकृष्णचन्द्रजी बालकोंके बीचमें कर्णिकाकी भाँति अवस्थित हो कर स्वयं हँसीके वचनोंसे हँसते और साथियोंको हँसाते भोजन कर रहे थे, एवं इस लीलाको सब स्वर्गवासी जन विस्मयपूर्वक देख रहे थे ॥ ११ ॥ महाराज! वत्सपाल ग्वालबालगण इस भाँति अच्युतके साथ तन्मय हो कर भोजन कर रहे थे, इसी अवसरमें सब बछड़े हरे २ तृणके लोभसे दूरतक चले गये और वनके भीतर धीरे२ घुस पड़े ॥१२॥ बछड़ोंको आगे बढ़ गया देख बालकोंको भय हुआ, तब विश्वके भयको भी भय देनेवाले कृष्णजीने कहा कि मित्रो, तुम भोजन करना न बंद करो, मैं अभी बछड़ोंको लौटाए लाता हूँ ॥ १३ ॥ यों कह कर हाथमें वैसे ही भोजनका कौर लिये कृष्णचन्द्र अपने और अपने मित्रोंके बछड़ों की खोजमें पर्वत, कन्दरा, कुंज और अन्यान्य अगम्य स्थानोंमें भ्रमण करने लगे ॥ १४ ॥ पद्मयोनि ब्रह्मा पहलेसे ही आकाशमें खड़े

खड़े अघासुरमोक्षसे ले कर अबतक सब लीला देख बहुतही विस्मित हुए थे। इस समय मोहवश मायाबालकरूप हरिकी महिमा देखनेकी इच्छासे ब्रह्माजी पहले तो बछड़ोंको हर ले गये और फिर हरिके चले जाने पर ग्वालबालोंको भी उठा ले गये और उनको अपने लोकमें अचेत अवस्थामें रख आये ॥ १५ ॥ इधर कृष्णचन्द्रने बछड़ोंका पता न लगने पर उसी पुलिन पर लौटके आ कर देखा कि ग्वालबाल भी नहीं हैं। कृष्ण भगवान् फिर दोनोंको ही ढूँढ़ने लगे, किन्तु वनमें कहीं पर बछड़े और बालकोंको न पाकर सर्वज्ञ हरि तुरन्त समझ गये कि यह सब ब्रह्माका काम है ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब उन ग्वालबाल व बछड़ोंकी माताओंको सन्तुष्ट रखने एवं ब्रह्माको छकानेके लिये विश्वकी रचना करनेवाले ईश्वर आप ही (उतने) बछड़े और ग्वालबाल बनगये। भगवान्ने इस अभिप्रायसे ऐसा किया कि यदि मैं बछड़ोंको ब्रह्मलोकसे लाये देता हूँ तो ब्रह्माको मोह न होगा और जो स्वयं बछड़ों व ग्वालबालोंका रूप नहीं धारण करता हूँ तो उनकी माताएँ शोकाकुल हो जायँगी। इसी लिये हरिने स्वयं उतने ही रूप धारण किये ॥ १८ ॥ जिस बछड़े और बालकका जैसा शरीर, जैसे हाथ-पैर, जैसी लकड़ी, जैसा सींग, बाँसुरी और छींका था, जैसे वस्त्र और आभूषण थे, जैसा शील, गुण, नाम, आकृति और अवस्था आदि था एवं जिसका जैसा आहार विहार आदि था वैसे ही प्रकट होकर सर्वस्वरूप हरिने "सब जगत् विष्णुमय है" इस वाक्यको सार्थक कर दिखाया ॥ १९ ॥ भगवान्ने इस भाँति आप ही सर्वरूप होकर व्रजमें प्रवेश किया। कृष्णचन्द्र आप ही वत्सपालरूपसे वत्सरूप अपनेको घेर कर आप अपने ही साथ विहार करते व्रजमें आये ॥ २० ॥ जिस २ घरके जो बछड़े थे उन्हे उन्ही ग्वालबालोंके रूपसे साथ लिये भगवान्ने अलग २ घरोंमें प्रवेश किया और उन बछड़ोंको उनके स्थानों पर बाँध दिया ॥ २१ ॥ उस दिन उन ग्वालबालों और बछड़ोंकी माताएँ बाँसुरीका शब्द सुनते ही जल्दीसे उठीं और अपने २ पुत्रोंको प्रेमसे गोदमें लेकर परब्रह्मभावनासे स्नेहके कारण आप ही आप बह रहे सुधामधुर दुग्धको पिलाया ॥२२॥ राजन्! जिस समय जो क्रीड़ा करनेका नियम था, उसीके अनुसार, इस भाँति कृष्णचन्द्रजी संध्यासमय वनसे आकर अपनी मनोहर लीलाओंसे माताओंको नित्य आनन्दित करने लगे एवं वे भी अंग दबाकर, नहलाकर, उबटना लगाकर, उत्तम वस्त्र व आभूषण पहनाकर, तिलक लगा कर, भोजन कराकर एवं भाँति २ से रक्षा कर नित्य पुत्ररूप हरिका लालन पालन करने लगीं ॥ २३ ॥ इधर गायें भी जब वत्सरूप हरिको गोष्ठ (बँधनेके स्थान)में देखतीं तो हुंकार शब्दसे (अपने २ बछड़ोंको) बुला कर बार बार उन्हे चाटती हुई स्तनोंसे बह रहे दूधको पिला कर प्रसन्न होती थीं ॥२४॥ पहले भी श्रीकृष्ण पर गऊ और गोपियोंको माताका

ऐसा स्नेह था, किन्तु इस समय वह अत्यन्त अधिक होगया। ऐसे ही हरिका भी उन पर पहले पुत्रका सा भाव था, किन्तु अब और भी अधिक हो गया; अर्थात् अब मायाममता होगई ॥ २५ ॥ पहले भी व्रजवासियोंको कृष्ण पर परम स्नेह था, किन्तु अब वह अपूर्वभावसे अपने २ पुत्रों पर नित्यप्रति धीरे २ एक वर्षमें असीमरूपसे बढ़ गया ॥ २६ ॥ इस प्रकार वत्सपाल श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं वत्स और वत्सपाल रूप होकर आप ही अपना पालन करते हुए वनमें और गोष्ठमें क्रीड़ा करने लगे ॥ २७ ॥ राजन्! एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच या छः दिन शेष थे, इसी अवसरमें एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रजी बलदाऊसहित बछड़े चरानेके लिये वनको गये। उस समय बहुत दूर पर गोवर्द्धन पर्वतके शिखरमें सब गायें चर रही थीं। उन गायोंने वहाँसे देखा कि व्रजके निकट ही उनके बछड़े चर रहे हैं। बछड़ोंको देखते ही स्नेहसे वे गायें आपेसे बाहर होगईं और हुँकारी भरती हुई दौड़ पड़ीं। चरानेवाले गोपोंने लाख २ रोकनेकी चेष्टा की, पर सब व्यर्थ हुआ। दुर्गम मार्गसे कूदती फाँदती पैर जोड़ कर गर्दन, कान, पूँछ और मुख उठाये गायें आईं। इतने वेगसे चलीं कि जान पड़ता था उनके दो ही पैर हैं। उनके स्तनोंसे दूध बह रहा था ॥२८॥२९॥ ॥ ३० ॥ यद्यपि उनके और छोटे बच्चे भी थे तौ भी दौड़कर अपने बड़े बछड़ोंके पास आईं और मानो उनको लील जायँगी, इस भाँति स्नेहसे अंग चाटती हुई गोवर्धनके नीचे आकर दूध पिलाने लगीं ॥ ३१ ॥ चरानेवाले गोपोंने उनको रोकनेकी बहुत कुछ चेष्टा की, पर न रोक सके, इस कारण वे कुपित और लज्जित हुए। पर्वतके ऊपरसे दुर्गम मार्ग हो कर आनेसे वे अत्यन्त थक गये। परन्तु वे बछड़ोंके पास अपने २ पुत्रोंको देख कर स्नेहसे गद्गद होगये, सारा क्रोध जाता रहा। प्रेमरससे हृदय परिपूर्ण हो जानेके कारण उन्होने अपने २ बालकोंको गोदमें उठा लिया और उनके मस्तक सूँघ कर वे बहुतही प्रसन्न हुए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वे बड़े बूढ़े गोप, पुत्रोंको गलेसे लगाकर बड़े कष्टसे स्नेहकी उमंग को रोक सके। उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू निकलने लगे ॥ ३४ ॥ बलदेवने देखा कि जिन्होने दूध पीना छोड़ दिया है उन सन्तानों पर गऊ और गोपोंकी प्रतिक्षण इतनी अधिक उत्कंठा और अनुराग है। यह देख कर, उसका कारण नहीं जानते थे, इस लिये विचारने लगे—कि "यह कैसा आश्चर्य व्यापार है! पहले कृष्णचन्द्र पर व्रजवासियोंका जैसा अपूर्व स्नेह बढ़ता जाता था वैसा ही अब अपने अपने पुत्रों पर क्यों बढ़ रहा है? मेरे मनमें भी क्यों उन पर इतना अधिक स्नेह उत्पन्न हो रहा है? यह क्या माया है? माया है तो किसकी है? यह क्या किसी देवता, मनुष्य या राक्षस की माया है? निश्चय जान पड़ता है कि यह मेरे प्रभुकी ही माया है, क्योंकि इस मायासे मुझको भी मोह हो

रहा है" ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यदुनन्दन बलदेवने यों विचार अपने ज्ञाननेत्र खोल कर देखा तो सभी बछड़े और उनकी रक्षा करनेवाले बालक कृष्णरूप हैं ॥ ३८ ॥ तब बलदेवने कृष्णचन्द्रसे कहा कि भाई कृष्ण! मैं पहले जानता था कि ये सब बछड़े और वत्सपाल ग्वालबाल ऋषियोंके और देवतोंके अंश हैं, किन्तु इस समय तो वे कोई भी नहीं देख पड़ते, सब तुम ही तुम हो। यद्यपि सब सामग्री भिन्न २ है, तथापि अन्तरमें तुम ही एक हो! कृपा कर बताओ कि तुमने इतने भिन्न २ रूप क्यों धारण किये?। इस प्रकार पूछने पर भगवान्ने बलदेवको संक्षेपसे सब वृत्तान्त बता दिया और वह भी जान गये ॥ ३९ ॥ राजन्! इसी प्रकार उन मायारचित वत्स और वत्सपालोंके साथ कृष्णचन्द्रको क्रीड़ा करते २ एक वर्ष बीत गया, किन्तु वह समय ब्रह्माकी आयुकी एक त्रुटि (बहुत ही थोड़ा समय) मात्र था। ब्रह्माने एक त्रुटि बीतने पर फिर आ कर देखा कि कृष्णभगवान् पहलेकी भाँति अपने साथी ग्वालबालोंके साथ क्रीड़ा करते हुए बछड़े चरा रहे हैं ॥ ४० ॥ यह देख कर ब्रह्मा बहुत चकराये और अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगे कि जितने गोकुलके बालक और बछड़े हैं उन सबको मैं मायाकी निद्रामें अचेत कर आया हूँ और वे अभी तक नहीं उठ सके हैं। तब मेरी मायामें मोहित बालक व बछड़ोंके सिवा और बालक व बछड़े ये कहाँके हैं, जो विष्णुके साथ एक वर्षसे क्रीड़ा कर रहे हैं ॥ ४१ ॥४२॥ बार २ इस भाँति तर्क-वितर्क करके भी ब्रह्माजी ठीक २ न जान सके कि वास्तवमें कौन बालक बछड़े मिथ्या हैं और कौन यथार्थ हैं? ॥ ४३ ॥ इस भाँति विश्वंभरको मोहित करनेवाले मोहशून्य विष्णुको मोहित करनेके लिये आये हुए ब्रह्माजी अपनी मायामें आप ही मोहित हो पड़े ॥ ४४ ॥ जैसे कुहिरेका अंधकार अँधेरी रातमें उससे अलग आवरण नहीं कर सक्ता, किन्तु आपही उसमें लीन हो जाता है, एवं जैसे जुगनू दिनमें आप अलग प्रकाश नहीं कर सक्ता, किन्तु अपना प्रकाश भी गँवा देता है, वैसे ही जो कोई महत् लोगों पर मायाका प्रयोग करता है तो उसकी तुच्छ माया उलटे उसीके सामर्थ्यको नष्ट कर देती है ॥ ४५ ॥ इधर इतने ही में ब्रह्मा चकराये हुए थे कि उनको एक और भी अद्भुत घटना देख पड़ी। ब्रह्माने देखा कि उनके देखते देखते सब बछड़े और उनके रक्षक ग्वालबाल कृष्णरूप हो गये। सबका वर्ण पानीभरे मेघके तुल्य श्याम हो गया। सभी पीताम्बर पहने, चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदा व कमल भुजाओंमें लिये, किरीट-कुंडल-हार-वनमाला आदि आभूषणोंसे सुशोभित हैं ॥४६॥ ४७ ॥ ४८ ॥ सबके अंगोंमें श्रीवत्स, अंगद, नवरत्न, कंकण, नूपुर, कटक, कर्धनी, अँगूठी आदि गहने शोभायमान हैं। बहुत पुण्य करनेवाले भक्तजनोंकी चढ़ाई हुई कोमल तुलसीदलकी मालाओंसे शिरसे पैर तक सभीके शरीर शोभित हैं ॥ ४९ ॥ चाँदनीकी भाँति उज्वल हास्य

एवं अरुणवर्ण कटाक्ष-दृष्टिके द्वारा सभी जैसे सतोगुण व रजोगुणके द्वारा भक्तोंके मनोरथोंके स्रष्टा और पालक हो कर प्रकाश पा रहे हैं ॥ ५० ॥ ब्रह्मासे लेकर तृण तक सब चराचर जगत्के जीव मूर्त्तिमान् हो कर नृत्य गीत आदि अनेक पूजनकी सामग्रियोंसे सबकी अलग २ सेवा उपासना कर रहे हैं ॥ ५१ ॥ सभी अणिमा आदि आठो सिद्धियों, अजा(माया)आदि विभूतियों और महत्तत्त्व आदि चौबीस तत्त्वोंसे व्याप्त हैं ॥ ५२ ॥ भगवान्की महिमासे जिनकी महिमा (स्वतन्त्रता) ध्वस्त हो गई है वे अणिमा आदि सिद्धियोंके सहकारी, काल, स्वभाव, संस्कार, काम, कर्म्म और गुण आदि मूर्त्तिमान् हो कर उन सबकी उपासनामें लगे हुए हैं ॥ ५३ ॥ सभी सत्यज्ञानरूप, अनन्तमूर्त्ति, विजातीय-भेदशून्य एवं सर्वदा एकरूप हैं, अतएव आत्मज्ञान ही जिनके नेत्र हैं वे योगीजन भी उन ज्ञान-नेत्रोंसे इन सब मूर्त्तियोंके महामाहात्म्यको नहीं देख सके ॥ ५४ ॥ हे राजन्! ब्रह्माजीको एकसाथ वे सब बछड़े और वत्सपालक बालक उसी ब्रह्मका स्वरूप देख पड़े जिस परब्रह्मकी ज्योतिसे यह सब चराचर विश्व प्रकाशित हो रहा है ॥ ५५ ॥ यह देख कर उत्पन्न हुए विस्मयमें मग्न होनेके कारण ब्रह्माजीको शरीरकी सुधि न रही और वह हंसकी पीठ पर लुढ़क गये। उन सब ब्रह्ममूर्त्तियोंके तेजसे ब्रह्माकी ग्यारहो इन्द्रियाँ निस्तब्ध (निश्चेष्ट) होगईं और वह विस्मयसे अवाक् हो गये। जान पड़ा मानो व्रजकी अधिष्ठात्री देवताके निकट एक चतुर्मुखी सोनेकी प्रतिमा धरी हुई है ॥ ५६ ॥ जो वाणीके अधीश्वर, तर्कके अगोचर, असाधारणमहिमा-शाली, स्वप्रकाश, सुखस्वरूप, जन्मरहित और प्रकृतिके परे हैं एवं "वह नहीं है, वह नहीं है"-इस प्रकारसे असत् का निरास करती हुई श्रुतियोंके द्वारा जो स्वयं प्रकाशमान हैं वही ब्रह्माजी "यह क्या है!"-इन आश्चर्यसूचक वचनोंको कहते हुए ज्ञानशून्य हो पड़े और फिर उन ब्रह्ममूर्त्तियोंकी ओर दृष्टि न डाल सके। यह जान कर परब्रह्म श्रीकृष्णचन्द्रने शीघ्र ही अपनी अद्भुतमायाका पर्दा ब्रह्माकी दृष्टिके आगेसे हटा लिया ॥ ५७ ॥ तब ब्रह्माको बाह्यज्ञान हुआ, और मृतव्यक्तिके समान वह कुछ सचेत हो कर उठे एवं अत्यन्त कष्टसे दोनो नयन उघार कर उन्होने अपने सहित इस जगत्को देख पाया ॥ ५८ ॥ आँखें खोल कर चारो ओर दृष्टि डालने पर ब्रह्माजीने सामने देखा कि खाने पीनेकी सब सामग्री (सुन्दर जल, फल) और तृण आदिसे सुशोभित एवं मनोहर और रम्य वस्तुओंसे परिपूर्ण वृन्दावन सुशोभित है ॥ ५९ ॥ जिन पशु-पक्षियोंमें स्वाभाविक अनिवार्य्य वैर देखा जाता है वे भी वहाँ वैर छोड़ कर मित्रभावसे एकत्र वास करते हैं। वह अच्युतकी विहारभूमि होनेके कारण काम, क्रोध, लोभ आदि संसारके तापोंसे रहित है ॥ ६० ॥ ब्रह्माजीने देखा कि उसी श्रीवृन्दावनमें अद्वितीय, परमपुरुष, अनन्त, अगाधबोध, एक ब्रह्म गोपबालकरूपी नाट्य-वेषसे हाथमें भोजनका

कौर लिये पहलेकी ही भाँति वनमें इधर उधर खोये हुए बछड़े और बालकोंको खोज रहे हैं ॥ ६१ ॥ यह देख कर तुरन्त ब्रह्माजी अपने वाहन हंससे उतर पड़े और पृथ्वी पर कनकदण्डके समान गिर कर चारो मुकुटोंके अग्रभागसे ईश्वरके चरणोंको सुशोभित करते हुए प्रणाम करके आनन्दके आँसुओंसे प्रभुका पाद-प्रक्षालन करने लगे ॥ ६२ ॥ पहले देखी हुई हरिकी अतर्क्य महिमाका बार २ स्मरण करते हुए ब्रह्माजीने बार २ उठ कर हरिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ ६३ ॥

शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकंधरः ॥
कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया ॥ ६४ ॥

फिर धीरे २ खड़े हुए और दोनो नेत्रोंके आँसू हाथोंसे पोंछे । उसके बाद भक्तिपूर्वक कृष्णचन्द्रकी ओर निहार कर शिर झुकाये, हाथ जोड़े विनीत भावसे सावधानतासहित इस प्रकार गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगे ॥ ६४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दश अध्याय ।

ब्रह्मस्तुति ।

ब्रह्मोवाच—नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदंबराय ।
गुंजावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥ १ ॥

ब्रह्माजीने कहा। हे स्तुति करने योग्य! मैं आपकी प्रसन्नताके लिये प्रणाम करके स्तुति करता हूँ। आपके नीलनीरदतुल्य श्याम शरीरमें पीतपट बिजलीके समान शोभा पारहा है। घुँघचीके बने कानोंके आभूषण एवं मयूर-पुच्छके मुकुटसे आपका मुखमंडल दर्शनीय हो रहा है। गलेमें वनमालाकी बहार बड़ी ही मनोहर है। भोजनसामग्रीके कौर, बेंत, सींग और वंशी आदि चिन्ह आपके शोभन शरीरमें अपूर्व शोभा पारहे हैं। हे गोपनन्दन! आपके चरण बड़े ही सुकुमार हैं॥ १॥ हे देव! आपने यह शरीर भक्तोंकी अभिलाषा और भावनाके अनुसार ग्रहण किया है; इस शरीरसे हम पर भी अनुग्रह प्रकट होता है। यद्यपि अपने सुलभ होनेके लिये आपने यह शरीर प्रकट किया है, किन्तु यह पञ्चतत्त्वमय नहीं, बरन् अचिन्त्य शुद्ध सत्वमय है; अतएव वश किये हुए मनके द्वारा भी कोई इसके माहात्म्यको नहीं जानसक्ता। प्रभो! जब इस सगुणरूपकी महिमा मन और बुद्धिसे परे है, तब आपके साक्षात् आत्मसुखानुभव(निर्गुण) स्वरूपकी महिमा कौन जान सक्ता है? ॥ २॥ हे हरि! आपकी महिमा ऐसी दुर्बोध होने पर भी, संसारसे मुक्ति पानेकी संभावनाका अभाव नहीं देख पड़ता, क्योंकि जो लोग ज्ञानोपार्जनके लिये श्रम न करके अपने ही स्थानमें बैठ कर साधुजनोंके मुखसे निकली हुई आपकी पवित्र कथा कानोंसे सुनते तथा देह, मन और वाणीसे उसीका आदर करते हुए जीवन बिताते हैं, वे भक्तजन, हे अजित, त्रिलोकीमें सहज ही आपको जीतलेते हैं॥३॥ हे विभो! जो लोग कल्याणकारिणी आपकी भक्तिको छोड़ कर केवल ज्ञानके लिये क्लेश सहते हैं उनके हाथ वह क्लेश ही लगता है और कुछ भी नहीं। जैसे मोटे (फफ्फस) धान कूटने वालोंको सिवा भूसी और थकावटके और कुछ भी नहीं मिलता॥४॥ हे सर्वव्यापक! हे अच्युत! पहले यहाँ बहुतसे तपस्वी योगी होकर भी जब ज्ञानलाभ न करसके तब सब लौकिक एवं पारलौकिक चेष्टाएँ आपके ही अर्पण कर आपकी ही कथाओंको दिन-रात सुनने लगे, जिससे उनके अन्तःकरणमें आपकी भक्ति उत्पन्न हुई, उसी भक्तियोगसे वे आत्माको जानसके एवं अन्तको आपकी उत्तम गतिको प्राप्त हुए। इस कारण भक्तिके ही द्वारा ज्ञानलाभ होता है—बिना भक्ति आत्मज्ञान कभी नहीं होसक्ता॥ ५॥ हे व्यापक! क्या सगुण और क्या निर्गुण—दोनो ही रूपसे आपको जानना बहुत कठिन है; तौ भी जिन्होने इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर अन्तःकरणमें एकाग्र कर रक्खा है, वे किसी विशेष आकारसे रहित, विषयोंसे परे, स्वप्रकाश होनेके कारण स्फूर्त्तिशाली एवं आत्माके आकारको प्राप्त जो आपका नारायण-नाम निर्गुण रूप है उसकी महिमाको स्वानुभव अर्थात् अन्तः-करणके भीतर साक्षात्कारसे कुछ २ जान सक्ते हैं॥ ६॥ किन्तु जो सुनिपुण लोग अनेक जन्मजन्मान्तरोंमें पृथ्वीके परमाणु, आकाशके हिमकण (बूँद) और गगन-

मण्डलमें स्थित नक्षत्र आदिकी किरणोंके परमाणुओंको गिनसके हों वे भी इस विश्वके मङ्गलके लिये प्रकट जो सगुणरूप आप हैं उनके गुणगणकी गणना किसी प्रकार नहीं कर सके ॥ ७ ॥ इसीसे जो कोई आपके अनुग्रहकी प्रतीक्षा करता हुआ अपने किये कर्मोंके फलोंका भोग करते अन्तःकरण, वाणी, और देहसे आपको नित्य नमस्कार करता है और यों ही अपना जीवन बिताता है उसीको मुक्तिपदका अधिकार मिलता है; अर्थात् जैसे बिना जीवित रहे पैतृक सम्पत्तिमें अधिकार नहीं रहता वैसे ही भक्तजीवनके सिवा मुक्ति पानेका भी और उपाय नहीं है ॥ ८ ॥ महाराज ! यों स्तुति करके क्षमा पानेके लिये अपने अपराधका उल्लेख करते हुए ब्रह्माने कहा—हे ईश्वर ! मेरी दुष्टता तो देखिये, आप अनन्त, आदिपुरुष, परमात्मा एवं बड़े २ मायावियोंको भी मोहित करनेवाले हैं, किन्तु मैं ऐसा ही मूढ़ हूँ कि आप पर भी अपनी माया फैला कर अपना ऐश्वर्य्य दिखानेको उद्यत हुआ ! अहो ! अग्निसे निकली हुई चिनगारी जैसे अग्निके निकट कुछ भी नहीं है वैसे ही मैं भी आपके ही अंशका अंश होनेके कारण आपके निकट कुछ भी नहीं हूँ ॥ ९ ॥ भगवन्, क्षमा कीजिये । मैं रजोगुणसे उत्पन्न हूँ, अतएव अज्ञ हूँ । मैं आपसे अलग अपनेको जगत्का ईश्वर मान बैठा था, क्योंकि इसी मिथ्या गर्वसे मेरे नेत्र अंधे हो रहेथे । हे ईश्वर ! अब मुझको अपना किंकर जानकर क्षमा और अनुग्रह कीजिये ॥ १० ॥ मेरे निजके परिमाणसे सात वित्तेका यह प्रकृति-अहंकार-आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वीसे रचित ब्रह्माण्ड यद्यपि मेरा शरीर है, तथापि आपके रोमच्छिद्र, ऐसे ही असंख्य ब्रह्माण्डरूप परमाणुओंके आने जानेके झरोखे हैं । अतएव, मैं आपकी महिमा जान सकूँ—यह क्या कभी किसी प्रकार संभव हो सक्ता है ? ॥ ११ ॥ गर्भमें पड़ा हुआ बालक जो पैर उछालता है तो उसको माता बालकका अपराध नहीं मानती । हे अनन्त, वैसे ही मैं भी आपके उदरमें स्थित हूँ । क्योंकि स्थूल व सूक्ष्म और कार्य्य व कारणके नामसे कहे गये इन सब पदार्थोंमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपके उदरसे बाहर हो ॥ १२ ॥ प्रलयके समय परस्पर मिले हुए समुद्रोंके जलमें शयन किये हुए नारायणकी नाभिसे उत्पन्न कमलके द्वारा ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई—यह वेदवाक्य मिथ्या नहीं है ॥ १३ ॥ आप सब देहधारियोंके आत्मा एवं सब लोकोंके साक्षी हैं—तब भी क्या आपके नारायण होनेमें कोई संदेह है ? हे अधीश ! नरसे उत्पन्न चौबीस तत्त्व एवं जल जिनका अयन स्थान है, इसी लिये जो नारायण नामसे प्रसिद्ध हैं, वह भी आपकी ही मूर्ति हैं । हे देव ! 'आपका जगदाश्रय शरीर जलमें अवस्थित था'—यह बात यदि हे अचिन्त्य ऐश्वर्य्यवाले प्रभो! सत्य है तो उसी समय कमलनालके मार्गसे जलमें प्रवेश करके मैंने दिव्य सौ वर्ष तक खोजते रहने पर भी आपको क्यों नहीं देखपाया एवं अन्तःकरणमें भी

आप मुझे क्यों नहीं देख पड़े ? और फिर उसी समय तप करनेके बाद ही मेरे दृष्टिगोचर क्यों हुए ? ॥ १४ ॥ १५ ॥ हे मायानाशन ! यह सब विश्वप्रपंच बाहर स्पष्टरूपसे प्रकाशमान है, तौ भी अपने उदरमें माताको यह विश्व दिखाकर इसी मायामय लीलाके लिये लिये हुए अवतारमें आपने अपनी अद्भुत माया दिखा दी। अर्थात् यह दिखा दिया कि यह विश्व मेरी ही मायाकी रचना है ॥ १६ ॥ जब सहित आपके, यह विश्व, आपके उदरमें जैसा प्रकाशित होता है वैसा ही बाहर भी प्रकाशित है तब मायाके सिवा और क्या है ? ॥ १७ ॥ इसी समय आपने मुझे दिखा दिया कि आपके सिवा सब विश्व माया है। आप पहले एक थे, फिर सब बछड़े और ब्रजबालकरूप बनगये। फिर मैंने देखा कि सभी मूर्त्तियाँ चतुर्भुज रूपसे अवस्थित हैं एवं मैं सब तत्त्वोंसहित उन सबकी उपासना कर रहा हूँ। फिर वे रूप एक २ ब्रह्माण्डके रूपसे देख पड़े। किन्तु अब अन्तको आप वही अपरिमित, अद्वितीय केवल ब्रह्मरूपसे विराजमान हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्मन् ! आप ही अपनी प्रकृतिमें स्थित विकाररहित आत्मा हैं। जो लोग आपके स्वरूपको नहीं जानते उनके लिये आप ही अपनी माया फैला कर प्रकाश पाते हैं; जैसे—सृष्टिके आदिमें मैं और पालनमें आप (विष्णु) एवं अन्तमें त्रिलोचन शिव॥१९॥ हे प्रभो ! आप विधाता और ईश्वर हैं। आप जन्मरहित हैं; तथापि देवता मनुष्य पशु पक्षी एवं जलचर आदि जीवोंमें जो आपके अवतार होते हैं, सो केवल असाधु दुष्ट दुर्मद लोगोंके दमन और साधुओं पर अनुग्रह करनेके लिये ॥ २० ॥ हे भूमन् ! आप ऐश्वर्य्यशाली, परमात्मा और योगेश्वर हैं। इस त्रिलोकीमें कौन व्यक्ति, कहाँ, किस समय, किस प्रकार आपकी लीलाओंको जान सक्ता है ? आप योगमाया फैलाकर उसीमें अद्भुत क्रीड़ा करते हैं ॥ २१ ॥ अतएव यह असत्-स्वरूप, स्वप्नसदृश, निरस्तज्ञान, अनेक घोर दुःखोंका आगार विश्व, नित्य सुखरूप एवं बोधरूप जो आप हैं उनमें आपकी ही मायाके द्वारा उत्पन्न होकर लीन हो जाता है एवं सत् ऐसा जान पड़ता है ॥२२॥ एक आप ही सत्य हैं, क्योंकि आत्मा पुरुष एवं सृष्टिआदि कार्य्योंके पूर्व वर्तमान रहनेके कारण आदिपुरुष हैं। आप नित्य हैं, अनन्त और अद्वितीय होनेके कारण परिपूर्ण हैं। आपका सुख सदा एक सा है, आपका क्षय नहीं है—विनाश नहीं है। आप स्वयंज्योतिःस्वरूप, निर्मल एवं उपाधिसे मुक्त हैं ॥२३॥ जो लोग आपको इस प्रकारका और सब आत्मोंका आत्मा अर्थात् परमात्मा देखते और जानते हैं वे सूर्य्यरूपी गुरुसे पाये हुए ज्ञाननेत्रसे संसाररूप मिथ्या-सागरके पार हो जाते हैं ॥२४॥ जैसे अज्ञान रहने पर कोई व्यक्ति रस्सीको साँप समझता है, परन्तु ज्ञान हो जाने पर उसका वह भ्रम जाता रहता है, वैसे ही जो लोग आत्माको ही आत्मा (परमात्मा) नहीं जानते उन्हींकी दृष्टिमें उसी अज्ञानसे यह भ्रमरूप मिथ्या विश्वप्रपञ्च प्रकट होता है, किन्तु ज्ञान होने पर

वह लीन हो जाता है ॥ २५ ॥ संसारके द्वारा 'बन्धन' और 'मोक्ष'—इन दोनो नामोंका मूल अज्ञान है, क्योंकि सत्य एवं प्राज्ञभावसे इन दोनोमें कुछ विशेष नहीं है। विचार करके देखो—सूर्य्यमें जैसे दिन या रात्रि नहीं है वैसे ही शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें बन्धन या मोक्ष नहीं है ॥ २६ ॥ अहो, अज्ञजनोंकी अज्ञता देखो! आप आत्मा हैं, सो आपको आत्मासे भिन्न (देहादि) एवं देहादिको आत्मा जान कर परमात्मा जो आप हैं उनको आत्मा (अन्तःकरण) से बाहर खोजते हैं! ॥२७॥ हे अनन्त! साधुजन जड़ पदार्थोंको त्याग करते हुए अपने देह (अन्तःकरणमय लिंगशरीर) में ही आत्मा (परमात्मा) की खोज करते हैं। यदि कहो, सत्के ज्ञानसे ही प्रयोजन है, असत्के अस्वीकारकी क्या आवश्यकता है? तो बिना अस्वीकारके स्वीकार नहीं हो सक्ता। जैसे निकट सर्प नहीं है, तथापि सर्पका अस्वीकार बिना किये क्या कोई उस रस्सीको रस्सी जान सक्ता है, जिसमें कि सर्पका भ्रम होता रहा हो? ॥२८॥ भगवन्! ज्ञानके द्वारा मुक्ति मिल सक्ती है, तथापि हे देव! जो लोग आपके चरणकमलोंके प्रसादका लेश पा कर भी अनुगृहीत हुए हैं वे भक्त ही आपकी महिमाके तत्त्वको जान सक्ते हैं; उनके सिवा और कोई भी असत्का त्याग और सत्का ग्रहण करते हुए चिरकाल तक विचार करके भी नहीं जाननेको समर्थ हो सक्ता॥ २९॥ इस लिये हे नाथ! इसी जन्ममें अथवा पशुपक्षी आदिके बीच किसी और ही जन्ममें आपके भक्तोंका किंकर होकर आपके चरणोंकी सेवा कर सकूँ—यही आपसे मेरी प्रार्थना है। मैं इसमें ही अपने अहोभाग्य समझूँगा ॥ ३० ॥ अहो व्रजकी गौवें और स्त्रियाँ परम धन्य हैं। क्योंकि हे विभो! आपने वत्स और बालकके रूपसे उनका दुग्धरूप अमृत पिया है। आप वही हैं, जिनको अबतक सम्पूर्ण यज्ञ भी नहीं तृप्त करसके! ॥ ३१ ॥ अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं—धन्य भाग्य हैं! क्योंकि परमानन्दस्वरूप, पूर्ण, सनातन ब्रह्म आप उनके आत्मीय (सगे स्वजन) हैं! ॥ ३२ ॥ हे अच्युत! अहंकारके अधिष्ठाता शिवजी और ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठाता इन्द्र आदि एवं मैं, हम सब इन व्रजवासियोंके इन्द्रियरूप पान-पात्रों द्वारा, जन्महीन जो आप हैं उनके चरणारविंदमकरन्दके आसवको निरन्तर पीते हैं; इसीसे हम जानते हैं कि हमारे परम सौभाग्यका उदय हुआ है! ॥ ३३ ॥ इस पृथ्वी पर, उसमें भी वृन्दावन, उसमें भी गोकुलमें जन्म होना ही परम सौभाग्य है; क्योंकि गोकुलमें जन्म होनेसे किसी न किसी गोकुलवासीके चरणोंकी रज शिरमें पड़ ही जायगी। प्रभो! गोकुलवासी क्यों इतने धन्य हैं? इसका कारण यही है कि सम्पूर्ण वेद आज तक जिनके चरणरजकी खोजमें हैं वही आप इन व्रजवासियोंके जीवनसर्वस्व हैं ॥३४॥ देव! आपके भक्तोंके वेषका अनुकरणमात्र करके जब पूतना और बकासुर, अघासुर आदि दुष्ट दानवगण आत्मीयजनों

सहित आपको प्राप्त हुए, तब आप इन अनन्यप्रेमी व्रजवासियोंको सर्वफलस्वरूप अपनेसे बढ़ कर और कौन सा फल देंगे? हमारा चित्त वारम्वार विचार करके भी इसका कुछ निश्चय नहीं करपाता और मोहको प्राप्त होता है। क्योंकि व्रजवासियोंके भवन, धन, बंधु, प्रियजन, पुत्र, प्राण और अभिलाषाओंका एकमात्र उद्देश्य आप ही हैं। तब यदि आप इनको भी वही फल देंगे जो असुरोंको दिया है तो इनकी श्रेष्ठता क्या रहेगी? ॥ ३५ ॥ हे कृष्ण! लोग जब तक पूर्णतया आपके जन नहीं होते तभी तक उनको राग आदि चोरोंका खटका रहता है, उनके लिये घर कारागार होता है, मोह बेड़ी सा बना रहता है ॥ ३६ ॥ हे विभो! आप प्रपंचहीन होकर भी पृथ्वीतलमें विपन्न जनोंको आनन्द देनेके लिये प्रपंचका अनुसरण करते हैं, अर्थात् अवतार लेते हैं ॥ ३७ ॥ प्रभो! जो लोग जानते हैं वे ही आपके विभवको जानें। आपका विभव मेरे काया, मन और वाणीका विषय नहीं है—और बहुत मैं क्या कहूँ? ॥ ३८ ॥ कृष्ण! मुझको आज्ञा दीजिये और मेरे अपराधको अनुग्रहपूर्वक क्षमा कीजिये। आप सब देखते हैं, इस लिये सब कुछ जानते हैं। आप ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, अतएव ममताका घर जो यह जगत् व शरीर है सो मैं आपके अर्पण करता हूँ ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण! आप वृष्णिकुलकमलको प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य्य हैं। आप पृथ्वी, देवता, द्विज और पशुरूप सागरकी वृद्धि करनेवाले चन्द्रमा हैं। आप पाखण्डधर्म्मरूप रात्रिके अंधकारको मिटानेवाले हैं। आप पृथ्वीनिवासी राक्षसोंका संहार करनेवाले और सूर्य आदि पूज्य देवतोंके भी परम पूज्य हैं, अथवा सूर्य्यरूपसे सबके पूज्य हैं। जब तक यह कल्प रहेगा तबतकके लिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ४० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। महाराज! इस प्रकार जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी महापुरुषकी स्तुति और तीन बार प्रदक्षिणा व प्रणाम करके अपने लोकको चले गये ॥ ४१ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रजी आत्मयोनि ब्रह्मासे अनुमति लेकर ब्रह्माके द्वारा पहलेसे ही पहुँचा दिये गये वत्सोंको यमुनातट पर लाये। भगवान्के साथी बालक भी पहलेसे ही वहाँ ब्रह्माके द्वारा पहुँचा दिये गये थे-उनसे आकर भगवान् मिले ॥ ४२ ॥ यद्यपि प्राणेश्वर कृष्णके वियोगमें एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन बालकोंको कृष्णकी मायामें मोहित रहनेके कारण उतना समय आधे क्षणके समान जान पड़ा ॥ ४३ ॥ जिनकी मायामें मोहित होकर यह सब जगत् आत्मा तकको भूला हुआ है, उन्हीकी मायासे इस संसारमें जिनका चित्त मोहित हो रहा है वे क्या क्या नहीं भूलसक्ते? ॥ ४४ ॥ बालकगण कृष्णको आते देख कर उत्सुक होकर कहने लगे कि—"मित्र! तुम तो बहुत ही शीघ्र आये! हमने अभी तक तुम्हारे बिना एक भी कौर नहीं खाया। आओजी अब भोजन करो" ॥ ४५ ॥ कृष्णभगवान्ने हँसते हुए जा कर भोजन किया और फिर

वहाँसे वह अजगर (अघासुर) के शरीरका ढाँचा बालकोंको दिखाते हुए व्रजको लौटे ॥ ४६ ॥ मयूरपुच्छ, पुष्प और नवीन धातुओंसे चित्रित अंगवाले श्रीकृष्णचन्द्रने ऊँचे स्वरसे सींग और बाँसुरी बजाकर आनन्दपूर्वक आदरसे बछड़ोंको एकत्र किया और अपने व्रजको गये। वास्तवमें उस मोहिनी मूर्त्तिको देखनेके लिये व्रजबालाओंके नेत्र उत्सुक रहते थे; नन्दनन्दनका दर्शन उनके लिये परम उत्सव था ॥ ४७ ॥ बालकोंने व्रजमें आकर कहा—"आज इन नन्द और यशोदाके पुत्र कृष्णने एक महा सर्पको मार कर हमारे प्राणोंकी रक्षा की" ॥ ४८ ॥ **राजा परीक्षित्ने कहा।** ब्रह्मन्! पराये पुत्र कृष्ण पर व्रजवासियोंको अपने भी पुत्रोंसे बढ़ कर इतना अधिक प्रेम क्यों था? मैं यह सुनना चाहता हूँ, कहिये ॥ ४९ ॥ **श्री शुकदेवजीने कहा।** राजन्! सभी प्राणियोंको अपना आत्मा (जीव) सबसे बढ़ कर प्रिय होता है। उस आत्माके ही प्रिय होनेके कारण और और पुत्र, धन, भवन आदि वस्तुएँ प्रिय होती हैं ॥ ५० ॥ इसी कारण हे राजेन्द्र! अपने २ आत्मा पर शरीरधारियोंको जैसा स्नेह होता है वैसा ममतावलम्बी धन, पुत्र और गृह आदि पर नहीं होता ॥ ५१ ॥ हे क्षत्रियश्रेष्ठ! जो लोग देहको ही आत्मा मानते हैं उनको भी देह जैसा प्रिय होता है वैसे देहका अनुसरण करनेवाले पुत्र आदि नहीं प्यारे होते ॥ ५२ ॥ इसके सिवा यह देह ममताका घर अवश्य है, किन्तु आत्माके समान प्यारा नहीं है। क्योंकि देखो, जब देह जरासे जर्जर हो जाता है तब भी जीवनकी आशा प्रबल ही रहती है, वह नहीं कम होती ॥ ५३ ॥ अतएव सब देहियोंको अपना आत्मा ही प्रियतम है, यह सब चराचर जगत् आत्माके ही लिये प्रिय है ॥ ५४ ॥ सो हे राजन्! आप श्रीकृष्णचन्द्रको सब आत्मों(जीवों)का आत्मा (परमात्मा) समझिये। वह जगत्के हितके लिये अवतार लेकर मायाके द्वारा साधारण देहधारी ऐसे प्रतीत होते थे ॥ ५५ ॥ जो लोग श्रीकृष्णचन्द्रको सब जगत्का कारण जानते हैं उनकी दृष्टिमें यह सब चराचर जगत् कृष्णमय है, उनसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ ५६ ॥ सब वस्तुओंके परमार्थ कारणमें अवस्थित कृष्णचन्द्र उस परमार्थ कारणके भी कारण हैं; तब कौन वस्तु उनसे भिन्न हो सक्ती है? ॥ ५७ ॥ सब श्रेष्ठ महात्माजन कृष्णके नौकारूप चरणकमलोंका पूजन करते हैं; जो लोग उस चरणकमल-नौकाका आश्रय लिये हुए हैं उनके लिये यह अपार संसारसागर गऊके पैरके गढ़ेके समान है। वे परमपद वैकुंठको उन्हीं चरणोंके सहारे जा सक्ते हैं; विपत्तिके भंडार इस संसाररूप कारागारमें फिर उनको नहीं आना पड़ता ॥ ५८ ॥ राजन्! आपने जो हमसे पूछा था कि "हरिने पाँच वर्षकी अवस्थामें जो काम किया उसको छठे वर्षमें बालकोंने व्रजमें जाकर आजका ही कर्म्म कैसे कहा?"—सो उसका सब वृत्तान्त हमने तुमसे कह सुनाया ॥ ५९ ॥ जो कोई, हरिका बंधुओंके साथ वनविहार,

अघासुरको मारना, घास पर बैठ कर भोजन करना, शुद्ध सत्त्वमय अनेकों वत्स और वत्सपालोंके रूप धारण करना एवं ब्रह्माकी की हुई स्तुति इत्यादिको पढ़ता या सुनता है उसकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं ॥ ६० ॥

एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥
निलायनैः सेतुबंधैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥

हे महीपाल ! इसी प्रकार व्रजमें बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रने सेतु बाँधना-लुकीलुकव्वल-बालकोंके साथ कूदना फाँदना आदि खेल खेलते हुए कुमार अवस्था बिता दी ॥ ६१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदश अध्याय ।

धेनुकासुर वध ।

श्रीशुक उवाच—ततश्च पौगंडवयःश्रितौ व्रजे ।
बभूवतुस्तौ पशुपालसम्मतौ ॥
गाश्चारयन्तौ सखिभिःसमं पदै-
र्वृंदावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । महाराज ! बलदाऊ और श्रीकृष्णचन्द्रजी पाँच वर्षके पूरे हो कर छठे वर्षके आरंभमें व्रजके बीच पशुपाल बननेके योग्य हुए । सखा ग्वालबालों सहित गौवें चराते हुए कृष्ण और बलदाऊजी अपने श्रीचरणोंसे वृन्दावनको अत्यन्त पवित्र एवं सुशोभित करने लगे ॥ १ ॥ एक दिन विहार करनेकी इच्छासे वंशी बजाते २, अपना यश गा रहे ग्वालबाल और बछड़ोंको आगे करके बलरामसहित श्रीकृष्णचन्द्रने पशुओंको जिसमें सब भाँतिका सुपास है उस पुष्पपरिपूर्ण वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ २ ॥ वह वन मधुर वाणीवाले भ्रमर और अन्यान्य पक्षी तथा मृगगणसे सुशोभित एवं महात्मा सज्जनोंके अन्तःकरणके समान स्वच्छ जलवाले सरोवरोंसे शोभायमान था और कमल-सुगन्धयुक्त वायु वहाँ डोल रही थी । यह देखकर भगवान्‌ने वहीं क्रीड़ा करनेका विचार किया ॥ ३ ॥ वनमें फल व फूलोंके भारी भारसे झुके हुए वृक्षोंको तरुण पल्लवोंकी अरुण कान्तिसे सुशोभित शाखाओंकी शिखाओंसे अपने चरणारविन्दोंको छूते हुए देख कर श्रीकृष्णचन्द्रजी हँसते हुए आनन्दपूर्वक अपने बड़े भाई बल-

भद्रजीसे कहने लगे ॥ ४ ॥ "हे देवश्रेष्ठ ! अहो, देखिये, ये सब वृक्ष अपने पूर्व-जन्मके पाप, जिनके फलसे अबकी वृक्षकी योनि मिली है, उनको विनष्ट करनेकी कामना हृदयमें रख कर फूल और फलोंकी भेंट आगे किये अपने शाखा-शिखारूप शिरोंसे आपके देववृंदवंदित चरणोंमें प्रणाम कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे आदिपुरुष ! ये सब भ्रमर आपका त्रिलोकपावन मनोहर सुयश गाते हुए साथ ही साथ जा रहे हैं। हे अनन्त ! निश्चय ही ये आपके भक्त सेवक ऋषिगण हैं। आप वनमें गूढ़ भावसे (अपने तेजको छिपाये हुए) विचर रहे हैं तौ भी ये आपको नहीं छोड़ते; सो ठीक ही है—क्योंकि आप इनके आत्मदेव हैं ॥ ६ ॥ हे पूज्य ! ये सब वनवासी जीव धन्य हैं। देखिये ये सब मयूर आपको घरमें आये देख कर आनन्दके मारे नृत्य कर रहे हैं और ये हरिणियाँ अपने प्रेमपूर्ण कटाक्षोंसे गोपियोंके समान आप-को प्रसन्न कर रही हैं एवं कोकिलाएँ अपनी मधुर वाणीसे आदर सत्कार कर रही हैं। सत्य है, साधुओंका स्वभाव ही ऐसा होता है ॥ ७ ॥ आज यहाँके पृथ्वी, तृण और लतागुल्म सब आपके चरणोंका स्पर्श करके और वृक्ष व लताएँ करकमलोंके सुकोमल नखों द्वारा छिन्न भिन्न होकर एवं नदी पर्वत पक्षी और मृगगण करुणाकटाक्ष लाभ कर तथा सब गोपियाँ—जिसके पानेकी लक्ष्मीजी लालसा रखती हैं उस वक्षःस्थलको पाकर धन्य हैं ! ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन् ! श्रीमान् श्रीपति यों बड़े भाईसे हास्य करते हुए और ग्वालबालोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक वृन्दावनमें गोवर्द्धन व यमुनाके किनारे पशुओंको चराते हुए रमण करने लगे ॥ ९ ॥ कभी श्रीकृष्णजी मदांध-भौंरोंके साथ आप भी गाने लगते और संकर्षणके साथ फूलमालाएँ पहने हुए अपनी लीलाएँ गारहे सखोंका मधुर मनोहर गान सुनते ॥ १० ॥ कभी ग्वालबालोंको हँसाते व आप भी हँसते हुए हंसोंके साथ उन्हींका ऐसा शब्द करते और कभी मोरोंके साथ नाचते ॥ ११ ॥ कभी गऊ और गोपोंके मन हरनेवाली मेघकी ऐसी गंभीर वाणीसे दूर पर चर रहे पशुओंको उनका नाम ले ले कर प्रीतिपूर्वक पास बुलाते ॥ १२ ॥ कभी चकोर, बक, चक्रवाक, भारद्वाज और मोर आदि पक्षियोंकी ऐसी बोली बोलते और कभी जैसे पशुगण, व्याघ्र और सिंहसे डर कर भागते हैं वैसे ही व्याघ्र आदिकी कृत्रिम कल्पना करके भीतभाव दिखा कर भागतेथे ॥ १३ ॥ जब यों खेलते २ थक जाते तो बड़े भाई बलदाऊको किसी सखाकी गोदमें सुला कर आपही पैर दबा कर उनकी थकन दूर करते हुए सेवा करतेथे ॥ १४ ॥ कभी दोनो भाई हाथसे हाथ मिला कर खड़े हो जाते और नाचते, गाते, ताल ठोंकते व कुश्ती लड़ रहे अपने साथी ग्वालबालोंकी बहुत कुछ प्रशंसा करतेथे ॥ १५ ॥ कभी थक जाने पर किसी सघन वृक्षके नीचे नवपल्लवोंके कोमल पलँग पर किसी सखाकी गोदमें शिर धर कर शयन करतेथे

॥ १६ ॥ कोई पापहीन पुण्यात्मा बालक महात्मा कृष्णके चरण दबाते और कोई बयार करतेथे ॥ १७ ॥ कोई २ स्नेहके मारे आनन्दसे परिपूर्ण होकर मन्द मृदु स्वरसे कृष्णके मनको भानेवाले गीत गाने लगतेथे ॥ १८ ॥ साक्षात् लक्ष्मीजी जिनके चरणोंकी सेवा करती हैं वही ईश्वर अपने रूप(तत्त्व)-को छिपा कर निजमायाकल्पित साधारण बालकके रूपसे उसी रूपके स्वभावका अनुसरण करते हुए गोपबालकोंके साथ इसी प्रकार नित्य नई २ बाललीलाएँ करने लगे । भगवान्का ईश्वरत्व तब भी अलौकिक लीलाओंमें झलकता ही रहताथा ॥ १९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । एक दिन यों ही भगवान् विहार कर रहेथे, इतनेमें कृष्ण–बलदाऊके सखा गोपाल श्रीदामा और सुबल स्तोककृष्ण आदि अन्यान्य बालकगण भगवान्के निकट आकर प्रेमपूर्वक यों कहने लगे कि हे महाबाहो बलभद्रजी! और हे दुष्टदमन श्रीकृष्णचन्द्रजी! यहाँसे थोड़ी ही दूर पर एक बड़ा भारी तालवन है । मित्र! वहाँ बहुत ही स्वादिष्ट अनेकों तालफल गिरते हैं एवं बहुतसे आप ही टूटकर गिरे पड़े हैं, किन्तु दुष्ट धेनुकासुरके कारण उनको कोई नहीं पा सक्ता ॥२०॥२१॥२२॥ हे राम! हे कृष्ण! वह गर्दभरूपी असुर स्वयं बड़ा पराक्रमी है और उसीके समान बलवाले अनेकों गर्दभरूप असुर उसके साथ हैं ॥ २३ ॥ उसने वहाँ गये हुए अनेकों मनुष्योंको खा डाला है, इस कारण हे शत्रुदमन! वहाँ कोई पशु या पक्षी भी नहीं जाता ॥ २४ ॥ हमने इन सुगंधित फलोंको आज तक कभी नहीं खाया, ये देखो चारो ओर उन्हीं फलोंकी महक फैली हुई है ॥ २५ ॥ हे कृष्ण! उस महकने हमारे मनको लुभा लिया है । हमें उन फलोंके पानेकी उत्कट उत्कंठा है । यदि रुचे तो हे बलदाऊजी! आप वहाँ चलिये और वे फल हमको भोजनके लिये दीजिये ॥ २६ ॥ मित्रोंकी यह प्रार्थना सुनकर उनका प्रिय करनेके लिये हँसते हुए प्रभु कृष्णचन्द्र और बलदाऊजी ग्वालबालों सहित तालवनकी ओर चले ॥ २७ ॥ बलदेवजीने वनमें घुस कर हाथीके समान बड़े ही वेगसे तालके वृक्षोंको हिलाया, जिससे असंख्य पके हुए फल पृथ्वीपर टपक पड़े ॥ २८ ॥ गिरते हुए फलोंका शब्द सुन कर वह गर्दभासुर पर्वतों सहित पृथ्वीको हिलाता हुआ प्रभुकी ओर दौड़ा ॥ २९ ॥ वह बली असुर झपट कर बलदाऊके पास आया । उस दुष्टने पिछले दोनो पैर बलदाऊकी छाती पर मारे और ऊँचे स्वरसे गर्दभनाद करके हट गया ॥ ३० ॥ फिर उस गधेने कुपित हो, सामने आकर बलदाऊ पर पिछली दुलत्ती चलाई ॥ ३१ ॥ अबकी बलभद्रने एक हाथसे उसके दोनो पैरोंके मोजे पकड़ लिये और कई बार शून्यमें घुमा कर एक बड़े भारी तालतरुकी जड़ पर दे मारा । घुमातेमें ही उसके प्राण निकल गये ॥३२॥ धेनुकासुरके शरीरके आघातसे वह बड़ी २ डालोंवाला महाताल हिल गया और टूट कर दूसरे वृक्ष पर

उसे भी तोड़ता और हिलाता हुआ गिर पड़ा। इसी प्रकार एककी टक्करसे दूसरा वृक्ष, दूसरेकी टक्करसे तीसरा वृक्ष टूट गया ॥ ३३ ॥ क्रीड़ापूर्वक बलदेवजीके हाथों पटके गये गर्दभके शरीर द्वारा हताहत सब तालतरु, जैसे बड़ी भारी आँधी आवे, वैसे कम्पायमान हुए ॥ ३४ ॥ किन्तु हे अंग! जगदीश्वर अनन्त भगवान्‌के लिये यह बात कुछ आश्चर्य्य नहीं है । उन्ही भगवान्‌में यह विश्व सूतमें कपड़ेके समान ओतप्रोत है ॥ ३५ ॥ वहाँ और जो उस असुरके बंधुबांधव गर्दभरूप असुर रहते थे वे भी अपने बांधवके मर जानेसे अत्यन्त क्रोध कर बदला लेनेके लिये दोनो भाइयोंकी ओर झपटे ॥ ३६ ॥ हे नृप! झपट कर आये हुए उन राक्षसोंकी दोनो पिछली टाँगें पकड़ कर जैसे लड़के खेल करते हैं वैसे ही दोनो भाई उन्ही तालवृक्षों पर पटकने लगे ॥ ३७ ॥ वह वनभूमि असंख्य असुरोंके मृत शरीर और टूटे हुए तालवृक्षोंसे व्याप्त होनेके कारण मेघमालाओंसे आवृत गगनमण्डलके समान देख पड़ने लगी ॥ ३८ ॥ कृष्ण बलरामके इस अद्भुत कर्मको देख कर सब देवगण बाजे बजाने, फूल बरसाने और स्तुति सुनाने लगे ॥ ३९ ॥ तबसे वह तालवन निर्भय स्थान हो गया, लोग बेखटके वहाँ जाकर तालके फल खाने लगे, पशुगण तृण चरने लगे; क्योंकि कंटक धेनुकासुर मारा गया ॥ ४० ॥ जिनका श्रवण व कीर्त्तन पवित्र व पुण्यरूप है, वह कमलनयन श्रीकृष्णजी साँझके समय साथी ग्वालबालोंके मुखसे अपनी बड़ाई सुनते हुए बड़े भाई सहित व्रजको आये ॥ ४१ ॥ दर्शनकी लालसासे उत्सुक गोपियोंने दिनभरके बाद व्रजमें आरहे नन्दनन्दनको देखा कि घुँघरारी अलकोंपर गोरज पड़ी हुई है, केशपाशमें वनके विचित्र फूल और मोरके पंख खुँसे हुए अपूर्व शोभा पारहे हैं, कमनीय कटाक्षयुक्त दृष्टि और मनोहर हँसीसे मुखमंडलकी अपार शोभा हो रही है । वह स्वयं वंशी बजा रहे हैं और साथी ग्वालबाल पीछे २ साथ ही साथ उनकी कीर्त्तनीय कीर्त्तिका कीर्त्तन करते आ रहे हैं ॥ ४२ ॥ गोपियोंने दिनमें कृष्णके बिछोहसे उपजे हुए तापको नेत्ररूप पात्रसे मुकुन्दमुखसुधा पी कर दूर कर दिया। कृष्ण चन्द्रने भी उनके लजीले, हँसी और विनयसे पूर्ण कटाक्षोंके द्वारा की हुई पूजा (सादर सत्कार) ग्रहण करते व्रजके भीतर प्रवेश किया ॥ ४३ ॥ घर पहुँचने पर पुत्रवत्सला यशोदा और रोहिणीने अपने पुत्रोंको यथासमय इच्छानुसार गोदमें लेकर प्रसन्न किया और परम आशीर्वाद दिये ॥ ४४ ॥ बलदाऊ और श्रीकृष्णने उबटना लगा कर, स्नान करके राहकी थकावटको दूर किया, सुन्दर वस्त्र पहने, दिव्यमाला और सुगंधियोंसे सुशोभित हुए। फिर माताके परोसे स्वादिष्ट अन्नको आदरसहित खा कर उत्तम सेज पर सुखपूर्वक सो गये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ राजन्! इसी प्रकार वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णचन्द्र एक दिन बिना

बलदाऊके अकेले ही ग्वालबालों सहित गौवें चरानेको कालिन्दीके तट पर चले गये ॥ ४७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! वहाँ घामकी तपनसे गौवें और गोप बहुत ही प्यासे हुए। निकट शुद्ध जल न पाकर उन्होने नागके विषसे दूषित कालीदहके जलको पी लिया। उस विषैले जलका स्पर्श करते ही होनहारसे मोहित गौवोंसहित वे गोप मरकर किनारे ही पर गिरपड़े ॥४८॥४९॥ योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णने अपने सेवकोंको मरा हुआ देख कर अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टिसे उनको उसी समय सजीव कर दिया ॥ ५० ॥ स्मरणशक्तिके फिर आजाने पर, वे सब किनारे पर उठ खड़े हुए और मारे विस्मयके एक एकका मुख निहारने लगे ॥ ५१ ॥

अन्वमंसत तद्राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ॥
पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥ ५२ ॥

अन्तमें उन्होने निश्चय किया कि हम लोग विष पीकर मरगये थे, हमारे फिर जी उठनेका कारण करुणानिधान कृष्णकी कृपादृष्टि ही है ॥५२॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडश अध्याय ।

कालियदमन ।

श्रीशुक उवाच—विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः कृष्णाहिना विभुः ॥
तस्या विशुद्धिमन्विच्छन्सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! सर्वशक्तिमान् भगवान्ने काले सर्पके विषसे यमुनाके जलको दूषित हुआ देख कर उसको शुद्ध कर देनेका विचार किया और नागको वहाँसे निकाल दिया ॥१॥ **राजा परीक्षित्ने पूछा।** भगवन्! उस अगाध जलके भीतर भगवान्ने कैसे सर्पके दर्पका दमन किया? और वह सर्प ही जलचर जीव न होने पर भी अनेक युगों तक जलके भीतर कैसे रहा? ॥ २ ॥ ब्रह्मन्! सर्वव्यापी और अपनी इच्छाके अनुसार सर्वत्र स्वच्छंदरूपसे अवस्थित भगवान् कृष्णने गोपरूपसे जो २ उदार लीलाएँ की हैं वे सब सुधाके समान मधुर हैं, उनको वारम्वार सुन कर भी कोई नहीं तृप्त हो सक्ता ॥ ३ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** राजन्! कालिन्दीके भीतर एक भारी कुण्ड था—उसीमें कालियानाग रहा करता था। विषकी प्रचण्ड झारसे उस कुण्डका जल खौल २ कर ऊपर उछलता रहता था, जिससे उसके ऊपरसे आकाशमें चलनेवाले पक्षी भी मर कर गिर पड़ते थे ॥ ४ ॥ विषजलकण मिले हुए वायुके स्पर्शसे ही किनारे परके चर और अचर

जीव मर जाते थे ॥ ५ ॥ दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही जिनका अवतार हुआ है उन कृष्णचन्द्रने देखा कि प्रचण्ड विषका बड़ा ही वेग है, और उसके कारण नदीका जल दूषित हो गया है। बस, उसी समय कृष्णचन्द्रजी एक बड़े ऊँचे किनारे पर लगे हुए कदम्बके वृक्ष पर चढ़ गये और वस्त्रसहित कर्धनीको कमरमें कसकर ताल ठोंक कर उस विषैले जलमें फाँद पड़े ॥ ६ ॥ पुरुषश्रेष्ठके फाँदनेके वेगसे उस कुण्डके जलमें अद्भुत हलचल मच गई। सर्पपरिवार क्षोभको प्राप्त हुआ, उसके अमित विष उगलनेसे जल ऊपरको उछलने लगा । विषकलुषित भयंकर तरंगोंकी थपेड़ोंसे कुण्डका जल चारो ओर चार सौ हाथ पृथ्वी पर फैल गया। किन्तु यह सब अनन्तबलशाली कृष्णचन्द्रके लिये कोई बड़ी बात नहीं है ॥७॥ महाराज! महागजके समान विक्रमशाली कृष्णचन्द्र उसी कुंडके जलमें क्रीड़ा करने लगे, उनके भुजदण्डोंसे टकराकर जल चक्कर खाने लगा और उसमें बड़ा शब्द होने लगा। वह शब्द सुन कर कालिया नागने जाना कि मेरे भवन पर किसी शत्रुने चढ़ाई की है। यह बात उस चक्षुःश्रवा (आंखोंसे सुननेवाले [सर्पोंके कान नहीं होते] सर्प) से न सही गई। कालिया तुरन्त बाहर निकल कर कृष्णके निकट आया ॥ ८ ॥ उसने देखा कि दर्शनीय, अति सुकुमार, घनश्याम, श्रीवत्स व पीताम्बर पहने, मुसकानसे मनोहर मुखमंडलसे चित्तको चुरा रहे, कमलकोशके तुल्य लाल २ चरणवाले श्रीकृष्णचन्द्र निर्भय होकर जलक्रीड़ा कर रहे हैं । क्रोधांध सर्पने कृष्णके शरीरको अपने शरीरके बंधनसे जकड़ लिया और मर्म्मस्थलोंमें काटने लगा ॥ ९ ॥ गोपगणको तो सबसे बढ़ कर कृष्णही प्यारे थे। उन्होने अपना शरीर, अपने सगे, सब प्रयोजन, स्त्री और अभिलाषाएँ—सब कृष्णार्पण कर दिया था। वे प्यारे कृष्ण को सर्पके शरीरमें लिपटे होनेसे निश्चेष्ट देख कर अत्यन्त कातर हो पड़े एवं दुःख पश्चात्ताप तथा भयसे संज्ञाशून्य होकर पृथ्वी-तल पर गिर पड़े ॥ १० ॥ गऊ, बछिया, बछड़े और बैल सब अत्यन्त दुःखित होकर दीन शब्दसे शोक प्रकट करते और भीतभावसे कृष्णकी ओर एकटक निहारते हुए जैसेके तैसे खड़े रहगये । उनके नेत्रोंसे जल बहने लगा, जान पड़ा जैसे मारे दुःखके वे रोरहे हैं ॥ ११ ॥ इधर व्रजके भीतर पृथ्वी, आकाश और शरीरमें त्रिविध उत्पात होने लगे, जो कि व्रजवासियोंको किसी बहुत शीघ्र आनेवाले भयकी सूचना देने लगे ॥ १२ ॥ उन उत्पातोंको देख कर नंद आदि गोपगण भयके मारे बहुतही घबड़ागये । उनको मालूम हुआ कि आज कृष्णचन्द्र बिना बलदेवके अकेले ही वनमें गऊ चराने गये हैं। वे कृष्णके प्रभावको नहीं जानते थे, इस कारण उन्होने उन अशकुनोंको देख कर समझा कि कृष्ण अब इस संसारमें नहीं हैं। कृष्णमें ही उनके प्राण धरे रहते थे और मन लगा रहता था-इस लिये दुःख, शोक और भयसे आतुर एवं दीन सब बालक बूढ़े, जवान

व्रजवासी नर नारी कृष्णको देखनेकी लालसासे उनको खोजते हुए गोकुलसे निकले ॥१३॥१४॥१५॥ मधुवंशमें उत्पन्न भगवान् बलभद्रजी उनको यों आतुर होते देख हँस कर चुप हो रहे और कुछ भी नहीं कहा, क्योंकि वह तो छोटे भाई कृष्णके प्रभावको भली भाँति जानते थे ॥ १६ ॥ महाराज! प्यारे कृष्णको खोज रहे गोप गोपीगण ध्वजा वज्र अंकुश आदि कृष्णके चरणोंके चिन्होंसे उनके जानेका मार्ग जान कर यमुना तटपर पहुँचे ॥ १७ ॥ महाराज ! जैसे योगीजन वेदमार्गमें विशेष २ उपाधियोंको त्यागकर परम तत्त्वकी खोज करते हैं, वैसे ही गोप गोपीगण, गौवें जिस राहमें गई थीं उस राहमें, अन्यान्य लोगोंके पैरोंकी पाँतिमें, और २ चरणचिन्होंको छोड़कर, केवल पद्म, यव, अंकुश, वज्र और ध्वजा आदि चिन्होंसे युक्त भगवान्के चरणचिन्होंको देखते शीघ्रताके साथ चले ॥ १८ ॥ दूरसे ही दहके भीतर कृष्णको सर्पके शरीरसे जकड़े हुए और गोपालोंको जलाशयके किनारे अचेत अवस्थामें पड़े हुए एवं चारोओर पशुओंको चिल्लाते हुए देखकर सभी दारुण दुःखके कारण मूर्च्छित हो गिर पड़े ॥ १९ ॥ गोपियाँ, जिनके मनमें हरिका अत्यन्त अनुराग था, अपने प्यारे कृष्णको सर्पके शरीरसे लिपटे हुए देखकर, उनके सुहृद्भाव, हास्य, मनोहर दृष्टि और मधुर वाक्योंको स्मरण करके घोर दुःखसे सन्तप्त हुईं; उनको प्रिय कृष्णके बिना त्रिलोकी शून्य देख पड़ने लगी ॥२०॥ कृष्णकी माता यशोदा पुत्रकी यह दशा देखकर अत्यन्त कातर हो दीनस्वरसे विलाप करने लगीं और पुत्रके पास जानेको कुंडकेभीतर घुसने लगीं। किन्तु सब गोपियोंने, जिनको यशोदाके समान ही व्यथा थी, रोती हुई यशोदाको रोकलिया। वे उनको सँभालकर, सब व्रजवासियोंको परम प्यारी कृष्णकी लीलाएँ कह कर आँसू बहाती हुई, मृतकके समान, कृष्णकीही ओर टकटकी बाँधे निहारने लगीं॥२१॥ कृष्ण ही जिनके प्राण हैं वे नन्द आदि सब गोप शोकसे विह्वल होकर कुंडमें घुसनेके लिये जब उद्यत हुए तब कृष्णका प्रभाव जाननेवाले बलभद्रजीने उनको रोका ॥ २२ ॥ कृष्णभगवान् केवल मनुष्यस्वभावका अनुकरणमात्रकर रहे थे। किन्तु उन्होने जब देखा कि मुझे इस दशामें देखकर, मेरे लिये, जिनकी मेरे सिवा और कोई गति नहीं है वे स्त्री और बालकोंसमेत सब व्रजवासी अत्यंत दुःखित हो रहे हैं, तब क्षण भर सर्पके बंधनमें रहकर तत्क्षण अलग होगये ॥ २३ ॥ भगवान्का शरीर बहुत स्थूल होजानेके कारण सर्पका शरीर और फण व्यथित होने लगे वह कृष्णको अपने बंधनमें न रख सका। तब उसने कृष्णको छोड़ दिया और अत्यन्त क्रोधसे अपने सब भयंकर फण उठा कर फुफकारें छोड़ता हुआ चोट करनेका अवसर पानेकी इच्छासे हरिकी ओर निहारने लगा। उस समय साँसके साथ उसकी नासिकाके छिद्रोंसे विष निकल रहाथा। उसके नेत्र भट्ठीके समान जल रहे थे एवं मुखोंसे आगकी लपकें निकलती जाती थीं ॥२४॥ वह सर्प

अपनी दो शिखावाली जिह्वाओंसे चौहें चाटता हुआ कराल विषाग्निकी चिनगारियोंकी वृष्टिसे कृष्णके ऊपर पूर्ण दृष्टि डालने लगा। इधर कृष्ण भी गरुड़के समान निर्भय भावसे उसके चारो ओर चक्कर लगाने लगे, उधर सर्प भी चोट करनेका अवसर देखता हुआ साथ ही साथ घूमने लगा ॥ २५ ॥ इस प्रकार चक्कर लगानेमें ही उस सर्पकी शक्ति क्षीण होगई और शिथिल हो जानेके कारण कंधे ऊँचे हो गये, तब सब कलाओंके आदिगुरु कृष्णचंद्र उसका फणमण्डल नवाकर उचक कर ऊपर चढ़ गये और नृत्य करने लगे। उस समय नागके शिरोंकी आभासे भगवान्के चरणारविन्दोंकी कान्ति और भी अरुण होगई ॥ २६ ॥ भगवान्को नृत्य करनेके

लिये उद्यत देखकर गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, चारण और अप्सराओंके झुंड प्रसन्नता पूर्वक मृदंग, पणव, आनक आदि बाजे बजाकर गाने लगे एवं फूलोंकी वर्षा करते हुए प्रणामपूर्वक सहसा हरिके निकट आकर उपस्थित हुए ॥ २७ ॥ महाराज ! कालियनागके एक सौ शिर थे। वह जिस शिरको उठाता था उसीको दुष्टदमनकारी कृष्णचंद्र अपने चरणोंकी चोटसे नीचा कर देते थे। उस नागकी शक्ति और आयु क्षीण हो गई, चक्कर आने लगा, मुखों और नासिकाओंसे घोर विषके साथ रुधिर बहने लगा और वह एकदम अचेत (बेदम) होगया ॥२८॥ वह सर्प क्रोधसे जोर २ साँसें लेरहा और नेत्रोंसे विष उगल रहा था। वह जो शिर उठाता उसीको नृत्य कर रहे कृष्णचन्द्र चरणोंकी ठोकरोंसे शिथिल कर देते थे। देवगण फूलोंकी वर्षा करते जाते थे ॥ २९ ॥ राजन्! कृष्णके विचित्र ताण्डवनृत्यसे सर्पके सब फण व्यथित होगये, अंग चूर २ होगये और मुखोंसे बहुत सा रुधिर बहने

लगा । तब वह नाग मनमें चराचरके गुरु, पुराणपुरुष, नारायणका स्मरण करता हुआ उनके शरणागत हुआ ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें स्थित है उन नन्द-नन्दनके भारी भारसे सर्प शिथिल होगया एवं उनकी एँड़ियोंकी ठोकरसे उसके छत्र ऐसे फण चूर २ हो गये । यह देखकर उसकी स्त्री नागिनियाँ, जिनके घबड़ाहट और भयके कारण केश खुलगये हैं, अंगोंसे वस्त्र हटगये हैं परन्तु उनकी उनको कुछ भी खबर नहीं है, अत्यन्त दुःखित होकर आदिपुरुषके निकट आईं ॥ ३१ ॥ अतिविह्वल चित्तवाली उन साध्वी नागिनियोंने अपने बालकोंको आगे करके चरणोंमें गिरकर जगदीश्वरको प्रणाम किया एवं अपराधी पतिको छुड़ानेके लिये आश्रयदाता हरिका आश्रय लिया ॥३२॥ **नागकी स्त्रियाँ** कहने लगीं कि "भगवन्, आपने इस अपराधीको दण्ड दिया सो बहुत ही उत्तम और उचित किया, क्योंकि दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आपने अवतार लिया है । तथापि आप समदर्शी हैं; सन्तान और शत्रु, दोनो ही आपकी दृष्टिमें समान हैं । आपका दंड देना, अपराधीके लिये हितकारी होता है, क्योंकि आप उसकी भलाईके लिये ही उसको दंड देते हैं ॥ ३३ ॥ हमारी समझमें आपने दण्ड नहीं दिया, बरन् अनुग्रह-ही किया, क्योंकि आपके दंड देनेसे दुष्टोंके पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है । इस नागका भी पातक स्पष्ट देख पड़ता है, नहीं तो इसे सर्पकी अधम योनि क्यों मिलती ? अतएव आपका क्रोध भी इसके लिये मंगलकारी अनुग्रह है ॥ ३४ ॥ भगवन् ! किन्तु इसने पूर्वजन्ममें स्वयं अभिमानहीन हो दूसरेका सम्मान करते हुए कौन ऐसा भारी तप किया है, अथवा सब प्राणियोंपर दया करना, जो कि मुख्य धर्म है, उसे किया है ? जिससे सब जीवोंके जीवात्मा आप इस पर प्रसन्न हुए ! ॥३५॥ आपके जिस चरणरजके पानेकी अभिलाषासे स्त्री होकर भी लक्ष्मीने सब कामनाओंको छोड़ कठोरव्रतधारणपूर्वक बहुत समय तक तप किया । उसी लक्ष्मीवांच्छित आपके चरणरेणुको इस अधम सर्पने आज किस महापुण्यके बलसे शिर पर धारण किया ? सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ३६ ॥ देव ! जो जीव आपके चरणोंकी रज पा जाते हैं वे फिर स्वर्ग, चक्रवर्ती राज्य, पृथ्वीके आधिपत्य, ब्रह्मपद, योगकी सिद्धि या मुक्तिकी भी कामना नहीं करते ॥ ३७ ॥ संसारचक्रमें भ्रमण कर रहा जीव, जिस चरणरेणुके लाभकी अभिलाषा करने-से ही सब विभवोंका पात्र बनता है एवं प्रेमके सिवा और उपायोंसे जिसका मिलना एक प्रकार असम्भव है, अहो, हे नाथ, यह नागेन्द्र तमोगुणी और क्रोधी दुष्ट जीव होने पर भी उसी चरणरजको प्राप्त हुआ ! इस लिये इसको धन्य कहना चाहिये ॥ ३८ ॥ आप भगवान् अन्तर्यामी रूपसे सबके शरीरोंमें विराज-मान हैं, तथापि उनसे आच्छन्न नहीं हैं, क्योंकि आदिकारण हैं । सुतराम् इस विश्वके पहले भी आप थे, अतएव आप आकाश आदि पञ्चतत्त्वोंके आश्रयरूप हैं ।

आप कारणातीत हैं, आपको प्रणाम है ॥३९॥ आप ज्ञान और विज्ञानकी खानि हैं, क्योंकि प्रकृतिके प्रवर्त्तक हैं, विकारहीन हैं, निर्गुण हैं और अनन्तशक्तिशाली ब्रह्म हैं ॥ ४० ॥ आप काल हैं, कालशक्तिका आश्रय और कालके सब अंगोंके साक्षी हैं, अतएव विश्वरूप हैं विश्वके साक्षी, कर्ता और कारण हैं ॥४१॥ पञ्चभूत, पंचतन्मात्रा, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त—ये सब आपके रूप हैं। त्रिगुणमय अभिमानके द्वारा आप अपने अंशरूप आत्माके अनुभवको छिपाये हुए हैं ॥ ४२ ॥ आप अनन्त होनेके कारण सूक्ष्म हैं। आप कूटस्थ (मायाकी ओटमें स्थित) और सर्वज्ञ हैं। अनेक मतमतान्तरोंके वाद विवाद आपहीमें टकराकर रह जाते हैं। शब्द और अर्थ आपकी शक्तियाँ हैं। आपको प्रणाम है ॥४३॥ आप सब प्रमाणोंका मूलकारण हैं, अर्थात् चक्षु आदि इन्द्रियोंके भी नेत्ररूप हैं, अतएव कवि हैं, अर्थात् स्वयं उनके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखते। इसीसे शास्त्र(वेद) प्रकट करनेवाले हैं। आप प्रवृत्त और निवृत्त एवं अन्तिम तत्त्व हैं। आपको वारम्वार प्रणाम है ॥ ४४ ॥ हे हरि ! आप शुद्ध सत्त्वके तत्त्वसे प्रकाशमान श्रीकृष्ण, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं, आपको प्रणाम है ॥ ४५ ॥ आप गुणमय अन्तःकरणोंके प्रकाशक हैं। आप गुणोंसे अपनेको आवृत करके अनेक रूपोंसे प्रकाशित होरहे हैं। अन्तःकरणोंकी वृत्तियोंसे आपका अनुमान होता है। आप सब अन्तःकरणोंके साक्षी, अतएव स्वगोचर हैं ॥ ४६ ॥ आपकी महिमा अतर्क्य है और आप अनुमानके द्वारा सब कारणोंके अथवा सब कार्य्योंकी उत्पत्तिके प्रकाशका कारण सिद्ध हैं। आप सब इन्द्रियोंके परिचालक किन्तु आत्माराम हैं। आत्मामें रमण करना ही आपका स्वभाव है, आपको प्रणाम है ॥ ४७ ॥ आप पर (सूक्ष्म) और अवर (स्थूल) गतियोंके ज्ञाता हैं। आप सबके अध्यक्ष हैं। यह विश्व आपमें नहीं है, अर्थात् आप ही इसके निषेधकी अवधि हैं, तथापि विश्वरूप हैं। विश्वके साक्षी और विश्वका कारण हैं ॥ ४८ ॥ विभो! आप चेष्टारहित होकर भी कालशक्तिको धारण कर अपने ही गुणगण द्वारा इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। आप संस्काररूपसे वर्तमान सब विशेष २ स्वभावोंको बुद्धिशक्तिसे जगाते हुए क्रीड़ा करते हैं, आपकी लीलाएँ अमोघ हैं ॥ ४९ ॥ त्रिलोकमें जितने शान्त, अशान्त, या विज्ञ और मूढ़ योनियोंमें उत्पन्न जीवसमूह हैं वे सब आपकी ही क्रीड़ाकी सामग्री हैं। तथापि हमको जान पड़ता है कि इस समय आपको शान्त जन ही प्रिय हैं, क्योंकि आप साधुओंके धर्म्मकी रक्षाके लिये ही चेष्टा कर रहे हैं। सुतराम् शान्तजनोंकी रक्षा करनेके लिये ही आपका यह अवतार हुआ है ॥ ५० ॥ आप जगत्के स्वामी हैं, अपने भृत्यका यह पहला अपराध आप क्षमा करदें। हे शान्तरूप! यह नाग मूढ़ है, आपके रूपको नहीं जानता। इसको क्षमा करना ही योग्य है ॥५१॥ भगवन्!

प्रसन्न होइये। सर्पके प्राण निकलने चाहते हैं। हम इसकी स्त्रियाँ हैं, इसके मरनेसे हमारी अत्यन्त दुर्दशा होगी। हमारे स्वामीको प्राणदान करिये ॥ ५२ ॥ भगवन्! हम आपकी दासी हैं, हमको आज्ञा दीजिये–हम क्या सेवा करें? क्योंकि श्रद्धापूर्वक आपकी आज्ञा (वेदकी आज्ञा) पूर्ण करनेसे सब प्रकारके भय जाते रहते हैं" ॥५३॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! नागनारियों-की यह भावभरी स्तुति सुन कर भगवान्ने सर्पको छोड़ दिया। उसके फण टूट फूट गयेथे और वह पैर की ठोकरोंसे अचेत हो रहा था ॥ ५४ ॥ तब कालिया नागको कुछ २ चेत हुआ और इन्द्रियोंकी जड़ता जाती रही। प्राणलाभके बाद अतिकष्टसे लंबी साँसें लेता हुआ नाग अंजली बाँध कर हरिसे यों कातर वचन कहने लगा–"नाथ! जन्मसे ही हमारा स्वभाव दुष्ट होता है, क्योंकि हम तमोगुणी होनेके कारण बड़े ही क्रोधी होते हैं। कोई अपने स्वभावको कदापि सहजमें नहीं छोड़ सक्ता, अतएव स्वभाव असत्ग्रहके समान अनिवार्य्य है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे विधाता! अपने इस विश्वकी सृष्टि की है। अनेक गुणोंसे इस विश्वकी सृष्टि हुई है। अतएव इसमें स्वभाव, वीर्य्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकार भी विचित्र हैं ॥ ५७ ॥ भगवन्! उस विश्वमें हम सर्प जातिके प्राणी हैं; हम आपकी दुस्त्यज मायाको कैसे त्याग सक्ते हैं? हे सर्वज्ञ जगदीश्वर! आप ही चाहें तो अपनी मायासे मुक्त कर सक्ते हैं। अनुग्रह अथवा दण्ड, इनमें जो हमारे लिये भला समझिये सो करिये" ॥५८॥५९॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! भगवान् यह सुन कर कहने लगे–"सर्प! तू यहाँ नहीं रहने पावेगा; अपने परिवार, पुत्र और स्त्रियोंको साथ लेकर सागरको चला जा। अब विलम्ब न कर ॥ ६० ॥ गऊ या ब्राह्मण, इस नदीका जल पियें; तेरे यहाँ रहनेसे वे नहीं आसक्ते। इस मेरी "नागदमनलीला"को सवेरे और संध्याको जो स्मरण या कीर्तन करता है उसको तुम्हारी जातिसे भय नहीं होता। जो लोग मेरी विहारभूमिके अन्तर्गत इस सरोवरके जलमें देवतोंका तर्पण करते हैं तथा व्रत और ध्यान करके मेरा पूजन करते हैं वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। तू इस ह्रदको छोड़ कर रमणक द्वीपको चला जा। मेरा वाहन गरुड़ अब तेरा कुछ अनिष्ट न कर सकेंगे। अब तेरे माथे पर मेरे चरणोंके चिन्ह बनगये हैं, इस लिये गरुड़से तुझको भय नहीं है। **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! अद्भुत कर्म्म करनेवाले श्रीकृष्णने यों कहकर छोड़ दिया, तब नाग और नागिनियोंने प्रसन्नतापूर्वक दिव्य वस्त्र, मणि, महामूल्यके अलंकार, दिव्यगन्ध और अनुलेपन एवं श्रेष्ठ कमलमालाओंसे उनका पूजन किया। कालियाने गरुड़ध्वज जगन्नाथको पूजापूर्वक प्रसन्न किया एवं अन्तमें आज्ञा लेकर आनन्दसे प्रदक्षिणा और प्रणाम किया। तदनन्तर वह स्त्री, पुत्र और बन्धुवर्गको लेकर समुद्रके मध्यमें बने हुए रमणकद्वीपको चला गया ॥६१॥ ॥६२॥६३॥६४॥६५॥६६॥

तदैव सामृतजला यमुना निर्विषाभवत् ॥
अनुग्रहाद्भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

क्रीड़ामानवरूपी कृष्णचन्द्रके अनुग्रहसे, तबसे कालिंदीका जल विषविहीन होकर अमृतके तुल्य स्वादिष्ट होगया ॥ ६७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदश अध्याय ।

दावानलसे बचाना ।

राजोवाच—नागालयं रमणकं कस्मात्त्यत्याज कालियः ॥
कृतं किंवा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

राजापरीक्षित्ने पूछा कि भगवन्! कालिया नागने नागोंके रहनेके स्थान रमणक द्वीपको क्यों छोड़ दिया? और फिर अकेले कालियाने ही गरुड़का क्या अपराध किया था? ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजी** कहते हैं । राजन्! पहले सर्पोंने गरुड़के हाथों अपना संहार होते देख कर यह निश्चय किया कि बारी २ से महीने २ एक २ घरसे एक २ सर्प गरुड़के लिये किसी वृक्षके पास निर्दिष्ट स्थान पर धर दिया जाय ॥ २ ॥ उसीके अनुसार अपने २ परिवारकी रक्षाके लिये सब नाग पर्व २ पर गरुड़को एक एक अपने हिस्सेका नाग देने लगे ॥ ३ ॥ किन्तु विषवीर्य्यके घमण्डसे चूर कालियानागने गरुड़को अपनेसे हीन समझकर अपना हिस्सा नहीं दिया । इतना ही नहीं, बरन् औरोंकी दी हुई बलिको भी आप ही खागया ॥ ४ ॥ यह सुनकर भगवान्के प्रिय पार्षद महात्मा गरुड़को महा क्रोध हुआ और वह कालियाको मारनेके लिये उद्यत हुए ॥ ५ ॥ गरुड़को अपनी ओर महा वेगसे आते हुए देख कर, दाँत और विष ही जिसके शस्त्र हैं, वह कराल जिह्वावाला नाग, उग्र लोचनोंसे विष उगलता हुआ अपने फण उठाकर युद्ध करनेके लिये उनके सामने आया एवं जिह्वा व दाँतोंसे उनको काटने लगा ॥ ६ ॥ मधुसूदनके वाहन, प्रचण्ड वेगवाले, भीमविक्रमशाली गरुड़ने स्वर्णसदृश प्रभावाले वाम पक्षसे सर्पको आहत किया ॥ ७ ॥ गरुड़के पंखकी चोटसे कालिया अत्यन्त विह्वल होकर कालिंदीके (इसी) दहमें भाग कर चला आया । गंभीर होनेके कारण हरएक वहाँ नहीं जा सक्ता और गरुड़ भी वहाँ नहीं जा सक्तेथे ॥८॥ इसका कारण यह था कि एक समय गरुड़जीने वहाँ जाकर सौभरि ऋषिके रोकने पर भी भूखके मारे एक भारी मच्छको बलात् खा लिया ॥ ९ ॥ उस मच्छके मरनेसे

मछलियोंको दुःखित और व्याकुल देखकर मुनिको दया आई । तब उन्होने वहाँके जीवोंके कल्याणके लिये उस स्थानको निर्भय बनाते हुए कहा कि "आजसे यहाँ प्रवेश करके यदि गरुड़ किसी मछली या जीवको खा जायगा तो उसी समय उसके प्राण निकल जायँगे । यह मैं सत्य कहता हूँ" ॥१०॥११॥ इस बातको कालियानागके सिवा और कोई नाग न जानता था । इसी लिये गरुड़के भयसे वह वहाँ जाकर रहा और इस समय कृष्णचन्द्रने उसको वहाँसे निकाल दिया ॥ १२ ॥ राजन् ! इधर श्रीकृष्णचन्द्रजी दिव्य माला, गन्ध, दिव्य वस्त्र, महामणि एवं सुवर्णके आभूषणोंसे विभूषित होकर उस कुंडसे बाहर निकले ॥ १३ ॥ उनको पाकर, चेतन (प्राण) पानेपर इन्द्रियोंकी तरह, सब गोप सचेत हो हो कर उठ खड़े हुए एवं आनन्दपूर्ण मनसे प्रसन्नतापूर्वक लपक २ कर सबने उनको गलेसे लगाया ॥ १४ ॥ हे कौरव ! यशोदा, रोहिणी, नंद, अन्यान्य गोप और गोपियाँ—कृष्णसे मिलकर सचेत और प्रसन्न हुए । यहाँ तक कि पर्वतके सूखे वृक्ष, पशु, गौवें, बैल, बछड़े आदि भी परम प्रसन्न हो उठे । कृष्णके प्रभावको जाननेवाले बलदेवजी उनको गले लगाकर हँसने लगे । सबके मनकी कामना पूर्ण हुई ॥१५॥ ॥१६॥ सपत्नीक गोपगुरु ब्राह्मणोंने नन्दजीके पास आकर कहा कि "नन्दरायजी, आप बड़े भाग्यशाली हैं ! इसीसे कालिया नागके सामने जाकर भी आपका पुत्र कुशलक्षेमसे आगया । इसके लिये आप ब्राह्मणोंको धन दीजिये" । तब प्रसन्नचित्त हो कर नन्दने गौवें और सुवर्ण दिया ॥ १७ ॥ १८ ॥ महाभाग्यवती यशोदाजीने नष्ट होकर फिर मिले हुए पुत्रको छातीसे लगाकर गोदमें बैठाया और बारम्बार स्नेहके आँसू बरसाने लगीं ॥ १९ ॥ सब व्रजवासीगण भूख प्यास और थकावटसे शिथिल हो रहे थे, इसलिये उस रातको वहीं कालिंदीके किनारे गौवों सहित बस रहे ॥ २० ॥ आधी रातको रेंड़के वनसे आप ही आप दावानल प्रकट हुआ । चारो ओरसे व्रजवासियोंको घेरे हुए वह अग्नि क्रमशः बढ़ने लगा । व्रजवासी घबड़ा कर उठ खड़े हुए । सबने देखा कि अब इससे बचना कठिनतर है, तब वे माया-मनुष्यरूप कृष्णचन्द्रके शरणागत हुए ॥ २१ ॥ २२ ॥ सबने हाथ जोड़ कर कहा कि हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगीश्वर ! हे महाभाग अमित-विक्रमशाली बलदेवजी ! देखो यह घोर अग्नि, हम आपके जनोंको भस्म करना चाहता है ॥२३॥ हे प्रभो ! हम आपके सुहृद्जन हैं । कृपा करके इस सुदुस्तर कालानलसे हमारी रक्षा करो । हम मरनेसे नहीं डरते, किन्तु आपके अकुतोभय चरणोंका वियोग हमको असह्य है ॥२४॥

इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥
तमग्निमपिबत्तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥ २५ ॥

अपने जनोंको इस प्रकार व्याकुल होते देखकर जगदीश्वर अनन्तशक्तिशाली कृष्णचन्द्र उस तीव्र अग्निको पी गये ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादश अध्याय ।

प्रलम्बासुर वध ।

श्रीशुक उवाच—अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥
अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले । हे राजन्! तदनन्तर श्रीकृष्णजीने आत्मीय और स्वजनोंसहित हर्षित गोपों और गोपियोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए गौवोंसे शोभित व्रजमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ गोपालन जिस मायाका छलमात्र है—उसी मायाके द्वारा बलदेव और श्रीकृष्णजी व्रजमें नित्य नई लीलाएँ करते हुए विहार करने लगे । इसी अवसरमें ग्रीष्मऋतु आगई । यद्यपि ग्रीष्मऋतु प्राणियोंको बहुत प्रिय नहीं होती तौ भी साक्षात् भगवान् जिसमें बलदेवसहित वास और विहार करते हैं उस वृन्दावनके गुणोंसे वहाँ पर वसन्त ऐसा जान पड़ता था ॥२॥३॥ उस ग्रीष्मऋतुमें भी वृन्दावन झरनोंके शब्द और झिल्लियोंकी झनकारसे पूर्ण था, और झरनोंसे उड़े हुए जलके कणोंसे हरे भरे वृक्षवृन्द निरन्तर सजीव देख पड़ते थे, अर्थात् ग्रीष्मके तापसे मुरझाते न थे ॥ ४ ॥ जिस स्थानमें तृण या घास नहीं थी वहाँ भी ग्रीष्मके सूर्य्य और अग्निका ताप व्रजवासियोंको नहीं सताता था, क्योंकि नदी, सरोवर और झरनोंके सुशीतल जलकण एवं पद्म और उत्पल आदि कमलोंके सुगन्धित परागसे परिपूर्ण सुन्दर मन्द पवन उनको शीतल करता रहता था ॥ ५ ॥ अथाह जल जिनमें भरा हुआ है उन नदियोंकी तरंगें किनारोंसे टकराकर वहाँकी कीचको बहा ले जाती थीं । सूर्य्यकी किरणें, विषके तुल्य तीव्र होकर भी वहाँकी पृथ्वीके रस(तरी)को नहीं हर सकीं और न हरियालीको ही सुखा सकीं ॥ ६ ॥ रमणीय वृन्दावनके सब वृक्ष चित्र विचित्र फूलोंसे मनोहर हो रहेथे, उनके पास और उन पर विचित्र मृग और पक्षी शब्द करते और मोर तथा भौंरे गाते एवं कोकिला और सारसोंके सरस स्वर सुन पड़ते थे ॥ ७ ॥ वहाँ विहार करनेकी इच्छा करके, भगवान् कृष्णने बलदेवसहित गोपगणके साथ गोवृंदको आगे कर बाँसुरी बजाते हुए उस वनमें प्रवेश किया ॥ ८ ॥ प्रबाल, मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे और माला एवं भाँति २ की धातुओंसे अपनेको विभूषित करके, बलदेव और श्रीकृष्णचन्द्र, गोपबालकोंके साथ नाचने,

कुश्ती लड़ने एवं अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करने लगे ॥ ९ ॥ कृष्णके नाचते समय कोई बालक गाने, कोई ताली और कोई सींग बजाने लगा और कोई प्रशंसा करने लगा ॥१०॥ महाराज! नट जैसे नटकी उपासना करें वैसे ही गोपरूपमें छिपे हुए देवगण कृष्ण और बलदेवकी पूजा व प्रशंसा करते थे ॥ ११ ॥ महाराज! छोटे २ काकपक्ष (पट्टे) रखाये हुए कृष्ण और बलदेव, समय २ पर घूमते, फाँदते, उचकते, ताल ठोंकते, रेलमरेला करते आपसमें मल्लयुद्ध(कुश्ती)का अभ्यास करते हुए विहार करते थे। कभी और गोपोंके नाचने पर, आप दोनो भाई बाजे बजाते और "वाह २" कहकर उनकी बड़ाई करते थे ॥१२॥१३॥ कभी बेल, आमला और कुंभ वृक्षके फलोंको उछालकर खींच २ के मारकर खेलते। कभी फलबुझौवल, कभी लुकीलुकौवल, कभी आँखमूँदी-धप आदि खेल खेलते एवं कभी पशुओं और पक्षियोंकी चेष्टाओंका अनुकरण करके प्रसन्न होते थे ॥१४॥ कभी मेंढकके समान कूद २ कर चलतेथे, कभी हँसते हुए परस्पर बालकोंके बाहुओंकी डोली बना कर उस पर झूलते, कभी परस्पर हँसी करते, कभी राजाकी नकल करते थे ॥ १५ ॥ इस प्रकारके अनेक लौकिक प्राचीन खेल खेलते हुए श्रीकृष्णचन्द्र साथियोंसहित वनके बीच नदी, पर्वत, कन्दरा, कुंज, सरोवर और बागोंमें विचर रहे थे ॥ १६ ॥ इधर तो बलदेव और श्रीकृष्णजी गोपोंके साथ गौवोंको चराते हुए प्रीतिपूर्वक खेलमें लगे हुए थे, उधर प्रलम्ब नाम असुर, कृष्ण-बलरामको हर ले जानेके लिये गोपरूपसे वनमें आया ॥ १७ ॥ सबके अन्तर्यामी हरि सब जानगये, उन्होने उसको मारनेके विचारसे अपने दलमें प्रसन्नतापूर्वक मिलजाने दिया ॥ १८ ॥ तब खेलनेमें निपुण कृष्णने सबको पास बुला कर कहा-"मित्रो! आओ हम सब अवस्था और बलके अनुसार दो दल बनाकर परस्पर क्रीड़ा करें" ॥ १९ ॥ कृष्णका कहना मान कर उन गोपोंमेंसे कुछने श्रीकृष्णको और कुछने बलरामको अपना नायक बनाया और खेलने लगे ॥२०॥ इसमें एक दलवाले दूसरे दलवालोंको पीठ पर चढ़ाकर किसी निर्दिष्ट स्थान तक ले जाते थे; उसमें जीतनेवाले चढ़ते थे और हारनेवाले उनको लादते थे ॥२१॥ इस प्रकार खेलते हुए गोपगण गौवें चराते कृष्णको आगे किये भाण्डीरक नाम वटके निकट गये ॥ २२ ॥ जब बलदाऊके दलवाले श्रीदामा आदि गोपगण खेलमें जीत गये तब श्रीकृष्णके पक्षवाले गोप, उनको अपनी पीठ पर लादकर निर्दिष्ट स्थान पर ले चले ॥ २३ ॥ हारे हुए श्रीकृष्णने श्रीदामाको, भद्रसेनने वृषभको और प्रलम्ब असुरने बलदेवजीको लादा ॥ २४ ॥ कृष्णको अपनेसे अधिक एवं अपनेको बहुत देर तक बलदेवका बोझा सँभालनेमें असमर्थ जान कर वह दैत्य कृष्णकी दृष्टि बचा कर वेगसे बलदेवको ले चला और निर्दिष्ट स्थानसे आगे निकल गया ॥ २५ ॥ उस दैत्यका शरीर पानी-भरे मेघके समान काला था और

उसके सब अंगोंमें सुवर्णके आभूषण चमक रहेथे । पर्वतराजके समान जिनका भार है उन बलरामको ले जाते समय वह दानवदामिनीमण्डलीमण्डित चन्द्रमाधारी गतिशील श्यामवर्ण मेघके तुल्य जान पड़ता था ॥ २६ ॥ उसका शरीर आकाशमार्गमें बड़े वेगसे जा रहा था, उसके दोनो नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही थीं, डसकी भयानक भ्रुकुटीयुक्त कुटिल दृष्टि बहुतही रौद्र थी । उसके केश जलते हुए अग्निकी शिखाके समान ताम्रवर्ण थे, मुखमण्डल किरीट और कुण्डलोंकी झलकसे प्रकाशित था । उस दैत्यने बनावटी मनुष्यरूप छोड़कर जब अपना असली शरीर प्रकट किया तब उसके इस अद्भुत रूपको देख कर पहले तो बलदेवजी कुछ विस्मित और भीत होगये ॥२७॥ किन्तु तत्क्षण ही अपनी महिमाको स्मरण करके निर्भय बलभद्रने दृढ़ मुष्टिसे, जैसे इन्द्रदेव किसी पर्वत पर वेगसे वज्र मारें वैसे ही गोपदलसे अलग करके अपनेको ले जारहे उस दैत्यके शिर पर कुपित होकर प्रहार किया ॥ २८ ॥ महाराज! मुष्टि लगते ही उसका शिर फटगया, मुखसे रुधिर गिरने लगा, स्मृतिशक्ति नष्ट होगई । वह मरतेसमय इन्द्रके वज्र द्वारा आहत पर्वतकी भाँति एक बार भैरव रव करके गिरपड़ा ॥२९॥ बलशाली बलदेवजीने प्रलम्बासुरका वध किया, यह देख कर गोपोंको बड़ा विस्मय हुआ और वे बारम्बार उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३० ॥ कोई २ महाबली और प्रशंसाके योग्य पात्र बलदेवको आशीर्वाद देने लगे । जैसे कोई मरकर मिला हो वैसी ही उत्सुकताके साथ वे लोग बलदेवजीसे गले मिलने लगे ॥ ३१ ॥

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः ॥
अभ्यवर्षन्बलं माल्यैः शशंसुः साधुसाध्विति ॥ ३२ ॥

पापी प्रलम्बासुरके मरनेसे देवगणको परम आनन्द हुआ और वे बलदेवके ऊपर फूलोंकी वर्षा करते हुए "वाह वाह" कहकर बारम्बार उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

पशु और गोपोंकी दावानलसे रक्षा ।

श्रीशुक उवाच-क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः ॥
स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । एक दिन सब गोप क्रीड़ामें आसक्त हो रहेथे । इसी अवसरमें उनके पशु, किसी रोकनेवालेके न होनेसे इच्छानुसार विचरते

हुए तृणके लोभसे दूर निकल कर अगम्य तृणपूर्ण स्थानको चले गये ॥ १ ॥ बकरी, गऊ और भैंसें एक वनसे दूसरे वनमें जा कर तृण चरने लगीं। अकस्मात् वहाँ निकट ही दावानल लग गया। उस दावानलके तापसे तपे हुए प्यासे पशुगण चीत्कार करते हुए भागे और अन्तको मूँजके वनमें घुसगये ॥ २ ॥ इधर कृष्ण बलदेव आदि गोपगण, पशुओंको न देखकर पछताते हुए उनकी खोज करने लगे, किन्तु उन्होने उनको न देख पाया ॥ ३ ॥ पशुही गोपोंकी जीविका थे। उस जीविकाको नष्ट होते देख गोपगण अचेतसे होगये एवं पशुओंके खुर और दाँतोंसे कटे हुए तृणों और पृथ्वी पर बने हुए खुरोंके चिन्होंसे उनके जानेकी राह पहचानते हुए आगे चले ॥ ४ ॥ अन्तको मूँजके वनमें राह भटके हुए चिल्ला रहे अपने गोधनको देखपाया। प्यासे और थके हुए गोपगण अपने गोधनको पाकर वहाँसे लौटे ॥ ५ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने मेघसदृश गंभीर वाणीसे नाम ले २ कर बुलाया, तब अपने २ नामको सुन कर गौवें प्रसन्न हुईं और उन्होने उत्तरसूचक प्रतिध्वनि भी की ॥ ६ ॥ इसी अवसरमें वनवासियोंको नष्ट करनेवाला भयानक दावानल प्रकट हुआ और प्रचंड वायुकी सहायतासे घड़ी २ भर पर घोर रूप धारण कर रही लपटोंसे आसपासके स्थावर (वृक्षआदि) और जंगम (पशुपक्षी–मनुष्यआदि) जीवोंको भस्म करता हुआ इच्छानुसार फैलने लगा ॥ ७ ॥ उस दावानलको अपने निकट ही आगया देख कर गौवें और गोपगण भयके मारे व्याकुल हो गये और सब प्राणी जैसे मृत्युके भयसे आर्त होकर शरणागत होते हैं वैसे ही वे कातर गोपगण बलदेव और कृष्णके पास आकर कहने लगे कि ॥ ८ ॥ "हे कृष्ण! हे बलभद्र! आपका वीर्य्य महान् और विक्रम अमित है। हम लोग इससमय दावानलसे भयभीत हो रहे हैं। कृपाकर इससे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण! यह बात निश्चित है कि आप जिनके बांधव हैं या आपके जो बांधव (जन) हैं उनको किसी प्रकारका क्लेश नहीं होना चाहिये। हे सर्वधर्मज्ञ! हम तो आपको ही अपना नाथ समझे हैं और आप ही हमारी परम गति हैं" ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि राजन्! भगवान् हरिने बंधुओंके कातर वचन सुन कर कहा–"डरना नहीं, आँखें बंद कर लो" ॥ ११ ॥ आज्ञाके अनुसार उन्होने जब नेत्र बंद कर लिये तब योगेश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने उस अग्निको पी लिया। इस प्रकार अग्निको शान्त कर हरिने अपने जनोंकी रक्षा की ॥ १२ ॥ तदनन्तर गोपोंने आँख खोल कर देखा तो अपनेको भांडीर वटके निकट पाया। इस प्रकार अपनेको गौवेंसहित दावानलसे विमुक्त देख कर वे बहुत ही विस्मित हुए ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णके उस अनिर्वचनीय योग-वीर्य्य और योगमायाके अद्भुत प्रभाव एवं अपनेको दावानलसे छुड़ानेके मांगलिक कार्यपर विचार कर गोपोंने जाना कि कृष्ण कोई देवता हैं ॥ १४ ॥

सायंकालको बलदेवसहित श्रीकृष्णजी, गौवें लौटा कर बलदेवजीके साथ बंशी बजाते हुए और पीछे २ आ रहे गोपोंके मुखसे अपनी बड़ाई सुनते हुए व्रजको लौटे ॥ १५ ॥

गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने ॥
क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाभवत् ॥ १६ ॥

गोविन्दको देख कर गोपियाँ परम आनन्दको प्राप्त हुईं । गोपियोंको कृष्ण-वियोगके अवसर पर एक क्षण सौ युगके समान जान पड़ता था ॥ १६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंश अध्याय ।

वर्षा और शरदृतुका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच–तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥
गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । गोपोंने व्रजमें आ कर कृष्णके हाथों दावानलसे अपनी रक्षा और बलभद्रके हाथों प्रलंबासुरका मारा जाना, ये दोनो अद्भुत कर्म गोपियोंसे कहे ॥ १ ॥ गोपियाँ और वृद्ध गोपगण यह वृत्तान्त सुन कर बहुत ही विस्मित हुए । उन्होने समझा कि ये कृष्ण और बलदेव कोई श्रेष्ठ देवता हैं, जो व्रजमें प्रकट हुए हैं ॥२ ॥ महाराज! कुछ दिन बाद, प्रायः सब प्राणियोंकी उत्पत्ति जिसमें होती है उस वर्षाऋतुका आविर्भाव हुआ । घनघटाओंसे आकाशको भी क्षोभ हुआ और इन्द्रधनुके घेरोंसे उसकी अपूर्व शोभा हुई ॥ ३ ॥ वर्षाके आरंभमें अत्यन्त नील मेघोंसे ढँका हुआ और बिजलीके शब्दोंसे परिपूर्ण आकाश, जिसकी ज्योति स्पष्ट नहीं है उस सगुण ब्रह्मके समान देख पड़ने लगा ॥ ४ ॥ जैसे राजा, सदैव अपनी प्रजासे ' कर ' ले कर समय पड़ने पर उसी प्रजाके लिये उस धनको खर्च करता है वैसे ही आठ महीने तक सूर्य्यदेवने पृथ्वीसे जो जलरूप धन खींचा था वही वर्षाऋतु आने पर अपनी किरणोंसे छोड़ने(बरसाने)लगे ॥५॥ जैसे दयाशील लोग सन्तप्त जनको देख कर दयाके मारे उसकी तृप्ति (शान्ति)के लिये अपना जीवन तक दे देते हैं वैसे ही प्रचण्ड वायुद्वारा संचालित एवं दामिनी-दाममंडित महामेघमंडल, ग्रीष्मकी गर्मीसे तपे हुए विश्वकी तृप्तिके लिये जीवन-रूप जलकी वर्षा करने लगा ॥ ६ ॥ जैसे किसी कामनाके लिये तप करनेसे किसी तपस्वीका शरीर, दुर्बल हो कर–फिर वह कामना पूरी होने पर हृष्ट पुष्ट हो जाय

वैसे ही ग्रीष्मऋतुमें कृश होगई पृथ्वी, वर्षाका जल पा कर हरी भरी होगई ॥७॥ सायंकालमें घोर अंधकारके कारण केवल जुगनुओंकी ज्योति देख पड़ने लगी और चन्द्रआदि ग्रहोंका प्रकाश छिप गया, जैसे कलियुगमें पापके प्रतापसे पाखण्डपथ इधर उधर प्रकाशित होंगे और वेदमार्ग लुप्तप्राय हो जाय गा ॥ ८ ॥ जैसे नित्य-कर्म समाप्त होने पर आचार्य्यके शब्दको सुन कर पीछे २ शिष्य लोग भी स्वाध्याय पाठ करने लगते हैं वैसे ही मेघनादको सुन कर मेंढक भी अपना शब्द करने लगे ॥९॥ जो पहले जलके बिना सूख रही थीं वे छोटी२ नदियाँ, इन्द्रियोंके वशवर्ती पुरुषके देह धन और सम्पत्तिके समान कुमार्गमें जाने लगीं ॥ १० ॥ यह पृथ्वी, कहीं हरी घासके कारण हरी हो कर, कहीं बीरबहूटियोंसे लाल हो कर और कहीं छत्ररूप छत्राक(धरतीका फूल)की छाया धारण करके राजोंकी सेना-सम्पत्तिके समान शोभित हुई ॥ ११ ॥ सब खेत अपनी नवसस्य-संपत्तिसे किसानोंको आनन्द एवं "सुकाल और अकाल दैवके अधीन है"–इस बातको न जाननेवाले धनी महाजनों(अन्नके व्यापारियों)को सन्ताप देने लगे ॥ १२ ॥ लोग हरिकी सेवा करके जैसे सौंदर्य्य पाते हैं वैसे ही सब जल और स्थलके रहनेवाले जीवोंने नवीन जलके सेवनसे मनोहर रूपको पाया ॥ १३ ॥ वायुके संगसे चंचल हुई तरंगोंसे पूर्ण समुद्र, नदियोंसे मिल कर, कच्चे योगीके विषय-वासना पूर्ण और भोगसङ्गत चित्तके समान क्षोभको प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥ जिनका चित्त भगवान्में लगा हुआ है वे अनेक संकटोंके आ पड़ने पर जैसे व्यथित नहीं होते वैसे ही पर्वतसमूह, वर्षाके बड़े २ बूँदोंकी चोटें खा कर भी विचलित नहीं हुए ॥ १५ ॥ बढ़ी हुई घाससे ढँके हुए सब संस्कारविहीनमार्ग संदिग्ध हो गये, जैसे बहुत समयसे जिनका अभ्यास (पठन पाठन) ब्राह्मणोंके द्वारा नहीं हुआ वे मंत्र नष्टप्राय और संदिग्ध हो जाते हैं ॥ १६ ॥ गुणी पुरुषों पर भी जैसे कुलटाओंका प्रेम स्थिर नहीं रहता, वैसे ही चंचल बिजलियाँ भी लोकोंका उपकार करनेवाले मेघोंके निकट स्थिर हो कर रहती नहीं देख पड़तीं ॥ १७ ॥ गुणसमष्टिमय इस प्रपञ्चमें जैसे निर्गुण पुरुष विराजमान है वैसे ही घनगर्जनसे पूर्ण आकाशमें गुण-(प्रत्यञ्चा) हीन इन्द्रका धनुष सुशोभित हुआ ॥ १८ ॥ जैसे जीवात्मा अपने ही चैतन्यसे प्रकाशित जो अहंकार है उससे आच्छन्न होनेके कारण भली भाँति प्रकाशित नहीं होता वैसे ही चन्द्रमा भी अपनी ही कान्तिसे प्रकाशित मेघोंसे आच्छन्न होनेके कारण भली भाँति प्रकाशित नहीं होता था ॥ १९ ॥ गृहमें रहते २ जिनका अन्तःकरण सांसारिक तापोंसे तप गया है वे विरक्त पुरुष जैसे अपने घरमें हरिभक्तके आगमनसे सन्तुष्ट होते हैं वैसे ही मयूरवृन्द मेघोंके आगमनसे प्रसन्न हो कर नृत्य आदिके द्वारा हृदयकी प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥ २० ॥ घोर तपके श्रमसे कर्शित ऋषि लोग जैसे अनुष्ठानके पीछे तपके द्वारा प्राप्त भोगोंका

उपभोग करके नाना भाँतिके नवीन शरीर धारण करते रहते हैं वैसे ही ग्रीष्मके घोर घाममें तपे मुरझाये और सूखे हुए सब वृक्ष भी जड़से जल पान करके भाँति २ के रूपोंसे सुशोभित हुए ॥ २१ ॥ यद्यपि गृहस्थाश्रममें भयानक कर्मोंका अभाव नहीं है तौ भी जैसे अधिकतर दुराशय नीच व्यक्ति उसीमें रहना अच्छा समझते हैं, वैसे ही यद्यपि वर्षामें सरोवरोंके किनारे कीचड़, कंकड़ और काँटोंकी अधिकता होती है तौ भी चक्रवाक (चकई चकवा) पक्षी वहीं रहने लगे ॥२२॥ जैसे कलियुगमें पाखंडियोंके नष्ट तर्कोंसे वेदमार्ग नष्टभ्रष्ट हो जायँगे वैसे ही इन्द्रके बरसने पर जलके वेगसे सेतु (पुल) टूट गये ॥ २३ ॥ जैसे नरपतिगण, पूजनीय पुरोहित ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे समय २ पर प्रजाकी अनेक कामनाएँ पूरी करते हैं वैसे ही मेघगण, वायुसंचालित हो कर प्राणियोंके लिये अमृत(जल)की वर्षा करने लगे ॥ २४ ॥ वर्षाऋतुमें सब वन, उपवन और निकुञ्ज नवसम्पत्तिसे सुशोभित हो उठे और जहाँ तहाँ खजूर व जामुनके वृक्ष पके हुए फलोंसे लद गये। तब श्रीकृष्णजी, बलभद्रसहित गऊ और गोपालोंको साथ ले कर क्रीड़ा करनेके लिये वहीं (वृंदावनमें) गये ॥ २५ ॥ दूध भरे थनोंके भारसे मंद २ चलनेवाली गौवें, भगवान् जब उनको नाम ले ले कर पुकारते तब परम प्रीतिसे जल्दी २ पैर धरती हुई प्रभुके पास जाती थीं। चलते समय उनके थनोंसे दूध निकलता जाता था ॥ २६ ॥ भगवान्ने देखा कि सब वनवासी आनन्दित देख पड़ते हैं, फूले हुए वृक्षोंसे मधुमय पराग(रज)की वर्षा हो रही है, घटाएँ घिरी हुई हैं, पर्वत पर जलकी धाराएँ गिर रही हैं, उनके सोहावने शब्दसे पर्वतकी कंदराएँ गूँज रही हैं ॥२७॥ श्रीकृष्णजी जल बरसते समय कभी किसी सघन वृक्षके तले, कभी किसी कंदराके भीतर बैठ कर बलभद्र और सखागण साथ कन्दमूलफलभोजन और अनेक क्रीड़ाएँ करते थे, एवं कभी जलके किनारे शिला पर बैठ कर घरसे आये हुए दही और भातको खाकर बहुत ही प्रसन्न होते थे॥२८॥२९॥ वनमें अपने दूध भरे स्तनोंके भारसे चलनेमें थकी हुई गौवें, बैल और बछड़े सब भलीभाँति तृप्त हो कर नई घास पर बैठे हुए आँखे मूँदे सुखसे पागुर कर रहे हैं ॥ ३० ॥ इस प्रकार अपने पशुओंको सुखी और मस्त देख कर एवं वर्षाकालके सब जीवोंको सुखी बनानेवाली अपूर्व वनकी शोभा निहार कर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने अपनी शक्तिके द्वारा समृद्धिसम्पन्न वर्षाके सुहावनेपनको हृदयसे सराहा ॥ ३१ ॥ इस क्रीड़ाकौतुकमें आसक्त श्रीकृष्ण बलदेवने व्रजमें विहार करते हुए वर्षाऋतुको बिता दिया। वर्षा बीतने पर शरद् ऋतुका आविर्भाव हुआ । तब आकाशमें मेघोंका नाम भी नहीं रहा, जल विमल और वायुका वेग भी शान्त होगया ॥ ३२ ॥ फिर जैसे योगाभ्यास करनेसे भ्रष्ट योगियोंके चित्त शुद्ध हो जाते हैं वैसेही कमल उपजानेवाली शरद्के फिर आनेसे

सरोवरोंके जल निर्मल और स्थिर हो गये ॥ ३३ ॥ जैसे श्रीकृष्णकी भक्ति हरएक आश्रममें स्थित व्यक्तिके अमंगलको हरलेती है वैसेही शरद्ने आकाशके मेघोंको, वर्षा अधिक होनेके कारण प्राणियोंके एक स्थान पर रहनेको, पृथ्वीकी कीचड़को और जलके मलको हर लिया ॥ ३४ ॥ जैसे पापोंसे मुक्त मुनिजन सब वासनाएँ छोड़ कर शान्त रूपसे शोभा पाते हैं वैसेही मेघवृंद अपना सर्वस्व (जल) देकर शुद्ध (श्वेत) रूपसे सुशोभित हुए ॥ ३५ ॥ जैसे ज्ञानी लोग समयानुसार ज्ञान-रूप अमृत (उपदेशके द्वारा) देते हैं और नहीं भी देते, वैसेही पर्वतसमूह (झरनों द्वारा) कहीं निर्मल जल देते हैं और कहीं नहीं भी देते ॥ ३६ ॥ जैसे मूढ़ परिवारी मनुष्य, अपनी आयुका नित्य क्षीण होना नहीं जानते, वैसे ही थोड़े जलमें रहनेवाले जलजीव जलके नित्य घटनेको नहीं जानते ॥ ३७ ॥ दीन, दरिद्र, इन्द्रियपरवश कुटुम्बी पुरुषके समान थोड़े जलमें रहनेवाले जीवोंको शरद् कालके सूर्यतापकी तपन व्यथित करने लगी ॥ ३८ ॥ जैसे धीर जन, आत्मासे भिन्न जो देह आदि हैं उनमें अहंभावरूप ममताको धीरे २ छोड़ देते हैं वैसे ही भूमि अपनी कीचड़को और लताएँ अपनी कचाईको धीरे २ छोड़ने लगीं ॥ ३९ ॥ जैसे संपूर्णरूपसे कर्मनिवृत्ति होने पर मुनिलोग वेदपाठ छोड़ समाधिस्थ और शान्त हो जाते हैं वैसेही शरद् ऋतुके आने पर समुद्रका जल निश्चल और शब्दहीन हो गया ॥ ४० ॥ इन्द्रियोंके द्वारा नष्ट होरहे प्राण (शक्ति) को जैसे योगी लोग इन्द्रियमार्गोंको रोक कर सुरक्षित रखते हैं वैसे ही किसान लोगोंने इधर उधर बहे जारहे जलको मेड़ बाँध कर खेतोंमें ही रोक लिया ॥ ४१ ॥ जैसे विद्या (ज्ञान) से देहाभिमान और गोपालके दर्शनसे गोपियोंका विरहताप मिट जाता है वैसे ही चन्द्रमाकी शीतल किरणोंके स्पर्शसे, शरद् ऋतुके सूर्यकी प्रचण्ड तपनसे तपे हुए लोगोंका ताप शान्त हो जाता था ॥ ४२ ॥ जैसे सत्वगुणावलंबी चित्त, सब वेदके मार्गोंको या वेदके अर्थोंको दिखला कर शोभा पाता है वैसे ही शरद् ऋतुमें मेघविहीन आकाश रात्रिके समय तारागणको प्रकाशित कर शोभायमान हुआ ॥ ४३ ॥ जैसे पृथ्वीमण्डलमें वृष्णिमण्डलके बीच यदुपति कृष्णचन्द्रकी शोभा हो वैसे ही तारामण्डलमण्डित होनेसे आकाशमें अखण्डमण्डल चन्द्रमा शोभायमान हुआ ॥ ४४ ॥ कृष्णमें ही जिनके प्राण रहते हैं वे गोपियाँ जैसे चित्तके द्वारा प्राणप्यारे कृष्णसे मिल कर विरहसन्तापको दूर करती हैं वैसेही कुसुमित वनोंसे आरहे समशीतोष्ण पवनका सेवन करनेसे सबके हृदय शीतल होने लगे । अथवा उस वायुके सेवनसे सबके हृदय तापहीन होते थे, किन्तु गोपियोंके हृदयमें, श्रीकृष्णके विरहानलकी तपन घटनेके बदले और भी बढ़ती थी ॥ ४५ ॥ जो कर्म केवल ईश्वरकी आराधनाके लिये निष्काम भावसे किये जाते हैं उनके फल बलपूर्वक उनका अनुसरण करते हैं,

जिससे वे कर्म आपही भोग-गर्भ (सब भोगोंके उपजानेवाले) हो जाते हैं। वैसेही शरद् ऋतुमें स्वामियोंके बलपूर्वक अनुगमनसे गऊ, चिड़ियाँ, हरिणियाँ और स्त्रियाँ अपनी इच्छा न रहने पर भी गर्भिणी होगईं ॥४६॥ राजन्! जैसे राजाको देख कर सब लोग निर्भय होकर प्रसन्न होते हैं किन्तु चोर लोग संकुचित और अप्रसन्न रहते हैं, वैसे सूर्य्यके उदयमें कुमुद (कोकाबेली) के सिवा सब कमल फूल उठे ॥ ४७ ॥ गाँवों और नगरोंमें नवान्नभोजनके उपलक्ष्यमें किये गये अनेक वैदिक उत्सवों और इन्द्रियोंकी तुष्टिके लिये अनेक लौकिक महा उत्सवोंसे एवं हरिकी दोनो कलाओं (कृष्ण और बलदेव)से, पके हुए अन्नसे परिपूर्ण पृथ्वीकी बड़ीही शोभा हुई ॥ ४८ ॥

वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्यार्थान्प्रपेदिरे ॥
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान्काल आगते ॥ ४९ ॥

जैसे मंत्र आदिके प्रभावसे योगसिद्ध सिद्धलोग जबतक आयु पूर्ण नहीं होती तबतक उसी शरीरमें रह कर समय आने पर योगसिद्धियोंके द्वारा मिलनेवाले अपने २ देव, गंधर्व आदि शरीरोंको पाते हैं वैसे ही चौमासेके कारण किसी एकही स्थानमें चार महीने रुके हुए वणिक्जन (बनिज करनेवाले), राजा, तपस्वी और यात्रीजन यात्रा करके अपने २ काममें लगगये ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंश अध्याय ।

गोपिकागीत ।

श्रीशुक उवाच—इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना ॥
न्यविशद्वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! शरद् ऋतुके आनेसे वनके जलाशयोंका जल स्वच्छ होगया एवं वायु भी कमलमंडित सरोवरोंके संसर्गसे सुगंधित होकर डोलने लगा। भगवान्ने ऐसे समय गोप और गौवोंको साथ लेकर विहार करनेके लिये वृन्दावनमें प्रवेश किया ॥ १ ॥ फूले हुए वृक्षोंकी पाँतियों पर मतवारे भौंरे और पक्षीगण बैठेहुए मधुर कलरव कर रहे हैं और उनके उस शब्दसे वनके सरोवर नदियाँ और सब पर्वत प्रतिध्वनित हो रहेहैं। मधुसूदन, उस वनमें प्रवेश करके गोपगण और बलभद्रके साथ गौवें चरातेहुए मधुर स्वरसे बंशी बजाने लगे ॥ २ ॥ कृष्णकी बाँसुरीका शब्द सुनकर गोपियोंके मनमें

उत्पन्न हुए कामदेवने अपना अधिकार कर लिया। उनमें कोई २ गोपी कृष्णके पीछे सखियोंसे उनके गुणोंका वर्णन करने लगीं ॥ ३ ॥ किन्तु वर्णन करते समय उनके चरित्रोंका स्मरण हो आया, तब कामदेवके प्रबलवेगसे चित्त चञ्चल होनेके कारण कुछ देर तक वे कुछ भी न कहसकीं ॥ ४ ॥ वे सोचने लगीं कि "मोर-पंखोंका मुकुट पहने, कानोंमें कनैरके फूल धारण किये, सुवर्णके समान सुवर्ण पीत-पट और वैजयन्ती मालासे सुशोभित कृष्णचन्द्रने बाँसुरीमें अधरसुधा पूर्ण करते हुए उसके छिद्रोंमें अँगुली धरकर स्वर निकालते हुए अपने चरणोंके विहारकी भूमि वृंदावनमें गोपगणके साथ उनके मुखोंसे गाईगई अपनी कीर्ति सुनतेहुए नटवर वेषसे प्रवेश किया होगा" ॥ ५ ॥ हे राजन्! सब प्राणियोंके लिये मनोहर मुरलीके स्वरको सुनकर सब व्रजबालाएँ परस्पर इस प्रकार प्यारे कृष्णका वर्णन कर अपने मनको बहलाने लगीं ॥ ६ ॥ गोपियाँ कहने लगीं । "हे सखियो! इस समय व्रजके स्वामी दोनो भाई कृष्ण और बलदेवने साथी गोपगणके साथ वनमें प्रवेश किया है। बाँसुरी बजाते समय अनुरागपूर्ण कटाक्षोंसे मनोहर उनका मुखारविन्द जिन्होने देखा होगा उनको नेत्रोंका परम या चरम फल मिल गया! क्योंकि हमारी समझमें इससे बढ़कर नेत्र होनेका कोई फल नहीं हो सक्ता" ॥७॥ यह सुनकर दूसरी गोपीने कहा कि "अहो! इन गोपोंने कौन बड़ा भारी सुकृत किया है! जो कृष्ण और बलदेव समय २ पर इनकी सभाओंमें नील और पीतवस्त्र पहन कर विचित्र वेषसे इनकी शोभा बढ़ाते हैं एवं उनके नीलवसन और पीतपट पर आमकी मंजरी, मयूरोंके पंख, कमलके फूल और पद्मकी मालाएँ एक अनिर्वच-नीय छवि दिखलातीहैं। जैसे रंगभूमिमें दो श्रेष्ठ नट गा रहे हों वैसे ही गोपोंकी सभामें दोनो भाई बाँसुरी बजाते और गाते देख पड़ते हैं" ॥ ८ ॥ किसी अन्य गोपीने कहा कि "गोपियो! इस वंशीने कौन ऐसा पुण्य कियाहै? देखो, दामोदरके अधरोंकी सुधा, जिसके पीनेका अधिकार केवल हम गोपियोंको है, उसको रसमात्र अवशिष्ट रखकर स्वयं स्वतन्त्रताके साथ अकेले ही पिये जाती है। जिनके जलसे इस वंशीका शरीर पुष्ट हुआ है वे नदियाँ इसका यह अपूर्व सौभाग्य देख कर प्रसन्न हो रही हैं और उन नदियोंके बीच फूलेहुए कमलोंकी श्रेणी देखकर जान पड़ता है कि हर्षके मारे उनके शरीरमें रोमांच हो आया है। वंशमें हरिसेवक संतानरत्न उत्पन्न होने पर उसे देखकर कुलके बूढ़े लोग, जैसे आनन्दके आँसू बहाते हैं वैसे ही वंशीके ऐसे अपूर्व सौभाग्यको देखकर उसके वंशके सब पुराने वृक्ष मधुधारारूप आँसू बरसा रहे हैं" ॥ ९ ॥ किसी गोपीने कहा—"सखी! देखो देखो, श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंके संसर्गसे यह श्रीवृन्दावन कैसी शोभा पाता है! गोविंदकी वंशीके स्वरसे मस्त मोर नाच रहेहैं और उस आनन्दमय नृत्यको अन्य सब प्राणी पर्वतके शिखरों और वृक्षों पर, सब चेष्टाएँ

छोड़े एकाग्र मनसे देख रहे हैं। सच बात तो यह है कि यह वृन्दावन पृथ्वीकी अनुपम कीर्त्तिको फैलानेवाला है (अर्थात् स्वर्गसे भी बढ़कर हो रहा है)" ॥१०॥ अन्य गोपीने कहा-"सखियो! हरिणियाँ यद्यपि पशुयोनिमें उत्पन्न हुई हैं तो भी धन्य हैं! क्योंकि बंशीरव सुनती हुई अपने २ स्वामियोंके साथ विचित्रवेषधारी प्यारे नन्दनन्दनको सादर प्रेमकटाक्षपूर्ण दृष्टिवृष्टिकी भेंट समर्पित करती हैं"॥११॥ अन्यगोपीने कहा-"गोपियो! जिनके रूपको देखकर और शीलस्वभावको सुनकर सबही स्त्रियोंको आनन्द होता है, उन कृष्णचन्द्रको देखकर और उनकी बजाई बाँसुरीसे निकले विचित्र गीतोंको सुनकर विमानों पर अपने पतियोंके साथ बैठीहुई सुरसुन्दरियाँ कामदेवके वेगसे अधीर हो मोहको प्राप्त हुईं, उनकी वेणीयोंके बन्धन शिथिल होगये, उनसे फूल गिरने लगे एवं अंगोंसे वस्त्र हटगये, पर उनको इसकी कुछ भी सुधि नहीं हुई" ॥ १२ ॥ किसीने कहा कि "कान उठाकर श्रीकृष्णके मुखसे निकलेहुए गीतरूप अमृतको पीरही गौवें, नेत्रोंके द्वारा उनकी मनोहर मूर्त्तिको हृदयमें स्थापित कर आँखोंमें आनन्दके आँसू भरे हुए चुपचाप खड़ी रहती हैं। उनके बछड़े, जिनसे आपही आप दूध बह रहा है उन स्तनों और घासके कौरोंको मुहमें दबायेहुए चित्रके लिखेसे हरिकी ओर टकटकी लगाये उनके मधुर गानको सुनते रहते हैं ॥ १३ ॥ सखियो! इस वनके सब पक्षीगण मुनियोंके तुल्य हैं, क्योंकि ये नवपल्लवमण्डित वृक्षोंकी शाखाओं पर बैठकर चुपचाप एकाग्र भावसे कृष्णको निहारते और उनकी बाँसुरीके मधुर गीतको सुनते हैं ॥१४॥ सचेतनोंकी कौन कहे, मुकुंदका गान सुनकर अचेतन नदियाँ भी भँवर पड़नेके मिससे कामके उच्छ्वासको प्रकट करती हैं। कामकी अधिकतासे उनका वेग रुक गया है अर्थात् शिथिल होगया है और वे आलिंगनके लिये उठीहुई तरंगरूप बाहुओंसे कमल कुसुमरूप भेंट लेकर हरिके चरणकमलोंको छूती हैं ॥ १५ ॥ घोर घामके समय वनमें बलदेव और अन्यान्य गोपोंके साथ अपने सखा श्रीकृष्णको गौवें चराते देख कर यह घनश्याम प्रेमपूर्वक शिर पर आ कर छाया करता है और कुसुमके समान सूक्ष्म फुहारोंकी वर्षा करता है ॥ १६ ॥ ये भीलोंकी स्त्रियाँ भी धन्य हैं, इनका जन्म सफल हो गया; क्यों कि जिस कुंकुमको गोपियाँ अपने स्तनोंमें लगाती हैं वह श्रीकृष्णके चरणकमलोंके रागमें मिल कर वनकी घासमें लग जाता है, और उस कुंकुमरागको श्रीकृष्णके दर्शनसे उत्पन्न कामकी पीड़ा मिटानेके लिये भीलोंकी ललनाएँ अपने आननों और कुचोंमें लगा कर कामकी बाधा मिटाती हुई हृदयको शीतल करती हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ सखियो! हर्षकी बात है कि यह गोवर्द्धन पर्वत हरिके दासोंमें श्रेष्ठ है, क्यों कि कृष्ण, बलभद्रके दर्शन पानेसे आनन्दित हो कर, यह, जल, सुन्दर हरी २ घास, कन्दरा, कन्दमूल और फलोंसे गऊ और गोपगणसहित दोनो भाइयोंका सादर सत्कार

करता है ॥ १९ ॥ सखियो ! देखो कैसे आश्चर्यकी बात है कि उदार वंशीध्वनि और सुंदरपदयुक्त गान करते हुए गोपगणसहित कृष्ण और बलदेव गौवोंको अपने साथ एक वनसे दूसरे वनको ले जाते हैं, उस समय राहमें उनकी मनोहर झाँकी देख कर चलनेवाले जीव तो चित्रके लिखेसे हो जाते हैं और गौवोंकी गिरैयाँ तथा फंदे बँधनेसे जिनमें चिन्ह बन गये हैं वे स्थावर वृक्षआदि हरिके हाथोंके स्पर्शसे उत्पन्न हुए आनन्दसे पुलकित हो उठते हैं" ॥ २० ॥

एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ॥
वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २१ ॥

इस प्रकार आपसमें वृंदाविपिनविहारी हरिकी की हुई लीलाओंका वर्णन करते २ गोपियाँ धीरे २ तन्मय होगईं अर्थात् उनको अपनी, अपने शरीरकी और इस लोककी कुछ भी सुधिबुधि नहीं रही ॥ २१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंश अध्याय ।

चीरहरणलीला ।

श्रीशुक उवाच—हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ॥
चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हेमन्तऋतुके पहले महीने (अगहन)में नन्दके व्रजमें रहनेवाली गोपकुमारियोंने हविष्यान्न भोजन करके कात्यायनीदेवीके पूजन और व्रतका नियम लिया ॥ १ ॥ राजन् ! सब गोपकुमारियाँ सबेरे अरुणोदयके समय यमुनाके जलमें स्नान करके जलके निकट देवीकी बालूकी मूर्ति बना कर सुगन्धित चन्दन, माला, भाँति २ के नैवेद्य, धूप, दीप, पान एवं अन्यान्य सामग्रियोंसे पूजन करती और हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती थीं कि "हे कात्यायनी ! हे महामाया ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरी ! हे देवी ! नन्दगोपके पुत्रको कृपा कर हमारा पति बनाओ, हम आपको प्रणाम करती हैं" ॥ २ ॥ ३ ॥४॥ इस प्रकार उक्त मंत्रको जपती हुई कुमारियोंने कृष्णमें चित्त लगा कर 'कृष्ण ही हमारे पति हों' इस उद्देश्यसे एक महीने तक व्रत करके भद्रकालीका पूजन किया । वे नित्य सबेरे उठ कर एक एकको नाम ले २ कर जगाती थीं और एक एकके गलेमें हाथ डाले झुंड बाँध कर यमुनातट पर जाते समय राहमें ऊँचे स्वरसे कृष्णकी लीलाएँ गाती थीं ॥५॥ ६ ॥ एक दिन सब व्रजबालाएँ यमुनाके किनारे आईं और

अन्य दिनोंकी भाँति किनारे पर सब कपड़े उतार कर जलके भीतर स्नान करनेके लिये घुसीं। उन्होने जलके भीतर कृष्णकी गुणावली गातेहुए भली भाँति प्रसन्नतापूर्वक जलविहार किया ॥ ७ ॥ योगीश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र, उनके उद्देश्यको जान कर उन्हे कर्मका फल देनेके लिये अपने साथी गोपोंके साथ उसी स्थान पर पहुँचे एवं उनके वस्त्रोंको ले कर पासहीके एक कदम्ब पर चढ़ गये। हँसते हुए बालकोंके साथ हँस रहे श्रीकृष्णचन्द्रने हँसी करते हुए कहा कि "ललनाओ! तुम यहाँ पर आ कर अपने २ वस्त्र ले जाओ, डरो नहीं। मैं तुमसे सत्य ही कह रहा हूँ, हँसी नहीं करता, क्यों कि तुम व्रत करनेके कारण निर्बल और शिथिल हो रही हो। मैंने आज तक झूठ नहीं बोला, इस बातको ये सब मेरे साथी गोपगण भली भाँति जानते हैं। सुन्दरियो! एक एक करके या साथ ही आ कर तुम अपने वस्त्र ले लो" ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ भगवान्को यों हँसी करते हुए देख कर गोपियाँ प्रेमसे विह्वल होगईं और लज्जाके साथ सबने एक एककी ओर देखा। गोपियोंके मुख पर हँसी झलकने लगी और वे सब अपनी २ जगह पर खड़ी रहीं—बाहर नहीं निकलीं ॥ १२ ॥ भगवान्को यों कहते देख हास्यके वचनोंसे जिनका मन मोहित होगया है वे गले २ भर ठंढे पानीमें खड़ी काँप रही गोपियाँ कृष्णचन्द्रसे यों कहने लगीं ॥ १३ ॥ गोपियोंने हका—"हे कृष्ण! तुम अनीति न करो। तुम नन्दनन्दन हो, हम तुमको भली भाँति जानती हैं। तुम व्रजमें सबसे अधिक शिष्ट हो, सब तुम्हारी बड़ाई करते हैं, इसीसे हमारे हृदयमें भी तुम्हारा प्रेम है। हम जाड़ेसे जड हो कर काँप रही हैं, अतएव हमारे वस्त्र हमको दो" ॥ १४ ॥ उनमेंसे कुछ गोपियोंने कहा कि—"हे श्यामसुंदर! हम तुम्हारी दासियाँ हैं, तुम्हारी आज्ञा पालन करनेवाली हैं। इस लिये हे धर्मज्ञ! अब कृपा कर हमारे वस्त्र हमको दो"। कुछ अधिक वयसकी गोपियोंने रूखी हो कर कहा कि "यदि तुम हमको हमारे वस्त्र न दोगे तो हम अभी राजा (कंस अथवा नंद) से जाकर कहेंगी" ॥ १५ ॥ श्रीभगवान्ने कहा। "सुन्दरियो! यदि तुम मेरी दासी हो, और मेरा कहा करनेमें तुमको 'नाहीं' नहीं है तो मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि यहाँ आकर अपने वस्त्र ले जाओ" ॥ १६ ॥ गोपियोंने जब देखा कि यों वस्त्र नहीं मिलेंगे तब शीतके कारण काँप रही कामिनियाँ असह्य शीतसे हार कर हाथोंसे गुप्त अंगको छिपाये हुए यमुनाजलसे बाहर निकलीं ॥ १७ ॥ उनके शुद्ध भावसे प्रसन्न भगवान्ने सब वस्त्र कंधे पर धर लिये और प्रीतिपूर्वक मुसकाते हुए दयादृष्टिसे देख कर कहा कि— ॥ १८ ॥ "सखियो! तुमने निपट नंगी हो कर व्रतमें जलके भीतर जा कर स्नान किया सो बड़ा ही अनुचित किया, क्योंकि इस कर्मसे जलके देवता वरुण एवं अन्य देवोंका निरादर हुआ। अब इस अपराधको क्षमा करानेके लिये माथेमें अंजलि बाँध कर झुक कर प्रणाम करो और फिर अपने २

वस्त्र ले कर पहनो" ॥ १९ ॥ नंगे हो कर नहानेमें भगवान्ने इस प्रकार दोषारोप

किया, तब कुमारिकाओंने समझा कि "यथार्थ ही हमारा व्रत दूषित होगया;" अतएव हरिकी आज्ञाके अनुसार व्रतके निर्विघ्न पूर्ण होनेकी कामनासे उन्होने उसी प्रकार उस व्रत तथा अन्य सब कर्मोंके साक्षी एवं फल देनेवाले कृष्णको पापोंसे मुक्त करनेवाला जान कर प्रणाम किया ॥२०॥ देवकीके पुत्र भगवान् कृष्ण उनको उसी प्रकार प्रणाम करते देख कर परम सन्तुष्ट हुए और दयामयने दया करके उनको उनके वस्त्र दे दिये ॥ २१ ॥ महाराज! कृष्णचन्द्रने गोपियोंके, साथ छलकी बातें कीं, उनको लज्जा छोड़ने पर बिवश किया, उपहासकी बातें कीं, वस्त्र हर लिये और कठपुतलीकी भाँति भाँति २ के नाच नचाये तौ भी उन व्रजबालाओंके मनमें मैल नहीं आया और न उन्होने बुरा माना, बरन् अपने प्रियतमके उतनी देरके संगसे परम प्रसन्न हुईं ॥ २२ ॥ राजन्! अपने २ वस्त्र पहन कर गोपियाँ घर जानेको उद्यत हुईं, परन्तु प्रियके परमप्रिय समागममें वशीभूत उनका चित्त कृष्णने हरलिया था, इसलिये आगे न बढ़सकीं, वहीं पर खड़ी होकर लजीली दृष्टिसे कृष्णकी ओर निहारने लगीं ॥ २३ ॥ "उन्होने अपने ही चरणोंके स्पर्शकी कामनासे कष्ट उठा कर महीने भर यह व्रत किया है"—यह समझ कर श्रीकृष्णचन्द्रने उनसे कहा कि—"हे सब साध्वी सुन्दरियो! मैं तुम्हारे संक-

रूपको जानता हूँ, तुमने मुझको ही प्रसन्न करनेके लिये यह व्रत किया है। मैं भी तुम्हारे मनोरथका अनुमोदन करता हूँ, इस लिये तुम्हारी कामना अवश्य ही पूर्ण होगी। देखो, जिनका मन मुझमें लगा है उनकी कामनाएँ अन्य कामनाओंके समान संसारका कारण नहीं होतीं। भुने हुए या पके हुए अन्नके बीजोंमें फिर अंकुर नहीं निकलते ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ सुन्दरियो! तुम्हारा व्रत सिद्ध (सफल) होगया, अब तुम व्रजको जाओ। तुम मेरे साथ इन शरद् ऋतुकी रमणीय रात्रियोंमें रमण करोगी; क्योंकि हे सतियो! तुमने इसी कामनासे आर्य्यादेवीका व्रत और पूजन किया है" ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इस प्रकार भगवान्‌के कहनेसे उन कुमारियोंने अपनेको कृतार्थ माना, क्योंकि उनकी इच्छा पूर्ण होगई। वे कृष्णके चरणोंका ध्यान करती हुई बड़े कष्टसे लौट कर व्रजको गईं ॥ २८ ॥ तदनन्तर देवकीनन्दन कृष्णचन्द्रजी बड़े भाईके साथ गोपगण सहित गौवोंको चराते हुए वृन्दावनसे दूर निकल गये ॥ २९ ॥ राहमें हेमन्तके घोर घामको स्वयं सहकर अपने शिर पर छत्रके समान छाया किये हुए वृक्षोंको देख कर भगवान्‌ने अपने साथी गोपोंसे कहा—"हे स्तोक, कृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप आदि मित्रो! इन सब महाभाग्यशाली वृक्षोंको देखो। इनका जीवन केवल दूसरोंके उपकारके लिये ही है। स्वयं वायु, वर्षा, घाम और पाला सहकर उनसे हमारी रक्षा करते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अहो! इन्हींका जन्म धन्य है, जिससे और२ प्राणियोंका काम निकलता है। जैसे दयालु मनुष्यके पास जाकर याचक लोग विमुख नहीं लौटते वैसे ही इनके निकटसे कोई भी प्राणी विमुख नहीं जाता ॥ ३३ ॥ ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गंध, गोंद, राख, कोयला, अंकुर और नवपल्लव आदिसे सब प्राणियोंके काम आते हैं ॥ ३४ ॥ देहधारियोंमें उन्हींका जन्म सफल है जो प्राण (शरीर), सम्पत्ति, बुद्धि और वाणीसे सदैव सब प्राणियोंकी भलाई करते हैं" ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्—नवपल्लवोंके गुच्छे, फल, फूल और पत्तोंके भारसे जिनकी डालियाँ झुक रही हैं उन परोपकारी वृक्षोंकी बड़ाई करते हुए उन्हींके नीचे २ चल कर यमुनाके किनारे पहुँचे ॥ ३६ ॥ महाराज! वहाँ पहुँच कर गोपोंने यमुनाका मधुर निर्मल शीतल जल गौवोंको पिलाया और आप भी जी भरकर पिया ॥ ३७ ॥

तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप ॥
कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥ ३८ ॥

यमुनाके आस पास वनमें गौवें चराते २ गोपोंको भूख लगी, तब वे कृष्ण और बलदेवजीके पास आकर यों कहने लगे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंश अध्याय ।

कृष्णकी आज्ञासे गोपोंका ब्राह्मणोंके यज्ञमें जाकर खानेके लिये अन्न माँगना ।

गोपा ऊचुः—राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥
एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथ ॥ १ ॥

गोपगणने कहा । हे महाशक्तिशाली बलभद्र ! हे दुष्टदमन कृष्णचन्द्र ! हमको बड़ी भूख लगी है । कृपा कर यह भूखकी ज्वाला शान्त करिये, हमको बड़ा कष्ट मिल रहा है ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! गोपोंने जब यों आ कर प्रार्थना की तब देवकीतनय कृष्णचन्द्रने अपनी परमभक्त जो ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ हैं उन पर अनुग्रह करते हुए यह कहा कि ॥ २ ॥ "यहाँ वेदपाठी ब्राह्मण लोग स्वर्गकामनासे आङ्गिरस—नाम यज्ञ कर रहे हैं । तुम यज्ञमण्डपमें जा कर भगवान् आर्य्य(बड़े भाई बलभद्र)का और मेरा नाम ले कर अन्न माँगो" ॥ ३ ॥ ४ ॥ भगवान्की आज्ञा पा कर उन गोपोंने यज्ञमण्डपमें जा कर वैसे ही अन्न माँगा । उन्होने दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर कहा कि "ब्राह्मण महाशयो ! आपका कल्याण हो, सुनिये, आपके निकट कृष्णचन्द्र और बलदेवकी आज्ञासे हम सब गोप आये हैं । वे दोनो भाई यहाँसे थोड़ी ही दूर पर गौवें चराते २ आये हैं । यहाँ आकर भूखे हुए हैं, इस लिये आपसे भोजन माँगते हैं; क्यों कि आप धर्मज्ञ ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं । यदि आप लोगोंको श्रद्धा हो तो हम अर्थियोंको भोजनके लिये अन्न दो ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ यदि कहो कि यज्ञका अन्न देनेसे उच्छिष्ट हो जायगा तो हे सज्जनो ! यज्ञमें दीक्षाके अनन्तर अग्नीषोमीय बलिदानके पहले तक किसीको देने या खिलानेसे अन्न दूषित हो जाता है, किन्तु उसके पीछे तथा सौत्रामण्यदीक्षा एवं अन्यान्य दीक्षाओंमें (भी) खिलाने या देनेसे अन्न उच्छिष्ट नहीं होता" ॥ ८ ॥ महाराज ! गोपोंके इस प्रकार कहने पर भी उन ब्राह्मणोंने भगवान्की आज्ञा सुन कर भी जैसे नहीं सुनी । कैसे सुनते ? वे तो तुच्छ स्वर्गसुखकी कामनासे बड़े २ कर्मों (यज्ञादि)में लिप्त रह कर अपनेको वृद्ध और बुद्धिमान् मान बैठे थे; परन्तु वास्तवमें अज्ञ थे ॥ ९ ॥ मन्दमति ब्राह्मणोंका चित्त संसारमें फँसा हुआ था, इसीसे उन्होने साक्षात् परब्रह्म भगवान् अधोक्षज (इन्द्रियोंके संचालक स्वामी)को एक साधारण मनुष्य समझा ! देश, काल, भाँति २ की सामग्रियाँ, मंत्र, तंत्र, ऋत्विक्, सम्पूर्ण अग्नि, पूजनीय अधिष्ठाता देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म्म इत्यादि सब उन्हीं कृष्णरूप विष्णुके रूप हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे शत्रुदमन ! जब ब्राह्मणोंने 'हाँ' या 'ना' कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब निराश हो कर सब गोप लौट आये और उन्होने आ कर सब वृत्तान्त कृष्ण और बलभद्रसे कहा ॥ १२ ॥ सुन कर जगत्के स्वामी भगवान्

कृष्णचन्द्रने गोपोंको संसारकी गति दिखाते हुए कहा कि ॥ १३ ॥ "तुम याचना विफल होनेसे निराश न हो कर उन ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे जा कर कहो कि मैं अपने भाई सहित यहाँ निकट ही आया हूँ। मुझे आया हुआ जान कर वे तुमको अवश्य अन्न देंगी, उनको मुझ पर भक्ति है, उनका मन मुझमें ही रहता है" ॥ १४ ॥ भगवान्‌के कहनेसे गोप लोग फिर (यज्ञमण्डपमें जा कर) पत्नीशालामें पहुँचे और उन्होंने सुन्दर शृंगार किये अलंकार पहने बैठी हुई ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंसे प्रणामके पश्चात् विनयपूर्वक यों कहा ॥ १५ ॥ "हे ब्राह्मणवधुओ! तुमको हम प्रणाम करते हैं। हम तुमसे कुछ कहने आये हैं, सो कृपापूर्वक सुन लो। यहाँसे थोड़ीही दूर पर कृष्ण और बलभद्र गौवें चरा रहे हैं। उन्होंने ही हमको तुम्हारे पास भेजा है। उनको और हम लोगोंको भूख लगी है, सो भोजन करनेके लिये तुम अन्न दो" ॥ १६ ॥ १७ ॥ नित्य कृष्णके गुणोंको सुननेसे ब्राह्मणियोंके हृदयमें उनके दर्शनकी बड़ी लालसा थी। आज उनको पासही आया हुआ सुन कर सबको दर्शनोंकी चटापटी पड़ी ॥ १८ ॥ पति, पिता, भाई और बंधुओंके रोकने पर भी वे सब स्त्रियाँ नहीं रुकीं और नदियाँ सागरकी ओर जैसे वेगसे जाती हैं वैसेही चार प्रकार(भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्य)के भोजन वर्तनोंमें ले कर परम प्रिय कृष्णसे मिलनेके लिये चलीं; क्यों कि उनका चित्त हरिके चरित्र सुन कर उन पर मोहित होगया था। यमुनाके किनारे जा कर उन्होंने देखा कि अशोक-वृक्षोंके नवपल्लवोंसे सुशोभित यमुनाके उपवन(निकुञ्ज)में गोपगण और बड़े भाई बलभद्रके साथ श्रीकृष्णचन्द्र विचर रहे हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ उनका वर्ण श्याम है, श्याम शरीर पर सुवर्णवर्ण पीतपट ऐसा जान पड़ता है मानो श्याम घनघटामें इन्द्रके धनुषका मण्डल शोभायमान है। गलेमें वनमाला पड़ी है। मोरके पंख, धातुओंके रंग और नवपल्लवोंसे सुसज्जित विचित्र नटवरवेष देखने ही योग्य है। एक सखाके कंधे पर दाहिना हाथ धरे हुए बाएँ हाथसे कमलका फूल घुमा रहे हैं। कानोंमें कमलके फूल, कपोलों पर काली २ अलकें और प्रफुल्ल मुखकमलमें हँसीकी अपूर्व शोभा है ॥ २२ ॥ नित्य वारम्वार सुने हुए जिन प्यारे कृष्णके गुण कानोंमें गूँज रहे थे और मन तन्मय हो रहा था उनको सामने पाकर ब्राह्मणोंकी स्त्रियोंने नेत्रोंके द्वारसे हृदयोंमें बिठा लिया। सुषुप्तिके साक्षी प्राज्ञ (पुरुष) में मिल कर अर्थात् लीन हो कर जैसे अहंवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं वैसेही उनके हृदय शान्त होगये और सब ताप मिट गया ॥ २३ ॥ "वे स्त्रियाँ एकदम सब आशाएँ छोड़ कर दर्शनके लिये आई हैं"-यह भगवान्‌से छिपा नहीं था, क्योंकि वही सब बुद्धियोंके सत्य साक्षी हैं। तथापि उनकी परीक्षा लेते हुए कृष्णने मुसका कर कहा कि—॥ २४ ॥ "आओ, महाभागाओ! भले आईं; कहो हम तुम्हारा क्या सत्कार करें? यदि तुम केवल मुझे ही देखने आई

हो तो तुमने बहुत ही अच्छा और उचित किया ॥ २५ ॥ विवेकी लोग विवेक द्वारा सच्चे स्वार्थको भली भाँति जानते हैं, इसीसे वे मुझ प्रीतिपात्र आत्मा पर निष्काम सुदृढ़ साक्षात् भक्ति करते हैं ॥ २६ ॥ जीवात्मासे बढ़ कर कोई भी नहीं प्यारा होता। प्राण, बुद्धि, मन, जातिवाले, शरीर, स्त्री, पुत्र और सम्पत्ति, सभी उस जीवके लिये प्रिय होते हैं ॥ २७ ॥ तुम मेरे दर्शन पाकर कृतार्थ होगई, अब यज्ञशालाको लौट जाओ। यद्यपि अब तुमको यज्ञादिकी आवश्यकता नहीं है, तथापि तुम्हारे स्वामी सब गृहस्थ ब्राह्मण तुम्हारे साथ मिल कर अपना यज्ञ पूरा करेंगे" ॥२८॥ **द्विजपत्नियोंने कहा**। "हे विभो! आपको ऐसे निठुर वचन कहना उचित नहीं है। आप वेदके कथनको सत्य कीजिये। हम सब अपने बंधुओंको छोड़ कर आपकी अवज्ञापूर्वक भी दी हुई तुलसीकी मालाको केशोंमें सादर धारण करने अर्थात् दासी होनेके लिये चरणकमलोंकी शरणमें आई हैं ॥ २९ ॥ औरोंकी जाने दीजिये, हमारे पति, पिता, माता, भाई, पुत्र, बन्धु और सुहृत् गण भी हमें अंगीकार न करेंगे! हे शत्रुदमन! हमारी आपके सिवा और कोई गति नहीं है। इसीसे हम आपके चरणोंकी शरणमें आई हैं-हमें स्वीकार कीजिये" ॥ ३० ॥ **श्रीभगवान्ने कहा**। तुम घरको जाओ, तुम्हारे पति, पिता, भाई, पुत्र आदि कोई भी तुम पर दोषारोप न करेंगे, बरन् बड़े प्रेमसे तुम्हारा आदर करेंगे। क्यों कि जो लोग मुझसे मिलचुके हैं उनका आदर देवता भी करते हैं ॥३१॥ यदि कहो कि हमको तो आपके अंगसंगकी इच्छा है, उसके बिना हम कैसे लौट जाँय? सो अंगसंगसे ही मनुष्योंमें प्रीति या अनुराग नहीं होता। इस लिये अपने घरमें ही रह कर मुझमें मन लगाओ; शीघ्र ही मुझको पाओगी। मेरे नाम सुनने, गुणकीर्तन और ध्यान करनेसे जैसा मुझमें दृढ़ प्रेम होगा वैसा पास रहनेसे कभी नहीं हो सक्ता-इस लिये तुम घरको लौट जाओ" ॥ ३२ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। भगवान्के यों कहने पर वे ब्राह्मणोंकी स्त्रियाँ लौट कर फिर यज्ञशालाको गईं। ब्राह्मणोंने भी उनसे कुछ नहीं कहा, वरन् सादर स्वीकार करके उनके साथ यज्ञको पूर्ण किया। सच है, जिस पर हरि कृपा करते हैं उस पर सभी अनुकूल हो जाते हैं! ॥ ३३ ॥ एक स्त्रीको उसके पतिने पकड़ रक्खा था, इस लिये वह कृष्णचन्द्रके दर्शन करने न जा सकी। तब उसने जैसा हरिका रूप सुना था वैसेही ध्यान करते हुए कर्मोंके अनुगामी शरीरको छोड़ दिया और सबसे पहले हरिसे जा मिली ॥३४॥ इधर प्रभु भगवान् गोविन्दने वह स्त्रियोंका लाया हुआ चार प्रकारका स्वादिष्ट अन्न गोपोंको खिलाया और आप भी भोजन किया ॥ ३५ ॥ लीला करनेके लिये मायामानवरूप भगवान्, इस प्रकार मनुष्योंका अनुकरण करके अपने रूप वचन और लीलाओंसे गऊ गोप और गोपियोंको रमाते हुए स्वयं रमण करते थे ॥ ३६ ॥ उधर उन ब्राह्मणोंको ज्ञान हुआ, तब वे "हमने मनुष्यतनुधारी दोनो

जगदीश्वरोंकी प्रार्थना न सुन कर बड़ा ही अपराध किया!"—यों सोच कर पछताने लगे ॥३७॥ वे ब्राह्मण, भगवान् श्रीकृष्णमें स्त्रियोंकी ऐसी अपूर्व भक्ति देख कर और अपनेको उस भक्तिसे रहित पा कर पश्चात्तापपूर्वक आप ही आप अपना तिरस्कार करते हुए कहने लगे कि—" हमारे तीन जन्मों (एक गर्भसे जन्म, दूसरा गायत्रीसंस्कारका जन्म, तीसरा यज्ञदीक्षाका जन्म)को, ब्रह्मचर्य्य व्रतको, बहुत जाननेको, उत्तम कुलको यज्ञादि कर्मोंमें निपुण होनेको बार बार लाख बार धिक्कार है! क्यों कि हम हरिसे विमुख हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ इसमें कोई संदेह नहीं कि भगवान्की माया बड़े २ योगियोंको भी मोहित कर देती है । अहह! हम लोगोंके गुरू ब्राह्मण कहलाते हैं! सो अपने ही प्रयोजन(हरिकी भक्ति)में चूक गये! ॥ ४० ॥ अहो! स्त्रियोंको देखो, उनको जगद्गुरु कृष्णमें कैसी सुदृढ़ भक्ति है! जिससे उन्होने गृहस्थीकी ममता, जो कठिन मृत्युपाश है, उसे तोड़ डाला! ॥४१॥ देखो, हमारी भाँति इनका यज्ञोपवीत संस्कार नहीं हुआ । न गुरुकुलमें इन्होंने शिक्षा पाई, न तप किया, न आत्मतत्त्वकी खोज की । न ये शौच करती हैं और न संध्यावन्दन आदि शुभ कर्म्म ही करती हैं ॥४२॥ तौ भी योगेश्वरोंके ईश्वर पवित्र यशवाले श्रीकृष्णमें इनकी दृढ़ भक्ति है और हमारे सब संस्कार हुए, तथा ऊपर कही हुई सब बातें भी हममें हैं, किन्तु हाय हाय, ईश्वरकी भक्ति नहीं है! शोक! ॥४३॥ अवश्य ही हम मिथ्या स्वार्थमें भूल कर गृहस्थीके सुखमें लिप्त हो रहे थे, यह जान कर सज्जनोंके इष्टदेव हरिने गोपोंके वाक्योंसे हमको सचेत कर दिया ॥ ४४ ॥ नहीं तो पूर्णकाम एवं मोक्ष आदि दुर्लभ 'वर' देनेवाले ईश्वरको हमसे अन्न माँगनेकी क्या आवश्यकता थी । अवश्य ही अन्न माँगनेका केवल मिस (बहाना) था ॥ ४५ ॥ लक्ष्मी, अपनी चंचलता त्याग कर, चरणकमलोंके स्पर्शकी अभिलाषासे, औरोंको छोड़, जिनको बारम्बार भजती है उन लक्ष्मीपतिका किसीसे कुछ माँगना अवश्यही लोगोंको मोहित किये बिना नहीं रहसक्ता ॥ ४६ ॥ देश, काल, भिन्न २ सामग्रियाँ, मंत्र, तंत्र, ऋत्विक्, तीनो (यज्ञसम्बन्धी) अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म जिनके रूप हैं उन्ही साक्षात् योगीश्वरोंके ईश्वर भगवान् विष्णुने यदुवंशमें जन्म लिया है, यह सुन कर भी हम मूढ़ उनको न पहचान सके! ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ अहो, तथापि हम अपनेको परम धन्य मानते हैं; क्योंकि हमारे घरोंमें ऐसी अनन्यभक्त स्त्रियाँ हैं जिनका मन निश्चल होकर हरिमें बस रहा है ॥ ४९ ॥ जिनकी बुद्धि कदापि कुण्ठित नहीं होती और जिनकी मायामें बुद्धिके मोहित होनेसे हम कर्ममार्गमें भ्रम रहे हैं उन भगवान् कृष्णको हमारा प्रणाम है ॥ ५० ॥ वह आदि पुरुष हैं, उनकी मायामें आत्माके मोहित होनेसे हम उनके प्रभावको नहीं जान सके । इसी कारण यह अपराध हमसे बन पड़ा है । उन जगदीश्वरको हम सेवकोंका यह अपराध क्षमा कर देना उचित है ॥ ५१ ॥

इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥
दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाचलन् ॥ ५२ ॥

हे राजन्! कृष्ण-तिरस्काररूप अपने अपराधको स्मरण करके उन ब्राह्मणोंने इस प्रकार बहुत पश्चात्ताप किया। यद्यपि कृष्णके दर्शन करनेकी उनको बड़ी लालसा थी तथापि वे कंसके भयसे न जासके ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंश अध्याय ।

इन्द्रयज्ञभङ्ग ।

श्रीशुक उवाच—भगवानपि तत्रैव बलदेवन संयुतः ॥
अपश्यन्निवसन्गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! वे ब्राह्मण कंसके भयसे अपने २ आश्रमोंमें ही रहकर भगवान्‌की आराधना करने लगे। इधर भगवान्‌ने बलभद्र सहित व्रजमें रहते हुए एक समय देखा कि गोपलोग इन्द्र-यज्ञ करनेका उद्योग कर रहे हैं ॥ १ ॥ भगवान् तो सबके आत्मा अन्तर्यामी हैं, वह सबके मनकी जाननेवाले सर्वज्ञ हैं, अतएव उनसे कुछ छिपा नहीं है, वह सब जानतेथे; तथापि विनयपूर्वक नम्र होकर उन्होने नन्दआदि बूढ़े गोपोंसे पूछा कि— ॥२॥ "पिता! बताओ तो सही, आपलोग काहेकी सामग्री एकत्र कर रहे हैं। यह यज्ञ कौन करेगा? किस देवताके लिये यह यज्ञ किया जायगा और इसका फल क्या होगा? ॥ ३ ॥ यह सब मुझसे कहिये, मैं सुननेके लिये उत्सुक होरहाहूँ। सबको अपने समान देखनेके कारण जिनको अपने पराएका ज्ञान नहीं है एवं भेदभाव न होनेके कारण जिनका कोई शत्रु या उदासीन (अर्थात् न शत्रु और न मित्र) नहीं है, सब मित्रही मित्र हैं, उनके लिये कोई भी ऐसी बात नहीं है जो किसीसे छिपाने योग्य हो। इसके सिवा यदि भेदभाव भी हो, तो भी उदासीनको ही शत्रुके समान छोड़ना आवश्यक है। सुहृद्गण तो आत्मीय होते हैं, उन हितचिन्तक सुहृदोंसे हरएक काममें अवश्य सम्मति लेनी चाहिये ॥४॥५॥ सब मनुष्य दो प्रकारके कर्म करते हैं, ज्ञात और अज्ञात। जिनका फलाफल और तत्त्व पहले जान लिया जाता है वे कर्म ज्ञात हैं और जो बिना विचारे किये जाते हैं वे अज्ञात हैं। ज्ञात कर्म भलीभाँति सिद्ध होते हैं और अज्ञातकर्म वैसे सुसिद्ध नहीं होते ॥ ६ ॥ आपका यह यज्ञ शास्त्रोक्त है, या आपलोग लौकिक रीतिके अनुसार इसे करते हैं? सो मुझसे समझाकर कहो" ॥७॥ नन्दने कहा। "पुत्र, भगवान् इन्द्र वर्षा करने

वाले हैं। मेघ उनकी प्रिय मूर्त्ति हैं। वे मेघ प्राणियोंको प्रसन्न करनेवाला जलरूप जीवन देते (बरसते) हैं ॥ ८ ॥ उन मेघोंके स्वामी इन्द्र जो वर्षा करते हैं उस वर्षाके जलसे उत्पन्न पदार्थों (अन्नादि)के द्वारा हमलोग यह यज्ञ करके उन (इन्द्र) का पूजन करते हैं ॥ ९ ॥ यज्ञ करनेके पीछे जो अन्न बच रहता है उससे धर्म अर्थ और कामकी सिद्धि करते हुए मनुष्य अपने जीवनकी रक्षा करते हैं। लोगोंकी वृत्तियों और व्यवसायोंकी आशा वर्षा ही पर निर्भर है, क्योंकि बिना वर्षाके खेती होना असम्भव है; जोकि सबका मूलकारण है ॥ १० ॥ यह हमारी रीति बहुत कालसे चलीआती है। जो कोई काम, द्वेष, भय या लोभके वश होकर इस धर्मको छोड़देता है उसका मंगल कभी नहीं होता" ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! नन्दआदि गोपोंके कथनको सुनकर कृष्णने इन्द्र पर व्रजवासियोंके हृदयमें कोप उपजाते हुए पितासे कहा कि—"पिता! सब प्राणी अपने २ कर्मके अनुसार जन्मते और मरते हैं एवं कर्मानुसार ही सुख, दुःख, भय और मङ्गल पाते रहते हैं ॥१२॥१३॥ इसके सिवा यदि कोई ईश्वर है भी, जो स्वयं कर्मोंमें न लिप्त रहकर औरोंको उनके कर्मोंका फल देनेवाला है, तो वह कर्मकरनेवालेको ही ईश्वर है, उसीको कर्मानुसार फल देगा। किन्तु जो कोई कर्म ही नहीं करता उसके लिये क्या करसक्ता है? ॥ १४ ॥ इसलिये जीवोंको जब अपने कर्मोंका ही अनुसरण करना पड़ता है तब उनको इन्द्रसे क्या प्रयोजन है? पूर्वसंस्कारके अनुसार मनुष्योंके भाग्यमें जो है उसको वह इन्द्र कभी अन्यथा नहीं कर सक्ते ॥ १५ ॥ सब मनुष्य स्वभावके ही वशवर्ती हैं, स्वभावका ही अनुगमन करते हैं। ये सब देवता, असुर और मनुष्य स्वभावके वशमें हैं, स्वभावहीके अनुसार चलते हैं ॥ १६ ॥ यह जीव, कर्मोंहीके आधीन होकर उत्तम और अधम शरीरोंको पाता और अपने कर्मोंका फल भोगता है तथा यथासमय उन शरीरोंको छोड़ देता है। कर्मोंहीके अधीन रहकर ये जीव परस्पर एकके साथ एक शत्रुता, मित्रता या उदासीनताका व्यवहार करते हैं। इसलिये कर्म ही सबका गुरु और ईश्वर है ॥ १७ ॥ जब स्वभाव-सिद्ध कर्म ही सब फलोंका कारण है तब कर्म ही केवल पूजनीय है। इस लिये प्राणियोंको चाहिये कि स्वभावके अनुसार अपने कर्मका पालन करें और उसीका पूजन करें। जिसके द्वारा सुखपूर्वक जीविकानिर्वाह हो वही प्राणियोंका इष्टदेव है ॥ १८ ॥ जैसे परपुरुषगामिनी कुलटा स्त्री, उपपति(पर पुरुष)से सुख नहीं पा सक्ती वैसे ही जो लोग जिसकी कृपासे जीविकानिर्वाह करते हैं उसे छोड़ कर दूसरेको भजते हैं उनका उससे अपने मंगलकी आशा करना भूल है ॥ १९ ॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंको चाहिये कि वे क्रमशः 'वेदाध्ययन,' 'पृथ्वीपालन,' 'वार्त्ता' और द्विजोंकी सेवासे अपनी २ जीविका चलावें ॥२०॥ वैश्योंकी 'वार्ता' वृत्तिके चार भेद हैं—१ खेती,

२ बनिज, ३ गऊ पालना और ४ ब्याज चलाना । उनमें हम लोग गऊ पालनेवालने हैं, यही हमारी जीविका है ॥२१॥ सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण—इन्ही तीनो गुणोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति, रक्षा और संहार होता है । यह चराचर जगत् ब्रह्माण्ड, रजोगुणकी प्रेरणासे परस्पर उत्पन्न होता है ॥ २२ ॥ ये मेघ भी रजोगुणकी प्रेरणासे सर्वत्र जलकी वर्षा करते हैं । जलसे अन्न उपजता है और उसी अन्नसे सबका पालन होता है । इसमें महेन्द्र क्या कर सक्ते हैं? इसके सिवा हमारे पुर, जनपद, गाँव या घर कुछ भी नहीं है—हम वनवासी हैं । इसलिये इस यज्ञमें गऊ, ब्राह्मण और गोवर्द्धन गिरिका ही पूजन करना योग्य है । आप लोगोंने इन्द्रयज्ञके लिये जो सामग्री एकत्र की है उससे गिरिराजका पूजन करिये ॥२३॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ इससे पायस, पुआ, पूरी, हलवा, भाँति भाँति के पकवान और मिठाई बनाओ, सब गौवोंका दूध दुह कर एकत्र करो ॥ २६ ॥ भली भाँति वेद-पाठी ब्राह्मणोंके द्वारा होम करा कर अग्नियोंको तृप्त करो और ब्राह्मणोंको भाँति २ के अन्न खिला कर, गोदान करके, दक्षिणाएँ देकर प्रसन्न करो ॥ २७ ॥ श्वपच और चाण्डाल और पतित पातकियोंको भी यथायोग्य अन्न देकर तृप्त और सन्तुष्ट करो । गौवोंको हरी २ घास और उत्तम अन्न खिलाओ, फिर गिरिराजका भोग लगाओ ॥ २८ ॥ तदनन्तर भोजन करके उत्तम वस्त्र और आभूषण धारण कर सुगंधित चन्दन लगाओ और गऊ, ब्राह्मण, अग्नि व पर्वतकी प्रदक्षिणा करो ॥ २९ ॥ पिता, मेरी सम्मति तो यही है, रुचे तो इसीके अनुसार सब काम करिये । यह यज्ञ, गौवोंको, ब्राह्मणोंको, गिरिराजको और मुझको प्रिय है" ॥ ३० ॥ **श्रीशुकदेवजी** कहते हैं । कालरूप भगवान्ने इन्द्रका मद मिटानेकी इच्छासे जो कहा उसको सुनकर नन्दआदि गोपोंने भी बहुत बड़ाई करते हुए प्रसन्नतापूर्वक मान लिया ॥ ३१ ॥ भगवान्के कथनानुसार उन्होने यज्ञका आरंभ किया । पहले स्वस्त्ययनपाठ कराकर सादर सब सामग्री ब्राह्मणोंको दी, फिर गौवोंको हरी २ घास और और २ अच्छा चारा दिया । तदनन्तर गोधनको आगे कर सब लोग गिरिराजकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ भली भाँति शृंगार किये हुए गोपियाँ भी बैलोंके छकड़ों पर चढ़ कर श्रीकृष्णकी लीलाओंको गाती हुई गिरिराजकी प्रदक्षिणा करने लगीं । ब्राह्मणगण भी प्रसन्न होकर शुभ और अमोघ आशीर्वाद देने लगे ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णजी भी गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरिराजके ऊपर दूसरे विशालरूपसे प्रकट हुए और "मैंही गिरिराज हूँ" कहकर सब सामग्री दोनो हाथोंसे खाने लगे ॥ ३५ ॥ उस समय कृष्णचन्द्रने व्रजवासियोंके साथ स्वयं अपने दूसरे शरीरको प्रणाम किया और गोपोंसे कहने लगे कि "अहो, देखो गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर दया दिखाई है । यह जब चाहे जैसा रूप धर सक्ते हैं । वनमें रहनेवाले जो प्राणी इनका निरादर

करते हैं, इनके कोपसे उनका विनाश हो जाता है । हम सब आओ अपने और सम्पूर्ण व्रजके कल्याणके लिये इनको प्रणाम करें" ॥३६॥३७॥

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥
तथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८॥

श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार इसप्रकार यथाविधि गऊ, ब्राह्मण और पर्वतका पूजन करके सब गोप कृष्णचन्द्रके साथ व्रजको लौट गये ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंश अध्याय ।

गोवर्द्धन-धारण ।

श्रीशुक उवाच-इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥
गोपेभ्यः कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! इन्द्रने अपने यज्ञका न होना और उसी सामग्रीसे गिरिराजकी पूजा होना जानकर कृष्णके वशवर्त्ती नन्द आदि गोपों पर कोप किया ॥ १ ॥ उसी समय अपनेको ईश्वर माननेवाले कुपित इन्द्रने प्रलय करनेवाले संवर्तकनाम मेघोंके मण्डलको व्रजपर चढ़ाई करनेके लिये भेजा । इन्द्रने उनसे कहा-"अहो! वनमें रहनेवाले गोपोंके धन-ऐश्वर्य्यसे उत्पन्न गर्वका माहात्म्य तो देखो! उन्होने एक साधारण मनुष्य कृष्णके बल पर भूल कर देवहेलन कर डाला! जैसे कोई २ मंदमति जन आत्मज्ञान-विद्याको छोड़ कर अन्य नाममात्रकी नावके समान पार लगानेको असमर्थ जो कर्ममय यज्ञ हैं उनके द्वारा अपार संसार सागरके पार जाना चाहे वैसे ही गोपोंने आज वाचाल, बालक, अविनीत, पण्डिताभिमानी, अज्ञ मनुष्य कृष्णके सहारे मेरे विरुद्ध होकर मेरा अप्रिय किया है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ये गोप लक्ष्मीके मदसे मत्त होरहे हैं, उस पर कृष्णने और भी इनको बढ़ावा दे रक्खा है । हे मेघो! शीघ्र व्रजको जाओ और इनके ऐश्वर्यमदको दूर करो एवं पशुओंका संहार कर डालो ॥ ६ ॥ मैं भी अभी नन्दव्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी उन्चास मरुद्गणसहित ऐरावत गजराज पर चढ़ कर वहाँ आता हूँ" ॥ ७ ॥ जिनके बन्धन छूट गये हैं वे मेघ इस प्रकार इन्द्रकी आज्ञा पाकर बड़े वेगसे व्रजमें जाकर घोर वर्षा करनेलगे, जिससे नंदका गोकुल भर पीड़ित और व्याकुल हो उठा ॥ ८ ॥ वारम्वार बिजलियाँ चमकने लगीं और भयानक बिजलियोंकी

कड़क हृदयोंको दहलाने लगी । तीव्र वायुके झकोरोंसे इतस्ततः संचालित मेघ-समूह शिलाओं(ओलों)की वर्षा करने लगे ॥ ९ ॥ वे मेघ, निरन्तर हाथीकी सूँड़के समान स्थूल जलधाराएँ बरसाने लगे । देखतेही देखते पृथ्वी जलराशिसे परिपूर्ण हो गई । उस समय कहीं भी ऊँचा नीचा नहीं जान पड़ताथा, क्योंकि पृथ्वी जलमय हो रही थी ॥१०॥ महा प्रचण्ड आँधी और वर्षाके मारे पशुगण काँपने लगे । तब शीतसे पीड़ित गोप और गोपियाँ श्रीकृष्णकी शरणमें आईं ॥ ११ ॥ बालकोंको छातियोंमें छिपाए अपने शिरोंको शिलाओंकी बौछारसे बचाते और काँपते हुए वर्षासे पीड़ित गोपगोपीगण, श्रीकृष्णके चरणोंकी शरणमें आकर कहने लगे कि–"हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाभाग! हे प्रभो, आप ही इस गोकुलके नाथ हैं । हे भक्तवत्सल! अब कुपित इन्द्रसे हमारी रक्षा करो" ॥ १२ ॥ १३ ॥ सारे गोकुलको शिलाओंकी अत्यन्त वर्षासे पीड़ित तथा अचेत देख कर भगवान्ने समझ लिया कि यह सब कुपित इन्द्रकीही करतूत है ॥१४॥ भगवान्ने कहा कि "हमने इन्द्रका यज्ञ नहीं किया इसी लिये वह रुष्ट होकर आज प्रचण्ड आँधीके झोंके, शिलाओंकी बौछार और बिना ऋतुकी घोर वर्षासे व्रजको नष्ट करदेनेपर उद्यत हैं ॥ १५ ॥ अस्तु, मैं अभी योगबलसे इसका प्रतीकार करता हूँ । ये इन्द्रादि देवगण, मोहवश अपने स्वतन्त्र ईश्वर होनेका घमंड रखते हैं । मैं अभी इनके ऐश्वर्यगर्वरूप मोहको मिटाये देताहूँ ॥ १६ ॥ जो कि सद्भावसे युक्त देवता हैं उनको "हम ईश्वर हैं"–यह अभिमान कभी नहीं होसक्ता । मेरे द्वारा मानभंग होना असत्जनोंके लिये हितकारी होता है, क्योंकि फिर वे शान्त होजाते हैं और उनका भ्रम मिट जाता है ॥ १७ ॥ इस व्रजका मैंही स्वामी हूँ, ये सब व्रजवासी मेरी शरणमें आये हैं, मैं इनको अपना परिवार समझता हूँ । इसलिये मैंने निश्चय करलिया है कि अपने योगबलसे इन सबकी रक्षा करूँगा" ॥ १८ ॥ यों कहकर कृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक एक हाथसे गोवर्द्धन पर्वतको ऊपर उठा लिया; जैसे कोई बालक खेलते २ धरतीके फूलको धरतीसे उखाड़ ले ॥१९॥ यों गोवर्द्धनको उठाकर भगवान्ने गोपोंसे कहा कि "हे पिता! हे माता! हे व्रजवासियो! इस गिरिराजके गढ़ेमें आपलोग अपने गोधनसहित सुखसे आकर बैठो ॥ २० ॥ आप लोग डरना नहीं कि मेरे हाथसे गिरिराज गिरपड़ेगा । अब इस घोर वर्षा और प्रचण्ड आँधीसे भी तुमको रत्ती भर भय नहीं है, क्योंकि उस विपत्तिसे बचानेहीके लिये मैंने यह यत्न किया है" ॥२१॥ इस प्रकार कृष्णके मधुर वचनोंसे आश्वासित सब व्रजवासी लोग गोधन, भृत्य, पुरोहित आदिके साथ सुखसे उस गिरिगर्त्तमें आगये । सबने अपनी २ सामग्री (सामान–असबाब) भी छकड़ोंमें भरकर वहीं रख ली। किसीके लिये स्थानका सङ्कोच नहीं हुआ ॥२२॥ श्रीकृष्णको न तो भूख थी, न प्यास थी, न किसीप्रकारकी व्यथा थी, न सुखकी इच्छा थी, न विश्राम

की अपेक्षा थी। इसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र सात दिन तक बराबर गोवर्द्धन पर्वतको उसी

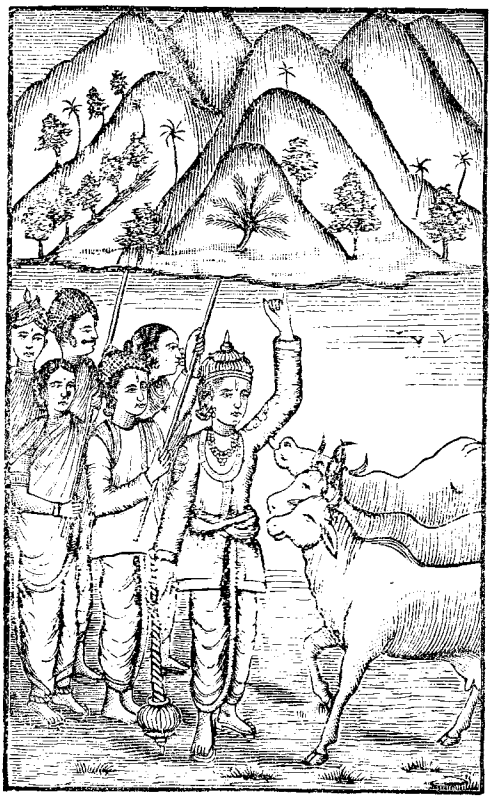

हाथपर उठाये रहे, एक पग भी इधर उधर नहीं हटे। सब गोपियाँ और गोपलोग अचरजभरी दृष्टिसे कृष्णकी ही ओर एकटक निहारते रहे ॥ २३ ॥ कृष्णके इस अद्भुत योगबलको देख कर इन्द्र भी अत्यन्त विस्मित हुए। इन्द्रका संकल्प भ्रष्टहो गया, तब उन्होने अभिमानहीन होकर अपने मेघोंको वर्षा करनेसे निवृत्त किया॥२४॥ उसी समय आकाशमें एक भी मेघ नहीं रहा, प्रचण्ड आँधी और वर्षा रुकगई एवं सूर्य्य निकल आये। यह देखकर गिरिवरधारीने कहा कि "हे गोपगण! अब कुछ भय नहीं है,आँधी और वर्षा-का चिन्ह भी नहीं रहा, सब चढ़ी हुई नदियोंका जल उतर गया। तुम अपनी २ धन-सम्पत्ति, स्त्री और बालक लेकर बाहर निकलो" ॥ २५॥ ॥२६॥तब स्त्री, बालक और बूढ़ों सहित सब गोप लोग, अपने २ गोधनको आगे किये छकड़ोंपर सामग्री लादकर धीरे २ गिरिगर्त्तसे बाहर निकले ॥ २७ ॥ प्रभु भगवान्ने भी सबके सामने ही गिरिराजको पहलेकी भाँति लीलापूर्वक उसी स्थानपर स्थापित करदिया ॥ २८ ॥ प्रेमसे पूर्ण सब व्रजवासी कृष्णके निकट आये और जिसको जिस प्रकार उचित था उसने आलिंगन (गलेलगाना) आदिसे उसी प्रकार उनका सत्कार किया। गोपियोंने भी आनन्दसे स्नेहपूर्वक दही, अक्षत और जलके छीटोंसे कृष्णका पूजन किया और मांगलिक आशीर्वाद दिये। स्नेहसे विह्वल नंद, यशोदा, रोहिणी और महाबलशाली बलभद्रने कृष्णको गलेसे लगालिया

और शुभ आशीर्वाद दिये ॥ २९ ॥ ३० ॥ स्वर्गमें देवता, साध्य, सिद्ध, गंधर्व, और चारणलोग स्तुति करते हुए भगवान् पर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३१ ॥ स्वर्गमें देवगण, शंख और दुंदुभी आदि बाजे बजाने लगे और हे महाराज! तुम्बुरु आदि श्रेष्ठ गंधर्वगण हरिगुणगान करने लगे ॥ ३२ ॥

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन्स गोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥
तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥

महाराज! तदनन्तर अपने भक्त अनुरक्त गोपगणसे घिरे हुए बलभद्रसहित श्रीकृष्णजी व्रजमें गये। इसी प्रकार समय २ पर किये गये मनोहर कृष्णके चरित्रोंको आनन्दपूर्वक गाती हुई गोपियाँ भी उनके साथही साथ गईं ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंश अध्याय ।

नन्दसे गोपोंकी बातचीत ।

श्रीशुक उवाच—एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥
अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! गोप लोग कृष्णके पराक्रमको जानते नहीं थे, अतएव इस प्रकार कृष्णके अनेक अद्भुत चरित्र देख कर उनको बड़ा विस्मय हुआ और वे एकत्र होकर कहने लगे ॥१॥ गोपोंने कहा। "इस बालक कृष्णके सभी कर्म बड़े अद्भुत हैं! हम ग्रामीण गोपोंके यहाँ इसका जन्म कैसे हो सक्ता है? कर्म देखनेसे इसका गोपजातिमें जन्म लेना इसके लिये अयोग्य प्रतीत होता है ॥ २ ॥ जैसे गजराज किसी कमलको खेलते २ उखाड़ कर ऊपर उठाले वैसे ही यह सात वर्षका बालक लीलापूर्वक गिरिराजको एक हाथसे उठाकर सात दिन तक कैसे लिये खड़ा रहा? ॥३॥ काल, जैसे जीवकी आयुको हरलेता है वैसेही इसने बाल्यावस्थामेंही आँख मूँद कर महाबलशालिनी पूतनाके प्राण दूधके साथही कैसे खींच लिये? ॥४॥ फिर जब यह तीन महीनेका था उस समय छकड़ेके नीचे सोरहाथा। इसने रोते २ दोनो पैर ऊपरको उछाले, तब इसके कोमल पैरोंकी ठोकरसे उतना भारी छकड़ा कैसे उलट कर चूर २ हो गया? ॥५॥ फिर यह एक वर्षकी अवस्था होने पर एक दिन बैठा हुआथा—उसी समय तृणावर्त्त दैत्य इसे उठा कर आकाशको लेचला। किन्तु मार्गहीमें इसने उसका गला दोनो हाथोंसे पकड़ कर दबाया, जिसकी व्यथासे व्याकुल होकर वह मरगया—यह भी इसने अद्भुत

कर्म किया! ॥ ६ ॥ एक दिन माखनचोरीमें इसको माताने उलूखलसे बाँधदिया। इसने द्वारपर जाकर यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें उलूखल डाल कर बाहुओंके झिटकेसे उन प्राचीन वृक्षोंको कैसे गिरा दिया? ॥ ७ ॥ इसने वनमें बलभद्र और अन्यान्य बालकोंके साथ बछड़े चराते २ वकासुरको अपने मारनेके लिये उद्यत देखा और चट चोंचसे फाड़ कर उस शत्रुको यमपुर भेजदिया! क्या यह साधारण बालकका काम है? ॥ ८ ॥ एक दिन वत्सासुर मारनेकी इच्छासे आया और वत्सरूप धर कर बछड़ोंके झुंडमें मिलगया। इसने लीलापूर्वक उसको पकड़ कर कैथेके वृक्षों-पर पटक दिया और कैथेके अनेक फल पृथ्वीमें गिरा दिये! ॥ ९ ॥ इसने बल-देवके साथ एक दिन गर्दभासुरको और उसके सजातीय असुरोंको मार कर पके हुए फलोंसे पूर्ण तालवनको निर्भय स्थान बनादिया! ॥ १० ॥ बलशाली बलभद्रके हाथों उग्र प्रलम्बासुरका बध कराकर इसने व्रजके पशु और गोपोंको वनमें लगे हुए भयानक दावानलसे बचा लिया! ॥ ११ ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण विषवाले सर्पको दर्पहीन और अपने अधीन कर इसने बलपूर्वक उस कुंडसे निकाल दिया और यमुनाजलको विषशून्य बनाकर पीने योग्य कर दिया! ॥ १२ ॥ नन्दजी! इसके सिवा आपके बालक पर हम सब व्रजवासियोंका ऐसा अटल अनुराग क्यों है? और इसको भी हमलोगों पर स्वाभाविक स्नेह क्यों है? ॥ १३ ॥ हे व्रजराज! कहाँ सात वर्षका बालक और कहाँ महापर्वतको उठाना और लिये खड़े रहना!! यही देख कर हमको 'कदाचित् यह बालक तुम्हारा पुत्र नहीं है'-ऐसा सन्देह हो रहा है" ॥१४॥ नन्दने कहा-"गोपगण! इस बालकके लिये जो कुछ गर्गाचा-र्यजी मुझसे कह गये हैं सो मैं तुमसे कहताहूँ-सुनो। तुम्हारे सब संदेह दूर हो जायँगे ॥१५॥ यह बालक हरएक युगमें शरीर धारण करता है। इसके शुक्ल रक्त और पीत ये तीन वर्ण क्रमशः होचुके हैं। इस समय कृष्ण वर्णसे इसका अवतार हुआ है ॥ १६ ॥ इस तुम्हारे पुत्रने पहले कभी वसुदेवके यहाँ जन्मलिया है-इसीकारण इसको विद्वान् लोग 'श्रीमान् वासुदेव' कहते हैं ॥ १७ ॥ तुम्हारे पुत्रके गुण और कर्म्मोंके अनुसार बहुतसे नाम और रूप हैं। उन को मैं जानता हूँ-और लोग नहीं जानते ॥ १८ ॥ यह गोधन और गोकुलवासियोंको आनन्द और इससे सब प्रकार तुम्हारा कल्याण होगा। इसकी सहायतासे तुम्हारा सब विपत्ति-योंसे छुटकारा होगा ॥ १९ ॥ हे व्रजराज! पहले जिस समय दस्युजन साधुओंको सतातेथ, कोई राजा या रक्षा करनेवाला न था, उस समय इसने सबकी रक्षा की है—इसीके अनुग्रहसे प्रजाने समृद्ध हो कर दस्युगणका दमन किया ॥२०॥ जो भाग्य-शाली लोग इससे प्रेम करते हैं वे शत्रुओंसे परास्त नहीं होते, जैसे विष्णु जिनके पक्षमें हैं वे देवगण, दैत्योंसे परास्त नहीं होते ॥ २१ ॥ हे नन्द! इस कारण यह तुम्हारा बालक, गुणोंमें, श्रीमें, कीर्त्तिमें और प्रभावमें नारायणके

समान है। इसके अद्भुत चरित्र देख कर विस्मय न करना ॥ २२ ॥ यों मुझसे कह कर गर्गजी अपने आश्रमको चलेगये। तबसे मैं क्लेशसे छुड़ानेवाले कृष्णको नारायणका अंश मानता हूँ" ॥ २३ ॥ नन्दके मुखसे गर्गजीके वाक्योंको सुनकर सब व्रजवासी प्रसन्न हुए, उनका सब सन्देह व विस्मय जाता रहा और वे कृष्ण-चन्द्र व नन्दकी प्रशंसा करने लगे ॥ २४ ॥

देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मपर्षानिलैः
सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वाऽनुकम्प्युत्स्मयन् ॥
उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा
बिभ्रद्गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित्प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५ ॥

यज्ञभंग होनेसे कुपित इन्द्र जब व्रज पर घोर वर्षा करने लगे और वज्रपात, शिलाओंकी बौछार व प्रचण्ड आँधीसे सब व्रजवासी नारी-नर सहित बालक, वृद्ध तथा गऊ आदि पशुओंके अवसन्न हो पड़े, तब बालक जैसे खेलते २ धरतीके फूलको उखाड़ लेता है वैसेही जिन्होने करुणावश हो कर लीलापूर्वक हँसते २ गोवर्द्धन पर्वतको एक हाथसे उठालिया एवं आप ही जिसके एक रक्षक हैं उस व्रजको बचालिया वही इन्द्रका घमंड घटानेवाले घनश्याम गोविन्द हमपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

इति श्रीभागवते पूर्वार्धे दशमस्कन्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंश अध्याय।

कृष्णका अभिषेक।

श्रीशुक उवाच—गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥
गोलोकादाव्रजत्कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! श्रीकृष्णजीने गोवर्द्धन पहाड़ उठा कर व्रजको बचालिया, तब गोलोकसे आई हुई सुरभी (गऊ) को लेकर इन्द्रदेव एकान्तमें कृष्णके पास आये। इन्द्रने कृष्णकी अवहेला की थी, इसी अपराधसे वह लज्जित हो रहे थे। अतुलिततेजधारी कृष्णका अपूर्व प्रभाव देख सुनकर इन्द्रको विस्मित होना पड़ा और उनके मनसे यह घमंड जाता रहा कि "मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ"। इन्द्रने आते ही सूर्य्यके समान प्रकाशमान अपना किरीट मुकुट कृष्णके चरणों पर धर दिया और हाथ जोड़कर कहा कि-॥१॥२॥३॥ "भगवन्! आपका स्वरूप विशुद्ध-सत्त्वमय, शान्त, सर्वदा एकरूप, अतएव पूर्णज्ञानसे युक्त अर्थात्

सर्वज्ञ है-उसमें रजोगुण या तमोगुणका लेश भी नहीं है। मायाका प्रपञ्च यह संसार आपमें नहीं है, क्योंकि इसकी उत्पत्ति अज्ञानसे है और आप ज्ञानमय हैं-अज्ञानसे परे हैं ॥ ४ ॥ अतएव हे ईश्वर! जो लोभ आदि भाव अज्ञान और शरीरके सम्बन्धसे उत्पन्न हैं तथा अन्य शरीर मिलनेके कारण हैं एवं अज्ञानके चिन्ह हैं वे आपमें कैसे रह सक्ते हैं? तथापि आप समय २ पर धर्म्मकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये दण्ड देते रहते हैं ॥५॥ आप जगत्के पिता, गुरु, अधीश्वर एवं दुर्निवार्य्य काल हैं। आप लोकोंके हितके लिये अपनी ही इच्छासे अनेक शरीर धारण कर, जो मेरे समान मूढ़जन अपनेहीको जगत्का ईश्वर मानते हैं उनके मिथ्या घमंडको दण्डद्वारा मिटाते हुए, क्रीड़ाकरते हैं ॥६॥ जो मेरे ऐसे अज्ञ लोग अपनेको जगदीश मानकर अभिमानसे परिपूर्ण होते हैं वे भयके समय भी आपको निर्भय देख कर तुरन्त ही मदहीन हो जाते हैं और आर्य्यमार्गको गहते हैं आर्थात् आपको भजते हैं। अतएव आपकी चेष्टाही दुष्टोंके लिये दंडरूप है ॥ ७ ॥ मैं ऐश्वर्य्यके मदसे उन्मत्त हो रहाथा—आपके प्रभावको भलीभाँति नहीं जानताथा, इसी कारण यह अपराध मुझसे हुआ। हे नाथ! मुझ मूढ़मतिके अपराधको क्षमा करिये। ईश्वर! मेरी फिर ऐसी कुमति कभी न हो ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज! हे देव! जो स्वयं पृथ्वीके लिये भार हैं और अनेक भूभारोंकी उत्पत्तिके साधनोंका कारण हो रहे हैं उन्ही असुरसेनापतियोंके संहारके लिये और जो लोग आपके चरणसेवक हैं उनके मङ्गलके लिये आपका यह मनुष्यावतार हुआ है ॥ ९ ॥ आप अन्तर्य्यामी हैं और सर्वत्र बसनेके कारण अखंड हैं। हे यादवोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र! आपको प्रणाम है ॥ १० ॥ आप विशुद्ध ज्ञानमूर्त्ति हैं, अपनी इच्छासे देहधारण करते हैं। ये सब चराचर जीव आपके रूप हैं, इनका कारण आपही हैं-इसी लिये सर्वभूतमय हैं। आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥ मुझको अभिमान था, इसी लिये मेरा क्रोध भी अति प्रचण्ड था। अतएव अपने यज्ञका विनाश देखकर मैंने जलकी वर्षा और उग्र वायुसे व्रज विनष्ट करनेकी चेष्टा की थी ॥ १२ ॥ ईश्वर! आपने मेरा मद दूर करदिया, सो बड़ाही अनुग्रह किया। उद्यम व्यर्थ होनेसे मुझे अपनी शक्तिकी अपूर्णता विदित होगई। अब मैं, ईश्वर, गुरु और आत्मा जो आप हैं उनकी शरणमें आयाहूँ" ॥ १३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। महाराज! इस प्रकार जब इन्द्र स्तुति कर चुके तब मेघके समान गंभीर वाणीसे भगवान्ने हँसते हुए कहा ॥ १४ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा**। "इन्द्र! तुम ऐश्वर्य्यके मदसे अत्यन्त मत्त हो गये थे। तुम मेरा स्मरण करो, इसी लिये मैंने अनुग्रह करते हुए तुम्हारे यज्ञको रोक दिया ॥ १५ ॥ ऐश्वर्य्य और श्रीके मदसे जो अंधा हो रहा है वह मुझ दण्डपाणि ईश्वरको नहीं देख पाता। ऐसे मदान्धोंमेंसे जिस पर मैं अनुग्रह करना चाहताहूँ उसकी सम्पत्ति हर

लेता हूँ, तब उसके ज्ञाननेत्र खुलजाते हैं ॥ १६ ॥ इन्द्र ! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने लोकको जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करते हुए अभिमानहीन होकर अपना कार्य्य करो" ॥ १७ ॥ इसके बाद उदार चित्तवाली सुरभीने अपने सन्तानों सहित आकर गोपरूपी कृष्ण ईश्वरको प्रणाम किया ॥ १८ ॥ सुरभीने कहा। "हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगी ! हे विश्वरूप और विश्वको उत्पन्न करनेवाले लोकनाथ अच्युत ! आपने इन्द्रके क्रोधसे हो रहे संहारसे हमारी रक्षा करके हमको सनाथ किया ॥ १९ ॥ आपही हमारे परमदेव हैं, अतएव हे जगन्नाथ ! गऊ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनोंके मंगलके लिये आपही हमारे इन्द्र होइये ॥ २० ॥ ब्रह्माजीकी आज्ञासे हम अपना इंद्र बनाकर आपका अभिषेक करेंगी। हे विश्वरूप ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये आपका यह अवतार हुआ है" ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज ! यों कहकर सुरभीने अपने दुग्धसे पहले कृष्णचन्द्रका अभिषेक किया। तदनन्तर देवमाता अदिति आदिकी आज्ञासे इन्द्रने भी देवगणके साथ ऐरावतके लाये हुए आकाशगंगाके पवित्र जलसे दाशार्ह कृष्णका अभिषेक किया और "गोविन्द" नाम रक्खा ॥ २२ ॥ २३ ॥ तुम्बुरु, नारद आदि गन्धर्व्व और विद्याधर, सिद्ध, चारण आदि वहाँ आकर त्रिलोकपापहारी हरिका यश गाने आगे और अप्सराएँ प्रसन्न हो कर नृत्य करने लगीं ॥ २४ ॥ प्रधान २ देवगण स्तुति करते हुए हरिके ऊपर स्वर्गीय अद्भुत फूलोंकी वर्षा करने लगे। तीनो लोकोंको परम आनन्द हुआ। गौवोंके स्तनोंसे उमंगके कारण आपही आप बह रहे दूधसे पृथ्वी भीगगई ॥२५॥ नदियोंमें जलके स्थान पर भाँति २ के रस (दुग्ध आदि) बहने लगे। वृक्षोंके कोटरोंसे मधु बहने लगा। बिना जोते बोये सब औषधियाँ जिनमें होती हैं उन पर्वतोंने गर्भगत मणियोंको प्रकटरूपसे धारण किया ॥ २६ ॥ हे कुरुनन्दन ! कृष्णाभिषेक होने पर, जिनमें स्वाभाविक परस्पर वैर होता है वे क्रूर जीव भी वैरविहीन हो गये ॥२७॥

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ॥
अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥

इस प्रकार गोगण और गोकुलके स्वामी गोविन्दका अभिषेक करके उनकी आज्ञा पाकर देवर्षियोंके साथ पुरन्दर इन्द्र अपने स्वर्गलोकको गये ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंश अध्याय ।

वरुणालयसे नन्दको छुड़ालाना ।

श्रीशुक उवाच–एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । महाराज ! गोपराज नंदने एकादशीके दिन उपवास किया और जनार्दनकी पूजा की एवं द्वादशीके दिन बहुत ही थोड़ी द्वादशी होनेके कारण (द्वादशीमें ही पारणा करना चाहिये–इस लिये) अरुणोदयके पहले ही आसुरी वेलाका ख्याल न करके स्नान करनेके लिये यमुनाजलमें प्रवेश किया । इसी लिये एक वरुणका किंकर जलचारी असुर नंदको वरुणके निकट लेगया ॥१॥२॥ इधर साथ आये हुए गोपगण नंदको जलके बाहर निकलते न देख कर "हे कृष्ण ! ! हे बलभद्र ! ! !" कह कर उँचे स्वरसे चीत्कार करने लगे । पिताको वरुण लेगये; यह सुन कर कृष्णचन्द्रने डरे हुए गोपोंको "डरो नहीं–मैं उनको अभी लाता हूँ" कह कर धैर्य्य दिया । उसी समय कृष्णचन्द्र वरुणके पास गये । हृषीकेश हरिको आये देख कर लोकपाल वरुणने परमप्रसन्नतापूर्वक महा समारोहसे उनका पूजन किया ॥३॥४॥ **वरुणजीने कहा** । "प्रभो ! आज मेरा जन्म लेना सफल हुआ, आज वास्तवमें मुझको महासम्पत्ति (अथवा मनोरथ) मिलगई । भगवन् ! आपके चरणोंकी सेवा करनेवाले जन मोक्षपदको पाते हैं । अतएव आज मुझको भी संसार से मुक्ति मिलगई ॥ ५ ॥ ईश ! आपका ऐश्वर्य्य निरतिशय अर्थात् सर्वोत्कृष्ट है । आप पूर्णरूप, परमात्मा हैं । भ्रम उपजानेके लिये लोकसृष्टिकी कल्पना करनेवाली माया आपमें नहीं सुन पड़ती, अर्थात् आपके निकट अविद्यमान सी रहती है । आपको प्रणाम है ॥ ६ ॥ कार्य्याकार्य्यसे अनभिज्ञ महामूढ़ मेरा भृत्य, विना जाने इन आपके पिताको यहाँ ले आया है–अतएव हे प्रभो ! उसके अपराधको क्षमा करिये ॥ ७ ॥ हे पितृवत्सल गोविंद ! आपके पिता यह हैं, इनको ले जाइये । हे सर्वज्ञ कृष्ण ! मैं भी आपका दास हूँ, मुझ पर भी अनुग्रह करिये ॥८॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । इस प्रकार नम्रताके व्यवहारसे वरुणने ईश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रको प्रसन्न किया । तदनन्तर कृष्णचन्द्र भी अपने बंधुओंको आनन्दित करते हुए पिताको साथ लेकर वरुणलोकसे व्रजमें आये ॥ ९ ॥ गोपराज नन्द, वरुणके अदृष्टपूर्व ऐश्वर्य्यको और वरुणके किये हुए कृष्णके प्रति सत्कार, पूजन तथा व्यवहारको देख कर बहुतही विस्मित हुए । नंदने व्रजमें आकर गोपोंसे सब वृत्तान्त कहा ॥ १० ॥ गोपोंने जाना कि कृष्णचन्द्र ईश्वर हैं । यह जान कर वे लोग मनहीमन इस लिये उत्सुक हुए कि "भगवान् कभी हमको भी अपनी सूक्ष्मगति तक पहुँचावेंगे ?" सर्वज्ञ भगवान् आत्मीय गोपोंका यह संकल्प जान गये । तब कृपापूर्वक

उनका उक्त संकल्प सिद्ध करनेके लिये भगवान्‌ने विचारा कि-"इस लोकमें अविद्या कामना और कर्मोंके द्वारा यह जीव, उत्तम और अधम गतियोंमें घूमते रहनेके कारण अपनी गति(तत्त्व)को नहीं जान सक्ता" ॥११॥१२॥१३॥ यों विचार कर करुणावरुणालय हरि, गोपोंको मायासे परे जो अपना वैकुंठलोक है, वहाँ लेगये ॥ १४ ॥ फिर, कोई बाधक न होनेसे जो सत्य है, ज्ञानरूप है, अनन्त है स्वयं प्रकाशमान है, नित्य है, और जिसको गुणसम्बन्ध त्यागने पर एकाग्रचित्त मुनिजन देख पाते हैं, पहले वही अपना निर्गुण ब्रह्मरूप दिखाया ॥ १५ ॥ ब्रह्महृदमें जा कर वे लोग उसीमें मग्न होगये, तब कृष्णचन्द्रने उनको उससे बाहर किया अर्थात् जैसे समाधिसे जगाया। फिर सगुण ब्रह्म (विष्णु) का लोक उन गोपोंने देखा, जिसको यमुनाके भीतर अक्रूरने भी देखा था ॥ १६ ॥

नन्दादयस्तु तं दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ॥
कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥

गोपोंने देखा, वहाँ कृष्णचन्द्र विराजमान हैं और वेद उनकी स्तुति कर रहे हैं। गोपोंको यह देखकर परमानन्द प्राप्त हुआ और वे बहुतही विस्मित हुए ॥ १७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश अध्याय।

रासविहारका आरम्भ।

श्रीशुक उवाच-भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! भगवान्‌ने गोपकुमारियोंसे यमुनातट पर कहा था कि "आनेवाली शरद् ऋतुकी रातोंमें मैं तुम्हारी कामना पूरी करूँगा"। वे शरद् ऋतुकी सुशोभित रमणीय रात्रियाँ आगईं और फूली हुई मल्लिकाके कुसुम अपनी सुवाससे मनको मोहने लगे। यह देखकर भगवान्‌ने भी योगमायाको अंगीकार करके विहार करनेकी इच्छा की ॥१॥ नायक जैसे बहुत दिन पर बाहरसे घर आकर कुंकुमराग अपनी प्रियाके मुखमें लगाता और उसके तापको हरता है वैसे ही पूर्ण चन्द्रमा अपनी सुखशान्तिमय किरणोंके द्वारा लालिमासे पूर्वदिशाका मुखरञ्जन करते हुए आकाशमें समुदित हुआ। लोगोंके हृदयकमल सूर्य्यके तापसे मुरझा गयेथे सो अब चन्द्रमाके शीतल प्रकाशसे प्रफुल्लित हो उठे ॥ २ ॥ लक्ष्मी देवीके मुखमण्डलके तुल्य शोभाधाम एवं नवीन कुंकुमरागके सदृश अरुणवर्ण चन्द्रमा पूर्णमण्डलसे आकाशमें प्रकाशमान है और उसकी कोमल किरणोंसे

वृंदावन रंजित होरहा है-यह देख कर श्रीकृष्णचन्द्रजी, बाँसुरी बजाकर व्रजबालाओंके मनोंको हरनेवाले मधुर गीत गाने लगे ॥ ३ ॥ कृष्णने जिनके मनोंको हर लिया है वे व्रजनारियाँ वह कामोद्दीपक गान सुनते ही जहाँ कान्त हैं वहाँ झटपट झपटती हुई चल दीं। वेगसे चलनेके कारण उनके हिलते हुए कुण्डल मुखमण्डलकी छवि बढ़ाते जातेथे। सब स्त्रियाँ अपनी २ ओर चलदीं-मारे उतावलीके किसीने किसीको नहीं बुलाया ॥ ४ ॥ कोई गोपी दूध दुह रही थी; कृष्णकी तान कानमें पड़तेही वह उत्सुकताके कारण दुहना छोड़कर चलपड़ी। कोई चूल्हे पर चढ़ाहुआ दूध बिना उतारे, कोई गेहूँका संयाव (लप्सी या हलवा) चूल्हे ही पर छोड़ कर चल दी ॥ ५ ॥ कोई २ रसोंईमें परिवारके लोगोंको भोजन करा रहीथीं, कोई बालकोंको दूध पिला रही थीं, कोई पतियोंकी सेवा कर रहीथीं, कोई भोजन कर रही थीं-वे सब अपना २ काम छोड़ कर कृष्णके पास चलीं ॥ ६ ॥ कोई उबटना लगा रही थीं, कोई चन्दन और अंगराग लगा रही थीं, कोई अंजनसे नयनरंजन कर रही थीं-सब अपना २ शृंगार अपूर्ण ही छोड़ कर जैसे तैसे उलटे सीधे वस्त्र और आभूषण पहन कर कृष्णके पास चलीं ॥ ७ ॥ उनको उनके पिता, पति, भाई और बंधुओंने लाख २ रोका, परन्तु उनके मनोंको तो गोविन्दने हर लियाथा-इस कारण कोई भी न लौटानेसे लौटीं ॥८॥ कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर ही रह गईं, बाहर न निकल सकीं, तब उन्होने, आँख मूँद कर जिनका ध्यान नित्य हरघड़ी किया करती थीं उन्ही कृष्णमें मनको लगादिया ॥ ९ ॥ प्यारे कृष्णके दुस्सह विरहके तीव्र तापमें उनके सब अशुभ भस्म हो गये और ध्यानमें प्राप्त कृष्णकी भेंटके परमानन्दसे सब शुभ भी क्षीण हो गये, सुतराम् यद्यपि उन्होने 'जार'बुद्धिसे कृष्णमें मन लगाया, तथापि उक्त रीतिसे सुख दुःख भोगकर वे कर्म्मबन्धनसे मुक्त हो गुणमय शरीर छोड़ कर परमात्मा कृष्णमें लीन हो गईं ॥१०॥ ११ ॥ **राजा परीक्षित्ने** कहा ब्रह्मन्! गोपियाँ तो कृष्णको अपना कान्त मानती थीं, उनको कृष्णमें ब्रह्मभाव नहीं था। तब उनको कैसे संसार (जन्म मरण) से मुक्ति मिल गई? क्योंकि उनकी बुद्धि तो मायाके गुणोंमें आसक्त थी ॥ १२ ॥ **श्रीशुकदेवजीने** कहा। राजन्! मैं आपसे पहले ही कह चुका हूँ कि "हरिसे शत्रुता करके भी शिशुपाल मुक्त होगया," तब हृषीकेश कृष्णकी प्रिया गोपियोंके मुक्त होनेमें क्या विचित्रता है? ॥ १३ ॥ राजन्! भगवान् कृष्णचन्द्र यद्यपि अव्यय, अप्रमेय, निर्गुण और गुणोंके नियन्ता हैं, तथापि अपने अनुचरोंके मंगलके लिये समय २ पर सगुणरूपसे प्रकट होते रहते हैं ॥ १४ ॥ कामसे, क्रोधसे, भयसे, स्नेहसे, किसी सम्बन्धसे या भक्तिसे-किसी भी प्रकार जिनका चित्त अच्युतमें लवलीन है वे अवश्य तन्मय हो जाते हैं ॥ १५ ॥ राजन्! योगेश्वरोंके ईश्वर, अजन्मा, भगवान् कृष्णके विषयमें तुमको ऐसा सन्देह न करना

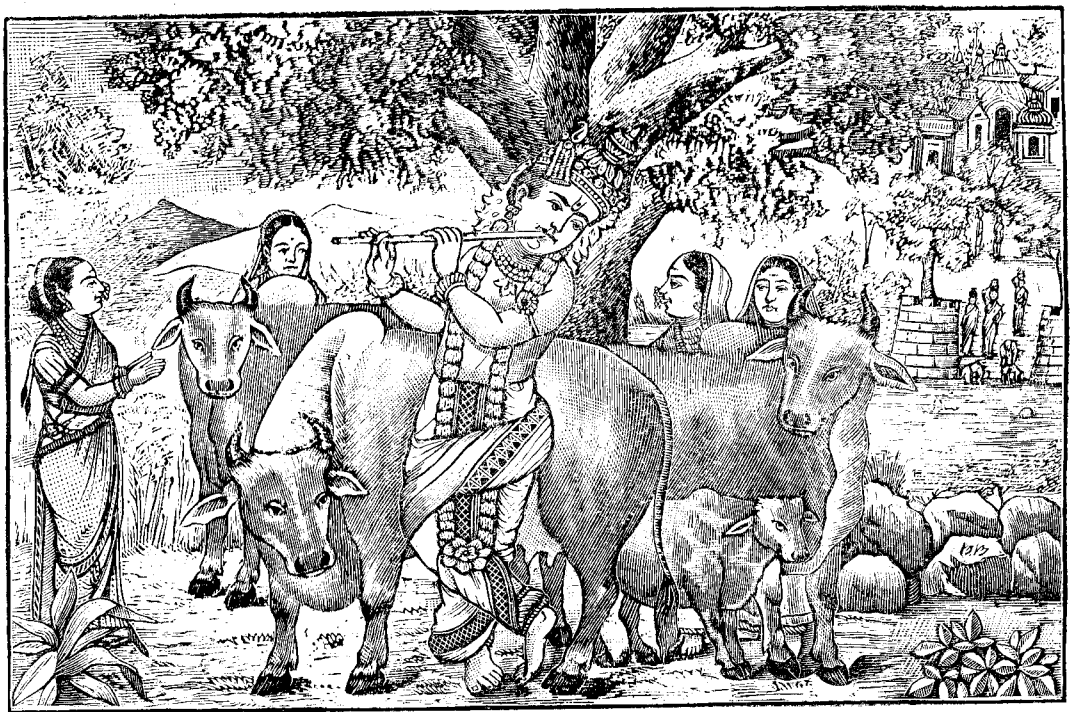

रासविहारके लिये कृष्णकेपास गोपियोंका आना.

चाहिये । कृष्णकी कृपासे जड़ जीव भी तर जाते हैं ॥ १६ ॥ महाराज, भगवान्‌ने देखा कि व्रजनारियाँ अपने पास आकर खड़ी हुई हैं । तब उनको वाक्‌चातुरीसे मोहित करते हुए बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ हरिने कहा ॥ १७ ॥ कि–"महाभागाओ! भले आईं । कहो–हम तुम्हारा क्या प्रिय करें? व्रजमें तो सब कुशल है? इस समय तुम्हारे आनेका कारण क्या है? सो हमसे कहो ॥ १८ ॥ देखो, यह रात्रि बड़ीही घोर है, इसमें भयंकर जीव वनमें विचर रहे हैं । इस लिये हे सुन्दरियो! मेरी सम्मति है कि तुम व्रजको लौट जाओ । तुम्हारा यहाँ ठहरना उचित नहीं है ॥१९॥ तुम्हारे माता, पिता, पुत्र, भाई और पति, तुमको न देख कर इधर उधर खोज रहे होंगे । बन्धुओंको वृथा घबड़ाहटमें न डालो ॥ २० ॥ यदि तुम वनकी शोभा देखने आई हो तो तुमने चन्द्रमाकी किरणोंसे उज्वल एवं फूलोंसे परिपूर्ण वृन्दावन देखलिया और यमुनाजलके संयोगसे शीतल पवनकी मंदगतिसे हिल रहे वृक्षोंके नवपल्लवोंकी शोभा भी भली भाँति निहार ली । बस हे सतियो! देर न करो, शीघ्र व्रज जाकर अपने २ पतियोंकी सेवा करो । तुम्हारे बालक और बछड़े चिल्ला २ कर रो रहे होंगे, उनको जाकर दूध पिलाओ और गौवोंको दुहो ॥ २१ ॥ २२ ॥ अथवा तुम मुझमें मन लगा रहनेके कारण मुझको देखने आई हो तो यह उचित ही है, इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि मुझसे सभी प्राणियोंको प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ २३ ॥ गोपियो! निष्कपट हो कर अपने स्वामी और स्वामीके बंधुओंकी सेवा करना एवं सन्तानोंका पालन करना ही स्त्रियोंका परम धर्म्म है ॥२४॥ जिन स्त्रियोंको उत्तम गति पानेकी इच्छा हो, उनको चाहिये कि स्वामी बुरे स्वभाववाला, अभागा, वृद्ध, जड़ (बौरा) या दरिद्र हो—किन्तु उसे न छोड़ें । हाँ, यदि उसको हत्या लगी हो–तब उससे अलग रहना उचित है ॥ २५ ॥ जारसेवा कुलकामिनियोंके लिये निंदाका कारण है । यह निन्दित कर्म करनेसे स्त्रियाँ स्वर्गलोक नहीं पातीं, उनकी निन्दा और अकीर्त्ति होती है। इसमें बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं और सदैव भय बना रहता है । कहाँ तक कहें–यह बड़ा ही तुच्छ कार्य है ॥२६॥ इसके सिवा मेरे चरित्र कहने और सुननेसे, मेरे दर्शन और ध्यानसे जैसी मुझमें प्रीति होती है वैसी पास रहनेसे नहीं होसक्ती । इसलिये तुम सब अपने घरोंको लौट जाओ" ॥ २७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! इस प्रकार गोविन्दके अप्रिय वचन सुन कर गोपियोंको बड़ा ही विषाद हुआ, सब उमंग और अभिलाषाएँ जाती रहीं और अपार चिन्ताने उनके चित्तोंको चञ्चल कर दिया ॥ २८ ॥ शोकके कारण बार २ लंबी और गरम साँसें ले रही गोपियोंके अधरबिंब सूख गये । दुःखके भारी भारसे दबी हुई गोपियाँ मुख नीचा किये पैरके अँगूठोंसे पृथ्वी खोदती हुई चुपचाप जैसी की तैसी खड़ी रह गईं। काजल मिलजानेके कारण काले हो गये आँसुओंके बूँद उनके कुचों पर गिरने लगे, जिनसे कुचोंपर लगा हुआ कुंकुमकलित

अङ्गराग छूट २ कर बहने लगा ॥ २९ ॥ वे प्यारे कृष्णहीके लिये सब काम छोड़कर दौड़ी आई थीं, किन्तु उनको प्रियतमके मुखसे इस प्रकार अप्रिय वचन सुननेको मिले—इससे गोपियोंको बड़ाही क्षोभ हुआ। उस समय रोनेके कारण फूलगये नेत्रकमलोंके आँसुओंको हथोरियोंसे पोंछ कर किंचित् प्रणय-कोपके आवेशसे गद्गद होगई वाणीसे अनुरक्त व्रजबालाएँ यों कहने लगीं ॥ ३० ॥ गोपियोंने कहा—"विभो! आपको ऐसे निठुर वचन कहना नहीं उचित है। हम सब छोड़ कर सेवा करनेकी अभिलाषासे आपके चरणकमलोंकी शरणमें आई हैं। हे स्वतन्त्र! तुम हमको न त्यागो। जैसे आदिपुरुष नारायण देव मुमुक्षु (मोक्षकी इच्छा रखनेवाले) लोगोंको भजते हैं वैसेही तुम हम भक्तोंको भजो ॥ ३१ ॥ प्रियतम! आप धर्मज्ञ हैं। आपने जो कहा कि 'पति, पुत्र और बंधुओंकी सेवा करनाही स्त्रियोंका परम धर्म्म है'—सो हम यह मानती हैं। इसी उपदेशके अनुसार उपदेश देनेवाले ईश्वर जो आप हैं उनकी सेवाहीसे पतिपुत्रादिकी सेवा सिद्ध हो जायगी, क्योंकि आपही शरीरधारियोंके परमप्रिय, बन्धु, आत्मा हैं (अर्थात् बिना आपके पति, पुत्रादि किसी कामके नहीं होते-उन पर उस मृत दशामें प्रेम नहीं रहता) ॥ ३२ ॥ प्यारे! शास्त्रज्ञ चतुर लोग आपही पर प्रेम करते हैं, क्योंकि आपही नित्यप्रिय आत्मा हैं। नाथ! पति, सुत आदि क्या सुख दे सक्ते हैं? वे तो दुःख देनेवाले हैं। अतएव हे परमेश्वर! हम पर प्रसन्न होइये। हे कमलनयन! अनेक दिनोंसे जो हमारी आशा लगी हुई है उसको नष्ट न करिये ॥ ३३ ॥ हे सुखदायक नायक! जो हमारा चित्त इतने दिनोंसे घरमें लगा था उसको आपने हर लिया है, इसलिये अब घरमें चित्त नहीं लगता। हाथ भी घरके काममें नहीं चलते और पैर भी आपके चरणोंके पाससे एक पग नहीं हटते। प्रियवर! हम व्रजको कैसे लौट कर जायँ और वहाँ जाकर क्या करें? ॥ ३४ ॥ हे कृष्ण! मंद मुसकानयुक्त चितवन और मधुर मनोहर गीतसे हमारे हृदयमें मदनानलकी ज्वालाएँ उठ रही हैं, उनके तापको अपने अधरसुधाकी धारासे सींच कर शीतल करिये। नहीं तो हे मित्र! हमारा शरीर विरहकी अग्निसे भस्म हो जायगा और हम ध्यानके द्वारा आपकी पदपदवीको पहुँचेंगी ॥ ३५ ॥ हे कमललोचन! तुम्हारे चरणकमल कमलाको आनन्द देनेवाले हैं। हे वनवासियोंके प्रिय! जबसे हमने उन चरणोंका स्पर्श पाया है तबसे हमारा चित्त आपहीमें रम रहा है। अब हमसे किसी औरके निकट नहीं ठहरा जाता ॥ ३६ ॥ जिसके कृपाकटाक्षके लिये अन्यान्य देवगण अभिलाषा रखते और अनेक यत्न करते हैं वह लक्ष्मी आपके हृदयमें स्थान पाकर भी तुलसीके साथ आपके भक्तसेवित चरणरजके पानेकी लालसा रखती हैं। नाथ! हम भी लक्ष्मीके समान उसी रजके पानेकी इच्छासे चरणोंकी शरणमें आई हैं ॥ ३७ ॥ हे संकटहरण! पापनाशन! हम सब

छोड़ कर आपकी उपासना करनेकी आशासे चरणोंके निकट आई हैं—हम पर प्रसन्न होइये। हे पुरुषभूषण! आपकी सुन्दर मुसकान और मनोहर दृष्टिसे हमारे हृदयमें कामकी आग जग उठी है एवं उसके तापसे हमारा आत्मा तप रहा है—कृपापूर्वक हमको अपनी दासी बनाइये ॥ ३८ ॥ प्रियतम! कुंडलकान्तिसे मनोहर कपोल, अधर-सुधा एवं अलकावलीसे सुशोभित आपका मुखकमल और सबको अभय देनेवाले दोनो बाहुदंड एवं लक्ष्मी जिसमें रुचिपूर्वक रमण करती है वह वक्षःस्थल निहार कर हम आपकी दासी हो चुकी हैं ॥ ३९ ॥ प्यारे कृष्ण! त्रिलोकीमें कौन ऐसी स्त्री है जो तुम्हारे सुधामय पदोंसे युक्त बाँसुरीके गानको सुन कर एवं त्रिलोकसुन्दर इस रूपको देख कर मोहित न होगी और उसका मन अपने धर्म (पतिव्रत) से डिग न जायगा? तुम्हारे इस त्रिलोकमोहन रूपको देख कर और बाँसुरीकी धुनि सुन कर पक्षी, पशु, मृग, गऊ और वृक्षोंके भी आनन्दसे रोम खड़े हो जाते हैं! ॥ ४० ॥ जैसे आदिपुरुष नारायण देवगणकी रक्षा करते हैं, वैसे ही आप व्रजवासियोंकी आर्त्ति (पीड़ा) हरनेके लिये व्रजमें प्रकट हुए हैं, यह निश्चित बात है। हे दीनबंधो! इस लिये आप हम दासियोंके तपे हुए स्तनों और शिरों पर अपना करकमल धरिये" ॥ ४१ ॥ श्रीशुक देवजीने कहा। हे राजन्! इस प्रकार उनकी अनख-भरी कातर उक्ति सुन कर योगेश्वरोंके ईश्वर एवं आत्मामें ही रमनेवाले श्रीकृष्णजी दयापूर्वक हँसे और उनकी इच्छाके अनुसार विहार करने लगे ॥ ४२ ॥ उदार चरित्रवाले कृष्णचन्द्रके दशनों-की पाँति हँसते समय कुन्दकलीकी आवलीकी भाँति जान पड़ती थी। प्रियकी प्रेमभरी चितवनसे जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हो उठे हैं उन गोपियोंके बीच, तारागणके बीच पूर्ण चन्द्रमाके समान, श्रीकृष्णचन्द्रकी शोभा हुई ॥ ४३ ॥ वैज-यन्ती माला पहने हुए श्रीकृष्णचन्द्र उन असंख्य वनिताओंके झुंडमें कभी आप गाते और कभी उनका गाना सुनते हुए इधर उधर घूमकर वनको सुशोभित करने लगे ॥४४॥ उस समय यमुनाके तट पर पूर्ण चन्द्रमाकी चाँदनी फैली हुईथी—चाँ-दनीके प्रकाशसे शीतल और स्वच्छ बालू चमक रही थी। कुमुदके फूलोंकी सुवाससे परिपूर्ण शीतल और मन्द वायु डोल रही थी। उसी मनोहर यमुनातटमें जा कर बाहु फैलाना, लिपटाना, गले लगाना, कर-अलक-जंघा-नीवी और स्तनोंको छूना, हँसी मसखरी, नखच्छद देना, क्रीड़ा, कटाक्ष, और मन्द मुसकान इत्यादिसे का-मोद्दीपन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र गोपियोंके साथ रमण करने लगे ॥ ४५॥४६॥ जिनका चित्त कहीं भी आसक्त नहीं है उन भगवान् महात्मा कृष्णचन्द्रसे इस प्रकार मान पाकर गोपियोंके मनमें 'मान'का उदय हुआ—उन्होने समझा कि सुघराई, रूप, गुण और भाग्यमें हमसे बढ़कर कोई भी स्त्री संसारमें नहीं है ॥ ४७ ॥

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥

उनके सौभाग्यके मद और अभिमानको देख कर उसे मिटाने और उन पर अनुग्रह करनेके लिये भगवान् कृष्णचन्द्र वहीं अन्तर्हित (गायब) हो गये ॥४८॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंश अध्याय ।

गोपियोंका श्रीकृष्णकी खोजमें इधर उधर घूमना ।

श्रीशुक उवाच–अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ॥
अतप्यँस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! झुंडके स्वामी गजराजको न देख कर हथनियाँ जैसे व्याकुल होती हैं वैसेही अकस्मात् कृष्णचन्द्रके छिपजाने पर उनको न देखकर गोपियोंकी दशा हुई ॥ १॥ भगवान्की गति, अनुराग, हँसी, विभ्रमयुक्त चंचल दृष्टि, मनरमानेवाली बातचीत, विलास और विभ्रममें गोपियोंके चित्त बस रहेथे—अतएव वे तन्मय होरही थीं । उस समय सब गोपियाँ मिलकर कृष्णचन्द्रकी गतिआदि क्रीड़ाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ २ ॥ प्रियकी गति, मुसकान, चितवन और बोलचाल आदिमें जिनकी सुरति लगी हुई है एवं तन्मय होनेके कारण कृष्णहीके तुल्य जिनके लीलाविलास हैं वे गोपियाँ "मैंही कृष्ण हूँ" इस प्रकार परस्पर कहने लगीं ॥ ३ ॥ तदनन्तर सब गोपियाँ मिल कर ऊँचे स्वरसे प्रियके गुणोंको गाती हुई उनकी खोजमें उन्मत्तों (पागलों) की भाँति वन २ में घूमने लगीं एवं जो आकाशकी भाँति प्राणियोंके भीतर और बाहर अवस्थित हैं उन्ही परमपुरुषका पता वनस्पतियोंसे इस प्रकार पूछने लगीं ॥ ४ ॥ "हे पीपल! हे पकरिया! हे गूलर! प्रेम और हँसीसे पूर्ण कटाक्षोंके द्वारा हमारा चित्त हर कर नन्दनन्दन चले गये हैं —तुमने क्या उनको देखा है ? ॥ ५ ॥ हे कुरवक–अशोक–नाग–पुन्नाग–चम्पक आदि वृक्षवृन्द! जिनकी मंद मुसकान मानिनी महिलाओंके मानका मर्दन करनेवाली है वही बलभद्रके भाई कृष्ण चन्द्र क्या इधरसे गये हैं ? ॥ ६ ॥ हे कल्याणी तुलसी! हे गोविन्दके चरणोंको प्यार करनेवाली! अलिकुलमण्डित तुम्हारी माला पहने हुए तुम्हारे प्यारे कृष्ण इधरसे तो नहीं गये? क्या तुमने उनको इधर जाते देखा है ? ॥ ७ ॥ हे मालती! हे मल्लिका! हे जाहीजूही! अपने हाथोंके स्पर्शसे तुमको

प्रसन्न करते हुए क्या माधव इस राहसे गये हैं? ॥ ८ ॥ हे रसाल! हे प्रियाल! हे पनस! हे असन! हे कोविदार! हे जामुन! हे मदार! हे बिल्व! हे वकुल! हे आम्र! हे कदम्ब! हे नीप! हे पराये उपकारके लिये उत्पन्न यमुनातीरवासी अन्यान्य सब वृक्षो! क्या तुमने कृष्णको जाते देखा है? कृपा कर कृष्णका पता हमको बताओ, क्योंकि उनके बिना हमारा चित्त शून्य होरहा है! ॥ ९ ॥ अहा पृथ्वी! तूने क्या तप किया है? केशवके चरण-स्पर्शसे तू आनन्दित हुई है, इसीसे जान पड़ता है वृक्षोंकी आवलियों द्वारा शरीरका रोमांच प्रकट कर रही है। तुझको यह आनन्द कृष्णके चरणस्पर्शसे हुआ है या त्रिविक्रम (वामनावतार) के चरणलाभसे? अथवा उससे भी पहले वाराह अवतारके शरीरस्पर्शसे ॥ १० ॥ हे हरिणपत्नियो! हमारे अच्युत अङ्ग-अत्यङ्गके द्वारा तुम्हारे नयनोंको तृप्त करते हुए प्रियासहित क्या इस स्थानमें आये हैं? क्योंकि हे सखियो! इस स्थान पर कुलपति कृष्णके गलेमें पड़ी कुन्दकुसुममालाकी गंध, किसी प्रियाको गले लगानेके कारण, उसके कुचकुंकुमकी सुवाससे मिली हुई आ रही है ॥ ११ ॥ हे तरुवृन्द! तुलसीकी गंधसे अंध (मोहित) भौंरोंकी भीरसे घिरे हुए कमलनयन श्रीकृष्णचन्द्र, एक हाथमें कमल लिये और दूसरा हाथ किसी प्रियाके कंधे पर धरे, प्रणयपूर्ण दृष्टिसे तुम्हारे प्रणामका अभिनन्दन करते हुए क्या घूमते २ इधर आये हैं? ॥ १२ ॥ सखियो! इन वनस्पतियोंकी भुजाओंसे लिपटी हुई लताओंसे तो प्यारेका पता पूछो, जान पड़ता है अवश्य ही कृष्णके नखोंका स्पर्श इनको मिला है, क्योंकि इनके अंग पुलकित हो रहे हैं" ॥ १३ ॥ राजन्! श्रीकृष्णकी खोजमें अत्यन्त व्याकुल एवं श्रीकृष्णमय हो रही गोपियाँ, इस प्रकार उन्मत्तोंके ऐसे वाक्य बकते २ अन्तमें प्रियतमकी की हुई विविध क्रीड़ाओंका अनुकरण करने लगीं ॥ १४ ॥ एक गोपी कृष्ण बनी और एक गोपी पूतना बन कर उसको दूध पिलाने लगी। एक गोपी छकड़ा बनी और एक गोपीने कृष्ण बन कर पैरकी ठोकरसे उसको गिरा दिया ॥१५॥ एक गोपी बालक कृष्ण बनी और दूसरी तृणावर्त्त असुर बन कर उसको उड़ा ले गई। कोई गोपी कृष्णके समान रेंग २ कर चलने लगी और वैसेही बज रहे पैरके घुँघरुओंके शब्दको घूम २ कर सुनने लगी ॥ १६ ॥ दो गोपियाँ कृष्ण और बलदेव बनीं और कुछ गोपियाँ गोपबालक बन कर उनके साथ क्रीड़ा करनेलगीं। एकने अघासुर बनी हुईको और एकने बकासुरका अनुकरण करनेवालीको (झटमूट) मार डाला ॥ १७ ॥ एक गोपी कृष्ण बन गऊ बनी हुई गोपियोंको कृष्णके समान वंशी बजा कर बुलाने लगी, और कुछ गोपियाँ 'वाहवाह' कह कर उसकी बड़ाई करने लगीं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णमें जिसका मन लगा हुआ है ऐसी एक गोपी किसी दूसरी गोपीके कंधे पर हाथ धरके चलती हुई, अन्य गोपियोंसे कहने लगी कि "मैं कृष्ण हूँ—देखो मेरी कैसी मनोहर

चाल है!"॥ १९ ॥ "मैं तुम्हारी रक्षा करता हूँ। वायु और वर्षासे मत डरो–मैं रक्षाका उपाय करता हूँ" यों कह कर किसी गोपीने एक हाथसे अपने वस्त्रोंका बना हुआ गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया ॥२०॥ एक गोपी दूसरी गोपीके शिर पर पैर धर कर कहने लगी–"अरे दुष्ट सर्प! तू यहाँसे चला जा, दुष्टोंको दण्ड देनेहीके लिये मेरा अवतार हुआ है" ॥ २१ ॥ एक गोपी कहने लगी कि "हे गोपगण! देखो यह भयानक दावानल वनको भस्म करता चला आरहा है–तुम अपनी २ आँखें बंद कर लो, मैं अनायास ही इस संकटसे तुमको बचालूँगा" ॥ २२ ॥ एक मृगनयनी क्षीण अंगवाली गोपी दूसरी गोपीके द्वारा मालारचित उलूखलमें बाँधी गई, तब वह भयभीत व्यक्तिकी भाँति मुख छिपा कर भयका अभिनय करने लगी ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे फिर वृन्दावनके वृक्ष और लताओंसे कृष्णका पता पूछती हुई गोपियोंने वनभूमिमें परमपुरुष कृष्णके चरणचिन्ह देख पाये ॥ २४ ॥ चरणचिन्होंको देख कर गोपियाँ कहने लगीं कि–"ध्वजा, पद्म, वज्र, अंकुश आदिकी रेखाओंसे अवश्य जान पड़ता है कि ये चरणचिन्ह महात्मा नन्द-नन्दनके हैं" ॥ २५ ॥ महाराज! गोपियाँ उक्त चरणचिन्होंसे कृष्णका पता लगाती हुई कुछ दूर आगे गईं। वहाँ उनको कृष्ण भगवान्‌के चरणचिन्होंके पास २ किसी और स्त्रीके भी चरणचिन्ह मिले। उन चरणचिन्होंको देख गोपियाँ बहुत व्याकुल हुईं और कहने लगीं कि–"ये किस कामिनीके चरणचिन्ह हैं! अवश्य ही जैसे गजवधू गजराजके साथ चलती है वैसे ही वह गजगामिनी कृष्णके कंधे पर भुजा धर कर उनके साथ ही साथ गई है ॥ २६ ॥ २७ ॥ निश्चय इसने भगवान् ईश्वर हरिको आराधना करके भली भाँति सन्तुष्ट किया है। कृष्णकी प्रसन्नता इसीसे जान पड़ती है कि हम सबको वनमें छोड़ कर उसको अपने साथ एकान्तमें ले गये हैं ॥ २८ ॥ सखियो! ये कृष्णके चरणोंकी रेणुएँ परम पवित्र और धन्य हैं। देखो, ब्रह्मा, महेश और लक्ष्मी देवी पाप-नाशके लिये इनको शिर पर स्थान देते हैं। आओ, हम सब भी इनको शिर पर धरें–ऐसा करनेसे अवश्य ही हमको कृष्णचन्द्र मिल जायँगे ॥ २९ ॥ इस कामिनीके चरणचिन्होंसे हमको बड़ाही क्षोभ होता है, क्योंकि यह हम सबसे अलग ले जाकर अकेले ही प्रियकी अधरसुधा-का पान कर रही होगी" ॥ ३० ॥ कुछ दूर आगे जाने पर जब वे चरणचिन्ह न देख पड़े, तब गोपियाँ कहने लगीं कि–"सखियो! देखो, यहाँ उस कामिनीके चरणचिन्ह नहीं देख पड़ते। जान पड़ता है–वनभूमिके कठोर कंकड़, काँटे आदिसे प्रियाके चरण दुखते देख कर उसको कृष्णने कंधे पर चढ़ा लिया है! ॥ ३१ ॥ गोपियो! देखो–देखो, यहाँ पर जान पड़ता है कि कामी श्रीकृष्ण प्रियाके भारसे थक गये हैं–इसीसे उनके चरण पृथ्वीमें अधिक गड़ गये हैं! यहाँ पर प्रियतमने प्रियाको उतार कर उसका शृंगार करनेके लिये फूल बीने हैं। देखो, यहाँ दोनोंके चरणोंका

अगला हिस्सा ही पृथ्वी पर बना हुआ है। अवश्य यहाँ बैठ कर कामी कृष्णने उस कामिनीके केश सँवारे हैं और इस प्रकार उकरूँ बैठ कर फूलोंसे उसकी वेणी गूँदी है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! श्रीकृष्ण भगवान् पूर्णकाम और आत्माराम अर्थात् आत्मामें ही रमनेवाले हैं, उनको स्त्रियोंके विभ्रम-विलास वशीभूत नहीं कर सक्ते। तथापि कामी पुरुषोंकी दीनताका चित्र और स्त्रियोंका दौरात्म्य दिखानेके लिये उस प्रियाको एकान्तमें ले जा कर उन्होने रमण किया ॥ ३४ ॥ अस्तु, वे सब गोपियाँ इसी प्रकार परस्पर चरण आदिके चिन्ह दिखलाती हुई बेसुध होकर वनमें इधर उधर घूमने लगीं। इधर श्रीकृष्णजी सब स्त्रियोंको छोड़ कर जिस गोपीको अपने साथ एकान्तमें ले गये थे उसने सोचा कि—"गोपियाँ इन प्रियतम पर परम अनुराग करती हैं, तब भी उनको छोड़ कर इन्होने मेरा मान किया है"। यह विचार कर उसने समझा कि मैं सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हूँ। तब उस प्रेमगर्विताने वनमें कृष्णसे कहा कि—"मैं तो अब आगे चल नहीं सक्ती-जहाँ चलो वहाँ मुझको कंधे पर बिठा कर लेचलो" ॥ ३५ ॥ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यह सुन कर कृष्णने प्रियासे कहा कि-"अच्छा मेरे कंधे पर चढ़ो"। जैसे वह स्त्री चढ़नेके लिये उद्यत हुई वैसेही भगवान् वहाँसे भी अन्तर्हित (गायब) होगये। तब वह कामिनी पछता कर विलाप करने लगी कि-"हाय नाथ! हा प्रियतम! हा रमण! हा महाबाहो! कहाँ गये? हे मित्र! मैं आपकी दीन दासी हूँ, मेरे पास आओ" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ महाराज! इधर सब गोपियोंने कृष्णको खोजते २ एक स्थान पर देखा कि प्यारेके वियोगदुःखसे व्याकुल उनकी वह सखी खड़ी रो रही है ॥ ४० ॥ उसके मुखसे माधवसे मान पानेका एवं अपनी ही भूलके कारण अपमानित होनेका वृत्तान्त सुन कर गोपियोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ४१ ॥ तदनन्तर जब तक चाँदनी वनमें फैली रही तब तक गोपियोंने घूम २ कर कृष्णका पता लगाया; जब अंधकार होगया तब सब लौट पड़ीं ॥ ४२ ॥ घूम कर कोई गोपी घरको नहीं गई। जातीं क्या, वे तो श्रीकृष्णहीकी बातचीत और लीलाओंका अनुकरण करते २ तन्मय होगई थीं-किसीको घरका ध्यान भी न था। सब मिल कर एक स्थान पर बैठ गईं और हरिगुण गाने लगीं ॥ ४३ ॥

पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ॥
समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ ४४ ॥

कृष्णहीकी भावना करती हुई गोपियाँ कृष्णके आनेकी चाहसे यमुना-तट पर इस प्रकार गाती हुई प्रार्थना करने लगीं ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंश अध्याय।

गोपिकागीत।

गोप्य ऊचुः–जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः
श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ॥
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका-
स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥

गोपियोंने कहा। "हे कान्त! आपके जन्मसे हमारे व्रजमण्डलको विचित्र वैभव और चमत्कार प्राप्त हुआ है और लक्ष्मी भी निरन्तर वास करके इसको सुशोभित कर रही हैं। किन्तु हे प्रियतम! देखो जिनके जीवन–प्राण आपही हैं वे आपकी अभागिनी दासियाँ आपके विरहमें निपट कातर होकर इस स्थानमें चारो ओर आपकोही खोज रही हैं। हमारे प्राण आपहीमें धरे हुए हैं। अतएव आप दर्शन दीजिये ॥ १ ॥ हे रमण! हे अभीष्टप्रद! तुम्हारे नेत्रोंने शरद् ऋतुके सुन्दर कमलोंके भीतरी भागकी शोभा हर ली है। हम आपकी बिना मोलकी दासी हैं। आप आँखोंसे ओट होकर मनोहर आँखोंकी चोटसे हमको मारगये हो—क्या यह स्त्रीवध नहीं है—क्या यह कर्म आपके योग्य है? अतएव दर्शन देकर हमको जीवनदान करिये ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठ! आपने वारम्वार विषजल–जनित मृत्युसे, अघासुरसे, वर्षाके उत्पातसे–आँधी और वज्रपातसे, वत्सासुरसे, मयासुरके पुत्र व्योमासुरसे—एवं अन्यान्य सब भयानक संकटोंसे हमारी रक्षा की है—तब इस समय भी क्यों नहीं इस कष्टसे मुक्त करते? ॥ ३ ॥ आप केवल यशोदाको अथवा गोपियोंको ही आनन्द देनेवाले नहीं हैं, किन्तु सभीके प्रिय अन्तर्य्यामी परमात्मा हैं। मित्र, विश्वकी रक्षाके लिये जब ब्रह्माने प्रार्थना की, तब आप यदुवंशमें प्रकट हुए हैं। हम तुम्हारी अनुरक्त दासियाँ हैं, अतएव हमारी कामना पूरी करिये ॥ ४ ॥ हे यदुकुलतिलक, जो लोग संसारके भयसे तुम्हारे चरणोंकी शरण लेते हैं, तुम्हारे करकमल अभयदान करके उनकी अभिलाषाओंको पूर्ण करते हैं। प्रियतम जिनसे लक्ष्मीका हाथ पकड़ा है वेही करकमल हमारे शिर पर धरो ॥५॥ हे व्रजवासियोंकी व्यथा हरनेवाले! हे वीर! आपकी मनोहर मन्द मुसकान भक्तोंके गर्वको दूर करनेवाली है। हे मित्र! हम आपकी दासियाँ हैं, कृपा करके हमें अंगीकार करो। अपना सुन्दर मुखारविन्द हमको दिखाओ ॥ ६ ॥ पशुओंके पीछे वनमें विचरनेवाले आपके चरणारविन्द प्रणत प्राणियोंके पापोंका नाश करते हैं। हे प्रियवर! वेही लक्ष्मीसेवित और शेषनागके शिरों पर शोभायमान चरणकमल हमारे कुचों पर स्थापित करके कामकी अग्नि बुझाइये ॥ ७ ॥ हे कमललोचन!

हम तुम्हारी दासियाँ तुम्हारे मधुर पदमय एवं पंडितोंके हृदयोंको हरनेवाले वचनों पर मोहित होरही हैं—अपने अधरोंकी सुधा पिला कर हमको जीवनदान करो ॥ ८ ॥ नाथ ! जो लोग, तप्त जनोंको जीवन देनेवाली, कवियोंके द्वारा प्रशंसित, पापनाशिनी, सुननेसेही मंगल करनेवाली, कामना और कर्मोंको निर्मूल करनेवाली, शान्तिमय, आपकी अमृतमयी कथा विस्तारपूर्वक कहते हैं उन्होने पूर्वजन्ममें बहुत से दान पुण्य किये हैं ॥ ९ ॥ हे कपटी प्रिय ! तुम्हारा वह ध्यान करतेही मंगल करनेवाला प्रेमपूर्ण देखना और विहार करना एवं एकान्तकी हृदय हरनेवाली बातें तथा क्रीड़ाएँ इस समय हमारे चित्तको चञ्चल (व्याकुल) कर रही हैं ॥ १० ॥ हे कान्त ! हे नाथ ! जब आप व्रजसे पशुओंको चराते हुए वनको जाते हैं तब "आपके कमलसम कोमल और सुन्दर चरण कंकड़ घास और काँटे इत्यादि कठिन वस्तुओंसे व्यथित होते होंगे"—इस चिन्तासे हमारा मन व्याकुल हो उठते हैं ॥ ११ ॥ हे वीर ! दिनके अन्तमें आप जब गौवोंको साथ ले कर व्रजको लौटते हैं तब रजोरञ्जित अलकोंसे घिरा हुआ अपना मनोहर मुखारविन्द दिखा कर हमारे हृदयोंमें कामको जगाते जाते हैं ॥ १२ ॥ हे रमण ! हे आर्तिभंजन ! तुम्हारे चरणारविन्द प्रणत जनोंकी कामनाएँ पूरी करते हैं, उनकी लक्ष्मीजी सदा सेवा करती हैं, वे पृथ्वीके आभूषण हो रहे हैं, आपत्तिमें उनका ध्यान करनेसे कल्याण होता है । प्रियतम ! वेही मंगलमय सुशीतल चरण हमारे स्तनों पर स्थापित करो ॥ १३ ॥ हे वीर ! सुरतको बढ़ाने वाला, शोकनाशन एवं बज रही बाँसुरी द्वारा भलीभाँति चुम्बित अपना अधरामृत हमको पिलाओ । वह अधरामृत मिलनेसे सार्व्वभौम सुखकी इच्छा भी तुच्छ जँचती है ॥ १४ ॥ दिनको जब आप वृन्दावनमें विचरते रहते हैं तब आपको बिना देखे आधा क्षण भी हमारे लिये एक युगके समान अपार हो जाता है । जब आप वनसे लौटते हैं तब कुटिलकुन्तलशोभित आपका श्रीमुख निहार कर हमको जो सुख होता है सो कहा नहीं जासक्ता । हम उस समय पलक बनानेवाले जड़ ब्रह्माको कठोर वाक्योंसे तिरस्कार करने लगती हैं । पलक जितनी देरमें झपकती है उतना अन्तर भी हमको असह्य है ॥ १५ ॥ हे गीतगतिज्ञ ! हम ऊँचे स्वरमें गाये गये तुम्हारे मधुर गानकी तान कानमें पड़ते ही पति, पुत्र, बन्धु, बान्धव और भाइयोंके कहे पर ध्यान न देकर तुम्हारे निकट इस वनमें आई—किन्तु हे कपटी तुम्हारे सिवा ऐसा निठुर कौन होगा कि इस प्रकार अपनेही लिये घरबार छोड़ कर आई हुई स्त्रियोंको रात्रिके समय वनमें छोड़ कर चल दे ? ॥ १६ ॥ तुम्हारी कामोद्दीपन करनेवाली एकान्तकी सङ्केत-क्रीड़ाएँ, मंद मुसकानसे मनोहर मुखमण्डल, प्रेमपूर्ण कटाक्ष एवं लक्ष्मीके रहनेका स्थान वक्षःस्थल देख कर मिलनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा वारम्वार हमारे मनको मोहित कर रही है ॥ १७ ॥ हे मित्र ! व्रज-वन-

वासी लोगोंके दुःख दूर करनेके लिये तुम्हारा त्रिलोक-हितकारी अवतार हुआ है। तुमसे मिलनेके लिये हमारा चित्त व्याकुल हो रहा है। प्यारे! जिससे तुम्हारे जनोंका हृदयताप शान्त हो वही औषध कृपणता छोड़ कर हमको दीजिये ॥१८॥

यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वि-
त्कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

हे प्रिय! तुम्ही हमारे जीवनसर्वस्व हो। कहीं चोट न लग जाय–इस भयसे हम जिन चरणकमलोंको अपने कठोर स्तनों पर धीरेसे धरती हैं उन्ही सुकोमल चरणोंसे आप वनमें घूम रहे हैं–छोटे २ कंकड़ पत्थर उनमें गड़कर व्यथा पहुँचाते होंगे–यह चिन्ता हमारे चित्तको व्याकुल कर रही है" ॥ १९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंश अध्याय।

श्रीकृष्णका प्रकट होकर गोपियोंको समझाना।

श्रीशुक उवाच–इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ॥
रुरुदुः सुस्वरं राजन्कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! गोपियाँ, श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे इस प्रकार गाती हुई ऊँचे स्वरसे विचित्र प्रलाप कर रही थीं ॥ १ ॥ इसी अवसरमें साक्षात् मन्मथके भी मनको मथनेवाले नन्दनन्दन उनके आगेही प्रकट हुए। भगवान्के श्याम शरीर पर पीताम्बर और मालाकी अपूर्व शोभा थी—उनका मुखकमल मंद मुसकानसे महा मनोहर देख पड़ता था ॥ २ ॥ कृष्ण प्यारेको सामने देखकर गोपियोंके नेत्रकमल आनन्दके कारण प्रफुल्लित हो उठे। जैसे प्राण आ जाने पर मृतक शरीर उठ खड़े हों वैसेही सब गोपियाँ उठ खड़ी हुईं ॥ ३ ॥ किसी गोपीने आनन्दसे कृष्णका कमलकोमल हाथ अपने हाथमें लेलिया। किसीने चन्दनचर्चित भगवान्की भुजा अपने कंधे पर रख ली ॥ ४ ॥ किसी गोपीने कृष्णका जूठा पान (खानेके लिये) अंजलीमें लेलिया। किसी विरहाग्निमें तपी हुई गोपीने हृदय शीतल करनेकी कामनासे कृष्णका चरणकमल अपनी छाती पर रख लिया ॥ ५ ॥ प्रणयकोपसे विह्वल एक कामिनी ओंठ चबाती हुई धनुष सी भौंहें तान कर प्रियवर पर बाण ऐसे कुटिल

कटाक्ष छोड़ने लगी ॥ ६ ॥ कोई कामिनी चौगुने चावसे टकटकी लगा कर कृष्णका मुखकमल निहारने लगी— किन्तु कृष्ण चरणोंके दर्शनसे साधुओंको जैसे कभी तृप्ति नहीं होती वैसेही वारम्वार निहारनेसे भी उसका जी नहीं भरा॥ ७ ॥ किसी गोपीने नयनोंकी राहसे कृष्णको हृदयमें लेजाकर दोनो नेत्र बंद कर लिये, उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वह योगियोंकी भाँति कृष्णका ध्यान करती हुई परमानन्दमें मग्न हो गई ॥ ८ ॥ जैसे मुमुक्षु लोग ईश्वरको पाकर संसारके तापोंसे छूट जाते हैं वैसेही केशवदर्शनके परमानन्दको पाकर गोपियाँ विरहके तापसे मुक्त होगईं ॥ ९ ॥ राजन्! शोकशून्य गोपियोंके बीचमें भगवान् अच्युतकी ऐसी शोभा हुई जैसे परमपुरुष परमात्मा अपनी सत्त्वादि शक्तियोंमें शोभायमान होता है ॥ १० ॥ मदनमोहन भगवान् उन सब गोपियोंके साथ सुखदायक यमुना तट पर जाकर विहार करने लगे । वहाँ खिलरही कुंद और मंदारकी कलियोंके संसर्गसे सुगंधित वायु चल रही थी और उस वायुके साथही साथ मधुमत्त मधुप इधर उधर डोल रहे थे ॥ ११ ॥ शरद् ऋतुके स्वच्छ चन्द्रमाकी शान्त किरणोंसे वहाँ रात्रिका अंधकार न था, जिससे वहाँ जाकर ठहरनेसे सुख मिलता था । यमुनाकी चंचल तरंगोंने वहाँ कोमल बालू फैला रक्खी थी ॥१२॥ हरिदर्शनके परमानन्दसे जिनके हृदयकी तपन मिट गई है वे गोपियाँ मनोरथके अन्तको पहुँच गईं, अर्थात् तब उनको कोई कामना ही नहीं रही । जैसे श्रुतियाँ कर्मकाण्डमें परमेश्वरको न देख पाकर कर्मोंका अनुगमन करती हुई पहले अपूर्णकामा सी रहती हैं और फिर ज्ञानकांडमें परमेश्वरको पाकर परमानन्दसे पूर्णकामा हो कर कामनाके अनुबंधको छोड़ देती हैं वैसेही श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंको भी कोई कामना नहीं रही । उन्होने अपने बन्धु अथवा अन्तर्यामी कृष्णके बैठनेके लिये अपने २ दुपट्टोंसे एक सुन्दर आसन बनाया ॥ १३ ॥ योगीश्वरोंके हृदयोंमें जिनका आसन रहता है वही भगवान् श्रीकृष्ण आज गोपियोंकी सभामें उनके रुचिसे रचे हुए आसन पर विराजमान हुए । मानों त्रैलोक्यमें जितनी शोभा है सब कृष्णके श्याम शरीरमें अवस्थित होकर अपनेको शोभायमान कररही थी ॥ १४ ॥ मंद मुसकानके मिलनेसे मनोहर लीलाविलासमय कटाक्षोंसे परिपूर्ण बंक भौंहसे कुछ २ कोप जताती हुई और गोदमें धरे हुए कामोद्दीपक प्रियतमके हाथ और पैरोंको धीरे २ दबा कर सम्मान-सूचना देती हुई गोपियोंने भगवान् कृष्णसे कहा कि—"श्रीकृष्णचन्द्र! एक लोग ऐसे होते हैं जो भजनेवालोंको भजते हैं और एक लोग ऐसे होते हैं जो न भजनेवालोंको भी भजते हैं । इनके सिवा एक ऐसे होते हैं जो भजनेवाले और न भजनेवाले दोनोंको नहीं भजते । इसका कारण क्या है—सो कृपा कर हमसे कहिये" ॥ १५ ॥ १६ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा**—सखियो! तुम्हारा कहना ठीक है ।

देखो—जो अपना २ प्रयोजन सिद्ध करनाही अपना अभीष्ट रखते हैं वेही भजनेकी अपेक्षा करते हैं अर्थात् भजनेवालेको भजते हैं, किन्तु यह मित्रता सच्ची नहीं है । क्योंकि इसमें धर्म्म नहीं है—स्वार्थ है; बिना स्वार्थके ऐसी मित्रता नहीं होती ॥१७॥ हे सुंदरियो ! किन्तु जो लोग न भजनेवालोंको भी भजते हैं वे पिता माताके समान दो भाँतिके हैं । एक दयावान् और दूसरे स्नेहशील । इसमें दयावानोंको शुद्धधर्म और स्नेहशीलोंको सौहृदसुख प्राप्त होता है ॥१८॥ जो लोग भजनेवालोंको ही नहीं भजते तब न भजनेवालोंकी कौन कहे–उनके चार भेद हैं । एक 'आत्माराम होते हैं । जिनको परमहंस कहते हैं । दूसरे होते हैं 'आप्तकाम'–अर्थात् पूर्णकाम होनेके कारण उनको विषय देख कर भी भोग करनेकी इच्छा नहीं होती । तीसरे 'कृतघ्न' (एहसानफरामोश) होते हैं और चौथे 'गुरुद्रोही' कहलाते हैं ॥ १९ ॥ किंतु हे सखियो ! मैं यद्यपि भजनेवालोंको भी नहीं भजता, तथापि इन चारोंमें नहीं हूँ, बरन् महादयालु और परम सुहृत् हूँ । मैं उनको नहीं भजता इस लिये वे निरन्तर सब समय मेरा ही ध्यान किया करते हैं । देखो जैसे कोई निर्द्धन पुरुष धन पा कर फिरसे गँवा दे तो उसका मन सब समय उसी धनमें लगा रहता है, हे गोपियो ! वैसेही तुमने भी मेरे लिये धर्म्मका न ध्यान करके सब बन्धु बान्धवोंको छोड़ कर मेरा भजन किया । तुम्हारा ध्यान मेरी ओर अटल हो जाय, केवल इसी लिये मैं छिप गया था । सच पूछो तो छिपे हुए तुमको भज रहा था । तुम्हारी कोई दशा मुझसे छिपी नहीं है, मैं तो तुम्हारे पास ही था । इस लिये प्रियतमाओ ! तुम अपने प्रिय पर कोप न करो ॥ २० ॥ २१ ॥

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ॥
या माऽभजन्दुर्जरगेहशृङ्खला संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥२२॥

तुमने दृढ़तर गृहशृंखला तोड़ डाली और मुझसे आकर मिलीं । यह तुम्हारा मिलना अनिन्दित है । मैं देवतोंकी इतनी आयुमें भी तुम्हारे इस साधुकृत्यका बदला नहीं चुका सक्ता । प्रत्युपकार करके मैं उद्धार नहीं पासक्ता । आशा करता हूँ कि तुम अपनी सुशीलता और उदारतासे ही मुझे ऋणसे मुक्त करोगी ॥ २२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंश अध्याय ।

रासनृत्य ।

श्रीशुक उवाच–इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥
जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! भगवान्के मधुर मनोहर वाक्योंसे कोमल

चित्तवाली गोपियोंका प्रणयकोप शान्त हो गया। हरिके अंगसंगसे गोपियोंकी अभिलाषा पूरी हो गई और विरहताप मिट गया ॥ १ ॥ तब गोविंदने रासक्रीड़ाका आरंभ किया। प्रियतमकी आज्ञाको माननेवाली श्रेष्ठ स्त्री गोपियाँ—प्रसन्नतापूर्वक परस्पर हाथसे हाथ मिलाये मंडल बाँध कर खड़ी हुईं। उस गोपीमण्डलमें योगेश्वर कृष्णकी बड़ीही शोभा हुई, क्योंकि दो दो गोपियोंके बीच एक एक कृष्णकी मूर्त्ति थी। इस प्रकार गलबाहीं डाल कर कृष्णचन्द्रने रास–उत्सवका आरम्भ किया। हरिकी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे हर एक गोपी यही जानती थी कि मेरे ही पास प्यारे कृष्ण हैं। इतनेहीमें रासक्रीड़ा देखनेके लिये जिनके मन अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं वे देवगण अपनी २ स्त्रियोंसहित आकाशमें आपहुँचे। थोड़ी ही देरमें आकाशमण्डलमें विमान ही विमान देख पड़ने लगे। उस समय आकाशमें देवतालोग नगाड़े बजा कर फूलोंकी वर्षा करने लगे और गंधर्वगण अपनी स्त्रियोंसहित भगवान्का निर्मल यश गाने लगे। रासमंडलमें अपने प्रियके साथ नृत्यमें निरत नारियोंके वलय, नूपुर और किंकिणियोंका महाशब्द होने लगा। जैसे स्वर्णवर्ण मणियोंके बीचमें नीलमणिकी शोभा हो, वैसेही भगवान् देवकीनन्दन उन गोपियोंके बीचमें अत्यन्त शोभायमान हुए। नाचते समय गोपियोंके विचित्र चरणविन्यास दर्शनीय थे। वे भाँति २ हाथ मटका कर भाव बतातीं थीं, उनकी सुकुमार कमर नाचतेमें लोचसे लचक २ जाती थी। जब वे मुसकाती हुई भौंह नचाकर नाचती थीं तब बहुतही भली जान पड़ती थीं। उनके वस्त्र (दुपट्टे) उड़ २ जाते थे, जिससे हिल रहे कमनीय कुच खुल पड़ते थे। हिल रहे कुण्डलोंकी झलक कपोलों पर पड़नेसे बहुत सुहावनी लगती थी। नाचकी थकावटसे उनके मुखमण्डलों पर पसीनेके बूँद निकल आये और वेणी व नीवी की गाँठें शिथिल हो गईं। इस प्रकार घनश्यामके साथ नाचती और गाती हुई व्रजबालाएँ, मेघमण्डलमें बिजलियोंके समान शोभायमान हुईं। कृष्णके अंगसंगसे परमानन्दको प्राप्त गोपियाँ ऊँचे स्वरसे भाँति २ के राग अलापती हुई गाने लगीं। उनके गानेकी तानसे सम्पूर्ण विश्व गूँज उठा। कोई गोपी मुकुन्दके साथ गारही थी, उसने श्रीकृष्ण जिस स्वरमें गारहे थे उससे भी ऊँचे स्वरमें अलापना आरम्भ किया। इससे प्रसन्न होकर कृष्णचन्द्रने उसकी प्रशंसा की कि "वाह वाह!"। दूसरी गोपी उसीको ध्रुवतालमें और भी ऊँचे स्वरसे गाने लगी—उस गोपीकी कृष्णने पहलीसे भी अधिक प्रशंसा की। किसी रासनृत्यमें थकी हुई गोपीके कंकण और वेणीमें गुँधे हुए मल्लिकाकुसुम शिथिल होकर गिरने लगे, वह पासही खड़े हुए कृष्णके कन्धे पर हाथ धर कर विश्राम करने लगी ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ एक गोपी अपने कन्धे पर धरे हुए चंदनचर्चित एवं कमलकी ऐसी सुगन्धवाले कृष्णके बाहुको प्रेमपूर्वक सूँघ कर चूमने लगी—

आनन्दके कारण उसके शरीरमें रोमाञ्च हो आया ॥ ११ ॥ एक गोपीने नाचतेमें हिलरहे कुंडलकी झलकसे सुशोभित अपने कोमल कपोलको कृष्णके कपोलसे मिलाया । कृष्णने उसके मुखमें अपनी जूठी बीड़ी (पानकी गिलौरी) दे दी ॥१२॥ एक गोपी नाचरही थी, और उसके पैरोंके नूपुर व कमरकी मेखलासे मधुर ध्वनि होरही थी, नाचते २ जब वह थक गई तो उसने पासही खड़े हुए कृष्णके मंगलमय करकमलको अपने हृदय पर धर लिया ॥१३॥ एकान्तमें लक्ष्मीके एकान्त वल्लभ अच्युत कान्तको पाकर गोपियाँ गलबाहीं डाल कर गाती हुई सुखपूर्वक इसी प्रकार विविध विहार करने लगीं ॥ १४ ॥ सुवाससे मत्त हो रहे भौंरेही जिसमें गवैये हैं उस राससभामें कृष्ण सहित सब गोपियाँ बलय, नूपुर, किंकिणी और अन्यान्य बाजोंके शब्दके साथ नृत्य करती थीं । उस समय कानोंमें स्थित कमल-कुसुम, अलकावलीसे अलंकृत कपोल और पसीनेके बूँदोंसे उनके मुखमण्डलोंकी अपूर्व शोभा हुई एवं उनके बिखर रहे चञ्चल केशोंसें गुँधी हुई फूलोंकी मालाएँ खिसक २ कर पृथ्वी पर गिरने लगीं ॥ १५ ॥ महाराज ! जैसे कोई बालक अपनेही प्रतिबिंबके साथ खेले वैसेही भगवान् लक्ष्मीपति स्नेहपूर्ण कटाक्ष, उदार विलास एवं मंद मुसकानसे मन हरते हुए हाथसे हाथ मिला कर व लिपटा कर व्रजबालाओंके साथ रमण करने लगे ॥ १६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! हरिके अंगसंगसे गोपियोंको परमानन्द प्राप्त हुआ, वे परमानन्दमें मग्न हो गईं । उनके अंगोंसे फूलोंकी मालाएँ और आभूषण गिरते जाते थे, पर सँभाले कौन ?

उनको तो अपने शरीरकी भी सुधिबुधि न थी । बाल अलग बिखर रहे थे, वस्त्र अलग उड़े जाते थे, कञ्चुकी अलग खुली पड़ती थी—किन्तु उनको पहलेकी भाँति

सँभालनेकी सामर्थ्यही गोपियोंमें न थी ॥ १७ ॥ कृष्णकी क्रीड़ा देख कर आकाशमें स्थित देवतोंकी स्त्रियाँ भी कामसे पीड़ित होकर मोहको प्राप्त हुईं एवं तारागणसहित चन्द्रमा भी विस्मित हो कर जहाँके तहाँ सब लीला देखते रहे। इससे रात बड़ी भारी (छः महीनेकी) हो गई और उसमें गोपियोंने सुखपूर्वक विहार किया ॥ १८ ॥ यद्यपि भगवान् कृष्ण आत्मामें रमनेवाले निःस्पृह हैं, तथापि लीलापूर्वक जितनी गोपियाँ थीं उतनेही रूप धर कर वह उनके साथ रमने लगे ॥१९॥ राजन्! अत्यन्त विहार करनेसे थक गई गोपियोंके मुखकमलोंमें जब पसीना आगया तब उसको करुणानिधान कृष्णने प्रेमपूर्वक अपने कल्याणमय करकमलसे पोंछ दिया ॥ २० ॥ प्रियतमके नखस्पर्शसे प्रमुदित गोपियाँ—प्रभावशाली सुवर्णके कुंडल और उन कुण्डलोंकी कान्तिसे अलंकृत कपोलोंकी शोभासे अत्यन्त मनोहर मंद मुसकान और चाह-भरी चितवनसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णको रिझाती व सम्मानित करती हुई उन्हींके पवित्र चरित्र गाने लगीं ॥ २१ ॥ फिर जैसे थका हुआ गजराज थकन मिटानेके लिये सेतु तोड़ता हुआ जलमें घुस कर हथिनियोंके साथ क्रीड़ा करे वैसेही लोक और वेदकी मर्य्यादाका अतिक्रमण करनेवाले कृष्णचन्द्रने भी थकावट दूर करनेके लिये गजगामिनी गोपियोंके साथ जलकेलि करनेकी इच्छासे यमुनाके भीतर प्रवेश किया। अंगसंगमें मली गई एवं गोपिकाओंके कुचकुंकुमसे रंजित वन-माला पर कुंज छोड़ कर गूँजरहे भ्रमरपुंज गन्धर्वोंके समान गान करते हुए भगवान्के पीछे २ चले ॥ २२ ॥ राजन्! जलके भीतर सब गोपियाँ, मंदमुसकानके साथ प्रेमपूर्वक निहारती हुई कृष्णके ऊपर चारो ओरसे जलकी बौछार करने लगीं एवं विमानों पर बैठे हुए देवगण फूलोंकी वर्षासे भगवान्का सत्कार करने लगे। कृष्णचन्द्रने स्वयं आत्माराम होकर भी गजराजके समान लीलापूर्वक इस प्रकार जलविहार किया ॥२३॥ तदनन्तर भौंरोंकी भीरसे घिरे हुए गोपीमण्डलमण्डित कृष्णचन्द्र जलसे निकल कर, जहाँ जल और स्थलमें उत्पन्न होनेवाले फूलोंकी सुवासको लिये हुए शीतल पवन डोल रहा है उस यमुना-किनारेके निकुंजमें, हथनियोंके झुंडको साथ लिये मदमाते गजराजके समान विचरने लगे ॥ २४ ॥ महाराज! इस प्रकार सत्यसंकल्प कृष्णने प्रणयिनी गोपियोंके साथ, चन्द्रमाकी किरणोंसे सुशोभित एवं काव्योंमें जो सब शरद्ऋतुसम्बन्धी रसकी बातें कही गई हैं उनसे परिपूर्ण रात्रियोंमें भली भाँति रमण किया। इतना होने पर भी भगवान्ने वीर्य्यपात नहीं होने दिया—क्योंकि वह जितेन्द्रिय योगी थे, साधारण विषयी पुरुषोंकी भाँति कामके वशीभूत न थे ॥ २५ ॥ **राजा परीक्षित्ने कहा**। ब्रह्मन्! धर्मकी स्थापना और अधर्म्मके मिटानेहीके लिये पृथ्वी पर जगदीश्वरका यह अंशावतार हुआ है ॥ २६ ॥ धर्मकी मर्य्यादाओंको बनानेवाले, रक्षक और उपदेशक हो कर उन्होने यह परनारी-

गमनरूप विरुद्ध आचरण (अधर्म्म) क्यों किया? आप्तकाम अर्थात् भोगभावना-रहित, पूर्णकाम यदुपतिने यह निन्दित कर्म्म किस अभिप्रायसे किया? हे सुव्रत! हमको यह बड़ा भारी संशय है। कृपा करके इस संदेहको दूर करिये। श्रीशुकदेवजीने कहा। महाराज! ईश्वर (समर्थ) लोगोंका किसी २ स्थल पर धर्मके व्यतिक्रममें भी साहस देखा जाता है। इसका कारण यही है कि तेजस्वी लोग अकार्य्य करनेसे भी दूषित नहीं होते। देखो अग्निमें जो शुद्ध या अशुद्ध पड़ता है उसको वह भस्म कर देता है, तथापि उसके कारण दूषित नहीं होता। किन्तु जो अनीश्वर है वह ईश्वरोंके ऐसे विपरीत आचरणके अनुकरणका कभी मनमें संकल्प भी न करे। यदि वह मूर्खतासे करता है तो उसका विनाश हो जाता है। शिवने कालकूट विष पी लिया परन्तु उनका कुछ नहीं बिगड़ा; किन्तु यदि कोई असमर्थ व्यक्ति उनका अनुकरण करके विष पान करे तो अवश्य ही मरजायगा। ईश्वरोंके वचन सत्य हैं, अर्थात् उनके अनुसार चलना चाहिये। ईश्वरोंके कोई २ आचरण भी अनुकरण करने योग्य हैं—किन्तु सब नहीं। इस लिये ईश्वरोंके वचनोंको मानना एवं उचित आचरणोंका अनुकरण करनाही बुद्धिमानोंका कर्त्तव्य है। हे प्रभो! जो लोग देहाभिमानसे शून्य हैं एवं जिनको पुण्यकर्मसे मंगलकी कामना या पापकर्मसे अमंगलकी आशा नहीं हैं, अर्थात् पूर्व-सञ्चित कर्मोंको फलभोगद्वारा क्षीण करना ही जिनके देहधारणका अभीष्ट है उन आत्माराम योगियोंके लिये जब कार्य्याकार्यका कोई विधि-निषेध नहीं है तब जो तिर्यक् (पशुपक्षी-कीट आदि), मनुष्य और देवता आदि जीवोंके ईश्वर एवं सब ऐश्वर्य्योंके अधिपति सर्वशक्तिमान् साक्षात् परमेश्वर हैं उनको सुकृत और दुष्कृतकी संभावना कहाँ और कैसे हो सक्ती है? ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ जिनके पदपद्मपरागके सेवनसे तृप्त भक्तजन और योगके प्रभावसे कर्मबंधनमुक्त ज्ञानी मुनिजन स्वच्छंद हो कर विचरते हैं—अर्थात् आवागमनसे मुक्त हो जाते हैं उन अपनीही इच्छासे शरीर धारण करनेवाले ईश्वरको पाप या पुण्यका बंधन कैसे हो सक्ता है? ॥ ३४ ॥ जो परमात्मा गोपियोंके, गोपियोंके पतियोंके एवं सब देहधारियोंके अन्तःकरणमें विराजमान हैं वही बुद्धि आदिके साक्षी कृष्णचन्द्र लीला करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण कर पृथ्वीमें अवतरे हैं। भगवान्ने प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण किया है, क्योंकि नररूप हरिकी लीलाएँ सुन कर प्राणियोंको दृढ़ ईश्वरभक्ति होती है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ महाराज! भगवान्की मायामें मोहित रहनेके कारण व्रजवासियोंने जाना कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही पास हैं। इस कारण उनके मनमें कृष्णकी ओरसे किसी प्रकारका मैल नहीं आया ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब वह रात्रि बीतगई और ब्राह्म मुहूर्त आ पहुँचा, अर्थात् दो घड़ी रात्रि रह गई, तब इच्छा न होने पर भी कृष्णकी आज्ञासे कृष्णकी प्यारी गोपियाँ अपने २ घरोंको गईं ॥३८॥

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः ॥
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ३९ ॥

जो कोई व्रजबालाओंके साथ की हुई इस रासलीलाको श्रद्धापूर्वक पढ़ते या सुनते हैं वे धीरजन शीघ्र ही भगवान्‌की श्रेष्ठ भक्ति पाते हैं एवं कामरूप मानसिक रोगसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ३९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंश अध्याय ।

सुदर्शनमोचन और शंखचूड़यक्षवध ।

श्रीशुक उवाच—एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! एक समय देवयात्राके अवसर पर सब गोप लोग बड़ेही चावसे, बैल जिनमें नहे हुए हैं उन छकड़ों पर चढ़ कर अंबिकावनको गये ॥ १ ॥ वहाँ सरस्वती नदीमें स्नान करके उन लोगोंने अनेक सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक देवदेव महादेव और भगवती अम्बिका देवीका पूजन किया ॥ २ ॥ 'परमेश्वर हम पर प्रसन्न हों'—इस कामनासे उन लोगोंने ब्राह्मणोंको गऊ, वस्त्र, सुवर्ण और अनेक मधुर अन्न दिये ॥ ३ ॥ फिर व्रतके कारण केवल जलपान करके महाभाग नंद सुनंद आदि गोपगण उस रातको वहीं सरस्वतीके किनारे रह गये ॥ ४ ॥ रातके समय वनमें एक बहुत भूखा बड़ा भारी अजगर घूमता हुआ वहाँ आया और उसने सो [illegible]हे नंदका पैर लील लिया ॥ ५ ॥ जब अजगरने पकड़ लिया तब भयभीत नं[illegible] चिल्लाकर कहा कि—"हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे पुत्र ! यह महासर्प मुझको लील लेता है । मुझको इस संकटसे बचाओ" ॥ ६ ॥ नंदकी चिल्लाहट सुन कर सब गोप सहसा उठ बैठे और उन्होने देखा कि नंदको सर्पने ग्रस लिया है । तब घबड़ाये हुए गोपगण जलती हुई लकड़ियोंसे सर्पको दागने लगे, जिसमें वह नन्दको छोड़ दे ॥ ७ ॥ जलती हुई लकड़ियोंसे दगने पर भी सर्पने नंदको नहीं छोड़ा, तब यदुनाथ कृष्णने आकर पैरसे उस सर्पको छूदिया ॥ ८ ॥ श्रीमान् भगवान्‌के चरणस्पर्शसे उसके सब अशुभ नष्ट हो गये और वह तुरन्तही

सर्पयोनिसे छूट कर परमसुन्दर विद्याधर हो गया ॥ ९ ॥ उसके शरीरमें सुवर्णकी ऐसी कान्ति थी, कंठमें सोनेकी माला पड़ी हुई थी। उसने चरणोंमें गिर कर श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर नम्रताके साथ खड़ा हो गया। तब भगवान्ने उससे पूछा कि "तुम कौन हो, तुम्हारा रूप परम अद्भुत है और तुम्हारे शरीरकी शोभाका अद्भुत चमत्कार देख पड़ता है। किस कर्मसे विवश हो कर तुमको यह सर्पका निन्दित शरीर प्राप्त हुआ था—सो उचित समझो तो कहो" ॥ १० ॥ ११ ॥ **सर्पने कहा।** "नाथ मैं एक विद्याधर हूँ—मेरा नाम सुदर्शन है। मेरी शोभा, स्वरूप और संपत्ति अमित थी। मैं विमान पर बैठा हुआ इच्छानुसार चारो ओर भ्रमण किया करता था। मुझको अपने रूपका बड़ा घमंड था, इसीसे एक दिन राहमें अंगिराके वंशके कुरूप मुनियोंको देख कर मैं हँस दिया। इसीसे कुपित होकर उन्होंने शाप दिया। भगवन्! यह मेरा दोषही इस निन्दित योनिके मिलनेका कारण है ॥ १२ ॥ १३ ॥ किन्तु मैं समझता हूँ कि उन दयालु ऋषियोंने शाप नहीं दिया, बरन् अनुग्रहही किया। उन्हींकी कृपासे आज मुझको आप जो तीनो लोकोंके गुरु हैं उनके दुर्लभ चरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ और तुरन्तही मेरे सब पाप नष्ट हो गये ॥ १४ ॥ हे दुःखनाशन! हे प्रपन्नभयभंजन! आपके चरणोंका स्पर्श पातेही मैं शापसे छूट गया। अब आज्ञा दीजिये—मैं अपने लोकको जाऊँ ॥ १५ ॥ आप महायोगी, महापुरुष और सज्जनोंके स्वामी हैं। हे जगदीश्वरोंके भी ईश्वर! हे देव! अब कृपा करके मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १६ ॥ आपकी महिमा अपरम्पार है, अहो आपके दर्शन पाते ही मैं अमोघ ब्रह्मदण्डसे मुक्त हो गया। किन्तु इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है। केवल आपके नामका ऐसा प्रभाव है कि नाम कीर्त्तन करनेवाला सुननेवालों सहित उसी समय पवित्र हो जाता है। तब मुझे तो साक्षात् आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त हुआ है—मेरी मुक्ति होना क्या आश्चर्य्य है" ॥ १७ ॥ इस प्रकार कृष्णकी परिक्रमा और प्रणाम करके एवं जानेकी आज्ञा लेकर विद्याधर सुदर्शन अपने लोक (स्वर्ग) को गया और कृष्णकी कृपासे नंदजी भी कष्टसे छूट गये ॥ १८ ॥ कृष्णके ऐसे अपूर्व प्रभावको देख कर व्रजवासियोंको बड़ाही विस्मय हुआ। गोपगण प्रातःकाल अपना नियम समाप्त करके हरिके उक्त चरित्रको आदरपूर्वक कहते हुए लौट कर व्रजको आये ॥ १९ ॥ एक दिन अद्भुत पराक्रमवाले बलभद्र और श्रीकृष्णजी वनमें रात्रिके समय व्रजबालाओंके साथ विहार करने लगे। दोनो भाई सुन्दर आभूषण, वस्त्र, अंगराग और मालाओंसे सुशोभित हुए, और जिनका प्रेम अटल अचल है वे गोपियाँ मधुर स्वरसे उन्हींके गुण गाने लगीं ॥ २० ॥ २१ ॥ उस समय रात्रिका पहला ही पहर था, तारागणसहित पूर्ण चन्द्रमा आकाशमें प्रकाशमान था एवं मल्लिकाकी सुवासमें मतवाले मधुपगण इधर उधर कुमुदकुसुमोंके

सुगंधित संसर्गसे पवनके साथ डोल रहे थे। दोनो भाइयोंने रास रच कर उस मनोहर रात्रिको सम्मानित किया ॥ २२ ॥ कृष्ण-बलदेव दोनो भाई उस समय एकसाथही स्वरमंडलमूर्च्छनायुक्त मधुर राग अलापने लगे। वह गान सुननेवालोंके कान और मनको तृप्त करनेवाला था ॥ २३ ॥ वह महामनोहर गीत सुन कर गोपियोंको अपने शरीरकी भी सुधि बुधि नहीं रही। उनके वस्त्र गिर पड़नेसे अंग खुल गये, केश बिखर गये और केशोंमें गुँधे हुए फूलोंकी मालाएँ शिथिल होकर खिसक पड़ीं ॥ २४ ॥ जैसे कोई मतवाला हो उस भाँति अपनी इच्छाके अनुसार कृष्ण और बलदेव क्रीड़ा करते हुए गारहे थे—इसी अवसर पर उधरसे कुबेरजीका किंकर शंखचूड़ नाम यक्ष वहाँ आया ॥ २५ ॥ वह निडर यक्ष, कृष्ण-बलदेव जिनके रक्षक हैं उन चिल्लाती हुई गोपियोंको लेकर कृष्ण-बलदेवके सामने ही उत्तर दिशाको चला। जैसे गौवें बाघको पास देख कर चिल्लाती हैं वैसेही "हे कृष्ण। हे बलभद्र !!" कह कर गोपियाँ चिल्लाने लगीं। अपनी प्रियाओंकी यह दशा देख कर दोनो भाई उस दुष्ट यक्षके पीछे झपटे ॥ २६ ॥ २७ ॥ दोनो भाई "डरो नहीं-डरो नहीं"—कह कर निर्भय करते हुए शालके वृक्ष उखाड़ कर वेगसे यक्षको पकड़नेके लिये दौड़े और शीघ्र ही भाग रहे दुष्ट यक्षके निकट पहुँच गये ॥ २८ ॥ उसने जब देखा कि काल और मृत्युके समान दोनो भाई पास पहुँच गये तब वह मूढ़ बहुत घबड़ाया और स्त्रियोंको वहीं छोड़ अपने प्राण लेकर भागा ॥ २९ ॥ भगवान् कृष्णने तब भी उसका पीछा नहीं छोड़ा, क्योंकि वह उसके शिरमें छिपे हुए चूड़ामणिको लेना चाहते थे। बलदेव जी तो वहीं खड़े होकर स्त्रियोंकी रक्षा करने लगे और कृष्णजी जहाँ २ व दुष्ट भाग कर गया वहाँ २ उसके पीछे पहुँचे ॥ ३० ॥ थोड़ीही दूर पर जाकर कृष्णने उस दुरात्माको पकड़ लिया। घूँसेके प्रहारसे उसका शिर फट गया और प्राण निकल गये। भगवान्‌ने उसके शिरसे चूड़ामणि निकाल लिया ॥ ३१ ॥

शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥
अग्रजायाददत्प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥

इस प्रकार शंखचूड़को मार कर और प्रभावशाली मणि लेकर कृष्णचन्द्र लौटे और आकर प्रसन्नतापूर्वक गोपियोंके आगे ही वह चूड़ामणि बड़े भाई बलभद्रको देदिया ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

मानो अपनेमें आत्मारूप विष्णुकी व्यापकता सूचित करते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ देखने-योग्य सुंदर तिलक लगाये कृष्णचन्द्र जिस समय वनमालाके मध्यमें स्थित दिव्य गंधवाली तुलसीके मधुर मधुमें मत्त मधुपमंडलीके गुंजनका आदर करते हुए वंशीको अधर पर धर कर बजाते हैं उस समय, मनोहर गीतने जिनके चित्त चुरा लिये हैं वे सरोवरवासी सारस, हंस आदि अनेक पक्षी निकट आकर एकाग्रचित्तसे नेत्र मूँद कर चुपचाप योगियोंके समान ध्यान लगाकर हरिकी उपासना करते हैं ॥१०॥११॥ हे गोपियो, फूलोंकी मालाओंसे रचे गये कर्णभूषणोंसे जिनके मुखमंडलकी अपूर्व शोभा हो रही है वह कृष्णचन्द्र जिस समय प्रसन्नता-पूर्वक जगत्को प्रसन्न करते हुए बलभद्रके साथ पर्वतके शिखरों पर खड़े होकर वंशी बजाते हैं उस समय महान् जो कृष्ण हैं उनके अतिक्रमणसे जिसका चित्त शंकित हो रहा है वह मेघ वंशी-ध्वनिके पीछे मन्दर गर्जता है (अर्थात् कृष्ण-चन्द्र कुपित न हों इस लिये वंशीध्वनिसे अधिक शब्द नहीं करता) और अपने सुहृद् (कृष्णचन्द्र मेघसदृश श्याम शरीर हैं और मेघके समान विश्वके तापको हरने वाले भी हैं इसी लिये उनको मेघका सुहृद् कहा है) व्रजराज पर फूलोंकी वर्षा करता हुआ छत्रके समान छाया करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ हे यशोदाजी! गोपोंकी विविध क्रीड़ाओंमें निपुण तुम्हारे पुत्र कृष्णचन्द्र जिस समय स्वयं सीखी हुई निषाद, ऋषभ आदि अनेक स्वरजातियोंको अधरबिंब पर धरी बाँसुरी बजा कर अलापते हैं उस समय हे सती नन्दरानी! इन्द्र, महादेव, ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवगण ह्रस्व, मध्यम और दीर्घ भेदोंके उतार चढ़ावमें अलापे हुए गीतको शिर झुका कर कान लगा कर एकाग्र चित्तसे सुनते हैं एवं सर्वज्ञ हो कर भी उस गीतके तत्त्वको निश्चितरूपसे न जान सकनेके कारण मोहको प्राप्त होते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ सखियो! श्रीकृष्णचन्द्र जब ध्वजा, वज्र, कमल अंकुश आदि विचित्र चिन्होंसे युक्त अपने श्रीचरणोंके द्वारा व्रजभूमिकी गोखुरप्रहारजनित व्यथा मिटाते हुए गजराजकी ऐसी चालसे बाँसुरी बजाते चलते हैं उस समय उनकी लीलाविलासपूर्ण चितवन हमारे हृदयमें कामको जगा देती है, हम कामदेवके वेगसे वृक्षोंके समान जड़ दशाको प्राप्त हो जाती हैं और मोहके कारण खुले हुए वस्त्र या वेणी बाँधना भी भूल जाती हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥ गौवें गिननेके लिये मणियोंकी माला एवं प्रियंगु वाली तुलसीकी माला पहने हुए कृष्णचन्द्र जब अपने प्रणयी सखाके कंधे पर भुजा धर कर वनसे लौटते समय गौवोंकी गिनती करते हुए वंशी बजाते हैं उस समय बज रही वंशीके शब्दसे जिनके चित्त छले गये हैं वे मृगोंकी स्त्रियाँ दौड़ती हुई गुणसागर नटनागर कृष्णके निकट आती हैं और हम गोपियोंके समान घरद्वार छोड़ कर उन्हींके पास खड़ी रहती हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे यशोदाजी! हे शुद्धचरित्रवाली व्रजरानी! कुंदमाला पहने और कौतुक उपजानेवाला वेष बनाये तुम्हारे

पञ्चत्रिंश अध्याय ।

कृष्णके वियोगमें व्याकुल गोपियोंका कृष्णचन्द्रकी चर्चामें मन बहलाना ।

श्रीशुक उवाच–गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥
कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! गोपियोंकी रात्रि तो कृष्णके साथ विहार करनेमें सुखसे बीतती थी परन्तु दिनको जब प्यारे कृष्ण गौवें चरानेके लिये वनको जाते तब उन्हींमें गोपियोंका मन लगा रहता और वे इस प्रकार कृष्णकी लीलाएँ गाकर कष्टसे उतना समय व्यतीत करती थीं ॥ १ ॥ गोपियाँ परस्पर कहतीं कि—"सखियो ! वाम बाहु पर वाम कपोल धरे हुए कृष्ण जब अधर पर धरी हुई वंशीको सातो स्वरोंके सात छेदों पर कोमल अँगुलियाँ धरते और हटाते हुए भौंह नचा कर बजाते हैं तब उस वंशीकी मनोहर ध्वनिको सुन कर अपने पतियोंके साथ विमानों पर बैठी हुई सिद्धोंकी स्त्रियाँ परम विस्मयको प्राप्त होती हैं एवं हृदयमें कामके बाण लगनेसे लज्जापूर्वक मोहित हो जाती हैं । उनको इतना भी देहाध्यास नहीं रहता कि कमरसे खिसक कर गिरनेवाले वस्त्रको सम्हालें ॥ २ ॥ ३ ॥ सुन्दरियो ! एक और विचित्र बात सुनो । जिनके वक्षःस्थलमें मनोहर मुसकानकी झलक हारके समान शोभायमान होती है एवं चंचला लक्ष्मी स्थिर दामिनीके समान विराजमान है वह आर्त्तबन्धु कृष्णचन्द्र जब वंशी बजाते हैं तब उस विचित्र वंशीकी ध्वनिने उनके हृदय हर लिये हैं वे झुंडके झुंड व्रज–वनवासी गऊ, मृग, बैल आदि पशु, चारो ओर घासके कौरको वैसेही मुखमें दबाए, कान उठाए—जैसे सोरहेहों इस प्रकार आँखें बंद किये, चित्रलिखितसे खड़े रह जाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥ सखियो ! मयूरोंके पंख, गेरू आदि चित्र विचित्र धातु एवं नवपल्लवोंसे नटवर वेष बनाये कृष्णचन्द्र जब बलभद्र एवं अन्यान्य गोपोंके साथ वनमें खड़े होकर गौवोंको अपने निकट बुलाते हैं तब वायु द्वारा लाये गये उनके चरणरजके लाभकी लालसासे नदियोंकी भी गति रुकजाती है । अवश्य ही उन नदियोंने भी हमारे ही समान थोड़ा पुण्य किया है, क्योंकि प्रेमवश उनकी तरंगरूप भुजाएँ केवल एक दो बार डोलती हैं और फिर जल निश्चल हो जाती हैं अर्थात् उनकी इच्छा सफल नहीं होती ॥ ६ ॥ ७ ॥ सखियो ! अनुचर गोपगण (या देवगण) जिनके विचित्र वीर्य्यका वर्णन करते हैं वह आदिपुरुष नारायणके समान अचल लक्ष्मीसम्पन्न विपिनविहारी व्रजचन्द्र जब पर्वतके शिखरों पर चररही गौवोंको वंशी बजा कर बुलाते हैं तब फूल और फलोंके भारसे जिनकी शाखाएँ झुकरही हैं वे वनके वृक्ष–लता आदि वनस्पतिसमूह प्रेमसे पुलकितशरीर होकर मधुधाराओंकी वर्षासे

पुत्र नन्दनन्दन कृष्ण, जिस समय गोप और गौवोंको साथ लेकर उनके बीचमें यमुनातट पर प्रणयी जनोंको आनन्द देते हुए विहार करते हैं, उस समय मलय पर्वतमें उत्पन्न चन्दनके समान जिसका स्पर्श शीतल है वह सुगंधित पवन उनका सम्मान करता हुआ अनुकूल हो कर मंद २ डोलता है एवं वंदीजनोंकी भाँति स्तुतिपाठ करते हुए गंधर्व आदि उपदेवगण बाजे बजाते, गाते, और फूलोंकी वर्षा करते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥ सखियो! कृष्ण प्यारे हम ब्रजवासियोंके और गौवों-के परम हितकारी हैं; उन्होने गौवोंकी और हमारी रक्षाके लिये गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया और उसे सात दिन तक वैसेही लिये खड़े रहे। अब दिन बीत गया, जान पड़ता है कि सब गोधन एकत्र करके हम सुहृद् जनोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये प्यारे कृष्ण आ रहे हैं, वह सुनो—गोपगण पीछे २ उनकी अपूर्व कीर्त्तिका कीर्त्तन करते आ रहे हैं और वंशीकी मधुर ध्वनि भी सुन पड़ती है। अवश्यही ब्रह्माआदि देवगण मार्गमें चरणवन्दना करते जाते हैं, इसीसे अब तक हमको प्यारेका दर्शन नहीं मिला। सखियो! वह देखो, गौवोंके खुरोंसे उड़ी हुई धूलिसे धूसरित मालाको पहने देवकीके पुत्र गोकुलचन्द्र आगये! अहो यद्यपि यह इस समय वनविहारसे थके हुए आ रहे हैं तौभी इस समयकी मनोहर छविसे नेत्रोंको अत्यन्त आनंद दे रहे हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥ वनमालीकी आँखें इस समय मदके कारण कुछ चढ़ी हुई हैं, दोनो कपोल कनककुंडलोंकी कान्तिसे सुशोभित हो रहे हैं अतएव पके हुए बेरके फलके समान मुखमण्डल पीतवर्ण हो रहा है। प्यारे कृष्ण अपने सुहृद्जनोंको कृपादृष्टिसे सम्मानित करते हुए गजराजकी ऐसी चालसे आ रहे हैं। देखो देखो, ब्रजवासी और गौवोंके दुरन्त दिन-तापको दूर करते हुए प्रसन्नवदन यदुपति सायंकालमें चन्द्रमाके समान हमारे समीपही आ रहे हैं" ॥ २४ ॥ २५ ॥

श्रीशुक उवाच—**एवं व्रजस्त्रियो राजन्कृष्णलीलानुगायतीः ॥**
रेमिरेऽहःसु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार कृष्णही जिनके जीवन-सर्वस्व हैं और उन्हींमें जिनके मन आसक्त हो रहे हैं वे महाभाग्यशालिनी गोपियाँ उन्ही प्रियतमके चरित्र गाती और चर्चा करती हुई दिनको बिताती थीं ॥ २६ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंश अध्याय ।

अरिष्टासुरका वध और कंसका अक्रूरको व्रज जानेके लिये आज्ञा देना ।

श्रीशुक उवाच–अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥
महीं महाककुत्कायः कम्पयन्खुरविक्षताम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! इसी अवसरमें अरिष्टनाम असुर बैलके रूपसे, खुरप्रहारसे पृथ्वीको खोदता और कम्पित करता हुआ व्रजमें आया । उसका ककुद् और शरीर बहुतही ऊँचा और लम्बा चौड़ा था ॥ १ ॥ वह विकट शब्द करता हुआ वारंवार धरतीको खोदता और पूँछ उठा कर सींगोंसे दीवारोंको तोड़ता एवं बीच २ में थोड़ा २ मलत्याग करता जाता था । वह दोनो नेत्र फैलाये भयानक रूपसे गर्ज रहा था । राजन् ! उसके कठोर शब्दको सुन कर गौवें और गोपियाँ बहुतही डरीं और अकालमेंही उनके गर्भ गिर पड़े और बह गये । उसका ककुद् इतना ऊँचा था कि उस पर मेघसमूह पर्वतके धोखे ठहर जाते थे । अत्यन्त तीक्ष्ण सींग उठाये उस असुरको व्रजमें आते देख कर गोपी और गोप बहुतही डरे । सब पशु व्रज छोड़ कर इधर उधर भागे । गोकुलवासी लोग–"हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! इस वृषभासुरसे हमारी रक्षा करो"—यों कहते हुए गोविंदकी शरणमें आये । भगवान्ने देखा कि सब गोकुल भय और घबड़ाहटके कारण प्राणोंकी रक्षाके लिये इधर उधर भाग रहा है । कृष्णचन्द्रने "डरो नहीं" इस अभयवाणीसे उनको आश्वास दिया और वृषभासुरको ललकारकर कहा कि—"रे कायर ! हे महादुष्ट ! इन गोपों और पशुओंको क्यों वृथा डरा रहा है ? तुझ ऐसे दुष्ट दुरात्मा लोगोंके बलदर्पको दूर करनेवाला मैं खड़ा हूँ" । यों कह कर दीनार्त्तिहारी अच्युतने ताल ठोंक कर अपनी सखाके कंधे पर धरी हुई भुजा असुरके आगे फैला दी । यह देख कर असुरको बड़ाही कोप हुआ । इस प्रकार हरि द्वारा कोपित असुर, क्रोधके कारण खुराघातसे पृथ्वीको खोदता कृष्णकी ओर बढ़ा । वह इस वेगसे पूँछ उठा कर झपटा कि मेघ चक्कर खागये । वह असुर आगे सींग किये लाल २ आँखें फैलाये कृष्ण पर वक्र दृष्टि डालता हुआ इन्द्रके हाथसे छूटे वज्रके समान वेगसे चला ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ॥७॥८॥९॥१०॥ जैसे कोई गजराज अपनेसे भिड़नेवाले किसी दूसरे गजको पीछे हटा दे वैसे ही कृष्णचन्द्रने सींग पकड़ कर उस असुरको अट्ठारह पग पीछे रेल दिया ॥ ११ ॥ भगवान्ने पीछे हटा दिया, किन्तु वह फिर शीघ्रही सँभल गया । उसके शरीरसे पसीना बहने लगा तौ भी वह बड़ी २ साँसें छोड़ता हुआ कोपाकुल होकर फिर कृष्ण पर झपटा ॥ १२ ॥ भगवान्ने सामने आरहे बैलके सींग पकड़ लिये और पैरोंके आक्रमणसे उसको पृथ्वी पर गिरा दिया; फिर जैसे

कोई गीले वस्त्रको निचोड़े इस प्रकार उसके शरीरको मरोड़ डाला एवं सींग उखाड़ लिये और उसीके प्रहारसे उसे मारडाला ॥ १३ ॥ अरिष्टासुर गिर पड़ा, मुखसे रुधिर बहने लगा, मल-मूत्र निकल पड़ा, आँखोंकी पुतली घूम गई। इस प्रकार बार २ पैर पटक कर बड़े कष्टसे वह दैत्य यमलोकको गया । यह देख कर देवगण फूलोंकी वर्षा करते हुए हरिकी स्तुति करने लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकार गोपियोंके नयनोंके आनन्द नन्दनन्दन कृष्णचन्द्र, गोपोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए वृषभासुरको मारकर बलरामके साथ व्रजमें आये ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! अद्भुत कर्म करनेवाले कृष्णचन्द्रने जब अरिष्टासुरको मारडाला तब भगवान्‌की इच्छा जान कर एक दिन दिव्य दृष्टिवाले देवऋषि भगवान् नारदजीने कंसके यहाँ जा कर उससे कहा कि "देवकीके आठवें गर्भसे कन्या नहीं हुई—वह कन्या यशोदाकी थी, कृष्ण और बलभद्र दोनो देवकी और रोहिणीके पुत्र हैं । वसुदेवने तुम्हारे भयसे अपने मित्र नंदके यहाँ धरोहरके समान उनको रख छोड़ा है—उन्ही दोनोने तुम्हारे अनुचरोंको मारा है" । यह वृत्तान्त सुनतेही कोपके कारण कंसकी सब इन्द्रियाँ विचलित हो उठीं । उसने वसुदेवको मारनेके लिये एक तीक्ष्ण तर्वार उठा ली, किन्तु नारदजीके समझानेसे मान गया । कंसको नारदके बतानेसे विदित हुआ कि वसुदेव उसकी कुछ हानि नहीं कर सक्ते, वसुदेवके दोनो पुत्रही काल हैं । इस कारण कंसने वसुदेवको मारा नहीं, किन्तु देवकीसहित लोहेकी जंजीरोंमें बाँध कर बंदीगृहमें डाल दिया । जब देवऋषि चले गये तब कंसने केशी नाम असुरको बुलाया और उससे कहा कि तुम व्रजमें जा कर कृष्ण और बलभद्रको मार डालो ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तदनन्तर भोजराजने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि मल्लोंको और महावत तथा अन्यान्य मंत्रियोंको बुलाकर कहा—"हे चाणूर, मुष्टिक आदि वीरवरो! सुनो वसुदेवके पुत्र कृष्ण और बलदेव नंदके व्रजमें रहते हैं, नारदसे मुझको विदित हुआ है कि उन्हींके हाथों मेरी मृत्यु बदी है । मैं उनको यहाँ बुलाऊँगा, तुम अपने दावपेंचकी चतुराईसे उनको मार डालना । भाँति २ के मञ्च और अखाड़े बनाओ और सजाओ; पुर और जनपदोंके रहनेवाले लोग उन मंचों पर बैठ कर इस स्वैरसंयुग (दंगल)को देखेंगे । महावत! तुम भी उस दिन रंगद्वार पर कुवलयापीड़ हाथीके ऊपर रहना और यथाशक्ति उन दोनो मेरे शत्रुओंको मार डालना, हाथीसे बच कर जाने न पावें! चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुषयज्ञका आरंभ हो और वरदानी भूतनाथकी पूजामें असंख्य पशुओंका बलिदान किया जाय" ॥२४॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ स्वार्थ साधनेमें सिद्धहस्त कंसने महावत और मल्लोंको यों आज्ञा देकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरको अपने पास बुलाया और हाथमें हाथ लेकर कहा कि—"हे

अक्रूरजी! तुम मेरे परम मित्र हो, यादवोंमें तुमसे बढ़ कर मेरा आदरपात्र और हितू कोई नहीं है, अतएव आज तुमको मेरा एक काम करना होगा ॥ २७ ॥२८॥ जैसे सर्वशक्तिशाली इन्द्रने विष्णुके आश्रयसे सब अपने काम सिद्ध किये वैसे ही मैं भी अपना काम साधनेके लिये तुम्हारा आश्रय लेता हूँ ॥ २९ ॥ तात! हे सौम्य! तुम यहाँसे नंदके व्रजमें जाओ, वहाँ वसुदेवके दो पुत्र रहते हैं, उनको बहुत शीघ्र रथ पर ले आओ-विलम्ब न करो ॥ ३० ॥ विष्णुका जिनको आश्रय है उन देवोंने इन दोनो बालकोंको मेरे मारनेके लिये सिर्जा है। यह निश्चित बात है, नंद-आदिक गोप भाँति २ की भेंटें लेकर आवें; उन्हींके साथ तुम कृष्ण बलभद्रको ले आओ। मैं यहाँ आने पर उन दोनोको कालतुल्य हाथीसे मरवा डालूँगा। कदाचित् वे हाथीसे किसी प्रकार बच गये तो मेरे वज्रके समान कठिन और फुर्तीले मल्ल उनको जीता न छोडेंगे ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ उनके मरने पर शोकाकुल वसुदेव आदि उनके बंधुओं और अन्यान्य भोज-वृष्णि-दाशार्हवंशज उनके मित्रोंको सहजमें ही मार डालूँगा ॥ ३३ ॥ फिर बूढ़े होने पर भी जिसको राज्य करनेकी लालसा है उस अपने पिता उग्रसेन और चाचा देवकको एवं और २ जो अपने शत्रु हैं उनको भी मार डालूँगा ॥ ३४ ॥ मित्र! तब यह पृथ्वी निजसम्पत्ति हो जायगी। ससुर जरासंध, प्रिय मित्र द्विविद वानर, शंबरासुर, नरकासुर, वाणासुर आदि जो मेरे हितकारी हैं उनकी सहायतासे देवपक्षवाले राजोंको मार कर मैं पृथ्वीका निष्कंटक राज्य करूँगा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ यह जान कर तुम शीघ्रही कृष्ण और बलदेव दोनो बालकोंको धनुषयज्ञ और मथुरा पुरीकी शोभा देखनेके मिससे ले आओ" ॥ ३७ ॥ **अक्रूरने कहा।** "राजन्! आपने जो विचार करके ठीक किया सो बहुत अच्छा है, अपना अमंगल मिटाना मनुष्यका कर्त्तव्य है। किन्तु उसका सिद्ध हो जाना या न सिद्ध होना अपने अधीन नहीं है; फल देनेवाला दैव ही है ॥ ३८ ॥ लोगोंकी उच्च अभिलाषाएँ यद्यपि दैवके प्रतिबंधक होनेसे प्रायः पूरी नहीं होतीं तथापि वे वैसी कामनाएँ करके आनन्द भी पाते हैं और दुःखित भी होते हैं। जो हो, मैं आपकी आज्ञा अवश्य पालन करूँगा" ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच-एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ।
प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥ ४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इस प्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर कंसने मंत्रियोंको विदा किया और भवनमें गया। इधर अक्रूरजी भी अपने घरको गये ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंश अध्याय।

केशी और व्योमासुरका वध।

श्रीशुकउवाच–केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन्मनोजवः
सटावधूताभ्रविमानसंकुलं कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इधर कंसका भेजा हुआ केशी नाम असुर घोड़ेका रूप धर मनके समान वेगसे दौड़ता हुआ व्रजमें आया। उसके खुर जहाँ पड़ते थे वहाँ पृथ्वी खुद जाती थी। उसकी गर्दनके बालोंकी थपेड़से आकाशमें मेघ और विमानवृंद परस्पर टकराते थे। उसका भयंकर शब्द सुन कर सम्पूर्ण विश्व भयसे व्याकुल होगया॥ १॥ भगवान्‌ने देखा कि वह दैत्य अपने शब्दसे गोकुलको भयाकुल करता हुआ युद्ध करनेके लिये मुझ (कृष्ण) को खोज रहा है और उसकी पूँछके बालोंसे टकराये मेघ इधर उधर बिथर जाते हैं। उसी समय भगवान्‌ने सामने आकर उसको युद्धके लिये ललकारा। कृष्णचन्द्रको देख कर वह भी सिंहके समान गर्जा॥ २॥ तदनन्तर प्रचण्डवेगशाली अतएव दुरतिक्रम और दुर्दमनीय वह केशी दैत्य, मुख फैला कर—मानों आकाशको पी जायगा, इस भाँति झपटा और अत्यन्त कुपित होकर पीछेकी दुलत्ती कमलनयन कृष्ण पर चलाई॥ ३॥ किन्तु कृष्ण भगवान् लीलापूर्वक उसके पादप्रहारको बचा गये। फिर उस दैत्यने वैसे ही दुलत्ती चलाई, तब प्रभुने उसके पिछले दोनो पैर पकड़ लिये एवं गरुड़ जैसे साँपको झिटक दे उसी भाँति घुमा कर चार सौ हाथ पर फेंक दिया और वहीं खड़ी रहे॥ ४॥ उस दैत्यको जब चेत हुआ तब फिर मुख फैला कर क्रोधपूर्वक वेगसे हरिकी ओर चला। भगवान्‌ने भी हँसते हुए अपना हाथ उस दैत्यके मुखमें देदिया। जैसे बाँबीमें साँप चला जाय वैसे ही वह बाहु केशीके मुखमें चला गया॥ ५॥ भगवान्‌की भुजा छू जातेही उसके सब दाँत गिर पड़े, मानों किसी तपे लोहेसे गिरा दिये गये। महात्मा कृष्णचन्द्रका बाहु भी उस दैत्यके शरीरमें जाकर उपेक्षित रोगके समान क्रमशः बढ़ने लगा॥ ६॥ बढ़ रहे कृष्णके बाहुसे उसकी श्वासा रुक गई—तब ऊब कर वह गिर पड़ा और पैर पटकने लगा, आँखें निकल पड़ीं, पसीना बह चला एवं मलके साथही प्राण निकल गये। उस दैत्यका शरीर पकी हुई ककड़ीके समान खिल गया। भगवान्‌ने उसके मृत शरीरसे अपना हाथ खींच लिया। भगवान्‌को कुछ विस्मय नहीं हुआ—उन्होने सहजमें ही शत्रुको मारडाला। किन्तु देवगण बहुत विस्मित हुए और फूलोंकी वर्षा व स्तुति करने लगे॥ ७॥ ८॥ इसी अवसरमें भागवतश्रेष्ठ देवर्षि नारदजी एकान्तमें सर्वशक्तिमान् कृष्णसे मिले और हे राजन्! उन्होने कहा कि "हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे अपरिच्छिन्नस्वरूप योगेश्वर!

हे जगदीश्वर! आप वासुदेव हैं, सबका आश्रय हैं, सात्त्विक जनमें श्रेष्ठ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ लकड़ियोंमें अग्निके समान आप सब प्राणियोंके अभ्यन्तरमें निरन्तर सम्बन्ध रखनेवाले आत्माके रूपसे अवस्थित हैं तथापि गूढ़ हैं क्योंकि आप गुहाशय (बुद्धिका भी आश्रय) एवं साक्षी हैं अतएव अदृश्य हैं। आप महापुरुष हैं, इसी कारण जिनकी बुद्धि मायासे ढँकी हुई है वे लोग आपको नहीं जानसक्ते। प्रभो! आप सबके ईश्वर अर्थात् परमेश्वर हैं। आप स्वतन्त्र, सत्यसंकल्प परमेश्वर हैं। आपने पहले मायाके द्वारा तीन गुणोंकी सृष्टि की। उन्हीं गुणोंसे आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं। वह शुद्ध सत्त्वरूप आप रजोमय नृपरूपधारी दानव, दैत्य, असुर व राक्षसोंके विनाश और साधुओंकी रक्षाके लिये पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ अहोभाग्य! जिसके प्रचंड शब्दसे डर कर देवतोंने स्वर्गका रहना छोड़ दिया उसी केशी दैत्यको आपने लीलापूर्वक मारडाला ॥ १४ ॥ मैं शीघ्र ही देखूँगा कि आप परसों चाणूर, मुष्टिक आदि मल्लोंको, कुवलयापीड़ हाथी एवं कंसको भी मारियेगा ॥ १५ ॥ उसके पीछे शंखासुर, कालयवन, मुर दानव, नरकासुर आदिका मरना, पारिजातहरण, इन्द्रकी हार, वीर्य्य ही मूल्य देकर वीरकन्याओंसे विवाह करना और हे जगदीश्वर! द्वारकापुरीमें राजा नृगका शापसे छूटना, सत्यभामा और जाम्बवती सहित स्यमंतकमणि पाना, महाकालपुरसे ब्राह्मणको उसका मरा हुआ पुत्र लादेना, पौण्ड्रक राजाका वध, काशीपुरीका जलना एवं महायज्ञमें दंतवक्र और शिशुपालका वध इत्यादि आपके चरित्र देखूँगा ॥ १६ ॥ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ और भी जो चरित्र आप द्वारकामें रह कर करियेगा उनको मैं देखूँगा। उन पवित्र चरित्रोंको कविलोग पृथ्वी पर गावेंगे ॥ २० ॥ फिर कालरूप आप पृथ्वीका भार उतारनेकी इच्छासे महाभारत संग्राममें अर्जुनके सारथी बन कर असंख्य अक्षौहिणी सेनाओंका संहार करेंगे—सो भी मैं देखूँगा ॥ २१ ॥ हे हरि! केवल ज्ञान ही आपकी प्रधान मूर्ति है। अतएव अपने रूपके यथोचित समावेशसे ही आपको सब 'अर्थ' सम्पूर्णरूपसे प्राप्त हैं। आपकी वाञ्छा अमोघ है। आप अपने तेजके द्वारा नित्य गुणप्रवाहको निवृत्त कर देते हैं। मैं आपके चरणोंकी शरणमें हूँ ॥२२॥ आप ईश्वर एवं स्वतन्त्र हैं, अपनी मायाके द्वारा अशेष विशेष-कल्पनाओंका निर्माण करते हैं। आपने क्रीड़ा करनेके लिये मनुष्यशरीर धारण किया है। आप यदु वृष्णि और सात्त्वत वंशके यादवोंमें धुरन्धर हैं" ॥ २३ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। राजन्! श्रीकृष्णके दर्शनसे परमानन्दित भागवतश्रेष्ठ मुनि नारदजीने यों स्तुति की और फिर प्रणाम किया एवं आज्ञा पाकर चले गये ॥ २४ ॥ व्रजको सुख देनेवाले भगवान् गोविंद भी युद्धमें केशीको मारकर प्रसन्नचित्त पशुपालोंके साथ पशु-पालनमें प्रवृत्त हुए

॥ २५ ॥ एकदिन सब गोप लोग पर्वतके शिखरों पर पशुओंको चराते २ परस्पर चोर और पशुपाल बन कर "निलायन" नाम खेल खेलने लगे ॥ २६ ॥ राजन्! उनमें कुछ चोर, कुछ भेंड़ और कुछ चरवाहे बने। जो चोर बने थे वे निधड़क पशु बने हुए बालकोंको चुरा कर लेगये ॥ २७ ॥ मयासुरका पुत्र महामायावी व्योमासुर गोपरूप धर कर बालकोंमें मिल गया और पशु बने हुए बहुतसे बालकोंको लेगया ॥ २८ ॥ वह महा असुर जिन २ बालकोंको ले जाता उनको एक पर्वतकी कंदरामें डाल देता और शिलासे उसका द्वार बंद कर आता था। इस प्रकार वहाँ चार ही पाँच बालक बचे, और सबको वह असुर लेगया ॥२९॥ सज्जनोंकी रक्षा करनेवाले कृष्णचन्द्र जान गये कि यह काम उसी गोपरूपधारी असुरका है। जब वह फिर बालकोंको लेचला तब भगवान्ने झपट कर जैसे बली सिंह वृक (भेंड़िये) को दबा बैठे वैसे उसको दबालिया ॥ ३० ॥ उस समय उस बली दैत्यने अपना बड़े भारी पर्वतके समान शरीर प्रकट किया और छूटनेका बहुत प्रयत्न करने पर भी न छूटसका। भगवान्की पकड़से वह दैत्य बहुतही व्याकुल हुआ ॥ ३१ ॥ अच्युतने दोनो हाथोंसे पकड़ कर उस दैत्यको पृथ्वी पर गिरादिया और पशुओंकी ऐसी मारसे मार डाला ॥ ३२ ॥

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः ॥
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार दुष्ट दैत्यको मारनेके उपरान्त भगवान्ने शिला हटा कर उस कंदराका द्वार खोलदिया और वे गोप कष्टसे छूटे। तदनन्तर गोपगण और देवगणके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए कृष्णचन्द्र व्रजमें गये ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंश अध्याय ।

अक्रूरकी व्रजयात्रा ।

श्रीशुक उवाच–**अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥**
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! इधर देवऋषि नारदजी कंस–वध आदि भविष्य कार्य्योंकी सूचना देकर चले गये और कृष्णचन्द्र मथुरा जानेके लिये उद्यत हुए। उधर महामति अक्रूरजी भी वह रात मथुरामें बस कर प्रातःकाल रथ पर चढ़ कर नंदजीके गोकुलको चले ॥ १ ॥ राहमें जाते समय अक्रूरजीके हृदयमें कमलनयन भगवान्की परम भक्तिका उदय हुआ, तब वह भक्तिभावसे पूर्ण हो कर

आप ही आप विचारने लगे कि "मैंने कौन पुण्य या तप किया हैं अथवा सत्पात्रको दान दिया है जो आज केशवको देखूँगा ॥ २ ॥ ३ ॥ किन्तु जैसे शूद्रवंशज विषयासक्त पुरुषके लिये वेदोंका पढ़ना दुर्लभ है वैसे ही मेरी समझमें मुझे दर्शन मिलना दुर्लभ है ॥४॥ अथवा ऐसा विचारना भूल है । यद्यपि मैं अधम हूँ तथापि अच्युतके दर्शन मुझे प्राप्त ही होंगे । जैसे नदीमें बह रहे तृणोंमें कोई तृण किनारे लग जाते हैं वैसेही कालके प्रवाहमें कर्मवश बह रहे जीवोंमें कोई जीव भी कभी पार पहुँच जाते हैं । अतएव कृष्णदर्शन मिलना और उसके द्वारा संसारके पार पहुँच जाना मेरे लिये असंभव भी नहीं है ॥५॥ निश्चय ही आज मेरे सब पाप नष्ट हो गये और जन्म सफल हुआ, क्योंकि व्रजमें जा कर, मैं, जिनका योगीजन ध्यान करते हैं उन कृष्णके चरणारविंदोंमें प्रणाम करूँगा ॥ ६ ॥ अहो ! दुष्ट कंसने मुझ पर परम अनुग्रह किया । कंसका भेजा हुआ मैं, पृथ्वी पर जिनका अवतार हुआ है उन श्रीहरिके चरणकमलोंको देखूँगा । अम्बरीष आदि पूर्वज महोदयगण, इन्ही चरणोंके नखमण्डलके प्रकाशकी सहायतासे दुरत्यय अंधकारमय संसारके पार पहुँच गये हैं ॥ ७ ॥ देवदेव महादेव, ब्रह्मा आदि देवगण, लक्ष्मीदेवी, मुनि और भक्तगण सदा जिनकी पूजा करते हैं एवं गौवें चरानेके लिये अनुचरोंके साथ वनमें विचरते समय जो गोपिकाओंके कुचकुंकुमसे रंजित होते हैं उन श्रीचरणोंको मैं देखूँगा—मेरे अहोभाग्य हैं ! ॥ ८ ॥ सुन्दर कपोल, नासिका, मन्द मुसकान, कृपादृष्टि, अरुण कमलतुल्य लोचन एवं घूँघरवाली अलकोंसे सुशोभित मुकुन्दके मनोहर मुखको अवश्य मैं देखूँगा, क्योंकि मृगगण दाहिनी ओर आते जाते देख पड़ते हैं ॥ ९ ॥ अपनी ही इच्छासे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मनुष्यशरीर धारण करनेवाले कृष्णचन्द्रका त्रिभुवनसुन्दर महामनोहर वह श्याम शरीर आज क्या मैं अवश्य ही देखूँगा ? यदि दर्शन होंगे तो अवश्यही मेरे नेत्र कृतार्थ होजायँगे ॥१०॥ जो केवल दृष्टिके द्वारा कार्य्य और कारणके कर्ता हैं तथापि अहंकारसे शून्य हैं, जो अज्ञानजनित भेदभाव जिसका कारण है उस भ्रमको अपने तेजके द्वारा दूर किये हुए हैं, किन्तु वही भेद-भ्रम देखनेकी इच्छासे स्ववशवर्त्तिनी मायाके द्वारा प्राण, इन्द्रिय और बुद्धिसहित अपनेहीमें रचे हुए जीवोंके साथ वृंदावनके केलिकुंजोंमें और गोपियोंके भवनोंमें लीलापूर्वक केलि करते हुए अशक्त संसारी जनोंकी भाँति प्रतीत होते हैं, जिनके गुण, कर्म्म और जन्मकी कथाएँ सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली हैं तथा जगत्को जीवित, शोभित और पवित्र करती हैं एवं साधुलोग उन गुण-कर्मादिसे शून्य अथच अन्य अलंकारोंसे युक्त कथाओंको वस्त्रालंकारयुक्त शवशरीरके समान समझते हैं, जो निजरचित वर्णाश्रम धर्मके पालक श्रेष्ठ देवगणोंको सुखदेनेवाले हैं, जिनके सम्पूर्ण मङ्गलमय यशको देवगण गाते हैं-वही ईश्वर यादव वंशमें उत्पन्न

होकर अपने पवित्र यशको फैलाते हुए इस समय व्रजमें विराजमान हैं ॥ ११ ॥ ॥ १२ ॥ १३ ॥ उनका रूप त्रिभुवनसुन्दर है । जिनके नेत्र हैं वे लोग उसको देख कर परमानन्द पाते हैं । महात्मा लोगोंकी एकमात्र गति और गुरु कृष्णका वही मनोहर रूप, जो लक्ष्मीकी अभिलाषाका एकमात्र आश्रय है, आज मैं देखूँगा, क्योंकि सबेरेसे मुझे अच्छे २ सगुन दिखाई देरहे हैं ॥ १४ ॥ वह श्रीमूर्तिधारी हरि जब मुझे देख पड़ेंगे तब उसी समय मैं रथसे उतर पड़ूँगा एवं योगीलोग निजलाभके लिये प्रधानपुरुष कृष्ण बलभद्रके जिन चरणारविन्दोंको केवल बुद्धि (भावना)के द्वारा हृदयमें स्थापित करते हैं उनको मैं साक्षात् पाकर प्रणाम करूँगा और फिर कृष्ण बलदेवके सखा जो गोपगण हैं उनको भी प्रणाम करूँगा ॥ १५ ॥ जब मैं प्रभुके चरणों पर गिर पड़ूँगा तब वेगशाली कालसर्पके भयसे घबड़ा कर शरण चाहनेवाले प्राणियोंको अभयदायक अपना करकमल क्या वह मेरे शिर पर धरेंगे ? ॥ १६ ॥ उस करकमलमें पूजनसामग्री देनेसे राजा बलि और इन्द्रदेव त्रिलोकीके इन्द्र हुए हैं और प्रभुने उसी कमलकी ऐसी उत्तम गंधसे युक्त करकमलके स्पर्शसे व्रजबालाओंका विहारश्रम दूर किया है । अतएव वह करकमल मोक्षकी इच्छा रखनेवालोंको मुक्तिदायक, सकाम जनोंको अभ्युदयदायक एवं भक्तजनोंको परमानन्ददायक है ॥ १७ ॥ यद्यपि कंसका भेजा हुआ मैं उसका दूत होकर जा रहा हूँ, तथापि कमलनयन कृष्ण मुझको शत्रु नहीं समझेंगे, क्योंकि वह सर्वज्ञ अन्तर्यामी हैं । केवल मेरेही मनकी क्यों, बरन् सम्पूर्ण जगत्के भीतर और बाहरकी चेष्टाको वह अपने योगबलसे ज्ञानदृष्टिके द्वारा देखते रहते हैं ॥ १८ ॥ मैं जब उनके चरणोंमें प्रणाम करके हाथ जोड़ कर खड़ा होऊँगा तब वह क्या मन्द मुसका कर मेरी ओर दयादृष्टिसे देखेंगे ? यदि ऐसा होगा तो तत्क्षण मेरे सब पाप नष्ट हो जायँगे और मैं निःशंक होकर परमानन्द पाऊँगा ॥ १९ ॥ मैं उनका परममित्र और ज्ञाति हूँ, उनके सिवा मेरा कोई इष्टदेव नहीं है । यदि कृष्णचन्द्र अपने विशाल बाहुओंके द्वारा मुझे हृदयसे लगावेंगे तो मेरा आत्मा पवित्र हो जायगा और इस शरीरके कर्म्मबन्धन शिथिल हो जायँगे ॥ २० ॥ इस प्रकार अंगसंगका सुख पाकर जब मैं हाथ जोड़ कर प्रणत होऊँगा तब यदि महायशस्वी हरि "अक्रूर !" कह कर मुझसे वार्तालाप करेंगे तो मेरा जन्महीं सफल होजायगा । जो लोग पूजनीय हरिके आदरपात्र नहीं हैं उनके जन्मको धिक्कार है ! ॥ २१ ॥ नारायणकी दृष्टिमें न कोई प्रिय है, न अति प्रिय है, न शत्रु है और न कोई उपेक्षणीय ही है । तथापि कल्पवृक्ष जैसे निकट आनेवालेकी अभिलाषाएँ पूरी करता है वैसेही जो जिस भावसे भजता है उसको उसी भावसे वह भी भजते हैं॥२२॥मैं जब शिर झुकाए हाथ जोड़ कर खड़ा होऊँगा तब परम सुहृद् बलदाऊजी हाथ पकड़ कर मुझे घरके भीतर ले चलेंगे और भोजनान्त-सत्कार

करके अपने पिता, माता आदि बन्धुओंकी कुशलक्षेम पूछेंगे कि उनके साथ कंस कैसा व्यवहार करता है?" ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। श्वफल्कके पुत्र अक्रूरजी मार्ग भर यों ही कृष्णकी चिन्तामें मग्न रहे। इधर अक्रूरजीका रथ गोकुलके पास पहुँचा, उधर सूर्य्यदेव भी अस्ताचल पर चले गये ॥ २४ ॥ जिनके चरणरजको लोकपाल लोग आदरसहित शिर पर चढ़ाते हैं उन श्रीकृष्णके परमपवित्र पृथ्वीके आभूषण एवं पद्म, यव, अंकुश आदि अपूर्व रेखाओंसे पहचाने गये चरण-चिन्ह जैसे ही अक्रूरने देखे वैसे ही दर्शनके आनन्दकी उमंगसे झपट कर रथसे उतर पड़े और "अहो! यह प्रभुके चरणोंकी धूल है!" कहते हुए वहाँ लोटने लगे। प्रेमके प्रभावसे अक्रूरके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और आँखोंमें आनन्दके आँसू आगये ॥ २५ ॥ २६ ॥ देह धारण करनेकी सफलता इतनेही में है कि निर्दम्भ, निर्भय और विगतशोक हो कर अक्रूरके समान निःस्वार्थ स्वाभाविक भक्तिसे आनन्दपूर्वक दर्शन, श्रवण, संदेश आदिके द्वारा हरिको भजै ॥ २७ ॥ अक्रूरने व्रज पहुँच कर खरिक (जहाँ गऊ दुही जाती हैं) में देखा कि पीताम्बर और नीलाम्बर पहने कृष्ण और बलदेव दोनो भाई विराजमान हैं। उनके नयन शरत्कालके कमल से सुशोभन हैं ॥ २८ ॥ किशोर अवस्था है, श्याम और श्वेत वर्ण है, बड़ी २ विशाल भुजाएँ हैं। दोनो भाई कमलानिलय और त्रिभुवनसुन्दर हैं, उनका विक्रम विचित्र बालगजराजसे भी बढ़ कर है और सुन्दर मुख महामनोहर है ॥ २९ ॥ महात्मा दोनो भाई, ध्वजा, वज्र, अंकुश, कमल आदि चिन्होंसे माहात्म्य सूचित करनेवाले चरणोंके चिन्होंसे व्रजको सुशोभित कर रहे हैं। उनकी चितवनसे अनुग्रह और मुसकानसे प्रसन्नता प्रकट होती है ॥ ३० ॥ उनकी क्रीड़ाएँ उदार और मनोमोहिनी हैं, वे गलेमें मणिमाला और वनमाला पहने, अंगोंमें पवित्र अंगराग लगाये, विमल वस्त्रोंसे विभूषित हैं ॥ ३१ ॥ अक्रूरने देखा कि प्रधानपुरुष, आदिपुरुष, जगत्के कारण जगदीश्वरके अंशसे पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण कृष्ण बलदेव दोनो भाई, अपने तेजसे दिशाओंके अन्धकारको दूर करते हुए सुवर्णविभूषित नीलमणि और चाँदीके पर्वत ऐसे विराजमान हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ कृष्ण और बलरामको देखते ही अक्रूरजी शीघ्रतापूर्वक रथसे उतर पड़े। स्नेहसे विह्वल अक्रूरने चरणोंमें गिर कर दण्डवत् प्रणाम किया ॥३४॥ हरिदर्शनजनित परमानन्दसे उत्पन्न आँसू उनके नेत्रोंमें भर आये, शरीर पुलकित हो उठा और उत्कंठासे कंठावरोध हो गया। थोड़ी देर तक वह अपना परिचय भी न देसके ॥ ३५ ॥ किन्तु प्रणतवत्सल भगवान्ने अक्रूरका अभिप्राय स्वयं ही जान लिया एवं प्रसन्नतापूर्वक चक्रांकित बाहुओंसे उनको खींच कर गलेसे लगालिया ॥ ३६ ॥ तदनन्तर नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े खड़े हुए अक्रूरको महामनस्वी बलभद्रजी हाथ पकड़ कर भाई (कृष्ण) सहित घर लेगये ॥ ३७ ॥ घर ले जा-

कर बलदेवजीने स्वागत–सत्कारके बाद बैठनेके लिये श्रेष्ठ आसन दिया, विधिपूर्वक पहले पैर धोकर मधुपर्क (शर्बत) आदि दिया ॥ ३८ ॥ विभुने अतिथि अक्रूरको एक सब गुणोंसे युक्त गऊ दी । फिर अक्रूरने कुछ काल तक विश्राम किया और प्रभुने पास बैठ कर आदरपूर्वक व्यजन (पंखा) डुलाया । तदनन्तर बलभद्रने अनेक गुणोंसे युक्त पवित्र अन्न लाकर श्रद्धापूर्वक अक्रूरको भोजन कराया ॥ ३९ ॥ जब वह भोजन कर चुके तब श्रेष्ठ धर्मके जाननेवाले बलभद्रने मुखवास (पान इलायची आदि), सुगंध और सुगंधित फूलोंकी माला देकर उनको परमप्रसन्न किया ॥ ४० ॥ इस प्रकार सत्कार हो जाने पर नन्दजीने अक्रूरसे पूछा कि "हे दाशार्ह अक्रूरजी ! निर्दय क्रूर कंस जीवित है, अतएव कसाईके घर पली हुई भेड़ोंके समान तुम लोगोंको हर घड़ी अपने प्राणोंका खटका लगा रहता होगा । तुम पर कैसी बीतती है ? कंस खल है, वह सब प्रकार अपने शरीरके पालन पोषणकी ही चेष्टामें तत्पर रहनेवाला है । जिसने अपनी बिलख रही बहनके आगे ही उसके पुत्रोंको मार डाला उसकी प्रजाकी कुशल पूछना ही हमारी समझमें व्यर्थ है । उसकी प्रजाको तो जीवन भी दुर्लभ होगा" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ॥
अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार सत्कारपूर्वक मधुर वाणीसे नंदने अक्रूरसे कुशलप्रश्न किया । कृष्ण-बलदाऊके सत्कार और शुश्रूषासे अक्रूरका मार्गश्रम दूर होगया और वह स्वस्थ हुए ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्त्वारिंश अध्याय ।

अक्रूरका कृष्ण बलदेवको लेकर मथुराको लौटना ।

श्रीशुक उवाच–सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ॥
लेभे मनोरथान्सर्वान्पथि यान्स चकार ह ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा । महाराज ! अक्रूरने आते समय राहमें जो २ मनोरथ किये थे उनको श्रीकृष्ण बलदेवने भली भाँति सत्कार करके पूर्ण कर दिया । अक्रूरजी सुखपूर्वक पलँग पर बैठे ॥ १ ॥ लक्ष्मीपति भगवान्के प्रसन्न होने पर कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो न मिलसके । तथापि हे राजन् ! हरिभक्त लोग कोई भी कामना नहीं करते ॥ २ ॥ सायन्तन भोजनके उपरान्त देवकीनन्दन

कृष्णचन्द्र अक्रूरके पास आकर बैठे एवं "बंधुओंसे कंस कैसा व्यवहार करता है और अब वह क्या करना चाहता है ?" सो भी इस प्रकार अक्रूरसे पूछा ॥ ३ ॥ **श्रीभगवान्ने कहा** । "हे तात ! भले आये, आपका कल्याण हो । आपके यहाँ तो सब कुशल है ? आपके सुहृद्जन, जातिवाले और बंधुगण तो सुख पूर्वक सुस्थशरीर हैं ? ॥ ४ ॥ अथवा यदुकुलको रोगके समान पीड़ा पहुँचानेवाले हमारे मामा कंसका जब अभ्युदय है तब तुम्हारी, तुम्हारे आत्मीयोंकी और प्रजागणकी कुशलही क्या पूछना है ? ॥ ५ ॥ अहो ! मेरेही कारण माता पिताको अनेक कष्ट मिलते हैं । मेरेही कारण उनके पुत्र मारे गये और वे स्वयं वन्दी बने ! ॥ ६ ॥ हे सौम्य ! अहो भाग्य हैं जो आज स्वजनदर्शन प्राप्त हुआ; मेरी भी यही अभिलाषा थी । हे तात ! अब आप अपने आनेका कारण कहिये" ॥ ७ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । राजन् ! इस प्रकार भगवान्के पूछने पर मधुवंशीय अक्रूरने सभी बातें कह सुनाईं । अक्रूरने कहा–"कंस, यादवोंसे घोर वैर बाँधे है, अभी वसुदेवजीको मारडालनेके लिये उद्यत हुआ था, नारदजी उससे कह गये हैं कि आप (कृष्ण) वसुदेवके पुत्र हैं" । इसी प्रकार 'कंसका संदेसा और दुरभिसन्धि एवं इसी लिये दूत बन कर अपना आना' आदि सब वृत्तान्त अक्रूरजीने कह दिया ॥ ८ ॥ ९ ॥ शत्रुसेनाका संहार करनेवाले कृष्ण और बलदेवजी, अक्रूरके वचन सुन कर हँसे एवं अपने पिताको कंसकी आज्ञा सुना दी ॥ १० ॥ नंदने भी उसी समय व्रजके रक्षक अधिकारीके द्वारा गोपमंडलीमें यह घोषणा करवादी कि "सब गोरस और भाँति २ की भेंटें लेकर अपने २ छकड़े सुसज्जित करो । सबेरे राजा कंसको धनुर्यज्ञरूप पर्वमें गोरस और भेंटें देनेके लिये चलना होगा । पर्वोत्सव देखनेके लिये सब ग्रामवासी लोग भी वहाँ जाते हैं" । यह घोर घोषणा सुन कर गोपियाँ बहुत ही व्यथित हुईं कि कृष्ण बलदेवको लेजानेके लिये व्रजमें अक्रूर आये हैं ॥ ११ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ उस व्यथासे उत्पन्न हृदय–तापकी गर्म श्वासाओंसे कुछ गोपियोंके मुखकमल मुरझा गये । कुछ गोपियाँ ऐसी शिथिल हो गईं कि उनको दुपट्टे और कंगनोंके गिरने तथा वेणीके खुलनेका भी चेत न रहा ॥ १४ ॥ कुछ गोपियाँ कृष्णके ध्यानमें ऐसी लवलीन होगईं कि उनकी इन्द्रियाँ निश्चेष्ट होगईं और मुक्त व्यक्तियोंकी भाँति उनको देहाध्यास भी नहीं रहा ॥१५॥ और कुछ गोपियाँ कृष्णके अनुरागपूर्ण, हास्ययुक्त, हृदयहारी मधुरपदवाले वाक्योंको स्मरणकर मोहित होगईं ॥ १६ ॥ गोविन्दकी सुललित गति, चेष्टा, स्नेहपूर्ण हँसी और दृष्टि, शोक दूर करनेवाले नर्मवाक्य और उदारचरित्र आदिको स्मरण करनेसे उनको जब यह चेत हुआ कि उन्हींका वियोग होता है तब अच्युतमें ही जिनका चित्त लगा हुआ है वे गोपियाँ बहुत ही दुःखित और भयभीत हुईं एवं एकत्र होकर यों विलाप

करती हुई आँसू बहाने लगीं ॥१७॥१८॥ गोपियाँ कहने लगीं। "अहो विधाता! तू बड़ाही निठुर है, तुझमें नेक दया नहीं है। तू देहधारियोंको पहले प्रेमकी डोरमें बाँध कर, उनकी इच्छा पूरी नहीं होनेपाती और वृथा वियोग करादेता है। लड़कोंके खेलके समान तेरे भी काम मूर्खतापूर्ण हैं ॥१९॥ जो तू पहले, काली २ अलकोंसे आवृत, सुन्दर नासिका और कपोलोंसे सुशोभित एवं शोक मिटानेवाली मंद मुसकानसे मनोहर मुकुंदका मुखारविन्द दिखा कर अब आँखोंकी ओट किये देता है सो अच्छा नहीं है; यह तेरा कर्म्म निन्दनीय है ॥२०॥ अरे क्रूर विधाता! तू ही अक्रूर नाम धर कर, जिनसे हम कृष्णके अंगमें एकही स्थान पर तेरी सम्पूर्ण सृष्टिकी सुन्दरता निहारती थीं उन अपनेही दिये हुए नेत्रोंको मूर्खोंकी भाँति हरने आया है ॥ २१ ॥ किन्तु हमारी समझमें श्रीकृष्ण तो ऐसे निठुर नहीं है कि क्षण भरमें स्नेह छोड़ दें, वह हमको अपनेही लिये व्याकुल होते क्या देख सकेंगे? हम तो उनके मंदहाससे मोहित हो, उनके लिये घर, पिता, पति, पुत्र, परिवार छोड़ कर सेवामें गई थीं, क्या वह हमारी ओर न निहारेंगे? कृष्ण प्यारेको नित्य नई वस्तु प्रिय लगती है, इस लिये संभव है कि हमको छोड़ कर वह कदाचित् चलें भी तो हम उनको रोक लेंगी" ॥ २२ ॥ दूसरी गोपी ईर्षापूर्वक कहने लगी कि "आज निश्चय ही मथुराकी स्त्रियोंके लिये सुप्रभात होगा, उनकी सब कामनाएँ पूरी हो जायँगी, क्यों कि जब नन्दनन्दन पुरीमें प्रवेश करेंगे तो वे कटाक्षकी कोरोंसे सूचित उनकी सुधामय मुसकानको नेत्रोंके द्वारा जी भर कर पियेंगी ॥२३॥ उन पुरनारियोंके मधुर वाक्य उनके हृदयको हरलेंगे और वह उनके लज्जा और मुसकानसे सुललित हाव-भावोंमें फँस जायँगे तब पराधीन और धीर होने पर भी हम गँवारी नारियोंके निकट किस लिये लौट कर आवेंगे ॥ २४ ॥ आज दाशार्ह, भोज, अंधक, वृष्णिवंशज यादवोंके नेत्रोंको परम आनन्द प्राप्त होगा, क्यों कि वे राहमें श्रीपति गुणागार देवकीके पुत्र कृष्णको देखेंगे ॥ २५ ॥ अहो! ऐसे करुणाहीनका नाम "अक्रूर" न होना चाहिये। यह बड़ा ही दारुण है, क्योंकि दुःखित जनोंको आश्वास दिये बिनाही प्राणोंसे प्यारे कृष्णको इतनी दूर ले जानेके लिये उद्यत है ॥ २६ ॥ पाषाण ऐसा जिसका हृदय कठोर है वह अक्रूर रथ पर चढ़ रहा है, साथही ये दुष्ट गोप भी छकड़े जोतनेकी जल्दी मचा रहे हैं, और वृद्ध लोग भी इनको नहीं रोकते। दैव भी इस समय हमसे प्रतिकूल है, यदि दैव अनुकूल होता तो अवश्य ही इनमें कोई एक मर जाता या वज्रपात होता अथवा कोई न कोई विघ्न अवश्य हो जाता ॥ २७ ॥ चलो सब मिल कर कृष्णको जाने न दें, कुलके बड़े बूढ़े हमारा क्या कर लेंगे। हम आधे पलके लिये भी कृष्णका संग नहीं छोड़ सक्तीं। दुर्दैववश आज उन्हींका वियोग हो रहा है। हमारा चित्त अत्यन्त दुःखी हो रहा है। अर्थात् जब हम मृत्युसे भी नहीं भटकतीं तब बड़े बूढ़ोंका क्या डर है?

॥ २८ ॥ राससभामें जिनकी सानुराग मनोहर बातचीत, लीलाललित कटाक्षविक्षेप और आलिंगनमें उतनी बड़ी रात क्षण ऐसी बीत गई और कुछ जान न पड़ी उन कृष्णके बिना हे गोपियो! अपार विरहदुःखको हम कैसे सहेंगी? ॥ २९ ॥ सन्ध्याके समय गौवोंके खुरोंसे उड़ कर पड़ी हुई धूलसे भरी अलकावली और मालाओंसे सुशोभित जो कृष्णचन्द्र, गोपगणके साथ वंशी बजाते और हास्यसे मनोहर कटाक्षवाली दृष्टिके द्वारा सुधावृष्टि करते हुए व्रजमें प्रवेश करके हमारे चित्तको चुराते हैं उनके बिना हम कैसे जीवित रह सक्ती हैं? अतएव साहस करके रोकना ही उचित है" ॥ ३० ॥ **श्रीशुकदेवजी** कहते हैं। महाराज! श्रीकृष्णमें जिनका चित्त आसक्त है वे गोपियाँ विरहकी चिन्तासे अत्यन्त कातर हो, लोकलाज छोड़ कर ऊँचे स्वरसे गोविंद! दामोदर!! माधव!!! कह कर विलाप करने लगीं ॥३१॥ गोपियाँ विलाप कर ही रही थीं इतनेमें प्रातःकाल हो गया। अक्रूरने भी सन्ध्यावन्दन करके रथ हाँक दिया ॥ ३२ ॥ नंद आदि गोप भी उनके साथही उपहार और गोरसपूर्ण असंख्य कलश छकड़ों पर लाद कर चले ॥ ३३ ॥ दुःखित गोपियाँ उस स्थान पर गईं और प्रियतम कृष्णकी प्रेमपूर्ण चितवनसे कुछ आश्वासित होकर संदेशकी प्रत्याशामें खड़ी रहीं ॥ ३४ ॥ गोपियोंको इस प्रकार दुःखित देख कर कृष्णने कहला भेजा कि "दुःखित न होना, मैं शीघ्रही आऊँगा"। कृष्णके प्रेमपूर्ण वाक्योंसे गोपियोंको कुछ धैर्य्य हुआ ॥ ३५ ॥ कृष्णके साथही जिनका आत्मा चला गया है वे गोपियाँ, जब तक रथकी ध्वजा और पहियोंसे उड़ी धूर देख पड़ी तब तक उसी ठौर पर उधरही निहारती हुई चित्रलिखी सी खड़ी रहीं ॥ ३६ ॥ जब श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा नहीं रही तब वे अपने २ घरको लौट गईं और प्रियतमके प्रिय चरित्र गा कर शोकको शान्त करती हुई विरहके दिन बिताने लगीं ॥ ३७ ॥ कृष्ण भगवान् भी बलदेव और अक्रूरके साथ वायुके तुल्य वेगवाले रथसे पापनाशिनी यमुनाके किनारे पहुँच गये ॥ ३८ ॥ वहाँ दोनो भाइयोंने स्नान किया और मोती ऐसा निर्मल और मीठा पानी पीकर वृक्षोंकी छायामें खड़े हुए रथ पर जा कर बैठे ॥३९॥ अक्रूरने दोनो भाइयोंको रथ पर बैठा दिया। फिर वह उनसे आज्ञा लेकर यमुनाके किनारे आये और विधिवत् स्नान किया ॥४०॥ अक्रूरजी जलमें घुस कर सनातन ब्रह्म (गायत्री) का जप करने लगे। जप करते २ उन्होंने देखा कि कृष्ण और बलदेव दोनो भाई वहाँ अवस्थित हैं ॥ ४१ ॥ "वे वसुदेवके पुत्र तो रथ पर बैठे हैं, यहाँ कैसे आये? यदि यहाँ हैं तो रथ पर न होंगे"—यों विचार कर अक्रूरने जलसे शिर बाहर निकाला। रथ पर देखा तो दोनो भाई पहलेकी भाँति बैठे हुए हैं। "तो क्या मैंने जो उनको जलमें देखा सो भ्रम था?"—यह विचार कर अक्रूरजीने फिर जलमें गोता लगाया ॥ ४२॥४३॥ फिर उन्होने जलके भीतर देखा कि

अनन्तदेव विराजमान हैं, सिद्ध, सर्प और असुरगण शिर झुकाये हुए उनकी स्तुति कर रहे हैं ॥ ४४ ॥ अनन्तदेवके हजार शिर हैं, हजार फणोंमें हजार मुकुट और कमलनालतुल्य श्वेतशरीरमें नीलाम्बर सुशोभित है । सहस्रशिखरयुक्त कैलासके समान अनन्तदेवका विशाल कलेवर देख पड़ता है ॥ ४५ ॥ उन शेषजी-की गोदमें एक पीताम्बरधारी, घनसदृश श्याम शरीरवाले चतुर्भुज पुरुषकी शान्त मूर्त्ति विराजमान है । उसके नेत्र कमलके पत्तेके समान अरुण और विशाल हैं ॥ ४६ ॥ उसका प्रसन्न मुख परम सुन्दर है, हास्ययुक्त चितवन महामनोहर है, नासिका और भौंहें ऊँची और सुडौल हैं, कनककुण्डलोंसे कानोंकी अपूर्व शोभा हो रही है, सुन्दर गोल कपोल और अरुण अधर देखनेही योग्य हैं ॥ ४७ ॥ भुजाएँ मोटी और लंबी हैं, दोनो कन्धे ऊँचे हैं, वक्षःस्थलमें लक्ष्मीदेवी विराजमान हैं । कंठ शंखके समान सुन्दर है, नाभि गंभीर है, उदर त्रिबलीसे युक्त है और उसका आकार पीपलके पत्तेके समान है ॥ ४८ ॥ कटितट और श्रोणी (नितम्ब-प्रदेश) विशाल हैं, दोनो उरू हाथीकी सूँढ़के समान हैं, दोनो जानु सुंदर और दोनो जंघा मनोहर हैं ॥ ४९ ॥ दोनो चरणकमल किञ्चित् उन्नत, गुल्फ नव-दलसदृश अंगुली और अँगूठे एवं अरुणवर्ण नखसमूहोंकी किरण-कान्तिसे शोभित हैं ॥ ५० ॥ अंगोंमें अमूल्य मणिमण्डित किरीट, कटक, अंगद, कटिसूत्र, ब्रह्मसूत्र, हार, नूपुर और कुण्डल आदि अनेक आभूषण शोभायमान हैं ॥ ५१ ॥ चारो भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स व प्रभाशाली कौस्तुभ एवं कंठमें वनमाला विराजमान है । निर्म्मल चित्तवाले सुनन्द, नन्द, सनक आदि पार्षदगण, ब्रह्मा, रुद्र आदि सुरेश्वर, मरीचि आदि ऋषिगण एवं प्रह्लाद, नारद और वसु आदि श्रेष्ट भक्तजन भिन्न २ भावके वाक्योंसे स्तुति कर रहे हैं । श्री, पुष्टि, वाणी, कान्ति, कीर्त्ति, तुष्टि, इला, ऊर्जा, विद्या और अविद्या, शक्ति एवं माया सेवा कर रही हैं ॥ ५२ ॥५३॥५४॥ ५५ ॥ हे भरतनन्दन ! बहुत देर तक अक्रूरजी यह अपूर्व दृश्य देखते रहे । परम प्रीतिसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंमें आँसू भर आये, एवं भक्तिभावसे हृदय गद्गद हो गया ॥ ५६ ॥

गिरा गद्गदयास्तौषीत्सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ॥
प्रणम्य मूर्ध्नावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥

तब अक्रूरजी सत्वावलम्बनपूर्वक सावधान होकर हाथ जोड़के धीरे २ गद्गद वाणीसे परमपुरुषकी स्तुति करने लगे ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चत्वारिंश अध्याय ।

अक्रूरकृत कृष्णकी स्तुति ।

अक्रूर उवाच—नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं
नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥
यन्नाभिजातादरविन्दकोशा-
द्ब्रह्माविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥

अक्रूरने कहा । "हे कृष्णचन्द्र ! आपको मैं प्रणाम करता हूँ । आप बालक नहीं, बरन् आदिपुरुष हैं । आप सब कारणोंके कारण, अव्यय, नारायण हैं । आपकी नाभिमें उपजे हुए कमलसे इस संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं ॥ १ ॥ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, महत्तत्त्व, प्रकृति और पुरुष, मन, इन्द्रियाँ, इन्द्रियोंके विषय और अधिष्ठाता देवता; ये सब जगत्के कारण आपहीके अंगोंसे उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ ये माया आदि तत्त्वसमूह प्रत्यक्ष देख पड़नेके कारण जड़ हैं, अतएव आत्मारूप जो आप हैं उनके स्वरूप (तत्त्व)को नहीं जान सक्ते । ब्रह्मा भी मायाके गुणोंसे आवृत होनेके कारण आपके निर्गुण-रूपको नहीं जानते ॥ ३ ॥ योगी साधुगण आपको अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवका साक्षी, उनका अन्तर्य्यामी और नियन्ता जान कर आपहीकी आराधना करते हैं ॥ ४ ॥ ऐसे ही कोई २ कर्मकाण्डनिरत द्विजगण वेदविद्याके द्वारा आपकी उपासना करते हैं । वे कर्म्मयोगीजन इन्द्रादि अनेक रूप और नामोंसे अनेक महायज्ञोंके द्वारा आपहीका यजन करते हैं ॥ ५ ॥ ऐसे ही जो ज्ञानी लोग कर्म्मोंसे निवृत्त, अतएव शान्त हैं वे ज्ञानयज्ञ (समाधि) के द्वारा ज्ञानरूप जो आप हैं उन्हींका पूजन और भजन करते हैं ॥ ६ ॥ जिनका आत्मा शुद्ध हो गया है वे वैष्णवजन भी आपकी कही हुई पञ्चरात्र आदि विविध विधियोंसे एकाग्रमन और तन्मय होकर, इष्टदेव जो आप हैं उन्हींको वासुदेव, संकर्षण आदि बहु मूर्त्तिवाला मान कर अथवा एकमूर्त्ति नारायण मान कर भजते हैं ॥ ७ ॥ भगवन् ! ऐसे ही शैव लोग भी शिवरूप जो आप हैं उन्हींकी, शिवोक्त विधिके अनुसार शैव, पाशुपत आदि सम्प्रदायभेदसे भली भाँति उपासना करते हैं ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! जो लोग अनेक देवतोंके भिन्न २ भक्त है उनकी बुद्धि यद्यपि अन्यासक्त है, तथापि वे आपहीका पूजन करते हैं, क्योंकि आप सर्वदेवमय परमेश्वर हैं । प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे निकली हुई नदियाँ, वर्षाकालमें जलपरिपूर्णा होकर चारो ओरसे आकर सागरमें ही प्रवेश करती हैं वैसेही अन्तमें सब मतोंका केन्द्र आपही हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ क्योंकि सत्त्व, रज और तम, ये आपकी मायाके गुण हैं;

उन्हीं मायाके गुणोंमें मायासे उत्पन्न ब्रह्मादि–तृणपर्य्यन्त सब जीव ओतप्रोत हैं ॥ ११ ॥ किन्तु आप सर्वरूप और अन्तर्यामी अर्थात् सब बुद्धियोंके साक्षी हैं, अतएव आपकी बुद्धि निर्लिप्त है । देव, मनुष्य, पशु पक्षी आदि अपने २ शरीरका अभिमान रखनेवाले सब जीवोंमें आपकी अविद्यामयी मायाके गुणोंका प्रवाह पूर्णरूपसे प्रवृत्त है, परन्तु आप उस मायाके गुणोंसे परे हैं ॥ १२ ॥ अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी आपके चरण है, सूर्य आपके नेत्र हैं, आकाश आपकी नाभि है, सब दिशाएँ आपके कान हैं, स्वर्गलोक आपका मस्तक है, सुरेन्द्र आपके बाहु हैं, सब समुद्र आपकी कुक्षियाँ (कोखें) हैं, वायु आपके प्राण और बल है, वृक्ष और ओषधियाँ आपके केश हैं, पर्वतगण आपकी अस्थियाँ और नख हैं, रात्रि और दिन आपकी पलकोंका उघरना और बंद होना हैं, सब प्रजापति आपकी गुप्त इन्द्रिय हैं और वृष्टि आपका वीर्य्य है । आप अविनाशी मनोमय(मनसे ही जानने योग्य) पुरुष हैं । ये असंख्य जीवोंसे पूर्ण सब लोक और लोकपालगण आपके विश्वमय विराट् शरीरमें विरचित हैं । जैसे जलके भीतर जलमें उत्पन्न असंख्य सूक्ष्म २ जीवोंके समूह बसते हैं अथवा गूलरके फलमें अगणित छोटे २ जीव उपजते और रहते हैं वैसे ही अनेक विश्व-ब्रह्माण्ड आपके रोम २ में हैं; आपको प्रणाम है ॥१३॥१४॥१५॥ आप क्रीड़ा करनेके लिये पृथ्वी पर जिन २ रूपोंसे प्रकट होते हैं उनसे लोगोंका कल्याण होता है । उन आपके अवतारोंसे लोगोंके दुःख दूर हो जाते हैं और वे प्रसन्न हो कर आपके पवित्र यशको गाते हैं ॥ १६ ॥ आपने कारणवश मत्स्यरूप धरा, प्रलयसागरमें विचरते रहे, आपको प्रणाम है । आपने हयग्रीवरूप धर कर मधु और कैटभ नाम दानवोंको मारा, आपको प्रणाम है ॥ १७ ॥ आपने महाविशाल कच्छप-रूपसे पीठ पर मन्दराचलको धर लिया, आपको प्रणाम है । आपने शूकररूप धर कर लीलापूर्वक रसातलसे पृथ्वीका उद्धार किया, आपको प्रणाम है १८ ॥ हे साधुजनोंके भयको दूर करनेवाले! आपने अद्भुत नृसिंहरूप धर कर भक्त प्रह्लादको बचाया, आपको प्रणाम है । आपने वामन अवतार लेकर तीन पगसे त्रिभुवनको नाप लिया, आपको प्रणाम है ॥१९॥ घमंडी क्षत्रियोंके वनको काटनेवाले हे भृगुपति परशुरामजी! आपको प्रणाम है । रावणका संहार करनेवाले हे रघुवर! आपको प्रणाम है ॥ २० ॥ हे वासुदेव हे संकर्षण! हे प्रद्युम्न! हे अनिरुद्ध! हे यदुनाथ! आपको प्रणाम है ॥ २१ ॥ हे दैत्य दानवोंको मोहित करनेवाले शुद्ध बुद्धरूप, आपको प्रणाम है । हे म्लेच्छप्राय कलियुगी क्षत्रिय राजोंका संहार करनेवाले कल्किदेव! आपको प्रणाम है ॥ २२ ॥ भगवन्! ये सब लोग आपकी मायामें मोहित हो रहे हैं; इसी कारण "मैं हूँ, मेरा है" ऐसा असत् आग्रह करके कर्ममार्गमें भ्रमण कर रहे हैं ॥ २३ ॥ प्रभो! मैं मूढ़ भी, स्वप्नके समान मिथ्या जो देह, पुत्र, दारा, घर, धन और अन्यान्य

स्वजन आदि हैं उनको सत्य मान कर वृथा भटक रहा हूँ ॥ २४ ॥ अज्ञानांध होनेके कारण, मैं, उक्त अनित्य, अनात्म पदार्थोंको नित्य आत्मा जान कर दुःखको सुख मान रहा हूँ। प्रभो! मैं मूढ़ सुख-दुःखादि द्वंद्व विषयोंमें रम रहा हूँ, अतएव आत्माके परमप्रिय परमात्मा जो आप हैं उनको नहीं जानता ॥ २५ ॥ जलहीसे उत्पन्न तृण आदिसे ढँके हुए जलको छोड़ कर जैसे कोई अज्ञ पुरुष, मृगतृष्णाके निकट पानी पानेकी आशासे जाय वैसे अपनी ही मायासे ढँके हुए जो आप हैं उनको छोड़ कर मैं मूढ़ सुखकी आशासे देह आदिके लालन-पालनमें तत्पर हो रहा हूँ ॥२६॥ भगवन्! विषय-वासनाओंसे मेरी बुद्धि दीन हो रही है, अतएव काम्य कर्मों और कामनाओंसे चञ्चल एवं बलवान् इन्द्रियोंके द्वारा इधर उधर चलायमान मनका दमन करनेमें मैं असमर्थ हूँ ॥२७॥ हे भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे अन्तर्यामी! आपके चरणकमल असज्जन लोगोंको परम दुर्लभ हैं, तथापि मुझ अधमको आपके चरण मिलजाना, मेरी समझमें आपहीकी कृपाका फल हैं। हे पद्मनाभ! जब जीवके संसारका 'अन्त' निकट आ जाता है तभी साधुसेवा अर्थात् सत्संगके द्वारा उसकी बुद्धि आपकी ओर झुकती है। यदि आपकी कृपा नहीं होती तो साधुसेवा (सत्सङ्ग) में रुचि नहीं होती और आपमें भी मन नहीं लगता, अतएव मुक्ति भी नहीं होती ॥ २८ ॥ भगवन्! विज्ञान आपका वैभव है, आपही सब प्रकारके ज्ञानोंका मूल कारण हैं। आप परिपूर्ण ब्रह्म हैं, आपकी शक्ति अनन्त है। आप काल, कर्म, स्वभाव आदिके नियन्ता हैं; आपको प्रणाम है ॥२९॥

नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥ ३० ॥

आप चित्तके अधिष्ठाता वासुदेव और सब प्राणियोंका आश्रय जो अहंकार है उसके अधिष्ठाता संकर्षण हैं। आप हृषीकेश एवं बुद्धि और मनके अधिष्ठाता प्रद्युम्न व अनिरुद्ध हैं। प्रभो! मुझ शरणागतकी रक्षा करो" ॥ ३० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंश अध्याय।

श्रीकृष्णका मथुरापुरीमें प्रवेश।

श्रीशुक उवाच-स्तुवतस्तस्य भगवान्दर्शयित्वा जले वपुः ॥
भूयः समाहरत्कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! कृष्णचन्द्रने इस प्रकार स्तुति कर रहे अक्रूरको जलके भीतर अपना अपूर्व रूप दिखा कर फिर छिपा लिया, जैसे नट अपनी

कला दिखा कर उसे अन्तर्हित (गायब) कर देता है ॥ १ ॥ अक्रूरजी भी जलमें भगवान्‌को न देख कर जलसे बाहर निकले और जल्दीसे सब सन्ध्यावन्दनादि आवश्यक कृत्य करके रथ पर आये । अक्रूरने जो कुछ जलमें देखा उससे उनको बहुत विस्मय हुआ ॥ २ ॥ हृषीकेश भगवान् कृष्णने अक्रूरसे पूछा कि "अक्रूर ! तुमने पृथ्वीमें आकाशमें या जलमें कुछ अद्भुत बात देखी है क्या ? हमको तुम्हारे मुखमण्डल पर कुछ विस्मयके चिन्ह देख पडते हैं, इसीसे ऐसा अनुमान होता है ॥ ३ ॥ **अक्रूरने कहा** । भगवन् ! पृथ्वी, आकाश और जलमें जो कुछ अद्भुत है सो सब आपमें विराजमान है, क्योंकि आप विश्वरूप हैं। मैंने जब आपको विशेषरूपसे प्रत्यक्ष देख लिया तब कौन सी अद्भुत वस्तु नहीं देखी ? ॥४॥ परमेश्वर ! पृथ्वी, आकाश और जलकी सब अद्भुत बातें आपमें हैं । आपके सिवा पृथ्वी आदिमें और कौन अद्भुत है ? जो मैंने देखा है ॥ ५ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । महाराज ! यों कह कर अक्रूरने रथ हाँक दिया और सायंकाल होते २ कृष्ण बलदेवको मथुराके निकट पहुँचा दिया ॥ ६ ॥ राहमें जाते समय कृष्ण बलदेव जिस गाँवके पास पहुँचे वहाँके रहनेवाले लोग निकट आकर उनके अनूप रूपको एकटक निहारते ही रहे । दोनो भाइयोंका मनोहर वेष देखकर वे लोग परम प्रसन्न हुए ॥ ७ ॥ नन्द-आदि व्रजवासी गोपगण पहले ही मथुरा पहुँच चुके थे । नगरके उपवनमें ठहरकर वे लोग कृष्ण बलदेवके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे ॥ ८ ॥ भगवान् जगदीश्वर कृष्णचन्द्र भी उन लोगोंसे आकर मिले । तदनन्तर कृष्णचन्द्रने विनीत अक्रूरका हाथ अपने हाथमें लेकर हँसते हुए कहा कि—"तात ! तुम रथ लेकर पहले नगरमें चलो और अपने घरमें विश्राम करो । हम यहीं कुछ काल तक ठहरेंगे और फिर पुरीकी शोभा देखेंगे" ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ **अक्रूरजीने कहा** । "प्रभो ! आपको यहाँ छोड़कर अकेले मैं पुरीमें न जासकूँगा । हे भक्तवत्सल ! मैं आपका भक्त हूँ, मुझको न छोड़िये । नाथ ! आओ चलो । हे अधोक्षज ! हे सुहृत्तम ! बलदाऊ और सुहृद्गण गोपोंके साथ चल कर हमारे घरको सनाथ करिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ भगवन् ! अपने चरणोंके रजसे हम गृहस्थोंके घर पवित्र करिये । आपके चरण-जल (गंगा)से अग्निगणसहित पितृगण और देवगण तृप्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ ईश ! इन्ही परम दुर्लभ चरणोंको धोनेसे महात्मा वलिको पवित्र यश, अतुल ऐश्वर्य और अनन्य भक्तोंकी गति मिली है ॥१४॥ कहाँतक आपके चरणोदककी महिमा कहें—साक्षात् शिवदेव भी उसको सादर शिरपर धरे हैं ! ब्रह्मदंडदग्ध महाराज सगरके साठ हजार पुत्र उसी चरणोदकके प्रतापसे स्वर्गलोकको गये हैं ॥ १५ ॥ हे देवदेव ! हे जगदीश्वर ! आपकी चर्चा करने और सुननेसे पुण्य होता है । हे यदुपुंगव ! हे उत्तमश्लोक ! हे नारायण ! आपको प्रणाम है" ॥ १६ ॥ **श्रीकृष्णचन्द्रने कहा** । "चाचा ! मैं बलदाऊके साथ अवश्य आपके घर आऊँगा और यदुवंशसे वैर करनेवाले कंसको मार कर

सुहृद् जनोंको प्रसन्न करूँगा" ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । भगवान्के वचन सुन कर अक्रूरजी कुछ उदास होगये । अक्रूरजीने वहाँसे कंसके पास आकर कृष्ण बलदेवके ले आनेका समाचार सुनाया और फिर अपने घरको गये ॥ १८ ॥ इधर श्रीकृष्णजी मथुरा पुरी देखनेके लिये गोपगणको साथ लेकर बलदाऊके साथ चले ॥ १९ ॥ भगवान्ने देखा कि पुरीके द्वार स्फटिक मणिके बने हुए हैं । बड़े २ फाटक हैं, जिनमें सुवर्णके कपाट शोभा बढ़ा रहे हैं । धान्यागार और शालाएँ ताँबे और पीतलसे मण्डित हैं । पुरीके चारो ओर एक विशाल और गहरी खाई बनी है । अतएव शत्रुके लिये इस पुरी पर आक्रमण करना महाकठिन काम है । स्थान २ पर रमणीय उद्यान और उपवन पुरीकी शोभा बढ़ा रहे हैं ॥ २० ॥ सुवर्ण मण्डित चौराहे, धनी जनोंके महल और महलोंके अन्तर्गत छोटे २ उपवन (चमन), एकरूप शिल्पजीवियोंके सभाभवन और अन्यान्य भवन (इमारतें) चारो ओरसे पुरीको सुशोभित कर रहे हैं । बलभी (सहंची), वेदी, झरोखे एवं कुट्टिम (फ़र्श) आदि स्थानोंमें हीरा, बिल्लौर, नीलम, विद्रुम (मूँगा), वैडूर्य्य, मरकत (पन्ना) मुक्ता आदि रत्न जड़े हुए जगमगा रहे हैं । ठौर २ बैठे हुए कबूतर और मोर पक्षी बोल रहे हैं । राजमार्ग, हाट-बाट, गली कूचे, चबूतरे और द्वारोंके आगेवाले सहनोंमें छिड़काव किया गया है और सर्वत्र माला, अंकुर, खीलें और अक्षत बिथरे पड़े हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ सब भवनोंके द्वार, दधि-चन्दनचर्चित जलभरे कलश, फूल, पल्लव, दीपमाला, फले हुए केलेके वृक्ष और सुपारीके वृक्ष, ध्वजा और छोटी २ झंडियोंसे भलीभाँति सजे हुए हैं ॥२३॥ राजन्! इस प्रकार पुरीकी शोभा निहारते हुए गोपगणसहित कृष्ण बलदेवने राजमार्गसे पुरीमें प्रवेश किया । पुरनारियाँ कृष्ण बलदेवके आनेका समाचार पातेही उनको देखनेके लिये उत्सुक होकर जल्दी २ अपने महलों पर चढ़ गईं । जल्दीके कारण कोई उलटे कपड़े और गहने पहन कर चलदीं । कोई कुण्डल आदि आभूषण, जो दो २ पहने जाते हैं, एकही एक पहन कर चलदीं । किसीने एकही कपोलमें केसरसे पत्ररचना की थी, किसीने एकही पैरमें नूपुर पहना था, किसीने एकही नेत्रमें अंजन लगाया था, वे सब कृष्णदर्शनकी उतावलीमें वैसेही उठ खड़ी हुईं ॥ २४ ॥ ॥ २५ ॥ कोई भोजन कर रही थीं, उन्होने हाथका कौर थालीमें छोड़ दिया और कृष्णको देखनेके लिये निकल आईं । कोई सखियोंसे उबटना लगवारही थीं, वे बिना स्नान किये वैसेही चलीं । कोई सो रही थीं, वे कोलाहल सुन कर जाग पड़ीं और वैसेही कृष्णको देखने चलीं । कोई अपने बालकोंको दूध पिला रही थीं, वे दूधपीते बालकोंको वैसेही छोड़ कर चल खड़ी हुईं ॥ २६ ॥ महाराज! मत्त गजेन्द्रके तुल्य जिनका विक्रम है उन कमललोचन कृष्णने प्रगल्भ लीलाविलाससे पूर्ण हँसी और कटाक्षोंसे एवं लक्ष्मीको आनन्द देनेवाले अपने

मनोहर श्यामशरीरसे पुरनारियोंको नयनानन्द देकर उनके हृदय हर लिये ॥२७॥ हे शत्रुदमन! कृष्णचन्द्रकी कथाएँ बारम्बार सुननेसे पुरनारियोंके चित्त उनको देखनेके लिये आतुर हो रहे थे। आज पुरनारियोंके सौभाग्यका उदय हुआ, उन्होने कृष्णचन्द्रको देख कर अपने नेत्रोंको कृतार्थ किया। कृष्णचन्द्रने भी दया-दृष्टिसे देख कर और मनोहर मुसकानरूप सुधा पिला कर उनका यथोचित आदर और सत्कार किया। नेत्रमार्गसे मनमें पहुँचे हुए कृष्णकी आनन्दमयी मूर्त्तिको हृदयसे लगा कर पुरनारियाँ भी अनन्त विरहव्यथासे मुक्त हो गईं; परमानन्द प्राप्त होनेसे उनके शरीरोंमें रोमांच हो आया ॥ २८ ॥ प्रसन्नताके कारण जिनके मुखकमल प्रफुल्लित हो रहे हैं वे महलों पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ कृष्ण बलदेव पर फूल बरसाने लगीं ॥ २९ ॥ ब्राह्मणादि द्विजातियोंने भी ठौर २ पर दही, अक्षत, जल, माला, चन्दन आदि सामग्रियोंसे दोनो भाइयोंका प्रसन्नतापूर्वक पूजन किया ॥ ३० ॥ पुरनारियाँ आपसमें कहने लगीं कि—"अहो! गोपियोंने पूर्वजन्ममें कौन महातप किया था जो मनुष्यमात्रको आनन्द देनेवाली इन दोनो मनोहर मूर्तियोंको हर घड़ी देखती रहती हैं" ॥ ३१ ॥ जिधरसे कृष्ण जा रहे थे उधरहीसे एक धोबी आ रहा था,वह कपड़े धोता था और उनको रँगता भी था। उसे देख कर भगवान्ने धोये हुए अति उत्तम वस्त्र उससे माँगे ॥ ३२ ॥ कृष्णने कहा—"अरे रजक! हमारे अंगोंमें जो ठीक हों वे वस्त्र हमको दे। ये तेरे पासके कपड़े हमारे ही पहनने योग्य हैं। हमको वस्त्र देनेसे अवश्य तेरा कल्याण होगा; इसमें कोई संशय नहीं है" ॥ ३३ ॥ वह रजक राजा कंसके कपड़े धोता था–इसलिये उसको बड़ाही दर्प (घमंड) था। पूर्णकाम, परब्रह्म भगवान् कृष्णके यों याचना करनेसे अत्यन्त कुपित होकर उसने तिरस्कार करते हुए कहा कि "तुम पर्वत और वनोंमें फिरनेवाले गँवार लोग सदा ऐसेही कपड़े तो पहनते हो? अब तुम इतना बढ़ चले कि राजा कंसके कपड़े लेना चाहते हो। अरे मूर्खो! यदि जीवित रहना चाहते हो तो शीघ्र यहाँसे भाग जाओ, ऐसे २ उन्मत लोगोंको राजकर्मचारीगण बाँधते हैं, मारते हैं और उनका सर्वस्व लूट लेते हैं" ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार छोटे मुहसे बड़ २ कर बातें कर रहे रजकके मुण्डको, भगवान् देवकीसुतने किंचित् कोपसे एक तमाचा मारकर धड़से अलग कर दिया ॥३७॥ उस रजकके अनुजीवी अन्य रजकलोग, रेशमी कपड़ोंकी गठरियाँ वहीं राहमें छोड़ प्राण लेकर भागे; तब अच्युतने उन वस्त्रोंको लेलिया ॥ ३८ ॥ कृष्ण और बलभद्रने उनमेंसे आप मनमाने कपड़े पहने। फिर सब गोपोंने इच्छानुसार वस्त्र लेलिये। जो कपड़े बचे उनको वहीं पृथ्वीमें छोड़कर कृष्णचन्द्र आगे बढ़े ॥ ३९ ॥ आगे एक दर्जी मिला, वह कृष्णचन्द्र व बलदाऊके अनूप रूपको देखकर परम प्रसन्न हुआ। अतएव उसने छोटे बड़े कपड़ोंको काँट छाँटकर ठीक कर दिया और वस्त्रनिर्मित विविध रंगके आभूषणों (गजरे आदि)से

दोनो भाइयोंके वेषको बनादिया ॥ ४० ॥ रंगबिरंगे वेषमें विराजमान कृष्ण बलदेव ऐसे सुशोभित हुए जैसे पर्वके दिन विचित्रधातुचित्रित श्वेत और श्याम दो बाल-गजराज शोभित हों ॥ ४१ ॥ भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उस दर्जीको परलोकमें सारूप्य मुक्ति (अर्थात् अपना ऐसा रूप) और इस लोकमें परम लक्ष्मी, बल, ऐश्वर्य, स्मरणशक्ति और इन्द्रियोंकी अशिथिलता आदि अनेक दुर्लभ वर देकर वहाँसे प्रस्थान किया ॥ ४२ ॥ वहाँसे दोनो भाई अपने भक्त सुदामा मालीके घर गये। वह दोनो भाइयोंको देखकर उठ खड़ा हुआ। उसने पृथ्वीमें गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया और आसन देकर पाद्य, अर्घ्य, माला, ताम्बूल, चन्दन आदि सामग्रीसे गोपगणसहित कृष्ण बलदेवका पूजन किया ॥४३॥४४॥ **सुदामा मालीने कहा।** प्रभो ! आज यहाँ आपके श्रीचरण आनेसे मेरा जन्म सफल होगया और कुलभी पवित्र होगया। पितृगण, ऋषिगण और देवगण सन्तुष्ट होगये, अर्थात् मैं उनके ऋणोंसे मुक्त हो गया ॥ ४५ ॥ आप अवश्यही जगत्‌का परम कारण परब्रह्म हैं। संसारके अभ्युदय और मंगलके लिये ही दो अंशोंसे पृथ्वी पर आपका यह अवतार हुआ है ॥ ४६ ॥ यद्यपि आप भजनेवालोंको ही भजते हैं तथापि समदर्शी हैं, आपकी दृष्टिमें किसी प्रकारका भेदभाव नहीं है। क्योंकि आप तो जगत् भरके आत्मा और हितकारी हैं; साधारणतः आपकी दृष्टिमें सब प्राणी समान हैं ॥ ४७ ॥ मैं तो आपका चरणसेवक हूँ। हे प्रभो ! आज्ञा करिये, मैं क्या सेवा करूँ ? यदि आपकी आज्ञा पाने और पालनेका अवसर प्राप्त हो तो आपकी 'परम कृपा' समझना चाहिये ॥ ४८ ॥ हे राजेन्द्र ! प्रसन्नचित्त सुदामाने इस प्रकार निवेदन करके दोनो भाइयोंकी इच्छाके अनुसार प्रशंसनीय फूलोंकी मालाएँ बनाकर उनको पहनाईं ॥ ४९ ॥ अपने साथी गोपगणसहित कृष्ण बलदेव दोनो भाई उन मालाओंसे विभूषित होकर परम प्रसन्न हुए। वरदानी दोनो भाइयोंने प्रणत प्रपन्न और प्रसन्न सुदामाको मनोभिलषित 'वर' देनेकी इच्छा प्रकट की ॥५०॥ उस मालीने यही माँगा कि सर्वस्वरूप जगदीश्वर जो आप हैं उनमें मेरी अचल भक्ति हो, आपके भक्तोंसे मित्रता रहे और सब प्राणियोंके लिये मेरे हृदयमें परम दया हो ॥५१॥

इति तस्मै वरं दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥
बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥ ५२ ॥

राजन्! मालीने जो माँगा सो तो मिला ही, किन्तु जो न माँगा था वह प्रबल बल, दीर्घ आयु, वंश बढ़ानेवाली स्थिर लक्ष्मी, यश और कान्ति आदि अनेक 'वर' भी उसको कृष्णकी कृपासे प्राप्त हुए। तदनन्तर बलदाऊके साथ कृष्णचन्द्रजी वहाँसे आगे चले ॥ ५२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्त्वारिंश अध्याय।

कुब्जाका सीधा होना, धनुषभंग और बुरे स्वप्न देख कर कंसका घबड़ाना।

श्रीशुक उवाच–अथ व्रजन्राजपथेन माधवः
स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम्॥
विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां
पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन्त्रसप्रदः॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! तदनन्तर रसिकवर माधव राजमार्ग होकर आगे चले। आगे चल कर उन्होने देखा कि एक सुन्दर मुखवाली युवती जा रही है, सुंदरी होने पर भी वह स्त्री कुब्जा (कुबड़ी) थी। श्रीकृष्णचन्द्रने हँस कर उससे पूछा कि "हे वरोरु! हे सुंदरी! तुम कौन हो? यह अनुलेपन तुम किसके लिये लिये जारही हो? यदि अच्छा समझो तो हमसे ठीक २ बताओ। हमारी इच्छा है कि यह उत्तम अनुलेपन तुम हमको देओ। ऐसा करनेसे बहुत शीघ्र तुम्हारा कल्याण होगा" ॥१॥२॥ कुब्जाने कहा। "हे सुन्दरश्रेष्ठ! मैं तीन जगहसे कुबड़ी हूँ, इस लिये मेरा नाम त्रिवक्रा है। मै कंसकी दासी हूँ। राजाके अंगोंमें और मस्तकमें चन्दनआदि अनुलेपन लगाना मेरा काम है। मैं अपना काम करनेमें बहुत ही निपुण हूँ, इस कारण राजा मेरा बड़ा आदर करते हैं और मेरे प्रस्तुत किये हुए अंगलेपन पर उनकी परम प्रीति है। आप पुरुषरत्न हैं–आपके सिवा और कौन इस अनुलेपनके योग्य है?" ॥३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! कृष्ण बलदेवके रूप, सुकुमारता, मधुरता, रसिकता, हँसी, बातचीत, चितवन आदिसे चित्त मोहित होनेके कारण उस कुब्जाने दोनो भाइयोंको वह अनुलेपन दिया॥ ४॥ पीत आदि वर्णवाले अंगरागोंसे अनुरंजित हो कर दोनो भाई परम शोभायमान हुए। वे अंगराग दोनो भाइयोंके अंगोंमें अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए॥ ५॥ तब प्रसन्न होकर अपने दर्शनका फल दिखानेके लिये भगवानूने तीन जगहसे टेढ़ी एवं सुंदर मुखवाली कुब्जाको सीधा करना चाहा॥ ६॥ भगवानूने अपने दोनो पैरोंसे कुब्जाके दोनो पैरोंको आगेसे दबाया एवं दो अँगुलियाँ उसकी ठोढ़ीमें लगाकर एक झिटका दिया। अच्युतके झिटकेसे उसका शरीर सीधा होगया और सब अंग समान होगये। तब भगवानूके दर्शनसे वह कुब्जा, शीघ्रही एक वृहत् नितम्ब और पीन पयोधरोंसे सुशोभित परम सुन्दर श्रेष्ठ स्त्री बनगई॥ ७॥ ८॥ उस समय मन्मथने उस उदारता आदि गुणोंसे सम्पन्न सुन्दरीके मनको मथ डाला, तब दुपट्टेका छोर पकड़कर वह अच्युतसे कहने

लगी कि "हे वीर! आओ, घर चलें। तुमको यहाँ छोड़कर अकेले घर नहीं जासक्ती। क्योंकि तुमने मेरे मनको मोहित कर लिया है। हे पुरुषश्रेष्ठ! मुझ दासी पर प्रसन्न होइये" ॥ ९ ॥१०॥ इस प्रकार उस स्त्रीके प्रार्थनावाक्य सुनकर बलदेवके आगे ही अपने साथी गोपोंकी ओर निहारते हुए कृष्णचन्द्रने हँसकर कहा कि "हे सुभ्रु! मैं अपना कार्य सिद्ध करके हृदयके तापको शान्त करनेवाले तुम्हारे घर अवश्य आऊँगा। हे सुन्दरी! हम ऐसे अविवाहित पथिकोंके लिये तुम परम आश्रय हो" ॥ ११ ॥ १२ ॥ इस प्रकार मधुर वाणीसे उस स्त्रीको बिदा करके श्रीकृष्णचन्द्र राजमार्गमें आगे चले। वणिक्पथ (बाजार)में वणिक् लोग दोनो भाइयोंके रूप पर मोहित होगये। उन्होने अनेक भेंटें, तांबूल, माला, सुगन्ध आदि देकर उनका सत्कार किया ॥ १३ ॥ राहमें जिन २ रमणियोंने दोनो भाइयोंको देखा उन २ के मन कामके वेगसे चंचल होगये। उनकी वेणियाँ शिथिल होकर खुलगईं और वस्त्र व कंगन खिसक २ कर गिरपड़े। किन्तु वे चित्रलिखित सी खड़ी दोनो मनोहर मूर्तियोंको निहारती रहीं। उनको अपने शरीरकी भी सुधि बुधि नहीं रही ॥ १४ ॥ तदनन्तर पुरवासियोंसे धनुषभवन पूछते हुए कृष्णचन्द्र आगे चले। धनुषभवनमें प्रवेश करके कृष्णचन्द्रने देखा कि वहाँ एक बड़ा भारी इन्द्रधनुष ऐसा अद्भुत धनुष धरा हुआ है। बहुत से सिपाही उस परमसमृद्धिसम्पन्न, पूजनीय धनुषकी रक्षा कर रहे हैं। वे रक्षक रोकते ही रहे, किन्तु कृष्णचन्द्रने नहीं माना और लीलापूर्वक उस धनुषको उठा लिया। जैसे महाविक्रमशाली मदमत्त गजराज ईखके दो खंड कर डाले वैसेही भगवान्ने, सब लोगोंके आगे, जितनी देरमें पलक लगती है उतनेही समयमें, लीलापूर्वक उस धनुषको खींच कर बीचसे तोड़ डाला ॥१५॥ ॥ १६ ॥१७॥ धनुषके टूटनेका प्रचण्ड शब्द सारे आकाशमें, अन्तरिक्षमें और दशो दिशाओंमें गूँजगया। उस भयानक शब्दको सुन कर कंसका हृदय भयके मारे काँप उठा ॥ १८ ॥ उस धनुषकी रक्षाके लिये जो कंसके अनुचर आततायी दानवगण वहाँ उपस्थित थे वे कुपित हो कर कृष्णको पकड़नेकी इच्छासे "पकड़ लो, मारो" कहते हुए दौड़े ॥ १९ ॥ उनको दुष्ट अभिप्रायसे अपनी ओर आते देख कर कृष्ण बलदेव भी कुपित हुए और टूटे हुए धनुषके दोनो टुकड़े लेकर उनको मारने लगे ॥ २० ॥ उन रक्षकोंके मरने और धनुषके टूटनेका समाचार पाकर कंसने दोनो भाइयों पर आक्रमण करनेके लिये और बहुत सेना भेजी। उस सेनाका संहार करके दोनो भाई धनुषभवनसे बाहर निकले और प्रसन्नतापूर्वक इधर उधर घूम कर पुरीका वैभव और शोभा निहारने लगे ॥ २१ ॥ दोनो भाइयोंके धनुषभंगरूप अद्भुत पराक्रमको, तेजको, धृष्टताको और रूपको

देख कर पुरवासियोंने समझा कि ये दोनो सुरवर हैं ॥ २२ ॥ इस प्रकार कृष्ण बलराम दोनो भाई गोपोंके साथ इच्छानुसार विचरते रहे । इतनेमें सूर्यदेव अस्त हो गये और गोपगणसहित दोनो भाई पुरीसे लौट कर अपने डेरेमें आये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी यात्राके समय विरहातुरा गोपियोंने मथुरावासियोंके सौभाग्यके सम्बन्धमें जो कहा था सो सब सत्यही हुआ, क्योंकि ब्रह्माआदि बड़े २ देवता केवल कृपा-कटाक्षके लिये जिस लक्ष्मीकी उपासना करते हैं वही लक्ष्मी जिनको अनन्य-भावसे भजती है उन पुरुषभूषणके मनोहर श्याम शरीरकी शोभाको उन्होने देखा ॥ २४ ॥ राजन् ! कृष्ण बलदेवने हाथ पैर धोकर स्वादिष्ट खीर खाई और फिर शयन करके सुखपूर्वक रात भर सोये, क्योंकि उनको कंसका विचार विदित था और उसके लिये कुछ चिन्ता भी न थी ॥ २५ ॥ कंसने जब सुना कि कृष्ण बलदेवने लीलापूर्वक महाधनुष तोड़ डाला और धनुपरक्षकोंको एवं अपनी भेजी हुई सेनाको भी मारडाला तब उसके भय और चिन्ताकी सीमा नहीं रही । दुर्मति कंसको चिन्ताके कारण रात भर नींद नहीं आई । उसको सोतेमें और जागतेमें भी मृत्युकी सूचना देनेवाले अनेक असगुन देख पड़े ॥ २६ ॥ २७ ॥ कंसने जागतेमें देखा कि जल आदिकमें शरीरका प्रतिबिंब है, परन्तु उसमें शिर नहीं देख पड़ता । बीचमें अँगुली आदिकी कोई आड़ न होने पर भी दीपक, सूर्य, चन्द्रमा आदिकी (एककी जगह) दो ज्योतियाँ कंसको देख पड़ने लगीं ॥ २८ ॥ कंसको अपनी परछाहींमें छिद्रोंकी प्रतीति होने लगी । कानोंमें अँगुली लगानेसे जो प्राणोंका 'घर्घर' शब्द सुन पड़ता है वह भी उसे न सुन पड़ा । कंसको सब वृक्ष सुवर्णमय दिखाई देने लगे । धूल, कीचड़ आदिमें कंसको अपने चरणोंके चिन्ह नहीं देख पड़े ॥ २९ ॥ सोतेमें कंसने स्वप्न देखा कि मानो वह प्रेतोंसे लिपटा हुआ है, शिरसे पैर तक तेलसे तर है, गधे पर नंगा सवार है, विष खारहा है ॥ ३० ॥ इस प्रकार सोतेमें और जागतेमें अनेक प्रकारके अशुभसूचक अशकुन देखनेसे कंसको बड़ी चिन्ता हुई; दारुण दुर्भावना और मरणभयसे उसको रात भर नींद नहीं आई ॥ ३१ ॥ हे कुरुकुलभूषण ! रात बीत गई, सबेरा हुआ, सूर्यनारायण जलसे ऊपरको उठे । कंसने उठ कर मल्लक्रीड़ारूप महाउत्सवका आरंभ करनेके लिये कर्मचारियोंको आज्ञा दी ॥ ३२ ॥ सेवक लोगोंने रंगभूमिको भली भाँति सुसज्जित किया, तूर्य और भेरी आदि बाजे बजने लगे और पताका, झंडी, फूलोंसे बनाये गये बनावटी तोरण (प्रवेशद्वार) और पुष्पमालाओंसे सब मंच अलंकृत हुए । उन मंचोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सब पुरवासी लोग, जनपदवासी लोग, सम्भ्रान्त राजा लोग यथायोग्य अपने अपने आसन पर बैठे ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ कंसने अपने लिये सबसे अलग एक बड़ा ऊँचा राजमंच बनवाया था । उसी मंचमें राजा कंस, अन्यान्य

सामन्तराजोंकी मण्डलीके बीचमें, मंत्रियोंसहित आकर बैठा। उस समय भी उसका हृदय भय और घबड़ाहटके कारण धड़क रहा था ॥३५॥ नगाड़े बज रहे थे और उस शब्दमें बीच २ मल्लोंके ताल ठोंकनेका शब्द सुन पडता था। इसी अवसरमें अपने २ गुरुओंके साथ, घमंडसे भरे हुए और सुंदर वस्त्र व आभूषणोंसे अलंकृत मल्ललोगोंने रंगभूमिमें प्रवेश किया। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान २ मल्ल लोग बीच अखाड़ेमें आकर बैठे और मनोहर दुंदुभियोंके शब्दको सुन कर प्रसन्न होने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

नन्दगोपादयो गोपा भोजराजसमाहुताः ॥
निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन्मञ्च आविशन् ॥ ३८ ॥

इतनेमें नंदगोप आदिक सब गोप भी आये। उन्होने सब भेंटें कंसको दीं और कंसने भी उनका भली भाँति आदर सत्कार किया। तब वे भी एक मंच पर जाकर बैठे ॥ ३८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंश अध्याय।

मल्लक्रीड़ाका उद्योग।

श्रीशुक उवाच-अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ॥
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे परन्तप! तदनन्तर कृष्ण बलदेव दोनो भाई मल्लोंके ताल ठोंकनेका और दुंदुभियोंका महा शब्द सुन कर देखनेके लिये मल्लोंकी रंगभूमिको चले। उन्होने पहले ही दिन निश्चय कर लिया था कि "हमने धनुषभंग आदि अपूर्व कार्योंसे अपनी शक्ति और ऐश्वर्य्यका परिचय दिया, तथापि दुरात्मा कंस हमारे माता-पिताको बन्धनमुक्त नहीं करता, बरन् हमें भी मारनेका प्राणपणसे प्रयत्न कर रहा है। अतएव मामा होने पर भी मारने योग्य है। उसका वध करनेमें हमको कोई दोषी नहीं कह सक्ता" ॥ १ ॥ रंगद्वार पर आकर कृष्णने देखा कि महावतकी प्रेरणासे कालरूप कुवलयापीड़ गजराज रंगभूमिके भीतर जानेकी राह रोककर खड़ा होगया ॥ २ ॥ तब दुपट्टेको कमरमें लपेट कर और बिखरी हुई घूँघरवाली अलकोंको समेट कर नीरदनादतुल्य वाणीसे महावतको संबोधन करके कृष्णचन्द्रने कहा कि "अरे महावत! राहसे हट जा, हमको भीतर जाने दे, देर न कर; नहीं तो इसी

समय तुझको और इस हाथीको यमलोक पहुँचाता हूँ" ॥ ३ ॥ ४ ॥ यों जब भगवान्‌ने डाँट कर कहा तब महावत बहुतही कुपित हुआ। उसने अंकुशके प्रहारसे काल अन्तक और यमके समान भयानक गजराजको कोपित करके कृष्णकी ओर बढ़ाया। गजराजने झपट कर कृष्णको सूँढ़में लपेट लिया। किन्तु भगवान् सूँढ़के बेठनसे छूट कर अलग हुए और एक घूँसा मार कर उसीके पैरोंमें छिपगये ॥५॥६॥ इधर उधर कृष्णको न देख कर कुवलयापीड़ क्रोधसे लाल हो गया। यद्यपि कृष्णचन्द्र उसकी आँखोंके आगे न थे तथापि सूँघ कर उसने उनको ढूँढ़ लिया और फिर सूँढ़से लपेटना चाहा। किन्तु भगवान् बलपूर्वक अपनेको छुड़ा कर अलग हो गये ॥ ७ ॥ महाबलशाली कृष्णचन्द्रजी, जैसे गरुड़जी लीलापूर्वक किसी महानागको घसीट ले जायँ वैसेही, पीछेसे पूँछ पकड़ कर उस हाथीको सौ हाथ तक घसीट ले गये ॥ ८ ॥ पूँछ पकड़े हुए कृष्णको पकड़ने लिये जब हाथी दाहिनी ओर घूमता था तब श्रीकृष्णजी उसे बाईं ओर घसीट कर घुमा देते थे और जब बाईं ओर घूमता था तब दाहिनी ओर घसीट कर घुमा देते थे। इसी प्रकार जैसे कोई लड़का बछड़ेके साथ खेले वैसेही कृष्णचन्द्र थोड़ी देर तक उस हाथीके साथ खेलते रहे ॥ ९ ॥ फिर भगवान्‌ने सामने आकर हाथीके एक थप्पड़ मारा। वह भी कृष्णचन्द्रको पकड़नेके लिये कुपित हो कर दौड़ा। वह हाथी समझता था कि अब मैंने पकड़ लिया—अब मैंने पकड़ लिया। इसी प्रकार पग पग पर पकड़नेकी आशासे दौड़ रहे हाथीको भगवान्‌ने बहुत थकाया और छकाया। इस दौड़में हाथी एक बार गिर भी पड़ा॥१०॥ इस प्रकार क्रीड़ा करते हुए कृष्णचन्द्र एक बार जान कर पृथ्वीमें गिरपड़े और फिर सहसा उठ कर छिप गये। कुपित हाथीने कृष्णको गिरा हुआ जान कर अपने दोनो दाँत पृथ्वी पर दे मारे, परन्तु कृष्णचंद्र तो पृथ्वी पर थे ही नहीं, इस कारण उलटे हाथीहीके चोट लगी ॥११॥ अपना पराक्रम विफल हुआ देख कर कुवलयापीड़ बहुत ही कुपित हुआ। ऊपरसे महावतोंने भी उसको अंकुशके प्रहारसे आगे बढ़ाया। तब वह हाथी क्रोधसे विह्वल होकर कृष्णके पीछे झपटा ॥१२॥ जब वह हाथी झपट कर कृष्णके ऊपर आया तब उन्होने हाथसे सूँढ़ पकड़ कर झिटका दिया, जिससे कुवलयापीड़ पृथ्वी पर गिर पड़ा॥१३॥ गिरे हुए हाथीको पैरसे दबा कर सिंहके समान भगवान्‌ने लीलापूर्वक दोनो दाँत उखाड़ लिये और उन्हींके प्रहारसे कुवलयापीड़को व महावतोंको प्राणहीन कर दिया ॥ १४ ॥ गजदन्तोंको लिये हुए कृष्ण और बलदेवजीने अपने साथी गोपोंके साथ रंगभूमिमें प्रवेश किया। भगवान् कृष्णचन्द्र हाथमें हाथीका दाँत लिये हुए थे और उस दाँतका एक सिरा कंधे पर धरा हुआ था, शरीरमें रुधिरकी और गजमदकी छींटें पड़ी हुई थीं, मुखारविंदमें पसीना निकल आया था। उस समय भगवान्‌की अपूर्व शोभा निहारनेही योग्य थी ॥ १५ ॥ १६ ॥ रंगभूमिमें बलदेवसहित श्रीकृष्णजी,

मल्लोंको वज्र ऐसे, मनुष्योंको पुरुषश्रेष्ठ, स्त्रियोंको साक्षात् कामदेव, गोपगणको स्वजन, दुष्ट राजोंको शासन करनेवाले, अपने माता-पिताको बालक, कंसको साक्षात् मृत्यु, अज्ञानियोंको जड़रूप, योगियोंको परम तत्त्व-परब्रह्म और यादवोंको परम देवतारूप देख पड़े ॥ १७ ॥ महाराज ! कुवलयापीड़को निहत देख कर दुष्ट कंसने जाना कि ये दोनो बालक परम दुर्जय हैं। दोनो भाइयोंको देख कर, धैर्यशाली होने पर भी, कंस प्राणभयसे बहुत ही घबड़ा गया ॥ १८ ॥ आभूषण, माला और सुंदर वस्त्रोंसे अलंकृत, विचित्रवेषधारी महाबाहु दोनो भाई, उत्तमवेषविभूषित दो नटवरोंके समान अपनी प्रभाके प्रभावसे देखनेवालोंके नयनों व मनोंको अपनी ओर खींचते हुए रंगभूमिमें विराजमान हुए ॥ १९ ॥ राजन् ! उन दोनो पुरुषश्रेष्ठोंको देख कर मंचस्थित नगरवासी एवं राष्ट्रवासी लोगोंके नेत्रकमल और मुखारविंद आनन्दके वेगसे प्रफुल्लित हो उठे । वे नेत्रोंसे बारम्बार दोनो भाइयोंके मुखारविन्दोंको देख कर भी तृप्त नहीं हुए और एकटक उन्हींकी ओर निहारने लगे ॥ २० ॥ देखनेसे जान पड़ता था कि दर्शकलोग मानो दोनो भाइयोंको नेत्रोंसे पी लेंगे, जिह्वासे चाटलेंगे, नासिकासे सूँघ लेंगे और दोनो बाहुओंसे लिपटा लेंगे ॥ २१ ॥ कृष्ण-बलदेवके रूप, गुण, माधुर्य्य और धृष्टताने मानो उनको स्मरण करा दिया, इस प्रकार, वे लोग, जैसा सुना था और देखा वैसा ही परस्पर दोनो भाइयोंके विषयमें वार्तालाप करने लगे ॥ २२ ॥ वे लोग कहने लगे कि "ये दोनो बालक साक्षात् नारायण भगवान्के अंशसे पृथ्वी पर वसुदेवके घरमें उत्पन्न हुए हैं ॥ २३ ॥ यह (कृष्ण) देवकीके पुत्र हैं, इनको वसुदेवजीने गोकुल पहुँचा दिया । यह नन्दके ही घरमें अब तक गुप्तरूपसे रह कर इतने बड़े हुए हैं ॥ २४ ॥ इन्हींके हाथसे पूतना, तृणावर्त्त, यमलार्जुन, धेनुक, केशी, शंखचूड़ यक्ष एवं ऐसेही अन्यान्य अघासुर आदि दानवोंका संहार हुआ है ॥ २५ ॥ इन्होने ही ग्वालबालोंसहित गौवोंकी दावानलसे रक्षा की है, कालियानागका दमन किया है और इन्द्रके मदका मर्दन किया है ॥ २६ ॥ यही सात दिन तक एकही हाथ पर गोवर्द्धन पर्वत उठाये खड़े रहे हैं और इन्होने ही आँधी, वर्षा व वज्रपातसे गोकुलकी रक्षा की है ॥ २७ ॥ इनके नित्य प्रसन्न मुखको और मनोहर मंद मुसकान व चित्तचोर चितवनको देख कर गोपियोंको परम आनन्द प्राप्त होता है एवं वे अनायास ही अनेक तापोंसे मुक्त हो जाती हैं ॥ २८ ॥ विद्वान् लोगोंका कथन है कि 'बहुविख्यात यदुवंश इन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित रह कर लक्ष्मी, यश और महत्त्वसे अलंकृत होगा' ॥ २९ ॥ और यह दूसरे इनके बड़े भाई कमलनयन श्रीबलभद्र हैं । इन्होने प्रलंबासुरको और वत्सासुर, बकासुर आदिको मारा है" ॥ ३० ॥ इस प्रकार दर्शक लोग आपसमें कह रहे थे और नगाड़े बज रहे थे । इसी अवसरमें चाणूरने कृष्ण और

बलदेवसे कहा कि "हे नन्दनन्दन! हे बलभद्र! तुम पराक्रमी माने जाते हो। हमारे राजा कंसने सुना है कि तुम मल्लयुद्धमें भी बहुत ही निपुण हो। इसीसे मल्लयुद्ध देखनेके लिये महाराजने तुमको यहाँ बुलाया है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ कर्म, मन और वाणीसे राजाका प्रिय करनेसे प्रजाका मंगल होता है एवं अन्यथा करनेसे अशुभ होता है ॥ ३३ ॥ और यह भी सब लोग जानते हैं कि गोपलोग नित्य प्रसन्नतापूर्वक वनमें मल्लक्रीड़ा करते हुए पशुओंको चराते हैं ॥ ३४ ॥ इस कारण अपनी भलाईके लिये, आओ, हम तुम दोनो राजाकी इच्छा पूरी करें। हमारे इस कामसे सभी जीव प्रसन्न होंगे, क्योंकि शास्त्रोंमें राजाको 'सर्वजीवमय' लिखा है" ॥ ३५ ॥ यह तो कृष्ण चाहते ही थे, अतएव चाणूरके वाक्य सुन कर उन्होने पहले उसकी प्रशंसा की और फिर इस प्रकार देश-कालके अनुसार उचित उत्तर दिया ॥३६॥ कृष्णचन्द्रने कहा। "हम इन भोजपति कंसकी वनेचर प्रजा हैं, अतएव इनको सब प्रकार प्रसन्न करना ही हमारा कर्त्तव्य है। राजाकी इस आज्ञाको हम परम अनुग्रह समझते हैं ॥ ३७ ॥ किन्तु हे मल्ल! हम बालक हैं, अतएव अपने समान बलवाले बालकोंसे लड़ कर राजाको प्रसन्न करेंगे। इस प्रकार उचित रीतिसे मल्लयुद्ध होना चाहिये जिससे सभामें बैठे हुए दर्शक लोगोंको अधर्म्मभागी न बनना पड़े" ॥ ३८ ॥ चाणूरने कहा। "अजी तुम और महाबली बलभद्र, दोनो भाई, बालक या किशोर नहीं हो। तुमने अभी २ सहस्र हाथियोंका जिसके बल था उस गजराजको लीलापूर्वक मार डाला है ॥ ३९ ॥

तस्माद्भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै ॥
मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः ॥ ४० ॥

तुम दोनो भाई महाबली हो। इस लिये हे वृष्णिवंशावतंस! तुम मुझसे युद्ध करो और बलभद्र मुष्टिकसे युद्ध करें। इसमें कुछ अन्याय नहीं होगा" ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंश अध्याय ।

कंसवध ।

श्रीशुक उवाच—एवं चर्चितसंकल्पो भगवान्मधुसूदनः ॥
आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार निश्चय करके भगवान् कृष्णचन्द्र चाणूरसे और रोहिणीनन्दन बलभद्रजी मुष्टिकसे भिड़ गये ॥ १ ॥

हाथोंसे हाथ और पैरोंसे पैर बाँध कर जीतनेकी इच्छासे परस्पर बलपूर्वक एक एकको अपनी ओर खींचने लगे ॥ २ ॥ कृष्ण-बलभद्र और दोनो मल्ल, कलाइयोंसे कलाइयों पर, जानुओंसे जानुओं पर, शिरसे शिर पर, वक्षःस्थलसे वक्षःस्थल पर परस्पर प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥ परिभ्रामण (चारो ओर घुमाना), विक्षेप (रेलना), परिरंभ (लिपटना), अवपातन (गिराना), उत्सर्पण (छूट कर सामने आना), अपसर्पण (पीछे हटना) द्वारा परस्पर बचते हुए जयकी इच्छासे वे लोग उत्थापन (नीचेवालेको उठानेका प्रयत्न), उन्नयन (हाथोंसे ऊपर उठालेना), संचालन और स्थापन (हाथ पैर समेट कर नीचे बैठाना) आदि पेंचोंसे परस्पर बल प्रकट करते हुए युद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस युद्धमें एकको सबल और एकको निर्बल देख कर अपने २ घरों पर खड़ी हुई पुरनारियाँ दयार्द्रचित्ता होकर परस्पर कहने लगीं कि "यह युद्ध अयुक्त है, क्योंकि दोनो योद्धा बराबरके नहीं हैं । बालकोंसे महाबली मल्लोंको लड़ते देख कर राजाको चाहिये था कि यह युद्ध न होने देते, किन्तु वह उलटे इस अन्यायका अनुमोदन कर रहे हैं, या यों कहो कि उन्हींकी इच्छासे यह युद्ध हो रहा है। राजसभामें बैठे हुए दर्शकों और सभासदोंको भी महा अधर्म्मभागी होना पड़ेगा, क्योंकि वे सबल और निबलका युद्ध देख रहे हैं और कुछ कहते नहीं हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ देखो न ! कहाँ वज्रसदृश सुदृढ़ अंगवाले पर्वत ऐसे ये मल्ल ! और कहाँ अति सुकुमार अंगवाले अप्राप्तयौवन ये किशोर बालक ! ॥ ८ ॥ इस समाजको अवश्य ही अधर्म्मका घोर फल भोगना पड़ेगा । क्योंकि ये स्वयं भी इस अन्यायका अनुमोदन कर रहे हैं । इनकी यदि इस अधर्म्ममें अनुमति न थी तो इनको यहाँसे उठ जाना चाहिये था । क्योंकि शास्त्रमें लिखा है 'जहाँ अधर्म्म होता हो वहाँ कभी न ठहरना चाहिये' ॥ ९ ॥ सभामें जो लोग ज्ञानी होकर भी उचित बात नहीं कहते या अनुचित बात कहते हैं अथवा 'हम नहीं जानते' कह कर पीछा छुड़ाते हैं वे दोषभागी होते हैं। अतएव इस बातके जाननेवाले विद्वान् लोगोंको चाहिये कि ऐसी अन्याय-सभामें न जावें ॥ १० ॥ देखो, शत्रुके चारो ओर फिर रहे कृष्णका मुखकमल, श्रमस्वेदके बूँदोंसे जलबिंदुविभूषित कमलकोष ऐसा सुशोभित हो रहा है" ॥ ११ ॥ दूसरी पुरनारी कहने लगी कि "इतना व्याकुल क्यों होती हो ? क्या तुम नहीं देखतीं कि कोपावेशपूर्ण बलभद्रके दोनो नेत्र लाल हो रहे हैं ! देखो, मुष्टिक पर कुपित बलभद्रका मुखमंडल आवेशयुक्त हास्यसे कैसा सुशोभित हो रहा है ?" ॥ १२ ॥ और २ पुरनारियाँ कहने लगीं कि "अहो, सखियो ! व्रजवीथियाँ धन्य हैं ! क्योंकि लक्ष्मीदेवी शिव जिनके और चरणोंका पूजन करते हैं वे ही पुराणपुरुष मायामानवशरीरधारी ये कृष्णचन्द्रजी विचित्र

वनमाला धारण किये वंशी बजाते बलभद्र और ग्वालबालोंके साथ गौवें चराते अपनी क्रीड़ाओंसे उनको पवित्र और पूजनीय बनाते हैं ॥ १३ ॥ गोपियोंने कौन तप किया है जो ईश्वरके इस दुर्लभ अनूप रूपको नित्य अभिनव भावसे देखकर अपने नेत्रोंको सफल करती हैं। यह रूप अद्भुत सुन्दर सुषमाका आगार है। इसके समान अथवा इससे अधिक रूप ही नहीं है । यह रूप स्वयंसिद्ध है, अलंकारोंसे इसकी उत्पत्ति नहीं हुई है । यह रूप यश और लक्ष्मी (शोभा) का एकमात्र आश्रय हैं ॥ १४ ॥ सखियो ! सब व्रजबालाएँ धन्य हैं ! क्योंकि गऊ दुहतेमें, दही मथतेमें, लीपतेमें, झूलतेमें, रोते हुए लड़कोंको चुप करतेमें, झाड़ू देतेमें, चौका लगातेमें एवं विश्राम समयमें सर्वदा सभी समय इनकी पवित्र कीर्त्तिका कीर्त्तन किया करती हैं । उनका चित्त इन्ही महाबलशाली कृष्ण पर अनुरक्त और आसक्त है, अतएव कीर्ति-कीर्त्तन करतेमें उमँगे हुए आनन्दके आँसुओंसे कंठावरोध होजानेके कारण उनका स्वर गद्गद होजाता है । उनकी सब कामनाएँ इनकी कृपासे पूरी होती हैं ॥ १५ ॥ यह कृष्णचन्द्र सबेरे गौवों और गोपोंके साथ वंशी बजाते हुए व्रजसे वनको जाते हैं और सायंकालको लौटकर व्रजमें आते हैं । उस समय इनकी वंशीकी ध्वनि कानमें पड़ते ही जो व्रजबालाएँ जल्दीसे निकल कर राहमें कृपाकटाक्षयुक्त इनके मुखारविन्दको देखती हैं उन्होने अवश्यही पूर्वजन्ममें बहुत पुण्य किये हैं " ॥ १६ ॥ हे भरतश्रेष्ठ, स्त्रियाँ इस प्रकार परस्पर कह रही थीं, इसी अवसरमें योगेश्वरोंके ईश्वर हरिने शत्रुको मारनेका विचार किया ॥ १७ ॥ भयविह्वल पुरनारियोंके पूर्वोक्त वाक्य सुन २ कर कृष्ण बलदेवके पिता माता (वसुदेव-देवकी) पुत्र-स्नेहके कारण शोकातुर होकर चिन्ता करने लगे । क्योंकि उनको अपने पुत्रका बल भलीभाँति विदित न था ॥ १८ ॥ भाँति २ के दाव पेंच करते हुए कृष्ण और चाणूर जैसे युद्ध करने लगे वैसे ही बलदेव और मुष्टिक भी परस्पर युद्धमें प्रवृत्त हुए ॥ १९ ॥ भगवान्के कठिन–वज्रपाततुल्य कठोर अंगोंकी चोटोंसे चाणूरके अंग चूर चूर (शिथिल) हो गये और वह वारम्वार चोट खाकर व्यथित होने लगा ॥ २० ॥ एक बार घूसे तानकर चाणूरने महाक्रोधपूर्वक बाजके समान झपटकर भगवान् वासुदेवके वक्षःस्थल पर चोट चलाई ॥२१॥ किन्तु जैसे भालेकी चोटसे हाथी नहीं विचलित होता वैसे ही उस प्रहारसे कृष्णचन्द्र भी नहीं विचलित हुए । भगवान्ने चाणूरको, दोनो हाथ पकड़ कर, कई बार ऊपर घुमाया और फिर पृथ्वीपर पटक दिया । घुमाते में ही जिसके प्राण निकल गये उस चाणूरका मृत शरीर, केश-वेशभूषा, माला, वस्त्र आदिके अस्तव्यस्त होनेके कारण इन्द्रकी ध्वजाके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥ २३ ॥ इसी प्रकार मुष्टिकने बलभद्रके हृदयमें दो घूसे मारे । महाबली बलभद्रजीने भी एक तमाचा तानकर मारा । तमाचा लगनेसे व्यथित मुष्टिकका शरीर काँप गया, मुखसे रुधिर

गिरने लगा, और उसका मृत शरीर आँधीके वेगसे उखड़े हुए महावृक्षके समान पृथ्वी पर गिरपड़ा ॥ २४ ॥ २५ ॥ तदनन्तर कूट नाम मल्ल आया, उसको श्रेष्ठ योद्धा बलभद्रने, जैसे कोई बालक क्रीड़ा करे वैसे अवज्ञापूर्वक बाएँ हाथके घूसेसे प्राणविहीन कर दिया ॥ २६ ॥ उधर उसी समय शल और तोशल नाम मल्लोंके शिर कृष्णके चरणोंकी ठोकरसे फट गये और दोनोंके प्राण निकल गये ॥ २७ ॥ जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान २ मल्ल मारे गये तब बचे हुए सब मल्ल अपने २ प्राण लेकर खिसक गये ॥ २८ ॥ जब कोई युद्ध करनेवाला न रहा तब चरणोंमें रत्नजटित नूपुर धारण किये हुए प्रसन्नचित्त कृष्ण और बलदेव अपने साथी ग्वालबालोंको अखाड़ेमें घसीटकर मल्लक्रीड़ा और नृत्य आदि करने लगे ॥ २९ ॥ कंसको छोड़कर और सब देखनेवाले साधु-जन तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणगण, कृष्ण-बलदेवके इस प्रशंसनीय कर्म्मसे प्रसन्न होकर "वाह वाह" करने लगे ॥३०॥ जब श्रेष्ठ मल्ल मारे गये और जो बचे वे भाग गये तब कंसने नगाड़ोंका बजना बंद कराकर कहा कि "अरे इन दुष्ट चरित्रवाले वसुदेवके पुत्रोंको पुरसे शीघ्र निकालकर गोपोंका सर्वस्व लूट लो और दुर्मति नन्दको बंदी बनाओ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ महादुष्ट विचारवाले परम दुष्ट वसुदेवको और उग्रसेनको भी उसके अनुगामियोंसहित इसी समय मार डालो क्योंकि वह मेरा पिता होकर भी मेरे शत्रुओंसे मिला हुआ है" ॥ ३३ ॥ जब कंस इस प्रकार अहंकारके कारण कुवाक्य बकने लगा तब अच्युत कृष्ण बहुत ही कुपित हुए और लघिमा नाम योगसिद्धिके सहारे वेगपूर्वक उचक कर उस ऊँचे मंचपर पहुँच गये,

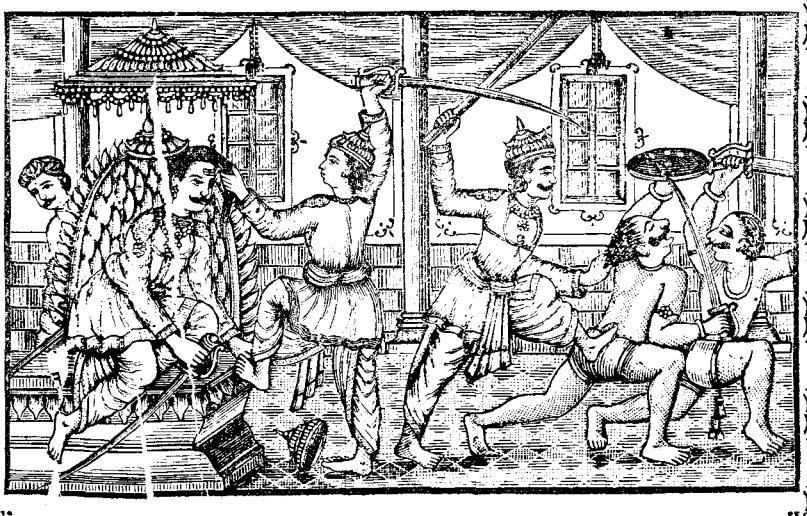

जिस पर कंस बैठा था ॥३४॥ कंस भी मनस्वी (शूर) था, इस कारण अपने मृत्यु कृष्णको निकट देख कर तर्वार कि ढाल लिये आसनसे सहसा उठ खड़ा हुआ ॥३५॥ एवं बाजके समान चोट करनेका अवसर ढूंढ़ता हुआ, बाएँ और दाहिने भाँति २ के पैंतरे बदले लगा। किन्तु जिनका तेज उग्र होनेके कारण असह्य है उन कृष्णचन्द्रने किरीट मुकुट गिराकर, जैसे गरुड़जी कुपितकाले नागको बलपूर्वक पकड़ लेते हैं वैसे ही कंसके केश पकड़ लिये और उतने ऊँचे मंचसे उसको नीचे रंगभूमि पर ढकेल दिया। उसके ऊपर स्वयं पद्मनाभ, विश्वमय एवं स्वतन्त्र कृष्णचन्द्र भी फाँद पड़े ॥३६॥३७॥ कृष्णचन्द्रने कंसके मरे हुए हाथी ऐसे शरीरको सबके सामने ही पृथ्वीपर घसीटा। महाराज ! उस समय बहुतसे लोग ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे ॥ ३८ ॥ कंसका चित्त सदा कृष्णकी चिन्तासे उद्विग्न रहा करता था। वह खाते, पीते, उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते सब समय चक्रधारी नारायणको कल्पनासे अपनी आँखोंके आगे ही पाता था। अन्त समय भी साक्षात् कृष्णचन्द्रने अपने हाथोंसे मारा; इस लिये उसको वही दुर्लभ कृष्णरूप प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ राजन् ! अंक और न्यग्रोध आदि उसके आठ छोटे भाई थे; वे भी अत्यन्त कुपित होकर भाईका बदला चुकानेके लिये कृष्ण और बलदेवके सामने दौड़कर आये ॥ ४० ॥ किन्तु रोहिणीतनय बलभद्रने बीचमें ही, सिंह जैसे पशुओंको मार डालता है वैसे एक बेलन उठाकर उन सब वेगसे आ रहे और मारनेको उद्यत असुरोंको मार डाला ॥ ४१ ॥ उस समय आकाशमें नगाड़े बजने लगे और ब्रह्मा, रुद्र आदि देवगण प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा और स्तुति करने लगे एवं अप्सराएँ नृत्य करने लगीं ॥ ४२ ॥ महाराज ! कंस और कंसके भाइयोंकी स्त्रियाँ—अपने २ पतियोंके मरणसे शोकाकुल होकर रोती तथा शिर व छाती पीटती हुई वहाँपर आईं ॥ ४३ ॥ वीरशय्या पर सो रहे स्वामियोंके शरीरोंसे लिपटी हुई शोकसे विह्वल स्त्रियाँ आँसू बहाती हुई ऊँचे स्वरसे इस प्रकार विलाप करने लगीं ॥ ४४ ॥ "हा नाथ ! हा प्रिय ! हा धर्मज्ञ ! हे करुणानिधे ! हे अनाथवत्सल ! तुम्हारे मरनेसे गृह और पुत्रगणसहित हम भी मरगईं ! ॥ ४५ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुम स्वामीके बिना यह पुरी भी हमारे समान उत्सवमंगलहीना विधवा होगई और अब पहलेकी सी इसकी शोभा भी नहीं रही ॥ ४६ ॥ हे स्वामी ! तुमने निरपराध लोगोंसे घोर द्रोह किया, इसीसे तुम्हारी यह दशा हुई। सच है प्राणियोंके अनिष्टकी चेष्टा करनेवाला कौन कुशलसे रह सक्ता है ? ॥ ४७ ॥ सब प्राणी इन्ही कृष्णसे उत्पन्न होकर इन्हीमें लीन हो जाते हैं। इनकी जो अवज्ञा करता है उसको कभी सुख नहीं मिलता" ॥४८॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज ! तदनन्तर लोकभावन भगवान्ने कंसकी स्त्रियोंको समझा बुझाकर आश्वस्त किया और फिर उन्हींके द्वारा उनके मरे हुए पतियोंके अन्तिम संस्कार कराये ॥ ४९ ॥

कृष्ण बलदेवजी माता-पिताके पास गये और बंधनसे मुक्त करके चरण छूकर दंडवत् प्रणाम किया ॥ ५० ॥

देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥
कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ ५१ ॥

उस समय वसुदेव देवकीको ज्ञान हुआ, उन्होने जाना कि हमारे दोनो पुत्र वास्तवमें जगदीश्वर हैं । अतएव उन्होने उनको सशंक होकर हृदयसे नहीं लगाया, किन्तु हाथ जोड़े खड़े रहे ॥ ५१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंश अध्याय ।

कृष्ण बलदेवका विद्याध्ययन ।

श्रीशुक उवाच-पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥
माभूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जाना कि सांसारिक सुखका पूर्ण अनुभव होनेके पहलेही हमारे माता पिता हमको ईश्वर जानगये हैं । किन्तु हमारे प्रसन्न होने पर ऐसा ज्ञान इनको मिलना असम्भव या दुर्लभ नहीं है, बरन् हमको पुत्र समझ कर ये जो प्रेमसुख भोग रहे हैं वही दुर्लभ है । अतएव इनको अभी हमारे प्रति ईश्वरभावकी आवश्यकता नहीं है । यह विचार कर भगवान्ने पितामाताकी ज्ञानदृष्टि पर जगत्भरको मोहित करनेवाली अपनी मायाका पर्दा डाल दिया ॥ १ ॥ बड़े भाईसहित यादवश्रेष्ठ कृष्णने पिता माताके पास नम्र भावसे जाकर "हे पिता! हे माता!" आदि विनीत वाक्योंसे आदरपूर्वक उनको प्रसन्न किया ॥ २ ॥ भगवान्ने कहा । हे पिता! हम आपके पुत्र हैं । निरन्तर प्रबल इच्छा रहने पर भी, आप हमारे लड़कपनकी, पौगंड अवस्थाकी और किशोर अवस्थाकी क्रीड़ाओंको देख कर सुखी न बन सके ॥ ३ ॥ हम ही अभागे हैं, क्योंकि दैववश हम आपके निकट नहीं रह सके । पितृगृहमें रह कर बालक जो पिता-माताके प्यार और दुलारका उत्तम आनन्द भोग करते हैं वह आनन्द भोगना हमारे भाग्यमें नहीं था ॥ ४ ॥ सम्पूर्ण फलों (धर्म अर्थ काम मोक्ष) को दिलानेवाला साधनस्वरूप यह नरशरीर जिनसे उत्पन्न हुआ और जिनके द्वारा पाला पोषा गया उन मातापिताके ऋणसे सौ वर्षकी अवस्था भर सेवा करने पर भी मनुष्यका उद्धार नहीं होता ॥ ५ ॥ जो माता पिताके समर्थ

पुत्र हैं वे यदि धन अथवा अपने शरीरसे उनकी सेवा नहीं करते तो मरने पर यमराजके दूत उन कुपुत्रोंको उन्हींका मांस खिलाते हैं ॥ ६ ॥ समर्थ व्यक्ति, यदि वृद्ध पिता, माता, साध्वी भार्य्या, शिशु सन्तान, ब्राह्मण और शरणागतका भरण पोषण नहीं करता तो वह जीते ही मरेके तुल्य है ॥ ७ ॥ हमारे इतने दिन व्यर्थ बीते, हम सेवा-समर्थ हो कर भी कंसके भयसे नित्य उद्विग्न रहनेके कारण आपकी सेवा नहीं करसके ॥ ८ ॥ अतएव हे पिता! हे माता! हम आपसे क्षमा की प्रार्थना करते हैं। हम पराधीन रहनेके कारण आपकी सेवा नहीं कर सके। दुष्ट कंसने बुरे विचारसे हमको वारम्वार अनेक कष्ट पहुँचाये, परन्तु आपकी कृपासे सब अच्छा ही हुआ ॥ ९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। हे महाराज! मायामनुष्य विश्वरूप हरिके इन वाक्योंको सुन कर वसुदेव और देवकी मोहित हो गये, अर्थात् वे फिर कृष्ण बलदेवको अपने पुत्र समझ सुखसे गद्गद हो गये। देवकी वसुदेवने पुत्रोंको गोदमें लेकर गलेसे लगा लिया। परमानन्दसे उनके शरीर पुलकित हो उठे और आनन्दके आँसुओंसे कंठ रुँध गये। स्नेहपाशमें बँधे हुए एवं मोहित वसुदेव देवकी आँसुओंकी धाराओंसे दोनो भाइयोंको भिगोने लगे। उस समय वे कुछ भी न कह सके ॥ १० ॥ ११ ॥ इस प्रकार माता पिताको आश्वास देकर भगवान् देवकीनन्दन श्रीकृष्णजी बड़े भाई सहित अपने नाना उग्रसेनके पास गये और उनको बंधनसे मुक्त करके सम्पूर्ण यादवोंका राजा बनानेके उपरान्त कहने लगे कि "महाराज! हम आपकी प्रजा हैं। हमको आज्ञा दीजिये–हम उसको पूर्ण करें। हमारे पूर्वज यदुके वंशको उनके पिताका शाप है, इस लिये हम यादवलोग राजाके आसन पर नहीं बैठ सक्ते। अतएव हमारी प्रार्थनासे आप निष्कंटक राज्य करिये। मुझ भृत्यके निकट रहते हुए, अन्य राजोंकी कौन बात है, देवगण भी शिर झुका कर आपकी पूजा करेंगे" ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ राजन्! विश्वकर्ता कृष्णचन्द्रके सजातीय और सम्बन्धी यदु, वृष्णि, अंधक, मधु, दाशार्ह और कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न यादवगण, कंसके भयसे दूर देशोंमें भाग गये थे और दुःसह प्रवासकष्ट भोग रहे थे;–भगवान् कृष्णचन्द्रने उनको सादर सत्कारपूर्वक मथुरामें बुलालिया और धन आदि देकर सन्तुष्ट किया। उन लोगोंने फिर आकर अपने २ घर बसाये ॥ १५ ॥ १६ ॥ श्रीकृष्ण–बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित यादव लोग, सिद्धजनोंकी भाँति पूर्ण मनोरथ और विगतसन्ताप हो कर, नित्यप्रति मुकुंदके सदय हास और कृपाकटाक्षोंसे सुशोभित, नित्यप्रसन्न, श्रीसम्पन्न मुखारविन्दको देखते हुए अपने २ भवनमें सुखपूर्वक निवास करने लगे ॥ १७ ॥ १८ ॥ वहाँके बूढ़े भी युवकोंके समान उत्साही, महाबली और तेजस्वी देख पड़ते थे। क्योंकि वे नित्य नयनोंसे मुकुंदमुखामृत पान करते थे ॥ १९ ॥ हे राजेन्द्र! तदनन्तर भगवान् कृष्ण और बलभद्रजी नन्दजीके निकट उपस्थित हुए और

मिलकर कहने लगे कि "पिताजी! आप और माता यशोदाने स्नेहपूर्वक अपने सन्तानसे भी अधिक हमको माना और हमारा लालन पालन किया। पिता-माताको अपने शरीरसे भी बढ़ कर पुत्रों पर प्रेम और ममता होती है, इसमें कोई संशय नहीं है ॥२०॥२१॥ जिनको पालनेमें असमर्थ बंधुओंने तज दिया है एवं जो अपना भरण पोषण आप नहीं कर सक्ते उन बालकोंको अपने पुत्रके समान पालने वालेही उनके सच्चे माता पिता हैं ॥ २२ ॥ पिता! अब आप व्रजको जाइये। हम कुछ दिन स्वजनोंको सुखी करके अपने विरहसे दुःखित और सनेही सुहृद् जन जो आपलोग हैं उनको देखनेके लिये अवश्य आवेंगे" ॥२३॥ भगवान् अच्युतने इस प्रकार व्रजवासियोंको और नन्दको समझाया और अनेक वस्त्र, आभूषण एवं पात्र आदि उपहार देकर सादर सत्कारसहित उनका पूजन किया ॥ २४ ॥ कृष्ण-बलरामके वाक्य सुन कर स्नेहसे विह्वल नंदजीने दोनो भाइयोंको गलेसे लगालिया। नंदजीके नेत्रोंमें आँसू भर आये। बड़े कष्टसे धीरज धरके गोपगणसहित नन्दजी बिदा हुए और व्रजको चले ॥ २५ ॥ राजन्! तदनन्तर वसुदेवने अपने पुरोहित गर्गाचार्य्य एवं अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा दोनो पुत्रोंका यथाविधि यज्ञोपवीत संस्कार कराया ॥ २६ ॥ वसुदेवने उन ब्राह्मणोंको अलंकारोंसे भलीभाँति भूषित किया, एवं पूजन करके, जिनके गलेमें स्वर्णमाला और पीठ पर रेशमी झूलें शोभा दे रही हैं ऐसी भली भाँति विभूषित गौवें और उनके बछड़े देकर सन्तुष्ट किया ॥ २७ ॥ कृष्ण बलदेवके जन्मदिनमें महामति वसुदेवने जिनती गौवें दी थीं उनको कंसने अधर्मपूर्वक हरलिया था; उस दिन वे गौवें भी उन्होने ब्राह्मणोंको दीं ॥ २८ ॥ गर्गऋषिके द्वारा यज्ञोपवीत संस्कार हो जानेपर द्विजपद पाकर सुव्रत कृष्ण-बलदेवने ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण किया ॥ २९ ॥ कृष्ण-बलदेव जगदीश्वर और सब विद्याओंके प्रकट करनेवाले, अतएव सर्वज्ञ होकर भी मनुष्य-लीलाओंसे अपने स्वयंसिद्ध ज्ञानको छिपाये हुए थे ॥ ३० ॥ लोकाचारके अनुसार "गुरुकुल"में रहने की इच्छासे दोनो भाई अवन्तिपुरनिवासी काश्यपगोत्रज सांदीपिनि नाम मुनिके निकट गये ॥३१॥ वहाँ इन्द्रियदमनपूर्वक दोनो भाई पढ़ने लगे; वे पढ़नेके सिवा अपनेसे नीचेकी श्रेणीवाले विद्यार्थियोंको पढ़ाते भी थे। यों दोनो भाई वशवर्त्ती और श्रद्धायुक्त होकर परम भक्तिसे इष्टदेव ईश्वरके समान गुरुकी सेवा करने लगे ॥ ३२ ॥ उनके शुद्ध भाव और सेवासे प्रसन्न होकर गुरुने सांगोपांग वेद और उपनिषद् उनको पढ़ाये ॥ ३३ ॥ कृष्ण बलदेवने उनसे मंत्र व देवताके ज्ञानसहित धनुर्वेद, विविध धर्म्म, भिन्न २ नीति, आन्वीक्षिकी (तर्क) विद्या और षः प्रकार(संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधभाव और आश्रय) की राजनीतिकी शिक्षा भी पाई ॥ ३४ ॥ महाराज! उन पुरुषश्रेष्ठ दोनो भाइयोंने एक बार गुरुके मुखसे सुनकर सब विद्याएँ सीख लीं। सब विद्याओंके चलानेवाले

जगदीश्वरोंके लिये यह कुछ आश्चर्य्य नहीं है ॥ ३५ ॥ इस प्रकार संयत होकर उन्होने चौंसठ दिन और रातमें चौंसठो कला विद्या सीख ली। पढ़ना समाप्त होने पर अन्तमें उन्होने गुरुसे गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये प्रार्थना की ॥ ३६ ॥ सांदीपनि मुनिका एक पुत्र पहले प्रभासक्षेत्रके बीच महासागरमें डूबगया था। इस समय कृष्ण-बलदेवकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धि देखकर स्त्रीके परामर्शानुसार उन्होने वही मराहुआ पुत्र गुरुदक्षिणामें माँगा ॥ ३७ ॥ "तथास्तु" कह कर अनन्त-पराक्रमशाली महारथी दोनो भाई रथपर चढ़कर प्रभास क्षेत्रमें आये और समुद्रके किनारे जाकर एक क्षण भर ठहरे थे कि उनके आगमनको जानकर पूजा लिये हुए समुद्र, पुरुषरूपसे उनकी सेवामें उपस्थित हुआ ॥ ३८ ॥ **भगवान्ने** समुद्रसे कहा कि "तुम यहाँ जिसको अपनी महातरंगोंमें बहा ले गये हो उस हमारे गुरुपुत्रको शीघ्र लाओ" ॥३९॥ **समुद्रने कहा।** "देव! मैं उस बालकको नहीं हर ले गया। हे कृष्ण! मेरे जलमें एक शंखरूपधारी पञ्चजन नाम महादैत्य रहता है—अवश्य वही उस बालकको ले गया होगा"। यह सुनतेही भगवान् जलके भीतर गये और उस पञ्चजन दैत्यको मार डाला। परन्तु उस दैत्यके पेटमें भी बालक नहीं देख पड़ा। तब भगवान् उस दैत्यके अंगका पांचजन्य नाम शंख लेकर रथ पर आये और बड़े भाईके साथ यमराजकी प्रिय संयमनी पुरीको गये। वहाँ जाकर भगवान्ने अपना शंख बजाया। शंखका प्रचण्ड शब्द सुनकर प्रजागणके संहारकारी और शासक यमराज बाहर आये। उन्होने बड़ेही समारोहसे भक्तिपूर्वक भगवान्की पूजा की। फिर नम्र होकर सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें रहनेवाले लीलामानुषरूप विष्णु जो कृष्णचन्द्र हैं उनसे यमराजने कहा—"प्रभो! हम आपकी क्या सेवा करें?" ॥४०॥४१॥४२॥४३॥४४॥ महाराज! **भगवान्ने** कहा। "अपने कर्म्मोंसे विवश होकर यहाँ आये हुए हमारे गुरुपुत्रको हमारी आज्ञाके अनुसार लेआओ" ॥४५॥ "जो आज्ञा" कह कर यमराज उसी समय गये और उनके गुरुपुत्रको उसीसमय ले आये। कृष्ण-बलदेव भी उस बालकको लेकर गुरुके निकट आये और गुरुको उनका पुत्र देकर कहने लगे कि "और क्या आप चाहते हैं?" ॥ ४६ ॥ **गुरुने कहा।** "पुत्रो! तुम भली भाँति मुझको गुरुदक्षिणा दे चुके। जो लोग तुम्हारे समान शक्तिमान्के गुरु हैं उनकी कोई भी अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहसक्ती ॥ ४७ ॥ हे दोनो वीरवरो! तुम अब घर जाओ। लोकोंको पवित्र करनेवाला तुम्हारा यश चारो ओर तीनो लोकोंमें फैल जायगा। स्वाध्यायपाठ न करने पर भी कभी तुमको तुम्हारा पढ़ा हुआ न भूलेगा" ॥ ४८ ॥ राजन्! इस प्रकार गुरुकी आज्ञा पाकर दोनो भाई वायुवेगशाली एवं मेघतुल्य शब्दवाले रथ पर चढ़ कर अपने पुरमें आये ॥ ४९ ॥

समनन्दन्प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥
अपश्यन्त्यो बहूहानि नष्टलब्धधना इव ॥ ५० ॥

बहुत दिनों पर कृष्ण-बलदेवके दर्शन पाकर सब प्रजागण इस प्रकार आनंदित हुए जैसे किसीको खोया हुआ धन मिल जाय ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंश अध्याय ।

उद्धवकी व्रजयात्रा ।

श्रीशुक उवाच-वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥
शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। महराज श्रीकृष्णके प्रियसखा, और साक्षात् बृहस्पतिजीके शिष्य महामतिमान् उद्धवजी वृष्णिवंशीय यादवोंके माननी मंत्री थे ॥ १ ॥ शरणागतदुःखहारी हरिने एक समय एकान्तमें उन्ही एकान्त अनुरक्त भक्त प्रियतम उद्धवका हाथ आदरपूर्वक अपने हाथमें लेकर उनसे कहा ॥ २ ॥ "हे सौम्य उद्धव! तुम शीघ्र व्रज जाकर हमारे माता पिताको प्रसन्न करो और मेरा संदेश सुना कर मेरे वियोगका रोग (मानसिक ताप) जो गोपियोंको सता रहा है उसे शान्त करो ॥ ३ ॥ उनका मन मुझमें ही रहता है, मैं उनका जीवन प्राण हूँ, उन्होने मेरे लिये पति पुत्र और परिवारको तज दिया है एवं प्रिय-प्रियतम आत्मा जो मैं हूँ उसे मनके द्वारा पाचुकी हैं। जो लोग मेरी चाहमें ऐहिक और पारलौकिक सुख और उनके मिलनेकी इच्छा छोड़ देते हैं उन अनन्य भक्तोंको मैं भी भजता हूँ, अर्थात् सदा सुखी बनाता हूँ ॥४॥ हे उद्धव! मैं गोपियोंको सबसे अधिक प्रिय हूँ। मैं इतनी दूर चला आया हूँ। अतएव सब समय मेराही स्मरण करनेके कारण विरहजनित उत्कण्ठासे विह्वल होकर गोकुलकी स्त्रियाँ मोहित हो जाती हैं ॥ ५ ॥ गोकुलसे मथुरा आते समय मैं "शीघ्रही आऊँगा" कहकर आश्वास दे आया था, उसी आशासे किसी प्रकार बड़े कष्टसे वे प्राण धारण किये हुए हैं। इसका कारण यही है कि उनका आत्मा मुझमें रहता है। यदि ऐसा न होता, उनका आत्मा उनके शरीरमें होता तो अवश्य ही अब तक विरहकी आगमें भस्म हो जाता" ॥ ६ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! यह सुन कर उद्धवजी बहुत प्रसन्न हुए और आदरसहित स्वामीका सन्देश लेकर रथ पर चढ़ कर नन्दके गोकुलको चले ॥ ७ ॥ सूर्य्य अस्त होनेके समय उद्धवजी नंदके व्रज पहुँच गये।

उस समय गौवें वनसे व्रजको आरही थीं, उनके खुरोंसे उड़ी हुई धूलमें उद्धवका रथ छिप सा गया ॥८॥ उद्धवने देखा कि ऋतुमती गौवोंके लिये लड़ रहे मत्त साँड़ शब्द कर रहे हैं। दुग्धभारसे दबी हुई गौवें अपने बछड़ोंके निकट वेगसे दौड़ी जा रही हैं एवं स्वच्छस्वरूप श्वेतवर्ण बछड़े इधर उधर कूद फाँद कर व्रजकी शोभा बढ़ा रहे हैं। गोदोहन और बाँसुरीका मिला हुआ मधुर शब्द बहुत ही सोहावना जान पड़ता है ॥ ९ ॥ १० ॥ अलंकार पहने हुए सुन्दर गोपियाँ इधर उधर कृष्ण-बलदेवकी लीलाएँ गारही हैं। जहाँ तहाँ गोपगण कृष्ण-बलदेवकी चर्चा करते देख पड़ते हैं ॥११॥ गोपोंके घरोंमें अग्नि, सूर्य्य, अतिथि, गऊ, ब्राह्मण, पितर और देवतोंका पूजन हो रहा है। उन घरोंके द्वारों पर शोभित धूप, दीप, माला, इत्यादिसे व्रज बहुतही रमणीय जान पड़ता है ॥ १२ ॥ व्रजके चारो ओर मनको मोहित करनेवाला कुसुमित कानन है। उसमें भाँति २ के पक्षी और भौंरे अपनी विचित्र बोलियोंसे लोगोंको वहाँ बुला रहे हैं, चारो ओर हंस कारण्डव आदि पक्षी सुखसे बिचर रहे हैं और खिले हुए कमलपुष्प उसकी शोभाको बढ़ाते हुए सुवर्णमें सुगंधके समान जान पड़ते हैं ॥ १३ ॥ राजन्! श्रीकृष्णके प्रिय सेवक उद्धवको देख कर नन्दजीके आनन्दकी सीमा नहीं रही; उन्होने जल्दीसे उठ कर उद्धवको गलेसे लगालिया और साक्षात् कृष्ण समझ कर उनका पूजन किया ॥ १४ ॥ जब उद्धवजी श्रेष्ठ अन्न भोजन कर सुखपूर्वक बिछौने पर बैठे और पैर दबा कर उनकी थकन मिटाई गई तब नंदजीने पास आकर उनसे पूछा कि-"हे महाभाग! हमारे परम मित्र वसुदेवजी बंधनसे मुक्त होकर सुहृद्गण और पुत्रोंसहित कुशलसे हैं? ॥ १५ ॥ १६ ॥ बड़ी बात, जो पापी कंस अपने भाइयों और भृत्योंसहित अपने ही पापोंसे आप मारा गया। वह बड़ा ही दुष्ट था क्योंकि धर्मात्मा और साधुस्वभाव यादवोंसे सदा शत्रुता रखता था ॥ १७ ॥ भला, कृष्णचन्द्र, हमारी, सुहृद्गणकी, सखाजनोंकी, गोपोंकी, स्वयं जिसके स्वामी हैं उन गौवोंकी, वृन्दावन या गोवर्द्धन पर्वतकी कभी याद करते हैं? ॥ १८ ॥ क्या स्वजनोंको देखनेके लिये एक बार गोविन्द यहाँ आवेंगे? सुन्दर नासिका और कृपापूर्ण कटाक्षोंसे सुशोभित उनका उनका मनोहर हास्यमण्डित मुख हम लोग कभी देखेंगे? ॥ १९ ॥ महात्मा श्रीकृष्णने दावानलसे, प्रचण्ड वायु और वर्षासे, वृषासुरसे, सर्पसे एवं अन्यान्य अनिवार्य मौतोंसे समय २ पर हमारी रक्षा की है ॥ २० ॥ उद्धव! कृष्णकी विविध लीलाओंकी, तिर्छी चितवन और हास विलास तथा बातचीतकी याद आजाने पर हम कोई कार्य्य नहीं करसक्ते—हमारे सब अंग शिथिल होजाते हैं ॥ २१ ॥ केवल अंग ही नहीं शिथिल होजाते बरन् उनके चरणचिन्होंसे अलंकृत नदी, पर्वत, वनप्रदेश और केलिकुज देखनेसे हमारा मन तन्मय हो जाता है ॥ २२ ॥ महा-

मुनि गर्गके गूढ़ वाक्योंके अनुसार मैं कृष्ण-बलदेव दोनोको श्रेष्ठ देवता समझता हूँ—अवश्यही देवतोंका कोई महाकार्य्य सिद्ध करनेके लिये पृथ्वी पर उनका अवतार हुआ है ॥ २३ ॥ क्योंकि दस हजार हाथियोंका बल धारण करनेवाले कंसको, महाबली मल्लोंको, भयानक गजराजको इस प्रकार लीलापूर्वक उन्होने मार डाला जैसे सिंह पशुओंको ॥ २४ ॥ जैसे मदमत्त गजराज किसी छोटी सी छड़ीको तोड़ डाले वैसे ही कृष्णने तीन ताल ऊँचा महाकठिन धनुष तोड़ डाला और एक हाथसे सात दिनों तक गोवर्द्धन पर्वतको उठाये रहे ॥ २५ ॥ प्रलंबासुर, धेनुकासुर, अरिष्टासुर, तृणावर्त्त, वकासुर आदि दैत्य, जिन्होने सब देवता और दैत्योंको परास्त कर दिया था, उनको कृष्णने लीलापूर्वक मार डाला" ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! कृष्णके अनुरागका रंग जिनके चित्त पर चढ़ा हुआ है वह नंदजी, इस प्रकार वारम्वार कृष्णका स्मरण करनेके कारण होनेवाले प्रेमके पसारसे विह्वल होकर उत्कंठाकी अधिकतासे चुप होगये ॥ २७ ॥ पुत्रके कहे जा रहे चरित्र सुनकर यशोदाके नेत्रोंमें आँसू भर आये और स्नेहके वेगमें उनके स्तनोंसे आपही आप दुग्ध निकलने लगा। नन्द-यशोदाका भगवान् कृष्णमें ऐसा अनुराग देखकर उद्धवजी परम प्रसन्न हुए और नन्दजीसे यों कहने लगे ॥ २८ ॥ २९ ॥ "हे व्रजराज! तुम दोनो स्त्री-पुरुष, सब देहधारियोंमें श्रेष्ठ और परमप्रशंसनीय हो, क्योंकि जगद्गुरु नारायणमें तुम्हारी ऐसी इष्टबुद्धि है ॥ ३० ॥ कृष्ण और बलभद्र दोनो, इस विश्वके निमित्त कारण और उपादान कारण हैं। ये सब तत्त्वोंमें अनुप्रविष्ट रह कर उन तत्त्वोंसे विरचित विभेदभावके और जीवके नियन्ता ईश्वर हैं। ये पुराणपुरुष अर्थात् अनादि हैं ॥३१॥ महात्मा नंदजी! अन्त समय क्षणभर भी जिनमें विशुद्ध मन लगानेसे सब कर्म्मवासनाएँ भस्म हो जाती हैं, स्वरूप-साक्षात्कार होता है और शुद्धसत्त्व-मूर्ति हो जानेसे परम गति प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥ वही विश्वहेतु, विश्वात्मा होने पर भी प्रयोजनवश मायामय मनुष्यरूपसे अवतीर्ण नारायण जो महात्मा कृष्ण हैं उनमें तुम्हारी ऐसी अनन्य भक्ति है, अतएव तुम धन्य हो! तुम कृतकृत्य हो गये ॥ ३३ ॥ कृष्णचन्द्रने कहा है कि 'हम शीघ्र ही व्रजमें आवेंगे और माता पिताको उनकी इच्छा पूर्ण करके प्रसन्न करेंगे' ॥ ३४ ॥ यादवोंके शत्रु कंसको रंगभूमिमें मारनेके उपरान्त सबके आगे आपके निकट आकर जो उन्होने कहा था उसे वे अवश्य पूरा करेंगे ॥३५॥ हे महाभाग नन्दजी! और महाभागा यशोदाजी! तुम खेद न करो, शीघ्र ही अपने निकट कृष्णचन्द्रको देखोगे; क्योंकि वह लकड़ियोंमें अग्निके समान सब प्राणियोंके हृदयाभ्यन्तरमें विराजमान हैं ॥ ३६ ॥ उनको अभिमान नहीं है, अतएव उनको कोई अत्यन्त प्रिय या अप्रिय नहीं है। वह समदर्शी हैं, इस कारण उनकी दृष्टिमें उत्तम, अधम या असम कोई नहीं है ॥ ३७ ॥ उनके माता, पिता, स्त्री पुत्र आदि नहीं हैं, और न कोई

अपना है, न पराया है। वह शरीररहित अजन्मा हैं। वह अकर्म्मा हैं। किन्तु जन्म-कर्म्महीन होकर भी वह अपनी क्रीड़ाओंसे साधुजनोंके कष्ट मिटानेके लिये सत्, असत् और मिश्र अर्थात् सात्त्विक, राजस, तामस अथवा देव, मत्स्य, नृसिंह आदि योनियोंमें प्रकट होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ उनको क्रीड़ा करनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह निर्गुण हैं। तथापि क्रीड़ा करनेके लिये मायाके सत्व, रज, तम, इन तीनो गुणोंको भजते हैं और उन्ही गुणोंसे इस विश्वकी उत्पत्ति पालन और संहार करते हैं ॥ ४० ॥ जैसे वेगसे चक्कर लगानेमें (अथवा रेलपर चलते समय) दृष्टिदोषसे पृथ्वी भी घूमती हुई (अथवा चलती हुई) जान पड़ती है, परन्तु वास्तवमें वह नहीं घूमती, वैसे वास्तवमें चित्त ही कर्त्ता होने पर भी, उस चित्तमें आत्माका अध्यास अर्थात् अहंबुद्धि होनेके कारण अज्ञानवश आत्मा ही कर्त्ता जान पड़ता है ॥ ४१ ॥ भगवान् हरि केवल तुम्हारे ही पुत्र नहीं हैं, बरन् सबके पुत्र, आत्मा, पिता, माता, स्वामी आदि सब कुछ हैं ॥ ४२ ॥ ऐसी कोई देखी, सुनी, वर्त्तमान, भविष्य, स्थावर, जंगम बड़ी या छोटी वस्तु नहीं है, जो अच्युतसे भिन्न हो। वास्तवमें अच्युतके सिवा "वस्तु" कहने योग्य कुछ भी नहीं है; वही परमार्थस्वरूप परमात्मा हैं" ॥ ४३ ॥ राजन्! इस प्रकार कृष्णके प्रिय अनुचर उद्धव और नंदमें बातचीत होते २ रात बीत गई। दो घड़ी रात रहे सब गोपियाँ उठीं और अपने २ घरोंमें दीपक जलाकर झाड़ू चौका आदि घरके काम करने लगीं। भवनकी सफाई करनेके उपरान्त सबने दही मथना आरंभ किया ॥ ४४ ॥ दही मथते समय उनके अरुणवर्ण कुंकुममंडित कपोलों पर हिल रहे कनककृत कुंडलोंकी झलक बहुत ही मनोहर जान पड़ती थी, उनके काञ्ची आदि आभूषणोंमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्ति दीपकोंकी आभा पड़नेसे दूनी होगई। कंकण-मालाओंसे अलंकृत भुजाओंसे मथानी सहित रस्सी पकड़कर दही मथते समय उनके हिलते हुए नितम्ब, स्तन, हार और कुंडल, शोभाका एक विचित्र दृश्य हो रहे थे ॥ ४५ ॥ दही मथतेमें व्रजबालाएँ ऊँचे स्वरसे कमलनयन कृष्णकी कथाएँ गाने लगीं। दही मथनेके शब्दसे मिला हुआ वह महाशब्द आकाश तक पहुँचकर सुननेवालोंके अमंगलको मिटाता हुआ दिशाओंमें चारो ओर फैल गया ॥ ४६ ॥ कुछ देर बाद भगवान् सूर्य्यका उदय होनेपर व्रजवासी लोग नंदके द्वार पर सुवर्णमय रथ खड़ा हुआ देखकर परस्पर कहने लगे कि—"यह रथ किसका है?" ॥ ४७ ॥ गोपियाँ उस रथको देखकर कहने लगीं कि "कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये जो आकर कमललोचन कृष्णको मथुरा लेगया वही क्रूर अक्रूर क्या फिर आया है? ॥ ४८ ॥

किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रीतस्य निष्कृतिम् ॥
इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात्कृताह्निकः ॥ ४९ ॥

"अब क्यों आया है? क्या अब हमारे कृष्णरूप प्राणसे रहित शरीरोंके मांससे अपने मरे हुए स्वामी(कंस)को पिंडदानकर प्रसन्न करेगा?"। इस प्रकार स्त्रियाँ कह रहीथीं, इतनेमें उद्धवजी यमुनातटसे स्नान-संध्या आदि आन्हिक कर्म्म करके नंदके घर आते देख पड़े ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे पूर्वार्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंश अध्याय।

भ्रमरगीत और उद्धवका मथुरागमन।

श्रीशुक उवाच–तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः
प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ॥
पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्-
मुखारविन्दं मणिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! नवीन कमलदलके समान विशाल नेत्रवाले, पीताम्बरधारी, गलेमें कमलकी माला और वनमाला धारण किये, मणिजटित कुंडलोंसे मण्डित मुखारविंदसे सुशोभित, कृष्णके अनुचर आजानुबाहु उद्धवको देख कर सब गोपियाँ बहुत ही विस्मित हुईं और कहने लगीं कि "यह परम सुंदर स्वरूपवाला पुरुष कौन है? कहाँसे आया है? किसका दूत है? इसकी वेषभूषा तो कृष्णके सदृश है!" जिनके चित्त जाननेके लिये उत्सुक हो रहे हैं उन गोपियोंने यों कह कर उत्तमश्लोक कृष्णके चरणसेवक उद्धवको चारो ओरसे घेर लिया ॥ १ ॥ २ ॥ जब गोपियोंने जाना कि उद्धवजी प्यारे कृष्णका संदेश लेकर आये हैं तब विनयावनत होकर लज्जापूर्ण हास्य, कटाक्ष और मधुर वचनोंसे उन्होने उनका सत्कार किया। फिर एकान्तमें उद्धवजीको सुन्दर आसन पर बैठा कर गोपियोंने स्वागत और कुशलप्रश्नके उपरान्त कहा–"हम जानती हैं कि तुम यदुपतिके सेवक हो। पिता माताको प्रसन्न करनेके लिये ही तुम्हारे स्वामीने तुमको भेजा है; इसीसे तुम यहाँ आये हो ॥ ३ ॥ ४ ॥ नहीं तो इस व्रजमें कोई भी वस्तु हमको ऐसी नहीं देख पड़ती, जिसकी कभी उन महापुरुषको याद आती हो। उन्होने माता–पिताका स्मरण किया हो तो ठीक ही है, क्योंकि मुनिलोग भी बंधुओंके स्नेहानुबन्धको सहजमें नहीं छोड़ सक्ते ॥ ५ ॥ बंधुओंके सिवा अन्य लोगोंसे जो मित्रता की जाती है सो किसी न किसी प्रयोजनसे की जाती है। जब तक कार्य्य नहीं सिद्ध होता तभी तक मित्रताका अनुकरणमात्र किया जाता है, कार्य्य निकल जाने पर इस मैत्रीका अन्त हो जाता है। स्त्रियोंसे पुरुषोंकी मित्रता और

भ्रमरोंका फूलों पर अनुराग, ऐसी ही स्वार्थमैत्रीका उदाहरण है ॥ ६ ॥ संसारमें प्रायः ऐसी ही स्वार्थमैत्री देखी जाती है। देखो, जब मनुष्य निर्धन हो जाता है तब वेश्या उसको छोड़ देती है– बात भी नहीं करती; रक्षा करनेमें असमर्थ राजाको प्रजागण छोड़ देते हैं; विद्या पढ़ लेने पर शिष्यलोग अपने आचार्य्य (गुरु) को छोड़ देते हैं; दक्षिणा पा जाने पर ऋत्विक् लोग यजमानको छोड़ जाते हैं; फल चुक जाने पर पक्षीलोग वृक्षको छोड़ देते हैं; अतिथि लोग भोजन करनेके उपरान्त उस घरको छोड़ कर अपनी राह लेते हैं; जब वन जलने लगता है तब मृगगण उसे छोड़ कर भाग जाते हैं; ऐसेही जारलोग भोग करके अतृप्त एवं अनुरक्त स्त्रियोंको छोड़ देते हैं" ॥७॥८॥ जिनके मन, वाणी और काया कृष्णमय हो रहे हैं वे गोपियाँ, कृष्णके दूत उद्धवके मिलने पर सम्पूर्ण लौकिक व्यवहारोंको छोड़ कर कृष्णके ध्यानमें मग्न होगईं। प्यारे कृष्णने लड़कपनमें और किशोर अवस्थामें जो २ कर्म्म किये थे उनको याद कर २ के गोपियाँ गाने लगीं। कुछ गोपियाँ लोकलाजको छोड़ रोती हुई उद्धवसे कृष्णकी चर्चा करने लगीं। प्रियके समागमकी चिन्ता कर रही एक गोपी किसी भौंरेको अपने निकट "गुन २" करते देख कर उसे कृष्णका भेजा हुआ दूत मान कर उससे यों कहने लगी ॥९॥१०॥११॥ **गोपीने कहा।** "हे धूर्त्तके बन्धु मधुकर ! तुम हमारे चरणोंको न छुओ; तुम्हारे श्मश्रुओंमें, सौतके कुचमण्डलमें विहार करनेवाली मालामें लिप्त कुंकुम लगा हुआ है। मधुपति कृष्णही, यादवोंकी सभामें उपहास करानेवाले इस प्रसादको धारण करें, हम इस प्रसादको नहीं चाहतीं। तुम्हारी और कृष्णकी बंधुता ठीक ही है। क्योंकि जैसे तुम सुमनों (फूलों)को रस लेकर छोड़ जाते हो वैसे ही एक बार मोहिनीमय अधरसुधा पिला कर वह भी चटपट हमको छोड़ चले गये। हमको आश्चर्य्य है कि इतनी चंचल लक्ष्मी कैसे उनके चरणकमलोंका सेवन करती है? कदाचित् कृष्णके 'उत्तमश्लोक' (महायशस्वी) इस नामने उसके हृदयको हर लिया है। किन्तु हम लक्ष्मीके समान अविवेकिनी नहीं हैं" ॥१२॥१३॥ भ्रमरको बार २ निकट आकर गुंजन करते देख 'हमारा प्रसाद पानेकी आशासे यह बार २ कृष्णका यश गाता है'–ऐसा मानकर गोपियोंने कहा कि:—"हे मधुकर ! तुम क्यों हमारे निकट बार २ आकर कृष्णकी कीर्त्ति गाते हो? हम अनेक बार उनके शील स्वभावका अनुभव प्राप्त कर चुकी हैं, वह हमारे लिये नवीन नहीं हैं, पूर्वपरिचित पुराने हैं। तुमको यदि कृष्णकी कीर्त्ति गाकर कुछ लाभ उठाना है तो अर्जुनके मित्र कृष्णकी वर्त्तमान सखी जो मथुरापुरीकी स्त्रियाँ हैं उनके आगे जाकर गाओ। वे कृष्णकी प्यारी हैं, कृष्णने हृदयसे लगकर उनके मानसिक तापको शान्त किया है, अतएव वेही प्रसन्न हो कर तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगी ॥ १४ ॥ यदि कहो कि 'ऐसा न कहो, तुम्हारी यादमें मदनविह्वल होकर तुमको प्रसन्न करनेके

लिये उन्होने मुझको भेजा है,' तो हमको इस पर विश्वास नहीं हो सक्ता। क्योंकि स्वर्गमें, पृथ्वीमें या पातालमें कौन ऐसी स्त्री है जो उनको दुर्लभ हो? वह अत्यन्त धूर्त्त हैं, उनकी कपटपूर्ण मनोहर मंद मुसकान और भौंह के विचित्र विलासमें कौन स्त्री न मोहित हो जायगी? साक्षात् लक्ष्मी उनके चरणरजकी उपासना करती हैं, तब हम क्या हैं? किन्तु जो कोई दुःखी जनों पर दया करते हैं उन्हींके लिये 'उत्तमश्लोक' शब्दका व्यवहार किया जा सक्ता है" ॥ १५ ॥ चरणोंके निकट आकर उसको गुन २ करते देख कर 'यह क्षमा चाहता है'-ऐसा मान कर गोपियोंने कहा—"हे मधुकर! हमारे पैरों पर धरे हुए अपने शिरको हटाओ। तुम दूतपनेमें और मनानेमें बहुत ही चतुर देख पड़ते हो; जान पड़ता है तुमने मुकुंदसे यह शिक्षा पाई हैं, किन्तु हम तुमको भलीभाँति जानती हैं, हमसे तुम्हारी चतुराई नहीं चलेगी। ऐसा न कहना कि 'कृष्णका अपराधही क्या है?'। देखो, उनके लिये हमने अपने पुत्र, पति एवं इस लोक और परलोकको तज दिया, किन्तु वह ऐसे अकृतज्ञ और अव्यवस्थित चित्त हैं कि हमको छोड़ कर चले गये। तब उन पर क्या फिर विश्वास किया जा सक्ता है? ॥ १६ ॥ वह बड़ेही क्रूर हैं; उन्होने रामावतारमें व्याधकी भाँति वानरराज बालीको एक बाणसे मारडाला। वास्तवमें वह व्याधसे भी बढ़ कर क्रूर हैं। क्योंकि व्याध तो मांसके लिये जीवोंको मारता है, परंतु उन्होने वृथाही बालीको मारा। इसके सिवा स्त्रीके वशवर्त्ती होकर उन्होने रावणकी भगिनी स्त्रीजाति शूर्पणखाके नाक कान काट कर उसको विरूप बनादिया। ऐसेही वामनअवतारमें राजा बलिकी दी हुई बलि (भेंट पूजा) लेकर फिर उसको बँधवाकर स्वर्गसे निकाल रसातलको भेजदिया। अतएव बस, हमें उन काले कृष्णकी मित्रताकी चाह नहीं हैं। यदि कहो कि 'फिर तुम क्यों उनकी कथा कहा करती हो?' तो हे मधुकर! उनकी चर्चा छोड़ना महा कठिन है-सहज नहीं है ॥ १७ ॥ देखो, कण भर भी, सुननेमें अमृतसमान मधुर उनका चरित्र कानमें पड़तेही धीर व्यक्तियोंके अन्तःकरणमें राग आदि द्वन्द्वधर्म्म नहीं रहते और वे विनष्ट हो अपने दुःखित कुटुंबको छोड़ कर विरक्त (भोगवासनाविहीन) बन जाते हैं एवं भिक्षावृत्ति ग्रहण करके पक्षियोंकी भाँति बिना घरद्वारके हो कर केवल अपनेही पेटको पालते इधर उधर मारे २ फिरते हैं। उन हरिकी कथाको ऐसी सर्वनाशिनी जानकर भी किसी प्रकार हम नहीं छोड़ सक्तीं; इसीसे कहती हैं उनकी कथा दुस्त्यज है ॥ १८ ॥ जैसे अबोध मृगी, व्याधके कपटपूर्ण मधुर गान पर विश्वास कर व्यथाको प्राप्त होती है वैसे ही हम भी कुटिल कृष्णकी बातों पर विश्वास कर बारम्बार उनके नखस्पर्शसे उत्पन्न तीक्ष्ण मदनव्यथाको सहरही हैं। अतएव हे दूत! उनकी बातें छोड़कर और बातें करो" ॥ १९ ॥ भौंरेको थोड़ी दूर जाकर फिर आते हुए देख गोपियाँ कहने लगीं कि-"हे प्रियके सखा! प्यारे कृष्णने

क्या तुमको फिर भेजा है? अहो! प्रियके दूत होनेसे तुम भी हमारे माननीय हो, तुम्हारी क्या इच्छा है? हमसे माँगो। जिनका संग दुस्त्यज है उन कृष्णके पास क्या तुम हमको ले चलना चाहते हो? किन्तु लक्ष्मीनाम नववधू सदा उनके निकट उनके हृदयमें वास करती है, अतएव हम वहाँ कहाँ रह सक्ती हैं? ॥ २० ॥ हे सौम्य! आर्य्यपुत्र कृष्ण महाराज क्या गुरुकुलसे लौटकर मथुरापुरीमें विराजमान हैं? अवश्य ही वह कभी २ अपने पिता, घर, बन्धु और गोपोंका स्मरण करते होंगे; किन्तु क्या कभी हम दासियोंका भी नाम लेते हैं? अहो! अगरु और चंदनसे अनुलिप्त सुगंधित अपनी भुजाको वह कब हमारे शिरपर धरेंगे?" ॥ २१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! श्रीकृष्णके दर्शनकी जिनको बड़ी लालसा है उन गोपियोंके वचन सुनकर प्रिय कृष्णके संदेशसे आश्वास देते हुए उद्धवजी उनसे यों बोले ॥ २२ ॥ **उद्धवने कहा।** "अहो, गोपियो! तुम कृतार्थ होगई हो, तुम संसारमें परम पूजनीया हो; क्योंकि तुम्हारा मन भगवान् वासुदेवमें यों दृढ़-रूपसे लगा हुआ है ॥ २३ ॥ दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, इन्द्रिय-दमन एवं अन्यान्य अनेक माङ्गलिक अनुष्ठानोंसे कृष्णकी भक्ति सिद्ध होती है। किन्तु तुमने अपने सौभाग्यसे सहजमें वही मुनियोंको भी दुर्लभ अत्यन्त श्रेष्ठ हरिभक्ति पाई है ॥ २४ ॥ तुम परम भाग्यशालिनी हो। तुमने पुत्र, पति, देह, स्वजन और गृहआदि सब छोड़कर परमपुरुष कृष्णमें मन लगाया है ॥ २५ ॥ तुमको कृष्ण भगवान्की परम भक्ति प्राप्त हुई है। हे महाभागाओ! तुमने तन्मय-भाव पर अधिकार कर लिया है। मैंने व्रजमें आकर तुम्हारे इस अपूर्व भगवत्प्रेमका सुख पाया। तुम्हारे प्रियके विरहने यह अपूर्व प्रेम दिखा कर मुझ पर बड़ा ही अनुग्रह किया ॥ २६ ॥ २७ ॥ देखो, मैं स्वामीका गुप्त कार्य्य सिद्ध करनेके लिये उन्ही तुम्हारे प्रियका दिया हुआ संदेश लेकर आया हूँ—तुम सब एकाग्र होकर सुनो ॥ २८ ॥ **श्रीभगवान्ने** कहा है कि—प्रियागण! मेरा वियोग तुमको कभी नहीं होसक्ता—मैं देहधारियोंका आत्मा होनेके कारण सदा तुम्हारे पास हूँ। जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पाँचो महातत्त्व सब तत्त्वोंमें अवस्थित हैं वैसे ही मैं मन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रिय और गुणोंका आश्रयस्वरूप हूँ। मैं पंचतत्त्व, इन्द्रिय और त्रिगुण-स्वरूपिणी अपनी मायाके प्रभावसे अपनेही द्वारा अपनेको अपनेमें उत्पन्न करता, पालता और लीन करता हूँ ॥ २९ ॥ ३० ॥ आत्मा, ज्ञानमय होनेके कारण अज्ञानमयी मायासे भिन्न है, अतएव मायाके गुणोंसे उसका संबंध नहीं है। आत्मा शुद्ध है। वह आत्मा सुषुप्ति, स्वप्न, जागृति नामक मानसिक वृत्तियोंके द्वारा ही, विश्वरूप हो, तैजस रूपसे और प्राज्ञ रूपसे प्रतीत होता है—स्वयं नहीं ॥ ३१ ॥ जैसे सोकर उठा हुआ व्यक्ति—देखे हुए मिथ्या स्वप्नका ही चिन्तन करता है वैसे ही जिसके द्वारा इन्द्रियोंके विषयोंका

चिन्तवन किया जाता है एवं जिसके द्वारा इन्द्रियोंकी उपलब्धि होती है, आलस्य छोड़ कर, उस मनका दमन करना ही कर्त्तव्य है ॥३२॥ जैसे नदियाँ सागरमें ही चारो ओरसे आकर मिलती हैं वैसे ही वेद, मनीषी व्यक्तियोंके अष्टांगयोग, आत्मानात्मविवेक, संन्यास, स्वधर्म्म, इन्द्रियदमन और सत्य आदिका, मार्गविभेद होने पर भी, यही एक तात्पर्य्य है जो ऊपर कहा गया है—इस सिद्धान्तमें सब आकर मिल जाते हैं ॥ ३३ ॥ तुम्हारे नयनोंका तारा मैं तुमसे इतनी दूर इस लिये हूँ कि तुम सदैव मेरे ही ध्यानमें लवलीन रहो—तुम्हारा मन सब समय मेरेही निकट रहे ॥ ३४ ॥ प्रियतमके दूर रहने पर स्त्रियोंका चित्त हर घड़ी उसीमें लगा रहता है, किन्तु प्रियतम यदि आँखोंके आगे पास रहता है तो वह बात नहीं होती ॥ ३५ ॥ इस प्रकार तुम सब वासनाओंसे शून्य शुद्ध मनको मुझमें लगा कर नित्य मेरा ध्यान करनेसे शीघ्रही मुझे पाओगी ॥ ३६ ॥ गोपिकागण! मैंने जब रात्रिके समय रासक्रीड़ा की थी तब गुरुजनोंके रोकनेसे जो गोपियाँ नहीं आसकीं वे इसी प्रकार मेरे चरित्रोंका स्मरण कर विशुद्धरूप हो मुझको प्राप्त हुई हैं ॥ ३७ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! व्रजबालाएँ इस प्रकार उद्धवके मुखसे प्रियतमकी आज्ञा सुन कर परम प्रसन्न हुईं और उनको भगवान्का संदेश सुननेसे शुद्ध ज्ञान प्राप्त हुआ ॥ ३८ ॥ गोपियाँ उद्धवजीसे कहने लगीं। "हे सौम्य! बड़ी बात, यादवोंको दुःख देनेवाला शत्रु कंस अनुचरगणसहित कृष्णके हाथों मारा गया। और आनन्दकी बात है कि सब कामनाएँ जिनकी पूर्ण होचुकी हैं उन अनुरक्त भक्त यादवोंके साथ इस समय यदुपति कृष्णचन्द्र कुशलसे हैं ॥३९॥ श्रीकृष्णचन्द्र हमसे जैसी प्रीति करते थे वैसी ही प्रीति, पुरनारियोंके स्नेहपूर्ण लज्जायुक्त हास्य और उदारता व श्रद्धासे मनोहर कटाक्षों द्वारा पूजित होकर, उनसे भी करते हैं?—या नहीं? ॥ ४० ॥ कृष्णचन्द्र स्वयं रतिचतुर हैं और पुरनारियोंके प्रिय भी हैं, तब वह उनके वचन और विभ्रमोंसे पूजित होकर कैसे न उन पर अनुरक्त होंगे? ॥ ४१ ॥ अस्तु, हमको इस चिन्तासे क्या प्रयोजन है? भला वह प्यारे कृष्णचन्द्र उन पुरनारियोंकी सभामें बातचीत करते समय प्रसंग आपड़ने पर हम गँवारियोंका भी कभी स्मरण करते हैं? ॥ ४२ ॥ जब वृन्दावनमें कुमुद, कुंद आदिके फूल फूले हुए थे, चंद्रमाकी चाँदनी चाँदनी सी बिछी हुई थी, तब जिन रात्रियोंमें रासमण्डल बना कर हम प्रियाओंके साथ उन्होने विहार कियाथा,—विहारके समय उनके और हमारे चरणोंके नूपर बजते थे और हम सब उन्हींकी मनोहर कथाएँ गाती थीं, भला कृष्णचन्द्र क्या कभी उन रात्रियोंका भी स्मरण करते हैं? ॥ ४३ ॥ हम सब सदैव उनके शोकसे आकुल रहती हैं। इन्द्रदेव जैसे अमृतरूप जलकी वर्षासे घाममें मुरझाये हुए वनको हराभरा बनाते हैं वैसेही कृष्णचन्द्र कभी यहाँ आकर अपना हाथ

हमारे शरीर पर फेर कर हमारे सन्तापको दूर करेंगे?" ॥ ४४ ॥ यह सुनकर एक और सखी कहने लगी, । "नहीं सखी! श्रीकृष्णने शत्रुको मार कर राज्य पाया है एवं राजकुमारियोंसे ब्याह करके अब सब बंधुओंके साथ सुखपूर्वक मथुरामें निवास करते हैं, वह भला यहाँ क्यों आवेंगे?" ॥ ४५ ॥ यह सुन एक और सखीने कहा— "सखी! तुम समझती नहीं हो, श्रीकृष्णचन्द्र परम धीर और लक्ष्मीके पति हैं, स्वयमेव पूर्णमनोरथ एवं परिपूर्ण हैं। उनका कौन मनोरथ है जिसको वनमें रहने वाली हम गँवारी नारी पूरा कर सकेंगी? एवं राजकुमारी अथवा और स्त्रियाँही उनकी कौन कामना पूर्ण कर सक्ती हैं? ॥४६॥ कामचारिणी (वेश्या) पिंगला भी कह गई है कि 'निराशा (किसी की आशा न करना) ही परम सुख है'। हम यह जान कर भी कृष्णकी दुरत्यय आशाको नहीं छोड़ सक्तीं ॥ ४७ ॥ जिन उत्तम श्लोककी इच्छा न होने पर भी लक्ष्मी एक घड़ी भी अंगसंग नहीं छोड़ती उन कृष्णचन्द्रकी एकान्तवार्त्ताको कौन छोड़ सक्ता है? ॥ ४८ ॥ इन नदी, पर्वत और वनप्रदेशोंमें बलभद्रके साथ गौवें चराते हुए कृष्णचन्द्रने क्रीड़ाएँ की हैं और वंशी बजाई है। अहो! श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णके श्रीनिकेतन चरणोंके चिन्होंसे सुशोभित ये पर्वत, नदी, वन और वंशीरव व गौवें आँखोंके आगे आकर बारम्बार उन्ही कृष्णचन्द्रका स्मरण करा देते हैं, इसी कारण वह कृष्ण प्यारे हमको नहीं भूलते ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे उद्धव! श्रीकृष्णकी ललितगति, उदार हास्य, लीलाएँ, चितवन एवं मधुर वचन आदिने हमारे चित्तको हरलिया है, अतएव हम उनको कैसे भूल सक्ती हैं? ॥ ५१ ॥ हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे आर्त्तिनाशन! हे गोविन्द! यह आपका गोकुल दुःखके सागरमें मग्न होरहा है, शीघ्र इसको उबारो" ॥५२॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! श्रीकृष्णका संदेश सुननेसे गोपियोंका विरहताप शान्त हो गया। उन्होने श्रीकृष्ण भगवान्को इन्द्रियोंका साक्षी परमात्मा जान कर उद्धवका भली भाँति पूजन और सादर सत्कार किया ॥ ५३ ॥ उद्धवने कई महीने तक गोपियोंका शोक नाश करते हुए व्रजमें वास किया। उद्धवजी जितने दिन गोकुलमें रहे उतने दिनों तक कृष्णकी लीलाएँ और कथाएँ कह कर व्रजवासियोंको सुखी बनाते रहे ॥ ५४ ॥ जितने दिनोंतक उद्धवजी नन्दके व्रजमें रहे उतने दिन व्रजवासियोंको कृष्णचन्द्रकी चर्चामें एक क्षण के समान जान पड़े ॥ ५५ ॥ हरिके दास उद्धवजीने नद, नदी, पर्वत, वन, कंदरा और फूले हुए वनोंकी शोभा निहारते हुए एवं व्रजवासियोंको, कृष्णकी कथाएँ कह कर, कृष्णका स्मरण कराते हुए कुछ दिनोंतक सुखपूर्वक गोकुलमें निवास किया ॥५६॥ गोपियोंके श्रीकृष्णमें परम आसक्त चित्तोंकी ऐसी विरहजनित विह्वलता देख कर उद्धवजी अत्यन्त आनन्दित हुए और उनको प्रणाम करके कहने लगे कि—"इस पृथ्वीमण्डलमें इन गोपियोंने ही अपने जन्मको सफल किया है, वास्तवमें इन्हीका जन्म सफल

है; क्योंकि इनको सबके आत्मा भगवान् पर परम प्रेम है। इनका यह प्रेम साधारण नहीं है, बरन् वह गूढ़ प्रेम है जिसे पानेके लिये हम चरणसेवक भक्तजन और ज्ञानीजन अनेक प्रयत्न करते रहते हैं। जिनको हरिकी कथाओंमें अनन्य अनुराग है उनको ब्राह्मणोंके तीन प्रकारके (एक जन्म, दूसरा गायत्रीशिक्षा और तीसरा यज्ञ-दीक्षा) जन्मोंकी क्या आवश्यकता है? भगवद्भक्त कोई जाति भी हो वह सर्वोत्तम और पूजनीय है ॥५७॥५८॥ देखो, कहाँ व्यभिचारके दोषसे दूषित वनवासिनी गँवारी नारियाँ! और कहाँ परमात्मा कृष्णमें ऐसा असाधारण प्रेमका होना! किन्तु अहो! अज्ञ व्यक्ति भी यदि ईश्वरका भजन करे तो वह उसका परम कल्याण करते हैं, जैसे बिना जाने भी अमृत पीनेसे मंगल ही होता है ॥ ५९ ॥ रास-उत्सवमें इनके गलेमें बाहें डाल कर कृष्णचन्द्रने इनको सुखी बनाया—अतएव ये धन्य हैं। भगवान्का यह सुखद प्रसाद सिवा इनके, औरोंकी कौन कहे—कमलकी ऐसी कान्ति और गंध जिनके शरीरमें है उन स्वर्गकी स्त्रियोंको और निपट अनुरक्त होकर वक्षःस्थलमें वास करनेवाली लक्ष्मीको भी नहीं प्राप्त हुआ है ॥ ६० ॥ इन गोपियोंने दुस्त्यज स्वजनोंको और आर्य्यधर्मको छोड़ कर वेदोंमें जिसकी खोज होती है उस मुकुन्दपदपदवीको प्राप्त किया है। ये अत्यन्त धन्य हैं। मेरी इच्छा है कि मैं उस जन्ममें—इनके चरणोंकी रज जिन पर पड़ती है उन वृंदावनकी लता औषधि और झाड़ियोंमेंसे कोई न कोई अवश्य होऊँ ॥ ६१ ॥ जिनकी सेवा लक्ष्मीजी करती हैं एवं ब्रह्मादिक और पूर्णमनोरथ मुनिगण अपने हृदयमें स्थापित कर ध्यान व पूजन करते हैं उन्ही कृष्णके कमनीय चरणकमलोंको रास-नृत्यके समय अपने कुचकलशों पर धर कर इन्होने अपने हृदयकी तपन बुझाई है ॥ ६२ ॥ अतएव मैं इन सब नंदव्रजकी सुंदरियोंके चरणरजकी वारम्वार वंदना करता हूँ। इनके गाए हुए हरिकथामंडित गीत सब त्रिभुवनको पवित्र करने वाले हैं—अत एव ये परम धन्य हैं" ॥ ६३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इस प्रकार कई महीने रह कर उद्धवजीने मथुरा जानेका विचार किया। एक दिन उद्धवजी यशोदा, नंद, गोपगण और गोपियोंसे बिदा होकर मथुरा जानेके लिये रथ पर सवार हुए ॥ ६४ ॥ इसी समय अनेक प्रकारके उपायन (भेंट-नजर) हाथोंमें लिये नंद आदि सब गोप उद्धवजीके निकट उपस्थित हुए। अनुरागके कारण आँखोंमें आँसू भरे हुए गोपगण उद्धवसे कहने लगे कि—"हमारी यही कामना है कि हमारा मन सब प्रकारसे पूर्णतया कृष्णके चरणारविंदोंमें लगा रहे और हमारी वाणी सदा उनके नामोंका कीर्त्तन किया करे एवं हमारी काया उनको प्रणाम आदि करनेमें तथा उनकी सेवा करनेमें लगी रहे ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ कर्म्मोंके कारण भ्रमण करते २ ईश्वरकी इच्छासे कोई भी योनि हमको मिले, किन्तु हमारी मति कृष्णमेंही लगी रहे। हमने जो कुछ

मंगलकारी कार्य्य किये हैं और दान दिये हैं, उन सबके बदलेमें हम यही माँगते हैं कि ईश्वरस्वरूप कृष्णकी अनन्य भक्ति हमको प्राप्त हो" ॥ ६७ ॥ राजन्! गोपोंने कृष्णहीके समान मान करके भक्तिपूर्वक इस प्रकार उद्धवका पूजन किया और उद्धवजीने कृष्ण जिसके रक्षक हैं उस मथुरा पुरीको प्रस्थान किया ॥ ६८ ॥

कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥
वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात् ॥ ६९ ॥

मथुरामें पहुँच कर उद्धवजी कृष्णके पास आये और उनको प्रणाम किया। फिर व्रजवासियोंकी अनन्य भक्तिका वर्णन करते हुए उद्धवजीने नंदके दिये हुए उपायन कृष्ण-बलदेव और राजा उग्रसेनको दिये ॥ ६९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्त्वारिंश अध्याय ।

अक्रूरका हस्तिनापुरको जाना ।

श्रीशुक उवाच–अथ विज्ञाय भगवान्सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥
सैरन्ध्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन्गृहं ययौ ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! सबके मनकी जाननेवाले सर्वज्ञ अन्तर्य्यामी हरिने जाना कि कुब्जा मेरे कारण कामकी पीड़ा सह रही है। यह जान कर उसका प्रिय करनेकी इच्छासे कृष्णचन्द्र एक दिन उसके घर गये ॥ १ ॥ कुब्जाका भवन महामूल्यवाली गृहसामग्री और कामोद्दीपन करनेवाली सामग्रीसे परिपूर्ण था। मोतियोंकी झालरें, पताका, चन्द्रातप (चँदोवा), शय्या और अनेक आसन उस भवनकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ २ ॥ सुंदर गंधवाले धूप, दीप, माला और केसर, कस्तूरी, कपूर, चंदन, अगुरु, पुष्पसार आदि गंधद्रव्य वहाँ जानेसे मनको प्रसन्न कर देते थे। कामशास्त्रके अनुकूल अनेक रंगके विचित्र चित्र वहाँ की शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ३ ॥ अच्युतको अपने घरमें आते देख कर शीघ्रताके साथ कुब्जा आसनसे उठ खड़ी हुई एवं सखियोंके साथ आगे बढ़ कर प्रियतमको लिवालाई। कुब्जाने यथाविधि आसन आदि देकर कृष्णचन्द्र और उद्धवका पूजन किया ॥ ४ ॥ हरिभक्त उद्धवजी केवल हाथसे आसनको छूकर पृथ्वी पर बैठ गये। कृष्णभगवान् भी लोकाचारका अनुसरण करते हुए सब सुखकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण महामूल्य पलँग पर विराजमान हुए ॥ ५ ॥ कुब्जाभी स्नान, लेपन, दुकूल, भूषण, माला, गंध, तांबूल, सुधासम आसव आदि

सोलह सिंगारोंसे शरीरकी वेषभूषा बना कर सलज्जलीलायुक्त मुसकानसे मनोहर विभ्रमपूर्ण कटाक्षोंसे चित्तको चञ्चल करती हुई कृष्णके निकट आई ॥ ६ ॥ कृष्ण भगवान्ने दोनो हाथ पकड़ कर नवसंगमकी लाजसे कुछ शंकित सुंदरी कुब्जाको पास बुला कर पलँग पर लिटा लिया और अनुलेपन देनेके लेशमात्र पुण्यका फल देते हुए उसके साथ विहार करने लगे ॥ ७ ॥ उसने अनन्त भगवान्के चरण-कमलोंको सूँघ कर और कामाग्निसे तपे हुए कुचों पर व वक्षःस्थल पर रख कर एवं आनन्दमूर्त्ति कान्त कृष्णको दोनो बाहुओंसे लिपटा कर चिरसंचित तापको शान्त किया ॥ ८ ॥ अहो! उस अभागिनी कुब्जाने अनुलेपन देकर मोक्ष देनेवाले दुर्लभ ईश्वरको पाकर यह माँगा कि "हे प्रियतम! यहाँ कुछ दिन रह कर मेरे साथ विहार करो। हे कमलनयन! मुझसे आपका संग नहीं छोड़ा जाता" ॥९॥१०॥ मान देनेवाले जगदीश्वर कृष्णचन्द्र उसको मुहमाँगा वर देकर और अलंकार आदिके दानसे सम्मानित कर उद्धवके साथ अपने समृद्धिसम्पन्न घरको गये ॥ ११ ॥ महाराज! जगत्के ईश्वर दुराराध्य हरिको आराधनासे प्रसन्न करके उनसे अति तुच्छ विषयसुखको जो माँगता है वह महा मंदमति है ॥ १२ ॥ इसके बाद प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र, अक्रूरको प्रसन्न करनेके लिये और हस्तिनापुर भेजनेके लिये उद्धव और बलभद्रके साथ उनके घर गये ॥ १३ ॥ पुरुषोंमें श्रेष्ठ अपने बांधवोंको दूर-हीसे आते देख कर अक्रूरजी उठ खड़े हुए और आगे जा कर आनन्दसे अभिनन्दनपूर्वक उनको हृदयसे लगालिया ॥ १४ ॥ कृष्ण-बलभद्रको अक्रूरने प्रणाम किया और उन्होने भी लोकाचारके अनुसार अक्रूरजीको प्रणाम किया। फिर अक्रूरजीने सुंदर आसन देकर उनका विधिपूर्वक पूजन किया ॥ १५ ॥ अक्रूरने उनका पवित्र चरणोदक शिर पर धारण किया और पूजनसामग्री, दिव्य वस्त्र, सुगन्धित माला, उत्तम आभूषण और पान-इलायची आदिसे भली भाँति सत्कार किया ॥ १६ ॥ फिर विनीत और नम्र अक्रूरजी दण्डवत् प्रणाम करनेके उपरान्त कृष्ण बलभद्रके चरणोंको गोदमें रख कर दबाते हुए यों कहने लगे ॥ १७ ॥ अक्रूरने कहा। "बड़ीबात जो पापी कंस अपने अनुचरों सहित आपके हाथों मारागया एवं आपने अपने कुलको दुरन्त कष्टसे उबार कर उन्नत और समृद्ध बनाया ॥१८॥ आप दोनो प्रधानपुरुष, जगत्के कारण और जगन्मय हैं। आपसे विभिन्न और कोई कारण या कार्य्य नहीं है ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्! रजोगुण आदि अपनी ही शक्तियों द्वारा स्वयंसृष्ट इस विश्वमें, कारण होनेके कारण अनुप्रविष्ट न हो कर भी आप अनुप्रविष्टसे प्रतीत होते हैं एवं श्रुत, प्रत्यक्ष व गोचर की भाँति एक हो कर भी अनेक प्रतीत होते हैं ॥ २० ॥ भगवन्! जैसे अपनेही रूपान्तरकी अभिव्यक्तिके स्थान जो चराचर प्राणी हैं उनमें पृथ्वी आदि सब कारण अनेक रूपोंसे प्रकाशित होते हैं वैसे ही आप, निरवच्छिन्न आत्मा और स्वतन्त्र होकर भी, स्वयं

जिनका निमित्तकारण हैं उन भूत-भौतिकादि पदार्थोंमें अनेक प्रतीत होते हैं ॥२१॥ रजोगुण, सतोगुण और तमोगुण; ये आपकी शक्तियाँ हैं। आप इन्ही शक्तियोंसे इस जगत्की सृष्टि, पालन और नाश करके भी उन गुणोंमें या गुणोंके कर्म्मोंमें लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप ज्ञानस्वरूप हैं, बंधनका कारण जो अविद्या है वह आपमें नहीं है ॥ २२ ॥ विचारके द्वारा देहादि उपाधियोंकी यथार्थताका स्थापन नहीं किया जासक्ता; अतएव जीवात्मामें जन्म या जन्मजनित भेद साक्षात्स्वरूपसे नहीं सिद्ध हो सक्ता। इस कारण आप बंधन और मोक्ष दोनोसे रहित हैं–हमारा अज्ञानही आपमें बंधन और मोक्षकी कल्पना करता है ॥ २३ ॥ आपने जगत्के मंगलके लिये यह पुरातन वेदमार्ग प्रकट किया है। इस सनातनमार्गको जब २ असत् लोगोंके कल्पित पाखंडमार्गसे बाधा पहुँचती है तब २ आप धर्ममार्गकी रक्षाके लिये सतोगुणका अवलंबन कर अवतार लेते हैं ॥ २४ ॥ हे सर्वव्यापक! वही आप इस समय असुरोंके अंशोंसे उत्पन्न दुष्ट राजालोगोंकी सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाका संहार कर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये वसुदेवके यहाँ प्रकट हो यदुवंशका यश फैलारहे हैं ॥ २५ ॥ हे ईश्वर! सब वेद, पितृगण, भूतगण, मनुष्यगण और देवगण जिनकी मूर्त्ति हैं एवं जिनका चरणोदक त्रिभुवनको पवित्र करता है वही अधोक्षज जगद्गुरु आप मेरे भवनमें पधारे हैं, आपके चरणोंने मेरे भवनको परम पवित्र और धन्य बना दिया–इसमें कोई संदेह नहीं। आपके आगमनसे आज मैं कृतार्थ हो गया ॥ २६ ॥ नाथ! आप भक्तवत्सल हैं, आपके वाक्य सत्य हैं। आप कृतज्ञ और सबके सुहृद् हैं। आप घटते बढ़ते नहीं हैं, सदा एक से रहते हैं। जो आपके सुहृद् भक्तजन आपका भजन करते हैं, आप सब प्रकार उनकी सब अभिलाषाएँ पूरी करते हैं। इतना ही नहीं बरन् आप अपनेको भी उन्हे दे डालते हैं। भला कौन बुद्धिमान् और पण्डित ऐसा होगा जो आपको छोड़ कर किसी और की शरणमें जायगा? ॥ २७ ॥ योगेश्वर और बड़े २ देवता भी आपके स्वरूपको नहीं जान पाते। वही आप आज हमारी आँखोंके आगे विराजमान हैं–यह हमारा परम सौभाग्य है। हे जनार्दन! आपकी पुत्र, स्त्री, धन, स्वजन, गृह और देहरूपिणी माया प्राणियोंको मोहित करती है। कृपापूर्वक उस दुरन्त मायासे मुझको मुक्त कीजिये" ॥२८॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। महाराज! भक्त अक्रूरने इस प्रकार पूजनपूर्वक स्तुति की, तब भगवान् कृष्णचन्द्र अपने वाक्योंसे मोहित करते हुए मुसकाकर कहने लगे कि "हे तात! तुम हमारे गुरु, पितृव्य एवं सब समय प्रशंसनीय हितैषी बन्धु हो। हम आपके कृपापात्र सन्तान हैं। आपका कर्तव्य है कि आप हमारा पालन, पोषण और रक्षा करें ॥२९॥३०॥ जिन मनुष्यों-को मंगललाभकी इच्छा हो उनको उचित है कि आप ऐसे पूजनीय महाभाग साधुओंकी सेवा करें। आप ऐसे साधुजन देवतोंसे भी बढ़कर हैं, क्योंकि देवतालोग

अपना कार्य्य सिद्ध करनेमें तत्पर देखे जाते हैं, किन्तु आप ऐसे साधुजन सदा परोपकारमें निरत रहते हैं ॥ ३१ ॥ जलमय तीर्थ अवश्य तीर्थ हैं, और मट्टी व शिलाके बने हुए देवता भी अवश्य देवता हैं। किन्तु साधुलोग उनसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे चिरकाल तक सेवा करनेसे पवित्र करते हैं, परन्तु साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और मन शुद्ध हो जाते हैं ॥ ३२ ॥ तात! हमारे सब आत्मीय स्वजनोंमें आप श्रेष्ठ हैं। अतएव आप पाण्डवोंके कल्याणके लिये और कुशल क्षेम जाननेके लिये हस्तिनापुरको जाइये ॥३३॥ हमने सुना है कि बालक पाण्डवोंके पिता पाण्डु-का देहान्त हो गया है, अतएव वे मातासहित अत्यन्त दुःखमें पड़कर पीड़ित हो रहे हैं। अब उनके चाचा राजा धृतराष्ट्रने उनको लाकर अपने पुरमें बसाया है ॥ ३४ ॥ किन्तु अम्बिकाके तनय दीनबुद्धि अंध राजा धृतराष्ट्र अपने कुपुत्रोंके कहने पर चलते हैं, इस लिये अवश्य वह अपने पुत्र और भतीजोंसे एक सा बर्ताव न करते होंगे ॥ ३५ ॥ तुम जाकर वहाँ उनका वृत्तान्त विदित करो कि वे (पाण्डव) सुखसे रहते हैं या उनको कष्ट मिलता है। तुम्हारे मुखसे वहाँका हाल जान कर मैं उचित उपाय करूँगा, जिससे स्वजनों (पाण्डवों)का कल्याण होगा" ॥ ३६ ॥

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान्हरिरीश्वरः ॥
संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इस प्रकार अक्रूरको आज्ञा देकर श्री कृष्णजी बलभद्र और उद्धवके साथ अपने भवनको गये ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाश अध्याय।

अक्रूरका हस्तिनापुर जाना।

श्रीशुक उवाच—स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ॥
ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! पुरुवंशी श्रेष्ठ राजोंकी कीर्तिसे व्याप्त हस्तिनापुरमें जाकर अक्रूरने धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाल्हीक, सोमदत्त, द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य, कर्ण, दुर्य्योधन, अश्वत्थामा, पाण्डवगण एवं अन्यान्य सुहृद् और बंधुओंसे भेंट की ॥१॥२॥ अक्रूरजी यथोचित रीतिसे जब बंधुबांधओंसे मिल चुके तब उन्होने अक्रूरसे और अक्रूरने उनसे परस्पर सब बंधुओंकी

कुशल पूछी । इस प्रकार अक्रूरजीने सबको प्रसन्न किया और स्वयं आनन्दित हुए ॥३॥ महाराज ! अक्रूरजीने दुर्बुद्धि राजाके आचरण जाननेके लिये कुछ दिन हस्तिनापुरमें वास किया । अक्रूरने देखा कि राजा धृतराष्ट्रके सब पुत्र दुष्ट हैं और वे अपने दुष्ट मंत्री कर्ण आदिकी इच्छाके अनुसार सब कार्य्य करते हैं ॥ ४ ॥ कुन्ती और विदुरने पाण्डवोंके तेज, शस्त्रचलानेकी निपुणता, बल, वीर्य्य, विनय आदि सद्गुण एवं उन पर प्रजागणके अनुरागका सम्पूर्ण वृत्तान्त अक्रूरको बताया । और यह भी बताया कि 'दुष्ट धृतराष्ट्रके पुत्र पाण्डवोंके बल और गुणोंकी उन्नतिको नहीं देख सके' ॥ ५ ॥ पाण्डवोंको मारनेके लिये दुष्ट दुर्य्योधन आदिने विषदान आदि जो दुराचरण किये थे उनका भी कुन्ती और विदुरने वर्णन किया ॥ ६ ॥ कुन्तीजी आये हुए भाई अक्रूरके पास आईं और अपने जन्मभवन (मायके)का स्मरण करके आँखोंमें आँसू भर कर कहने लगीं कि "हे सौम्य ! हमारे माता, पिता, भाई, भगिनी, भतीजे, कुलकी स्त्रियाँ और सखियाँ क्या कभी हमारा स्मरण करते हैं ? ॥ ७ ॥ ८ ॥ शरणागतरक्षक, भक्तवत्सल हमारे भतीजे भगवान् कृष्ण और कमलनयन बलभद्रजी क्या कभी अपनी बुआके पुत्रोंका स्मरण करते हैं ? ॥ ९ ॥ भेड़ियोंके बीच हरिणीके समान मैं शत्रुओंके बीच वास करती हुई शोकसे आकुल होरही हूँ । क्या कृष्णचन्द्र कभी यहाँ आकर मुझको और बिना पिताके मेरे बालकोंको अपने मधुर बचनोंसे धैर्य्य देंगे ? ॥ १० ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महायोगी ! हे विश्वमय ! हे विश्वपालक ! हे गोविन्द ! मैं अपने असमर्थ बालकों सहित निरन्तर कष्ट भोग रही हूँ । भगवन् ! मैं अत्यन्त पीड़ित हो रही हूँ । मैं आपकी शरणमें आई हूँ—मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ ईश्वर ! मोक्षदनेवाले आपके चरणकमलोंके सिवा मृत्यु और संसारके भयसे शंकित मनुष्योंके लिये और कोई बचावका स्थान मुझको नहीं देख पड़ता ॥ १२ ॥ धर्म्मात्मा, अपरिच्छिन्न, जीवके सखा, अणिमादिगुणयुक्त, ज्ञानस्वरूप, श्रीकृष्णको प्रणाम है । हे प्रभो ! मैं आपकी शरणमें आई हूँ" ॥ १३ ॥ **श्रीशुकदेवजी** कहते हैं । महाराज ! आपकी प्रपितामही कुन्ती स्वजनोंका और श्रीपति जगदीश्वर कृष्णका स्मरण कर इस प्रकार दुःखित हो रोने लगीं ॥ १४ ॥ दुःख और सुखको समान समझनेवाले अक्रूर और महायशस्वी विदुरने कुन्तीके पुत्रोंके जन्मदाता इन्द्र आदिकी कथा कह कर कुन्तीको समझाया और आश्वास दिया ॥ १५ ॥ अक्रूरजी चलते समय पुत्रवत्सल एवं भतीजोंसे विषम व्यवहार करनेवाले राजा धृतराष्ट्रके पास गये । उस समय सभामें सभी जातिवाले, वंशवाले एवं सुहृद्गण उपस्थित थे । जो कुछ मित्रभावसे कृष्ण बलभद्र आदि बंधुओंने धृतराष्ट्रसे कहनेके लिये सँदेसा दिया था सो सबके सामने अक्रूरजी इस प्रकार कहने लगे ॥ १६ ॥ अक्रूरजीने कहा

"हे विचित्रवीर्य्यके पुत्र महाराज! कुरुवंशकी कीर्तिको बढ़ानेवाले बड़े भाई पाण्डुका देहान्त हो जानेसे आप इस समय राज्यासन पर बैठे हैं ॥ १७ ॥ आप यदि आत्मीय स्वजनोंको समदृष्टिसे देखते हुए, धर्म्मसे पृथ्वीका पालन करेंगे और अपने सत् चरित्र व सुशीलसे प्रजाको प्रसन्न रक्खेंगे तो आपका कल्याण होगा और जगत्में सुकीर्ति फैलेगी। यदि इसके विपरीत चलेंगे तो यहाँ निन्दा होगी और मरने पर नरकोंकी घोर यातनाएँ भोगना होगा। इस कारण आप अपने पुत्रोंको और पाण्डवोंको समदृष्टिसे देखिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ राजन्! यहाँ किसीके साथ किसीको चिरकाल तक नहीं रहना है। स्त्री-पुत्र आदिकी कौन कहे-अपना प्यारा शरीर भी साथ नहीं जाता ॥२०॥ यह जीव अकेला ही उत्पन्न होता है और अकेला ही यहाँसे जाता है एवं अकेला ही अपने किये पाप या पुण्यका फल भोगता है ॥ २१ ॥ जलमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीवोंके प्रिय जलको जैसे और लोग ले जाते हैं वैसेही मूढ़ व्यक्तिके अधर्म्म संचित धनको स्त्री-पुत्र-बंधुनामधारी और ही लोग उड़ाते हैं ॥ २२ ॥ यह मूर्ख जीव, अपना समझकर, अधर्म्मपूर्वक जिनका पोषण करता है वे शरीर, पुत्र और सम्पत्ति आदि, उसकी इच्छा भलीभाँति पूर्ण नहीं होने पाती और बीचमें ही उसको छोड़ देते हैं। तब अपने धर्मसे विमुख और अपने उचित प्रयोजनको न जाननेवाला, अपूर्णमनोरथ जीव, किये हुए पापोंका फल भोगनेके लिये नरकमें जाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥ हे राजन्! हे प्रभो! अतएव इस लोकको स्वप्न, माया अथवा मनोरथके समान अनित्य समझ कर अपने आपही मनका दमन करो एवं शान्त और समदर्शी बनो" ॥ २५ ॥ यह सुन कर धृतराष्ट्रने कहा। "हे अक्रूर! आपके ये वचन मंगलमय हैं, जैसे मनुष्य अमृतको पाकर तृप्त नहीं होता वैसे ही मुझे भी इन वचनोंसे तृप्ति नहीं होती, अर्थात् जी चाहता है कि सुना ही करूँ ॥ २६ ॥ हे सौम्य! तथापि मेरा हृदय पुत्रानुरागसे ऐसा विषम और चञ्चल हो रहा है कि सौदामिनी बिजलीकी भाँति तुम्हारे ये सुंदर वचन उसमें नहीं ठहरते ॥ २७ ॥ जो ईश्वर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतरे हैं उन कृष्णचन्द्रके विधानको कौन पुरुष अन्यथा कर सक्ता है? ॥ २८ ॥ जिसके मार्ग अचिन्त्य हैं उस अपनी माया द्वारा जो विश्वकी रचना करके विश्वके भीतर प्रवेशपूर्वक कर्म और कर्म्मफलोंका विभाग कर देते हैं उन परमेश्वरको प्रणाम है। उनकी दुर्बोध क्रीड़ा ही इस संसारका कारण है; वही काल-रूपसे इस संसारचक्रके संचालक हैं" ॥ २९ ॥ ३० ॥

शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥
पाण्डवान्प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! यदुवंशी अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्रके उक्त अभिप्रायको जान कर सुहृद्गणसे आज्ञा ले, मथुरापुरीको लौटे । अक्रूरजीने पुरीमें आकर कृष्ण व बलदेवसे धृतराष्ट्रका वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ३१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

इति दशमस्कंधपूर्वार्द्धं समाप्तम् ।

शुकोक्तिसुधासागरः ।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध—उत्तरार्धः ।

रुक्मिणीहरण ।

रुक्मिणीपरिणय ।

॥ श्रीः ॥

शुकोक्तिसुधासागरः।

अर्थात्

श्रीमद्भागवतभाषा.

दशमस्कन्ध–उत्तरार्धः।

पञ्चाशत्तम अध्याय।

द्वारकादुर्गकी रचना।

श्रीशुक उवाच–अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे भरतश्रेष्ठ! अस्ति और प्राप्ति नाम कंसकी दोनो रानियाँ स्वामीके मरने पर दुःखसे आतुर होकर अपने पिता जरासंधके घर गईं ॥ १ ॥ उन दुःखित रानियोंने अपने पिता मगध देशके राजा जरासंधसे अपने विधवा होनेका कारण कहा ॥ २ ॥ यह अप्रिय सम्वाद सुनते ही राजा जरासंधको पहले शोक और पीछे अत्यन्त क्रोध हुआ। उसने पृथ्वीको यादवोंसे शून्य करनेके लिये बड़ा उद्योग किया ॥ ३ ॥ जरासंधने तेईस अक्षौहिणी सेना एकत्र कर यादवोंकी राजधानी मथुराको चारो ओरसे घेर लिया ॥ ४ ॥ कृष्णभगवान्‌ने देखा कि उमड़ते हुए सागरके समान शत्रुसेनाने अपने पुरको घेर लिया और यह देखकर सब स्वजन भयाकुल हो रहे हैं ॥ ५ ॥ तब किसी कारणसे मायामानव-

रूपधारी वृन्दावनविहारीने देश-काल-गुणके अनुरूप अपने अवतारके प्रयोजन पर विचार करके यह निश्चय किया कि-"मगधराज जरासंधकी लाई हुई राजोंकी इस पदाति, अश्व, गज और रथ आदिसे सुशोभित कई अक्षौहिणी सेनाने मेरे नगर पर आक्रमण किया है; यही पृथ्वीका संचित भार है। मैं इस सेनाका संहार करके जरासंधको छोड़ दूँगा, क्योंकि यह फिर जाकर सेनाका संचय करेगा। साधुओंकी रक्षा, असाधुओंका संहार और पृथ्वीका भार उतारना ही मेरे अवतारका प्रयोजन है। कभी २ मुझको पृथ्वी पर प्रकट होना पड़ता है। धर्म्मकी रक्षा और अधर्म्मका उच्छेद करनेके लिये मेरे अन्यान्य अवतार भी होते हैं" ॥६॥७॥८॥९॥१०॥ सूतजी अट्ठाईस हजार शौनकादिक ऋषियोंसे कहते हैं कि कृष्ण भगवान् यों विचार कर ही रहे थे कि इसी अवसरमें आकाशसे सूर्य्यके समान किरणमालामंडित दो रथ आपही आप पृथ्वी पर उतरते देखपड़े। रथोंमें दो सारथी बैठे हुए थे एवं विचित्र ध्वजा-पताका और दिव्य सनातन अस्त्र शस्त्र उस रथकी शोभा बढ़ा रहे थे। उन रथोंको देखकर कृष्णचन्द्रने संकर्षण भगवान्से कहा कि "हे आर्य्य! देखो, आपही जिनकी रक्षा करनेवाले हैं वे यादव आज विपत्तिमें पड़े हैं। दादा! यह आपका रथ और प्रिय शस्त्र आगये हैं। रथ पर चढ़ कर इस शत्रुसेनाका संहार करिये और आत्मीयोंको इस घोर विपत्तिसे उबारिये। हे ईश! साधुओंको सुखी रखनेके लिये ही हमारा अवतार हुआ है। यह तेईस अक्षौहिणीसेनारूप पृथ्वीका भार नष्ट करिये"। इस प्रकार मंत्रणा कर कृष्ण बलभद्रने कवच धारण किया और अस्त्रशस्त्रपूर्ण रथों पर चढ़ कर थोड़ी सी सेना साथ ले पुरसे बाहर निकले। दारुक जिनका सारथी है उन कृष्णने बाहर आकर अपना शंख बजाया। उस शंखनादने शत्रुसेनाके हृदय हिला दिये। जरासंधने जब कृष्ण बलभद्रको देखा तो पास आकर कहने लगा कि "रे पुरुषाधम कृष्ण! तू बालक है, तुझसे लड़ते मुझे लज्जा आती है। इस कारण यद्यपि तू मेरे बंधु (कंस) का घातक है तथापि मैं तुझसे नहीं लड़ूँगा। तू अपनेको बालक होनेके कारण सुरक्षित समझ, अन्यथा तेरा बचना असम्भव था। बलभद्र! तेरी यदि युद्ध करनेकी इच्छा हो तो धैर्य्यसहित युद्ध कर। तू या मेरे बाणोंसे छिन्नभिन्न शरीरको छोड़ कर स्वर्गको जा अथवा मुझको मार कर जय प्राप्त कर" ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ ॥ १८ ॥ १९ ॥ **श्रीकृष्ण भगवानने कहा**। "अरे मंद! शूर लोग अपने मुखसे अपनी बड़ाई नहीं करते, किन्तु अपना पौरुष दिखलाते हैं। मगधराज! तू मरनेवाला है—इस लिये हम तेरे असत्प्रलापका बुरा नहीं मानते" ॥ २० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** कि राजन्! वायु जैसे मेघमालासे सूर्य्यको और धूलसे अग्निको ढाँक लेता है वैसे ही मगधराज जरासंधने सामने होकर अपनी प्रचण्ड सेनाके प्रवाहसे सैनिक, रथ, ध्वजा, अश्व और सारथी सहित कृष्ण-बलभद्रको आच्छन्न कर लिया ॥ २१ ॥ पुरनारियाँ नगरीकी अँटारी, महल और गोपुरों पर

चढ़ी हुई युद्धको देख रही थीं। वे स्त्रियाँ, गरुड़ और ताड़के चिन्ह जिनमें हैं उन कृष्ण-बलभद्रके रथोंको रणभूमिमें न देख कर शोक और सन्तापकी व्यथासे अचेत हो २ गईं ॥२२॥ भगवान्ने शत्रुसेनारूप विशाल मेघमालासे हो रही अनन्त बाणोंकी वर्षासे अपनी सेनाको विचलित होते देख, सींगका बना हुआ (शार्ङ्ग) श्रेष्ठ धनुष हाथमें लिया और उस परसे तीक्ष्ण बाण बरसा कर पदाति, रथ, अश्व और गजोंका विनाश करना आरंभ किया। भगवान्को तर्कससे बाण निकालते, धनुषको चढ़ाते, डोरीको खींचते और बाणको छोड़तेमें कुछ भी देर न लगती थी—अंगारचक्रके समान धनुषका मण्डल देख पड़ता था ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ हाथियोंके मस्तक फटगये और वे रणभूमि पर मर २ कर गिरने लगे, अनेकानेक घोड़ोंके शिर धड़से अलग हो गये और बाण लगनेसे वे गिर कर मरने लगे और घोड़े, सारथी, रथी एवं ध्वजाओंसे शून्य रथ, बाणोंकी चोटोंसे चूर होने लगे। पदातिसेनाके भुजा, ऊरू, कंधे आदि अंग सब छिन्न-भिन्न होगये ॥ २५ ॥ महामनस्वी अपरिमित तेजस्वी बलभद्र देवने मूशलसे मदमत्त शत्रुओंको मार कर घोड़े हाथी और मनुष्योंके कटे हुए अंगोंसे बह रहे रक्तकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। वे नदियाँ भीरु जनोंको भय देनेवाली और शूरवीरोंको उत्साहित व प्रसन्न करनेवाली थीं। उन नदियोंमें बह रहे कटे हुए हाथ सर्प जान पड़ते थे। खोपड़ियाँ कछुओंकी श्रेणी जान पड़ती थीं। मरे हुए हाथियोंके शरीर छोटे २ टापू जान पड़ते थे। घोड़ोंके रुंडमुंड ग्राह से जान पड़ते थे और कटे हुए पैर एवं भुजाएँ मानो मच्छ और मछलियाँ थीं। उन नदियोंको, नरकेशोंकी सेवार, धनुषोंकी तरंगें, अस्त्रोंके गुल्म, ढालोंके भयंकर आवर्त्त (चक्कर) एवं उत्तम २ आभूषण व मणिगणकी कंकड़ियाँ बहुत भयानक बनारही थीं ॥२६॥२७॥२८॥ हे राजन्! सागरसदृश दुर्गम भयानक और अथाह उस जरासंधकी लाई हुई सेनाको क्षणभरमें कृष्ण-बलभद्रने विनष्ट कर डाला। यह अद्भुत कार्य्य उन जगदीश्वरोंके लिये एक साधारण क्रीड़ामात्र है ॥ २९ ॥ जो अनन्तगुणपूर्ण भगवान् अपनी लीला(माया)के द्वारा इस सृष्टिकी सृष्टि, पालन और नाश करते हैं उनके लिये असाधुओंका दमन करना कुछ विचित्र बात नहीं है। तथापि उन्होंने मनुष्यचरित्रका अनुकरण किया, इस कारण उनके ऐसे अलौकिक पवित्र चरित्रोंका वर्णन किया जाता है ॥ ३० ॥ जरासंधकी सब सेनाका क्षय हो गया- रथ भी टूट गया-केवल प्राण रह गये, उस समय महाबली मगधराजको बलभद्रजीने लपक कर पकड़ लिया, जैसे कोई सिंह किसी गजको पकड़ले ॥ ३१ ॥ यद्यपि जरासंधने अनेक राजोंको मार डाला था, उसको मार डालनाही योग्य था, तथापि वारुण और मानुष पाशोंसे बाँध कर जब बलभद्रजीने उसको मारना चाहा तब कृष्णने उनको रोक लिया, क्योंकि

कृष्णचन्द्रको जरासंधसे अभी और काम कराना था ॥ ३२ ॥ वीरसमाजमें माननीय जरासंधको जगदीश्वरोंने छोड़ दिया और वह लज्जाके कारण तपका संकल्प करके किसी पवित्रस्थानको चला; किन्तु राहमें उसके साथी राजोंने समझा बुझाकर, धर्मवाक्योंकी शिक्षा सुना कर और लौकिक नीतिका वर्णन करके उसको रोक लिया। राजोंने कहा कि "आप भाग्यवश यादवोंसे अबकी हार गये हैं–इस लिये शोक या लज्जाके वश न हो कर फिर प्रयत्न करिये" ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ राजन्! सब सेना नष्ट हो गई और कृष्ण बलदेवने उपेक्षापूर्वक छोड़ दिया, अतएव जरासंध उदास हो कर अपने मगध देशको लौट गया ॥ ३५ ॥ इधर मुकुंदने भी शत्रुसेनासागरके पार पहुँच कर, जिनका सब भय दूर होगया है उन प्रसन्नचित्त मथुरावासियोंके साथ, पुरीमें प्रवेश किया। कृष्णने अमृतवर्षिणी दृष्टिसे अपनी सेनाको देखा, उसी समय सब सेना सजीव हो गई, किसीके शरीरमें मानो एक भी घाव नहीं लगा था। उस समय "साधु–साधु" कह कर अनुमोदन करते हुए देवगण दोनो भाइयोंके ऊपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। राजन्! जिस समय कृष्ण–बलभद्रने पुरीमें प्रवेश किया उस समय सूत, मागध और वंदीजन जयगान करते हुए आगे २ चले। शंख, दुंदुभी, भेरी, तूर्य्य, वीणा, वेणु, मृदंग आदि अनेकानेक बाजे बजने लगे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ नगरीके सब मार्गोंमें चंदनके जलका छिड़काव हुआ था, ध्वजा और पताकाएँ शोभा बढ़ा रही थीं, स्थान २ पर ब्राह्मणलोग पवित्र वेदपाठ कर रहे थे, कौतुकके लिये बंदनवार बँधे हुए थे और कृत्रिम फूलोंसे सजे हुए फाटक बहुत ही मनोहर जान पड़ते थे ॥ ३९ ॥ पुरप्रवेशके समय सब पुरनारियाँ प्रभुके ऊपर माला, दही मिले अक्षत, दूबके अंकुर और फूल फेंकती हुई प्रीतिप्रफुल्ल नयनकमलोंसे स्नेहपूर्वक उनको निहारने लगीं ॥ ४० ॥ रणभूमिमें जो शत्रुओंकी अनन्त सम्पत्ति और आभूषण मिले सो सब लाकर कृष्णचन्द्रने उग्रसेनजीके आगे रख दिया ॥ ४१ ॥ राजन्! हारने पर भी मगधराजका उत्साह नहीं नष्ट हुआ। इसी प्रकार उसने तेईस २ अक्षौहिणी सेना संग्रह कर, सत्रह बार, कृष्ण–बलदेव जिनके रक्षक हैं उन यादवोंसे युद्ध किया ॥ ४२ ॥ किन्तु कृष्णभगवान्के तेजसे यादवोंने हर बार उसकी सब सेनाका संहारके उसको पहलेकी भाँति बारम्बार छोड़ २ दिया ॥ ४३ ॥ जरासंध अट्ठारहवीं बार यादवों पर आक्रमण करनेही वाला था, इसी बीचमें नारदकी प्रेरणासे युद्ध करनेके लिये आया हुआ कालयवन युद्धभूमिमें देख पड़ा। उसने पृथ्वीमण्डल पर फिर कर कहीं अपनी समताका बली योद्धा नहीं पाया। इस समय नारदके मुखसे यादवोंको समकक्ष सुन कर तीन करोड़ यवनोंसे उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ उसको देख कर बलभद्र जिनके सहायक हैं उन कृष्णचन्द्रने विचार किया कि—"अहो! दोनो ओरसे

यादवोंके लिये महा विपत्ति उपस्थित है । इस समय इस महाबली यवनने आकर हमको घेर लिया है; उधर जरासंध भी कल या परसों आकर पहुँच जायगा ॥४६॥ ॥ ४७ ॥ कालयवनसे युद्ध करते समय यदि बली जरासंध आजायगा तो हमारे बंधुओंको मार डालेगा अथवा पकड़कर अपने पुरको ले जायगा । इससे हम ऐसे दुर्गकी रचना करावेंगे, जहाँ कोई मनुष्य कठिनतासे जा सकेगा; उसी दुर्गमें स्वजनोंको रखकर यवनका विनाश (मुचुकुन्द द्वारा) करावेंगे" ॥४८॥४९॥ इस प्रकार विचार करके भगवान्‌ने विश्वकर्म्मासे समुद्रके भीतर बारह योजनका संपूर्ण विचित्र (द्वारका) नगर एक ही रातमें बनवाया ॥ ५० ॥ उस नगरमें विश्वकर्म्मा का विज्ञान और शिल्पनिपुणता (कारीगरी) झलकती है । उसमें वास्तुगृह बनानेके लिये स्थान छोड़कर राजमार्ग, छोटी २ गलियाँ और आँगन (सहन) बने हुए हैं ॥ ५१ ॥ देवलोकके वृक्ष और लताओंसे सुशोभित बड़े २ उद्यान और विचित्र उपवन उस नगरकी शोभाको बढ़ा रहे हैं । आकाशको रहे ऊँचे २ महलोंके सुवर्णमण्डित शिखर और स्फटिकमणिसे परिपूर्ण अटारियाँ और गोपुर देखनेही योग्य हैं ॥ ५२ ॥ हेमकलशोंसे अलंकृत, चाँदी–पीतल–लोहा आदि धातुओंसे संकलित अश्वशालाएँ और अन्नशालाएँ जहाँ तहाँ बनी हुई हैं । सुवर्णमण्डित भवन बने हुए हैं, उन भवनोंके शिखर रत्नमय हैं और पृथ्वी (फर्श) मरकत मणिकी बनी हुई है ॥ ५३ ॥ वास्तुभवन और वलभियाँ उन भवनोंकी शोभा बढ़ा रही हैं । चारो वर्णके लोग वहाँ रहते हैं । नगरके बीचमें कृष्णचन्द्रके और उनके परिवारके महल बने हुए हैं ॥ ५४ ॥ राजन् ! इन्द्रने हरिके पास कल्पवृक्ष और अपनी सुधर्म्मा सभा भेज दी । उस सभामें बैठनेवाले पुरुषोंको भूख–प्यास–शोक–मोह–वृद्धता आदि मनुष्य-धर्म्म नहीं पीड़ा पहुँचाते ॥ ५५ ॥ वरुणने मनके समान वेगवाले श्वेतवर्ण घोड़े भेजे, जिनका एक २ कान श्यामवर्ण था । निधिपति कुबेरने आठो निधियाँ एवं और २ लोकपालोंने अपनी २ विभूतियाँ ईश्वरके नगरमें भेज दीं । राजन् ! भगवान्‌ने अपना २ अधिकार साधनेके लिये अन्यान्य सिद्धजनोंको जो २ सिद्धियाँ दी थीं, उन्होने, पृथ्वीमें अवतीर्ण उन्ही भगवान्‌को वे २ सिद्धियाँ कुछ कालके लिये लौटा दीं । भगवान् हरि श्रीकृष्णने अपने योगबलसे आत्मीय जनोंको उसी द्वारका नगरमें पहुँचा दिया और कालयवन या उसके सैनिक, कोई भी नहीं जानसके ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ॥
निर्जगाम पुरद्वारात्पद्ममाली निरायुधः ॥ ५८ ॥

कृष्णचन्द्रजी सबको द्वारका भेजकर और बलभद्रसे यह कहकर कि 'तुम यहीं रहकर प्रजाकी रक्षा करो–मैं यवनको मार कर अभी आता हूँ' मथुरापुरीमें लौट

आये। तदनन्तर केवल कमलकी माला पहने कमलनयन कृष्णचन्द्र पुरके द्वारसे बाहर निकले। उस समय भगवान्‌के पास कोई शस्त्र नहीं था ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपंचाशत्तम अध्याय।

मुचुकुंदकी दृष्टिसे कालयवनका विनाश।

श्रीशुक उवाच—तं विलोक्य विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥
दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! जैसे पूर्व दिशामें पूर्ण चन्द्र प्रकट हो वैसे कृष्णचन्द्र पुरद्वारसे बाहर निकल कर शोभायमान हुए। परम सुंदर हरिके श्याम शरीर पर पीतपट और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स एवं गलेमें दीप्तिशाली कौस्तुभमणि शोभायमान थी। उनकी चारो भुजाएँ विशाल और स्थूल एवं आँखें नवीन रक्तकमलके समान थीं। उनका सदैव शान्त मुखमण्डल आनन्दसे परिपूर्ण था। उनके सुन्दर कपोल महामनोहर रूपसे सुशोभित थे। मंद मुसकानसे मुखारविंदकी अपूर्व शोभा थी और उस शोभाको हिल रहे मकराकृत कुंडल और भी बढ़ाते थे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ भगवान्‌को देख कर यवनने विचारा कि "नारदने जो चिन्ह बताये थे वे सब इसमें देख पड़ते हैं। इसके हृदयमें श्रीवत्सका चिन्ह है, चार भुजा हैं, कमलके समान विशाल नेत्र हैं, गलेमें वनमाला पड़ी है, रूप अत्यन्त सुंदर है। अतएव अवश्य यही वासुदेव कृष्ण है, और कोई नहीं है। इस समय यह पैदल है और इसके पास कोई शस्त्र नहीं है, इस कारण मैं भी बिना कोई शस्त्र लिये पैदल ही इससे युद्ध करूँगा" ॥४॥५॥यह निश्चय करके यवनने पीछेसे दौड़कर, योगीजन भी जिनको नहीं पकड़ पाते उन कृष्णको पकड़ना चाहा। यवनराज, अब पकड़ लिया, अब पकड़ लिया, ऐसा समझकर बार २ हाथ लपकाता हुआ बहुत दूर कृष्णके पीछे चला गया। कृष्णचन्द्र उसको यों दौड़ाते हुए एक पर्वतकी कंदरामें घुस गये ॥ ६ ॥ ७ ॥ जिसका अशुभ नष्ट नहीं हुआ वह कालयवन "हे कृष्ण! तू यदुवंशमें उत्पन्न हुआ है, तुझे भागना उचित नहीं है" यों आक्षेप करता हुआ कृष्णके पीछे गया; किन्तु कृष्णको नहीं पासका ॥ ८ ॥ इस प्रकार कालयवनने वारम्वार क्रोध उपजानेवाले आक्षेपपूर्ण वाक्य कहे, किन्तु कृष्णचन्द्र नहीं ठहरे और पर्वतकी कंदरामें घुस गये। कृष्णके पीछे कालयवन भी कंदरामें घुसा। उसने कंदरामें जा कर देखा एक पुरुष सो रहा है। वह पुरुष कोई और था, कृष्णचन्द्र नहीं थे, किन्तु कालयवनने यह समझा कि यह कृष्ण ही

मुझको इतनी दूर यहाँ लाकर जैसे कुछ जानता ही नहीं, इस प्रकार ढोंग साध कर प्राण बचानेके लिये सो रहा है। अतएव उसने उस सो रहे पुरुषके कस कर एक लात मारी ॥९॥१०॥ बहुत कालसे सो रहा वह पुरुष लात खाकर उठबैठा। उसने धीरे २ नेत्र खोल कर चारो ओर देखा। पास ही खड़े हुए कालयवन पर जैसे ही उसकी दृष्टि पड़ी वैसे ही क्षणभरमें अपने ही शरीरसे उत्पन्न अग्निमें यवनराज भस्म होगया॥११॥१२॥ **राजा परीक्षित्ने कहा।** ब्रह्मन्! जिसकी दृष्टि पड़तेही यवनराज भस्म हो गया वह पुरुष कौन था? किसका पुत्र था? उसमें तेज और पराक्रम कितना था? उस कंदरामें जा कर क्यों सोया था? ॥१३॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** महाराज! वह इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न महाराज मांधाताके पुत्र महाब्रह्मण्य और सत्यवादी राजा मुचुकुंद थे ॥ १४ ॥ एक समय प्रबल असुरोंने देवतोंको हरा दिया, तब असुरोंसे डरे हुए इन्द्र आदि देवतोंने अपनी रक्षा करनेके लिये राजा मुचुकुंदसे आकर प्रार्थना की। राजाने जाकर बहुत काल तक स्वर्गलोककी और इन्द्र आदि देवतोंकी रक्षा की ॥ १५ ॥ तदनन्तर शिवके पुत्र कार्त्तिकेयको अपना रक्षक पाकर सब देवतोंने राजा मुचुकुंदसे कहा कि–"राजन्! अब आप हमारी रक्षाके कष्टसे निवृत्त होइये। हे वीर! आप मनुष्यलोक और निष्कण्टक राज्य छोड़ कर हमारी रक्षामें प्रवृत्त हुए एवं सब प्रकारके सांसारिक भोगोंसे वंचित रहे ॥ १६ ॥ १७ ॥ आपके पुत्र, रानियाँ, जातिवाले, अमात्य, मन्त्री एवं समकालीन प्रजागण इस समय पृथ्वी पर नहीं हैं, उनको कालने नष्ट कर दिया ॥ १८ ॥ महाराज! काल बड़ा बली है, उसीको भगवान्, ईश्वर और अव्यय कहते हैं। क्रीड़ा करते हुए पशुपाल जैसे पशुओंका संचालन करता है वैसे ही वह काल प्रजागणका संचालन करता है ॥ १९ ॥ महाराज! आपका कल्याण हो, मुक्तिको छोड़कर और जो कुछ आपकी अभिलाषा हो सो निःसंकोच हो कर हमसे माँगो। मोक्ष देनेकी शक्ति केवल भगवान् अव्यय नारायणमें ही है" ॥२०॥ राजाने जब देवतोंसे निद्रा माँगी तब देवतोंने कहा कि "जाओ तुम जाकर शयन करो, तुमको सोतेमें जो कोई जाकर जगावेगा वह तुम्हारी दृष्टि पड़तेही उसी क्षण भस्म हो जायगा" ॥२१॥ इस प्रकार देवतोंके कहने पर महायशस्वी मुचुकुंद उनको प्रणाम कर कंदरामें देवदत्त निद्रासे अचेत होकर सोगये ॥२२ ॥ राजन्! इस प्रकार मुचुकुंदकी दृष्टिसे जब कालयवन भस्म होगया, तब यादवश्रेष्ठ बुद्धिमान् भगवान् मुचुकुंदके सामने आये ॥२३॥ मुचुकुंदने देखा कि भगवान्का शरीर जल भरे मेघके समान श्यामवर्ण है, उस शरीर पर रेशमी पीतपट शोभायमान है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्स और कंठमें दीप्तिशाली कौस्तुभमणि शोभाको बढ़ा रही है ॥ २४ ॥ चतुर्भुज भगवान् वैजयन्ती मालासे सुशोभित हैं। प्रसन्न मुख महामनोहर है और कानोंमें मक-

राकृत कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा है ॥ २५ ॥ वह सुन्दर स्वरूप मनुष्य लोगोंके लिये एक दर्शनीय वस्तु है। भगवान्‌की अनुरागसूचक मंद मुसकानसे मनोहर दृष्टि भवभयहारिणी है। उनकी अवस्था किशोर है एवं विक्रम मत्त मृगराजके समान उदार है ॥ २६ ॥ तेजके कारण दुर्द्धर्ष श्रीकृष्णके तेजसे धर्षित और शंकित महाबुद्धि राजाने धीरे २ यों पूछा। **मुचुकुंदने कहा**। आप कौन हैं? इस असंख्य कण्टकाकुल वनमध्यस्थ गिरिकंदरामें आकर पद्मपत्रतुल्य सुकुमार चरणोंसे इधर उधर क्यों विचर रहे हैं? ॥२७॥२८॥ आप सब तेजस्वी पुरुषोंका एकत्रीकृत तेजःपुंज हैं? अथवा साक्षात् भगवान् अग्नि हैं? आप सूर्य्यदेव हैं? चन्द्रमा हैं? या महेंद्र हैं? या कोई लोकपाल अथवा देवता हैं? ॥ २९ ॥ मेरी समझमें आप सब देवतोंके देवता जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं उनमेंसे पुरुषोत्तम नारायण देव हैं; क्योंकि दीपक जैसे अपनी प्रभासे अंधकारको दूर करता है वैसे ही आप अपने तेजसे इस कंदराके अन्धकारको नष्ट कर रहे हैं ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ! हम सुनना चाहते हैं, इस लिये यदि आपकी इच्छा हो तो अपने यथार्थ जन्म, कर्म और गोत्रका वर्णन करिये ॥ ३१ ॥ हे पुरुषसिंह! हम इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न प्रसिद्ध क्षत्रिय हैं। हे प्रभो! मैं युवनाश्वका पोता और मान्धाताका पुत्र मुचुकुन्द हूँ ॥ ३२ ॥ मैं बहुत दिन तक देवलोकमें जागता रहा, इस लिये निद्रासे अचेत होकर इस निर्जन कन्दरामें इच्छानुसार शयन कर रहा था। अभी किसीने आकर मुझको जगा दिया ॥ ३३ ॥ हे शत्रुशमन! वह पापी अपने ही पापसे आप भस्म होगया। उसके बाद श्रीमान् जो आप हैं उनको मैंने देखा ॥ ३४ ॥ आपके असह्य तेजके आगे मेरा तेज फीका पड़ गया है, मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं देर तक आपकी ओर देख सकूँ। हे महाभाग! आप अवश्य ही सब देहधारियोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण उनके माननीय हैं ॥ ३५ ॥ भूतभावन भगवान्‌से जब राजाने यों पूछा तब वह मंद २ मुसकाते हुए मेघके समान गंभीर वाणीसे बोले ॥ ३६ ॥ **श्रीभगवान्‌ने कहा**! राजन्! मेरे हजार २ जन्म, कर्म्म और नाम हैं; उनका अन्त नहीं है। यहाँ तक कि मैं स्वयं उनकी गणना नहीं कर सक्ता ॥ ३७ ॥ कोई व्यक्ति बहुतसे जन्मोंमें पृथ्वीके रजोंको भलेही गिन ले, किन्तु मेरे जन्म, कर्म्म और नामोंकी गणना नहीं कर सक्ता ॥ ३८ ॥ राजन्! श्रेष्ठ ऋषिगण भी मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म, कर्म्म और नामोंका वर्णन करते हुए अब तक उनके अन्तको नहीं पाते ॥ ३९ ॥ महाराज! तथापि मैं अपने वर्त्तमान जन्म, नाम और कर्म्म तुमसे कहताहूँ—सुनो। पहले कमलयोनि ब्रह्माने धर्म्मकी रक्षा और पृथ्वीके भाररूप असुरोंका संहार करनेके लिये मुझसे प्रार्थना की। तब मैंने यदुकुलके बीच वसुदेवके घरमें जन्म लिया है। मैं वसुदेवका पुत्र हूँ, इस लिये मुझको लोग वासुदेव कहते हैं। मैंने कालनेमिके अवतार कंसको प्रलंब आदि देवद्रोही दानवों

सहित मारा है। हे राजन्! इस यवनको भी तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा मैंने ही नष्ट किया है। मैं तुम पर अनुग्रह करनेके लिये ही विशेष कर इस कंदरामें आया हूँ। मैं भक्तवत्सल हूँ, तुमने पहले बहुत समय तक मेरी अत्यन्त आराधना की थी ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ हे राजर्षे! जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मुझसे माँगो, मैं तुम्हारी सब कामना पूर्ण करनेके लिये प्रस्तुत हूँ। जो पुरुष मेरी शरणमें आता है वह फिर अपूर्णकाम नहीं रहता; अर्थात् मुझे पाजाने पर कोई अभिलाषा अपूर्ण नहीं रहती" ॥४३॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! भगवान्‌के ये वचन सुन कर राजा मुचुकुंद बहुत प्रसन्न हुए। वृद्ध गर्गने राजासे किसी समय कहा था कि-'अट्ठाईसवें युगमें, द्वापरके अन्तमें यदुवंशके बीच भगवान्‌का अवतार होगा'। इस समय गर्गकी भविष्यद्वाणीका स्मरण होआनेसे राजाने जाना कि यह वही देव-देव नारायण हैं। तदनन्तर राजा मुचुकुंद, भगवान्‌को प्रणाम करके इस प्रकार स्तुति करने लगे। **राजाने कहा।** "हे ईश! नरनारीरूप ये सब सांसारिक प्राणी आपकी मायामें मोहित होनेके कारण परमार्थसुखस्वरूप जो आप हैं उनको नहीं देख पाते। अतएव आपका भजन भी नहीं करते। परस्पर एक एकसे वंचित ये प्राणी, सुखके लिये दुःखकी उत्पत्तिका स्थान जो गृह है उसमें आसक्त हो रहते हैं। हे निष्पाप! इस कर्म्मभूमिमें, किसी प्रकार, दुर्लभ जो सांगोपांग मनुष्य शरीर है उसे पा कर, लोगोंके मनमें विषयसुखोंकी ही इच्छा प्रबल होती रहती है। पशुगण जैसे तृणके लोभसे तृणोंसे ढँके हुए अंधकूपमें गिरते हैं वैसेही मायामोहित मनुष्य भी गृहरूप अंधकूपमें गिरते हैं और आपके चरणकमलको नहीं भजते। हे अजित! मैं पृथ्वीपति था, राज्यसम्पत्तिके कारण मुझको 'मैं राजा हूँ' यह गर्व्व था। मैं देहको ही आत्मा माने था, इसी कारण अब तक दुरन्तचिन्तापूर्वक पुत्र, स्त्री, कोष, पृथ्वी आदिमें मेरा मन आसक्त था। मेरी समझमें मेरा इतना समय व्यर्थ ही बीता। घट और भित्तिके सदृश नाशशील इस शरीर पर 'मैं नरदेव हूँ' ऐसा अभिमान करके अत्यन्त गर्वपूर्वक चतुरंगिणी सेना (हाथी, घोड़े, रथ, पैदल) को साथ लिये पृथ्वीपर विचरा करता था। मुझे उस समय आपका ध्यान भी न था। अतएव मेरा इतना समय व्यर्थ ही गया। भूखा सर्प जैसे चूहे चाटता हुआ आचनक आकर असावधान मूसेको दबोच लेता है वैसेही अप्रमत्त अन्तकस्वरूप आप, 'ये ये कर्त्तव्य कर्म सब पूरे करने होंगे'-इस प्रकारकी चिन्तामें व्यग्र और विषयवासनाओंमें तन्मय एवं दिन २ बढ़ रही तृष्णासे परिपूर्ण-हृदय व्यक्तिको सहसा आकर ग्रस लेते हैं। कल जो कलेवर 'राजा' इस नामसे गर्व्वित हो सुवर्णमण्डित रथ, या गज पर चढ़ कर भ्रमण करता था वही कलेवर आज दुरत्यय कालस्वरूप जो आप हैं उनके द्वारा कृमि, विष्ठा या भस्म, इन तीन अवस्थाओंमेंसे किसी एक अवस्थाको प्राप्त हो जाता है

॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ हे ईश्वर! जो पुरुष, दूर २ तक सब दिशाओंके राजोंको जीत कर सबसे ऊँचे सिंहासन पर सभामें बैठ अपने समकक्ष राजों द्वारा पूजित होता है वह भी तुच्छ विषयसुखके लिये क्रीड़ामृगके समान ही एक कामिनीके घरसे दूसरी कामिनीके घर जाता और भाँति २ के नाच नाचता है ॥ ५१ ॥ भगवन्! 'आज मैंने इसे त्याग कर दिया, किन्तु दूसरे जन्ममें फिर ऐसाही चक्रवर्त्ती होऊँ'-यह विचार कर, मनुष्य, विषयसुखसे निवृत्त हो उसी भोगकी इच्छासे तपमें अत्यन्तनिष्ठापूर्वक यज्ञादि कर्म करता है। ऐसा करनेसे उसकी विषयभोगतृष्णा निरन्तर बढ़ती ही रहती है, घटती नहीं, अतएव उसे सच्चा सुख (संसारसे मुक्ति) नहीं मिलता ॥ ५२ ॥ हे अच्युत! जब कभी आपके अनुग्रहसे मनुष्यके संसार(आवागमन) का अन्त निकट आजाता है तब उसे साधुओंका संग प्राप्त होता है। साधुसंग होते ही साधुओंकी एकमात्र गति और उत्कृष्ट तथा अपकृष्ट प्राणियोंके ईश्वर जो आप हैं उनकी भक्तिका उदय उसके हृदयमें होता है और तब वह कुछ कालमें सिद्ध हो कर संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ५३ ॥ हे ईश्वर! तप करनेके लिये वनमें जानेकी अभिलाषावाले विवेकी चक्रवर्ती लोग आपसे जो 'राज्यादिका मायामोह छूटना' माँगते हैं वही राज्यानुरागसे मुक्ति मुझको अकस्मात् स्वयं ही प्राप्त हो गई; मैं इसे आपहीकी कृपा मानता हूँ ॥ ५४ ॥ हे विभो! निरभिमान पुरुष केवल आपके चरणोंकी सेवाको ही आपसे माँगते हैं; सो मैं भी यही वर आपसे माँगताहूँ और कोई भी कामना मुझे नहीं है। हे हरि! मुक्ति देनेवाले जो आप हैं उनको आराधना द्वारा प्रसन्न करके कौन विवेकी पुरुष, जिससे आत्माका बन्धन हो ऐसा वर माँगेगा? ॥ ५५ ॥ हे आर्य्य! हे ईश! इस कारण मैं रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण नामक मायाके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सम्पूर्ण वरों (मङ्गलों) को छोड़ कर निरंजन, निर्गुण, अद्वय, श्रेष्ठ और विज्ञानमय परमपुरुष जो आप हैं उनके चरणोंकी शरणमें आया हूँ ॥ ५६ ॥ हे परमात्मा! इस संसारमें मैं अपरिमित समयसे कर्मोंके फलोंको भोगता हुआ पीड़ित हो रहा हूँ, बहुत कालसे उन कर्मफलरूप विषयवासनाओंसे सन्तप्त हो रहा हूँ, तथापि मेरे छः शत्रुओं (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और छठा मन) की तृष्णा नहीं बुझती। इस प्रकार किसी प्रकार कहीं भी शान्ति न पाकर मैंने आपके सत्य, भयशून्य और शोकहीन चरणोंको अपना आश्रय बनाया है। ईश्वर! आपत्तिने मुझको घेर लिया है, मेरी रक्षा करो" ॥ ५७ ॥ भगवान्‌ने कहा। "हे सार्व्वभौम महाराज! आपकी बुद्धि निर्म्मल और उच्च श्रेणीकी है, क्योंकि मैंने कई प्रकारसे आपको वरदानका लोभ दिखाया, तथापि विषयभोगकी ओर आपकी बुद्धि नहीं झुकी-अटल बनी रही ॥ ५८ ॥ आप सत्य जानना-मैंने आपको भटकानेके लिये यह वरदानका लोभ नहीं दिखाया था-किन्तु मैं आपकी परीक्षा ले रहा

था। मेरे जो एकान्त भक्त हैं उनकी शुद्ध बुद्धि कभी विषयभोगके लिये विचलित नहीं होती, चाहे वे विषयभोग उनके आगे भी उपस्थित कर दिये जाँय ॥ ५९ ॥ किन्तु हे राजन्! देखा जाता है कि जो निष्काम भक्त नहीं हैं उनका मन, प्राणायाम आदिके द्वारा मुझमें अभिनिविष्ट होने पर भी, विषयवासना क्षीण न होनेसे, कभी २ विषयोंकी ओर चलायमान हो जाता है ॥ ६० ॥ राजन्! आप मुझमें मन लगा कर इच्छानुसार जहाँ चाहे पृथ्वीपर्य्यटन करो। मुझ पर आपकी ऐसी ही अटल भक्ति बनी रहेगी। क्षत्रियधर्मके अनुसार आपने मृगया (शिकार) आदि अवसरों पर अनेकानेक प्राणियोंका वध किया है, सो अब मेरे आश्रित हो एकाग्र मनसे तप करके उस पापको नष्ट करो ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥
भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६३ ॥

राजन्! इस शरीरके छूटने पर तुम सब प्राणियोंके परम मित्र एक विप्रवर होगे और फिर केवलस्वरूप जो मैं हूँ उसको प्राप्त हो जाओगे ॥ ६३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तम अध्याय।

श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका दूतके द्वारा संदेश भेजना।

श्रीशुक उवाच—इत्थं सोऽनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ॥
तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इक्ष्वाकु-नन्दन मुचुकुन्दजीने भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार अनुग्रह पाकर उनको प्रदक्षिणापूर्वक प्रणाम किया और फिर वहाँसे चल कर कंदराके बाहर आये ॥ १ ॥ मुचुकुंदने बाहर आकर देखा कि सब मनुष्य, पशु, लता और वृक्ष क्षुद्रकलेवर होगये हैं। मुचुकुंदने इन लक्षणोंसे जान लिया कि अब कलियुग आगया, इस लिये वह उत्तर दिशाको चल दिये ॥ २ ॥ इस प्रकार राजा मुचुकुंद तपमें श्रद्धायुक्त, धीर, निःसंग और निःसंशय हो, कृष्णमें मन लगा कर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। वहाँ पर बद्रिकाश्रम नाम भगवान्का पवित्र धाम है, वहाँ भगवान् नर-नारायणका आश्रम है। राजा मुचुकुंद उसी आश्रममें गये। वहाँ सब द्वंद्व धर्मोंको दृढ़ताके साथ सहते हुए शान्त भावसे तपके द्वारा हरिकी आराधना करने लगे ॥ ३ ॥४॥ राजन्! इधर यवनके मरने पर भगवान् कृष्णचन्द्र फिर मथुरामें आये एवं बची हुई यवनसेनाका संहार किया। कृष्णचन्द्रजी यवनोंकी लूटी हुई सम्पत्तिको मनुष्य, बैल आदि पर

लदाये हुए द्वारकापुरीको जानेके लिये उद्यत थे, इसी अवसर पर तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लिये जरासन्ध फिर आ पहुँचा । भगवान् कृष्ण और बलभद्रजी दोनो भाई बड़े बेगसे आरही शत्रुसेनाको देख मनुष्योंके समान (जैसे कोई डर कर प्राण बचानेके लिये भागे उस प्रकार) वहाँसे भागे । यद्यपि भगवान् निर्भय हैं, तथापि जैसे कोई बहुत ही डर गया हो वैसे बहुत सा धन छोड़ कर पद्मपल्लव-तुल्य कोमल चरणारविन्दोंसे कई योजन तक भागते चले गये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ महाबली मगधराज ईश्वरकी शक्तिको जानता न था, अतएव उनको भागते देख, रथ पर चढ़, सेनाको साथ ले, उनको पकड़नेके लिये पीछे चला ॥ ९ ॥ बहुत दूर दौड़नेके कारण विश्राम करनेके लिये दोनो भाई बहुत ऊँचे प्रवर्षण नाम पर्वत पर चढ़ गये । उस पर्वत पर भगवान् इन्द्र नित्य वर्षा करते हैं—इसीसे उसका नाम प्रवर्षण है ॥ १० ॥ जरासंधने बहुत देर तक उनके उतरनेकी अपेक्षा की, जब वे नहीं उतरे तो उनको पर्वतमें छिपा हुआ जान कर बहुत ढूँढा, परन्तु पता न लगा । उस समय जरासंधने पर्वतके चारो ओर लकड़ियाँ चुनवा कर उनमें आग लगा दी ॥ ११ ॥ जब उस पर उस अग्निसे वृक्ष जलने लगे तब कृष्ण बलभद्र दोनो भाई ग्यारह योजन ऊँचे पर्वतसे नीचे पृथ्वी पर फाँद पड़े ॥ १२ ॥ अपने अनुचरों सहित जरासंधने शत्रुको नहीं देख पाया और कृष्ण व बलदेव इस प्रकार अपनी द्वारकापुरीमें पहुँच गये; वह द्वारकापुरी समुद्रके भीतर थी—पुरीको चारो ओरसे खाईकी भाँति समुद्र घेरे हुए था ॥ १३ ॥ जरासंधने समझा कि कृष्ण बलदेव दोनो भाई जल गये, [किन्तु यह मिथ्या था] अतएव वह सब सेना साथ लेकर प्रसन्नचित्त हो अपने राज्य मगधदेशको लौट गया ॥ १४ ॥ महाराज! "आनर्त्त देशके राजा श्रीमान् रैवतने ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार अपनी कन्या रेवतीका विवाह बलभद्रके साथ कर दिया" यह हम तुमसे पहलेही कह चुके हैं । अब कृष्णचंद्रके विवाहोंकी कथा सुनो । हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान् गोविन्दने भी विदर्भनरेश भीष्मककी कन्या लक्ष्मीका अंशावतार श्रीरुक्मिणीजीसे विवाह किया । जैसे गरुड़जी देवतोंको हटा कर सुधा ले आये थे वैसेही स्वयम्वरमें सब लोगोंके आगे भगवान् भी शिशुपालके पक्षमें आये हुए शाल्व आदि राजोंका दर्प चूर्ण कर रुक्मिणीजीको हर लाये ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ राजा परीक्षित्ने शुकदेवजीसे कहा कि ब्रह्मन्! भगवान्ने राक्षस-विधिके अनुसार भीष्मककी कन्या चारुवदना रुक्मिणीसे विवाह किया, यह मैंने सुना । अब महातेजस्वी कृष्णचन्द्र जिस प्रकार शाल्व, जरासंध आदि राजोंके शिर पर पैर धर कर रुक्मिणीको हर लेगये, सो सब कथा विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी इच्छा है ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवन्! कृष्णचन्द्रकी कथाएँ पवित्र हैं । उनको सुननेसे पुण्य होता है । मधुर होनेके कारण वे कानोंको भली लगती हैं । उनको वारम्वार

सुनिये, चाहे जब सुनिये, वे नित्य नई जान पड़ेंगी। भला उन कथाओंके सुननेमें कौन ऊबेगा? कौन तृप्त हो जायगा? ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! महाबली और महातेजस्वी भीष्मक नाम विदर्भ देशके नरेश थे। उनके पाँच पुत्र और एक सुमुखी कन्या थी ॥ २१ ॥ रुक्मी सब पुत्रोंमें बड़ा था और रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश व रुक्ममाली उसके छोटे भाई थे, और सुशीला रुक्मिणी इनकी छोटी बहन थी ॥ २२ ॥ रुक्मिणीने घरमें आनेवाले लोगोंके मुखसे कृष्णचन्द्रके रूप, वीर्य्य, गुण और शोभा व सम्पत्तिकी प्रशंसा सुन कर मनमें निश्चय कर लिया कि श्रीकृष्ण ही मेरे योग्य पति हैं ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णने भी बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप, शील एवं गुणोंकी खानि रुक्मिणीको अपने योग्य जान कर उनसे विवाह करनेका दृढ़ विचार कर लिया ॥ २४ ॥ राजन्! रुक्मिणीके पिता, माता और बंधुओंकी भी यही इच्छा थी कि रुक्मिणीका विवाह कृष्णसे हो। वे कृष्णके साथ रुक्मिणीका विवाह पक्का करना चाहते थे, किन्तु कृष्णसे द्रोह करनेवाले रुक्मीने नहीं माना और इस विचारको पलट कर शिशुपालके साथ रुक्मिणीका विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की, एवं रुक्मिणीके साथ शिशुपालका सम्बन्ध पक्का भी कर लिया ॥ २५ ॥ मृगनयनी विदर्भराजकुमारी रुक्मिणी यह समाचार पाकर बहुत ही दुःखित और उदास हुई एवं कुछ देर सोच कर उन्होने किसी विश्वस्त वृद्ध ब्राह्मणको पत्री देकर शीघ्र श्रीकृष्णचन्द्रके पास भेजा ॥ २६ ॥ वह-ब्राह्मण महाशय द्वारकापुरीमें पहुँच कर कृष्णचन्द्रके द्वार पर उपस्थित हुए। द्वार-पाल उनको भीतर लेगया। भीतर जाकर विप्रदेवने देखा कि भगवान् आदि-पुरुष सुवर्णके सिंहासन पर बैठे हुए हैं ॥ २७ ॥ ब्रह्मण्यदेव कृष्णचन्द्रने जैसे ही उन ब्राह्मण महोदयको देखा वैसे ही सिंहासनसे उतर कर अपने हाथसे उनको आसन दिया और आदरपूर्वक बैठाया एवं देवता लोग जैसे उनकी पूजा करते हैं वैसे ही उन्होने विप्रदेवका पूजन किया ॥२८॥ तदनन्तर विप्रदेवने भोजन करके थोड़ी देर तक विश्राम किया। थोड़ी देर बाद सज्जनोंकी एकमात्र गति श्रीकृष्णजी ब्राह्मणके पास आये। भगवान् कृष्णचन्द्रने अपने सुकुमार करकमलोंसे ब्राह्मणके पैर दबाते २ धीर भावसे कहा कि "हे द्विजश्रेष्ठ! आपका मन सदा सन्तुष्ट रहता है? और वृद्धसम्मत सदाचार एवं धर्म्मका निर्वाह भी आप यथारीति करते रहते हैं? ॥ २९ ॥ ३० ॥ मैं आपसे सबसे पहले ये ही प्रश्न इस लिये करता हूँ कि यदि ब्राह्मण सब प्रकार सन्तुष्ट रह कर अपने धर्म्मसे भ्रष्ट न हो—अर्थात् अपने धर्म्मको न छोड़े और इसी प्रकार सनातन धर्म्मको पालन करते हुए अपने जीवनको बिता सके तो वह धर्म्म ही उसकी सब कामनाओंको पूर्ण करता है ॥ ३१ ॥ जो कोई बारम्बार अभिलषित पदार्थ पाकर भी असन्तुष्ट रहता है वह

इन्द्रपदवी भी पाकर सुखको या शान्तिको नहीं पासक्ता, क्योंकि उसके मनमें सन्तोषकी शीतल छाया नहीं है। और जो लोग सन्तुष्ट हैं वे अकिञ्चन होने पर भी सुखसे अपने जीवनको बिताते हैं। जो लोग स्वलाभ (आत्माके लाभ या स्वतः प्राप्त भोगों) में सन्तुष्ट रहते हैं, साधु (परोपकारी) हैं, सब प्राणियोंके परम बन्धु हैं, अहंकारशून्य और शान्त हैं—उन सब ब्राह्मणोंको शिर झुका कर मैं वारम्वार प्रणाम करता हूँ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ब्रह्मन्! आप सब कुशलपूर्वक अपने राजाके राज्यमें वास करते हैं? जिस राजाके राज्यमें सब प्रजाका भली भाँति पालन होता है और प्रजागण सुखपूर्वक रहते हैं वही राजा मुझको प्रिय है ॥३४॥ आप जिस कार्य्यके लिये जहाँसे समुद्रके पार इस दुर्गमें आये हैं सो यदि छिपाने योग्य न हो तो मुझसे कहिये। मैं आपका क्या कार्य्य सम्पन्न करूँ?" ॥ ३५ ॥ लीला करनेके लिये मायामानवशरीरधारी परमेश्वरने जब इस प्रकार प्रश्न किया तब विप्रदेवने, जिस लिये वह इतनी दूर आये थे, सो सब कह सुनाया। रुक्मिणीने एकान्तमें बैठ कर जो पत्रिका कृष्णचन्द्रको देनेके लिये लिखी थी, ब्राह्मणने लिफाफेसे निकाल कर, वह प्रेमका चिन्ह कृष्णचन्द्रको दिखाया एवं श्रीकृष्णचन्द्रकी आज्ञाके अनुसार आप ही वह पत्रिका पढ़ने लगे ॥ ३६ ॥ **श्रीरुक्मिणीजी कहती हैं** कि हे अच्युत! हे त्रिभुवनसुन्दर! जो कानोंके द्वारा हृदयमें प्रवेश करके सुननेवालोंके अङ्गतापको शान्त करते हैं वे आपके सब गुण, और जो नेत्र रखनेवाले लोगोंकी दृष्टिका परम मुख्य लाभ वा फल है उस आपके रूपकी प्रशंसा सुन कर मेरा चित्त आप पर ऐसा आसक्त होगया है कि लोक-लज्जाका बंधन भी उसको नहीं रोक सक्ता ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द! कुल, शील, रूप, विद्या, अवस्था, द्रव्य—सम्पत्ति और प्रभावमें आप ही अपने तुल्य हैं। हे नर-श्रेष्ठ! आप मनुष्योंके मनको रमानेवाले हैं। हे पुरुषसिंह! विवाह-समय उपस्थित होने पर कौन कुलवती, गुणवती और बुद्धिमती कामिनी आपको अपना पति बनानेके लिये अभिलाषा न करेगी? ॥ ३८ ॥ विभो! इसी कारण मैंने आपको अपना पति मनसे मान लिया है एवं आपके हाथमें आत्मसमर्पण कर दिया है। अतएव आप यहाँ आकर अवश्य मुझको अपनी धर्म्मपत्नी बनाइये। हे कमल-नयन! सियार कहीं सिंहके भागको हर ले जासक्ता है? सो मैं भी चाहती हूँ कि शिशुपाल शीघ्र आकर, वीरवर जो आप हैं उनके भागको अर्थात् मुझको, लेजाना कैसा, हाथ भी न लगा सके ॥ ३९ ॥ यदि पूर्त्त (कुँआ आदि खुदवाना), इष्ट (अग्निहोत्रादि), दान, नियम, व्रत एवं देवता, ब्राह्मण और गुरुओंके पूजन आदिके द्वारा भगवान् परमेश्वरकी मैंने कुछ आराधना की है तो कृष्ण भग-वान् आकर मेरा पाणिग्रहण करें और दमघोषनन्दन (शिशुपाल) आदि अन्य राजा लोग मेरे हाथको हाथ न लगा सकें ॥ ४० ॥ हे अजित! परसों विवाहका दिन है; अतएव आप पहले ही गुप्तभावसे आजाइये। फिर पीछेसे आये हुए

यादवसेनापतियोंको साथ ले शिशुपाल और जरासंधकी सेनाको नष्ट भ्रष्ट करते हुए, बलपूर्वक, वीर्य्यरूप मूल्य देकर, राक्षसी विधिके अनुसार, मुझसे विवाह करिये—यही मेरी प्रार्थना है ॥ ४१ ॥ यदि आप कहिये कि तुम तो अन्तःपुरमें रहती हो, तुम्हारे बंधुओं (रुक्मी आदि) की हत्या बिना किये मैं कैसे तुम्हारे साथ विवाह कर सक्ता हूँ या तुमको हर लेजासक्ता हूँ ? तो मैं आपको उसका एक उपाय बतातीं हूँ। हमारे कुलमें एक रीति सनातनसे चली आती है कि विवाहके पहले दिन कन्या कुलदेवी भवानीकी पूजा करनेके लिये बाहर मंदिरमें जाती है ॥ ४२ ॥ हे कमललोचन ! उमापति शम्भुके समान महान् लोग, अपने अन्तःकरणका अज्ञान मेटनेके लिये जिस आपके चरणरजसे स्नान करनेकी प्रार्थना करते रहते हैं, मैं यदि उसी प्रसादको नहीं पासकी, तो निश्चय जानियेगा विवाह नहीं करूँगी और व्रतके द्वारा शरीरको दुर्बल बना कर प्राणत्याग कर दूँगी। सौ जन्मोंमें तो आपका प्रसाद प्राप्त होगा" ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच–इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाहृताः ॥
विमृश्य कर्तु यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणने कहा। हे यदुदेव ! यह रुक्मिणीका गुप्त संदेश मैं आपके पास लाया हूँ; इस विषयमें जो करना चाहिये उस पर विचार कीजिये और शीघ्र ही उसे कार्यरूपमें परिणत कीजिये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तम अध्याय।

रुक्मिणी–हरण।

श्रीशुक उवाच–वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ॥
प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

शुकदेवजी कहते हैं। राजन्! रुक्मिणीका संदेश सुन कर यदुनन्दन कृष्णचन्द्र, प्रेमपूर्वक ब्राह्मणका हाथ अपने हाथमें लेकर मंद २ मुसकाते हुए यों कहने लगे ॥ १ ॥ श्रीभगवान्ने कहा। "भगवन्! जैसे रुक्मिणीका चित्त मुझमें आसक्त है वैस ही मेरा भी मन उनमें लगा हुआ है। मुझे तो रातको नींद नहीं आती। यह भी मुझे विदित है कि रुक्मीने द्वेषभावसे मेरे विवाहको रोक दिया है और शिशुपालको बुलाया है ॥२॥ किन्तु मैंने भी निश्चय कर लिया है कि युद्धमें अधम क्षत्रियोंकी सेनाको मथ कर उसके बीचसे, काष्ठके भीतरसे अग्नि-शिखाके समान, उस

अपनेको एकान्तभावसे भजनेवाली अनिन्दिताङ्गी राजकुमारीको ले आऊँगा" ॥३॥ हे भरतनंदन! परसों रात्रिको रुक्मिणीका विवाह होगा, यह जान कर मधुसूदनने सारथी से कहा कि हे दारुक! शीघ्र रथको जोतो ॥ ४ ॥ दारुक भी उसी क्षण शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम चार घोड़े जोत कर रथ ले आया और हाथ जोड़ कर आगे खड़ा होगया ॥५॥ पहले कृष्णचन्द्र रथ पर चढ़े और फिर ब्राह्मणको चढ़ा लिया एवं द्रुतगामी घोड़ोंकी गतिके अनुसार एक ही रात्रिमें आनर्त्त देशसे विदर्भ देशमें पहुँच गये ॥ ६ ॥ इधर कुण्डिन देशके राजा भीष्मक, पुत्र-स्नेहके वशवर्त्ती हो कर शिशुपालको अपनी कन्या देनेके लिये उद्यत हो, विवाहके पहले जो कर्म्म किये जाते हैं उन्हे करानेलगे ॥ ७ ॥ नगरमें राजपथ, क्षुद्रपथ और चत्वर इत्यादि स्थान झाड़े बहारे गये और उनमें छिड़काव किया गया । अनेक रंगकी ध्वजा, पताका और तोरणोंसे नगर भलीभाँति सुसज्जित किया गया ॥ ८ ॥ नगरवासी नर और नारियोंने सुन्दर निर्मल वस्त्र पहने, चंदन लगाया, मालाएँ पहनीं, और आभूषणोंसे आभूषित हो कर परम शोभायमान हुए । श्रीसम्पन्न सब भवन, अगुरु और धूपके धूमसे सुवासित किये गये ॥ ९ ॥ राजन्! राजा भीष्मकने यथाविधि पितृगण और देवगणका पूजन किया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया एवं उन ब्राह्मणोंके मुखसे नियमानुसार मङ्गलपाठ कराया ॥ १० ॥ सुन्दर दाँतोंवाली कन्या रुक्मिणीने भलीभाँति स्नान किया, तब उनके विवाह-सम्बन्धी सब मंगलकृत्य किये गये । फिर रुक्मिणीजीको नवीन अमूल्य विमल वस्त्र और महामूल्य उत्तम अलंकार पहनाये गये ॥११॥ सब श्रेष्ठ २ ब्राह्मणोंने ऋक्, यजुः और सामवेदकी ऋचाएँ पढ़ कर कन्याके रक्षाबन्धन किया । फिर अथर्ववेदके ज्ञाता पुरोहितने ग्रहशान्तिके लिये हवन किया ॥ १२ ॥ विधि जाननेवालोंमें श्रेष्ठ राजा भीष्मकने उस समय सुवर्ण, चाँदी, वस्त्र, तिल गुड़ और बहुत सी गौवें ब्राह्मणोंको दीं ॥ १३ ॥ इसी प्रकार चेदि देशके नरेश दमघोषने भी मंत्रज्ञ ब्राह्मणोंके द्वारा पुत्रके अभ्युदयके लिये सब समयोचित कृत्य कराये ॥ १४ ॥ तदनन्तर मद जिनके बह रहा है उन हाथियोंके झुंड, स्वर्णमालामंडित रथोंके दल एवं पैदल व अश्वसमूहसे सुशोभित सेनाको साथ लिये शिशुपालका पिता दमघोष कुंडिन-पुरमें आ पहुँचा ॥ १५ ॥ विदर्भ देशके राजा भीष्मकने आनंदपूर्वक अगवानी करके सबको, पहलेहीसे ठीक किये हुए एक घरमें जनवासा देकर, ठहराया और पूजन किया । दमघोषके साथ शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौंड्रक (मिथ्यावासुदेव) आदि अन्यान्य हजारों शिशुपालके मित्र एवं कृष्ण-बलभद्रसे द्वेष रखनेवाले राजा लोग, यह निश्चय करके कि "कृष्णचन्द्र यदि बलराम आदि यादवोंको साथ ले कर आवें और रुक्मिणीको हर ले जाना चाहें तो हम लोग मिल कर उनसे युद्ध करेंगे" वाहनों सहित सब सेना ले कर वहाँ आये ॥ १६ ॥

॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलभद्रजी इस प्रकार शत्रुपक्षके राजोंका उद्यम (तैयारी) और श्रीकृष्णजी अकेले ही रुक्मिणीको हरनेके लिये गये हैं, यह जान कर, कलहकी शंकासे, भाईके स्नेहवश, गज, अश्व, रथ और पैदलोंसे परिपूर्ण बहुतसी चतुरंगिणी सेना साथ लेकर शीघ्रताके साथ कुण्डिनपुरको गये ॥२०॥२१॥ इधर सर्व्वाङ्गसुन्दरी भीष्मककन्या रुक्मिणीजी हरिके आनेके लिये बहुत ही उत्सुक हुई। सूर्योदय होने पर था, परन्तु तब तक ब्राह्मण लौट कर नहीं आये, यह देख कर रुक्मिणीजी इस प्रकार चिन्ता करने लगीं कि "अहो! रात बीत गई, सबेरे मुझ मन्दभागिनीके विवाहका दिन है; किन्तु कमललोचन कृष्ण अभी तक नहीं आये, इसका कुछ कारण मुझको नहीं जान पड़ता। मेरा संदेश ले जानेवाला ब्राह्मण भी अब तक नहीं फिरा। अनिन्दितात्मा कृष्णचन्द्रने क्या मुझमें कोई निन्दनीय बात देखी है? इसी लिये क्या मेरे पाणिग्रहणका उद्योग करके नहीं आते? अथवा भगवान् विधाता और महेश्वर मुझ अभागिनीके प्रतिकूल हैं? गिरितनया सती रुद्राणी गौरी देवी भी क्या मेरे अनुकूल नहीं हैं?" गोविन्दने जिनके चित्तको हर लिया है वह समयको जाननेवाली बाला रुक्मिणीजी, आँसू जिनमें भरे हैं उन नेत्रोंको मूँद कर संकटमोचन हरिका ध्यान करनेलगीं। राजन्! इस प्रकार नववधू होनेवाली रुक्मिणीजी गोविन्दके आनेकी प्रतीक्षा कर ही रही थीं कि उनकी बाईं ऊरू, भुजा और नेत्र आदि अंग भावी प्रिय की सूचना देते हुए फड़क उठे। तदनन्तर कृष्णके पास भेजे हुए वही ब्राह्मण महाशय कृष्णकी अनुमतिसे रुक्मिणीके पास अन्तःपुरमें आये। अन्तःपुरमें आ कर उन्होने राजकुमारी रुक्मिणीसे साक्षात् किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ सती, लक्षणोंको जाननेवाली राजकुमारीने उनका प्रफुल्लित मुख और देहका आकार अव्यग्र देख कर जान लिया कि कार्य्य सिद्ध होगया। तब मंद मुसकाती हुई रुक्मिणीने विप्रदेवसे पूछा कि कहिये, क्या समाचार हैं? विप्रदेवने रुक्मिणीसे कहा कि कृष्णचन्द्र मेरे साथ कुंडिनपुरमें आगये हैं, और उन्होने तुमको हर ले जानेके लिये प्रण भी किया है। कृष्णचन्द्र आ गये हैं, यह समाचार पाकर रुक्मिणीजीको अपार आनन्द हुआ; उन्होने उस समय इस उपकारके बदलेमें देने योग्य कोई वस्तु न देख कर केवल प्रणामसे विप्रदेवको प्रसन्न किया, और प्रणामके उपरान्त बहुत सा धन भी उनको दिया। विदर्भराज भीष्मकने जब सुना कि हमारी कन्याके विवाहका उत्सव देखनेके लिये कृष्ण और बलदेव आये हैं तब उनको बहुत ही आनन्द हुआ। वह पूजाकी सामग्री लेकर उनकी अभ्यर्थना करनेके लिये चले; आगे २ नगाड़े और ढोल बजते जाते थे। आगेसे जा कर भीष्मकने कृष्ण बलदेवकी अगवानी ली एवं मधुपर्क, निर्म्मल वस्त्र और प्रार्थनीय सामग्री आदि दे कर सत्कारपूर्वक उनका

पूजन किया। महामति राजाने, सैन्य व अनुचरगणसहित आये हुए उन दोनो यदुवीरोंके रहनेके लिये एक स्थान दिया और भली भाँति यथाविधि उनका आतिथ्य सत्कार (पहुनाई) किया । राजाने इस प्रकार अपने यहाँ विवाहके निमन्त्रणमें आये सब राजोंका, उनके बल, वित्त, अवस्था, वीर्य्य आदिके अनुसार, सब प्रकार चितचाही, मुहमाँगी वस्तुएँ देकर, सत्कार और पूजन किया। कृष्णचंद्र आये हैं, यह सुन कर विदर्भपुरमें रहनेवाले लोग उनके निकट आये और नेत्ररूप अंजलियोंसे उनके मुखकमलकी सुधाको पीनेलगे । सब लोग कहने लगे कि रुक्मिणी इन्हींकी स्त्री होने योग्य है, उसके योग्य अनिन्दितात्मा कृष्णचन्द्रही एक वर हैं, हमारी समझमें और कामिनी इनकी स्त्री होने योग्य नहीं है। हमने यदि कुछ भी सुकृत किया हो तो त्रिलोकके विधाता अच्युत भगवान् ऐसा कुछ करें कि यही मनमोहन कृष्ण रुक्मिणीका पाणिग्रहण करें ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ इधर प्रेमके आँसू बहाते हुए पुरवासी लोग इस प्रकार कह रहे थे, उधर इसी अवसरमें सैनिकोंके बीचमें घिरी हुई कन्या रुक्मिणीजी सुरक्षित हो कर पैदलही अन्तःपुरसे भवानीके पादपद्म देखनेके लिये मंदिरको चलीं। उस समय रुक्मिणीजी मौनव्रत धारण किये सखीगण और माता आदि बड़ी बूढ़ी स्त्रियोंके साथ मनमें भली भाँति मुकुन्द भगवान्के चरणकमलोंका ध्यान करती हुई जा रही थीं। चारो ओरसे कवचधारी, खुले हुए शस्त्र हाथमें लिये बड़े २ वीर राजभट घेरे हुए उनकी रक्षा कर रहे थे। रुक्मिणीजी जब अम्बिकाके मन्दिरको चलीं तब मृदंग, शंख, पणव, तूर्य्य, भेरी आदि मांगलिक बाजे बजने लगे। हजारों वारवधू अनेक प्रकारके उपहार और भेंटें लिये और भली भाँति विभूषित ब्राह्मणियाँ हाथोंमें माला, चन्दन, वस्त्र, आभूषण आदि लिये राजपुत्रीके साथ चलीं। गानेवाले और बाजे बजानेवाले लोग गाते बजाते हुए एवं सूत, मागध, बंदीजन प्रशंसा करते हुए नववधूको चारो ओरसे घेर कर चले । देवभवनमें पहुँच कर राजपुत्रीने अपने हाथ और पैर धोये एवं आचमन करके पवित्र होकर शान्त भावसे मंदिरमें प्रवेश कर अम्बिकाके निकट गईं । विधिको जाननेवाली वृद्धा ब्राह्मणियोंने रुक्मिणीसे शिवसहित शिवकी धर्म्मपत्नी भवानीको प्रणाम कराया। रुक्मिणीने अम्बिकाको प्रणाम करके कहा कि—"हे अम्बिका देवी! अपने सन्तान गणेशादिसे युक्त जो कल्याणकारिणी आप हैं उनको मैं प्रणाम करती हूँ । श्रीकृष्ण भगवान् मेरे पति हों—इस मेरी कामनाका आप अनुमोदन करिये"। कुमारीने जल, चंदन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, आभूषण और दीपक आदि पूजाकी सामग्रियोंसे शिव-शिवाका पूजन किया। सधवा ब्राह्मणियोंने भी उक्त सामग्रीसे एवं, नमकीन पुए, मीठे पुए, पान, कण्ठसूत्र, फल, ईख आदिसे देवी और महादेवका

पूजन किया। तदनन्तर उन वृद्धा स्त्रियोंने देवीका चढ़ा हुआ प्रसाद देकर रुक्मिणीजीको अमोघ आशीर्व्वाद दिये। रुक्मिणीने देवीजीको और उन स्त्रियोंको प्रणाम किया। इस प्रकार प्रसाद व आशीर्वाद लेकर रुक्मिणीजीने मौन-व्रतको त्याग किया और रत्नजटित अँगूठीसे सुशोभित हाथसे दासीका हाथ पकड़ कर अंबिकाके भवनसे बाहर निकलीं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ ५० ॥ रुक्मिणीजी देवमायाके समान बड़े २ धीर वीर व्यक्तियोंको अपने रूपसे मोहित करनेवाली थीं। उनकी परम सुन्दर कमर अत्यन्त सूक्ष्म थी, उनका मुखकमल अमल कुंडलोंकी झलक पड़नेसे अपूर्व शोभासे युक्त था। उनकी सोलह वर्षकी युवा अवस्था जितेन्द्रियोंके भी चित्तको डिगा देनेवाली थी। नितंबों पर रत्नजटित सुवर्णकी कर्धनी पड़ी हुई थी। उभर रहे कुच दुपट्टेमें झलक रहे थे, अलकें खुली थीं और वह शंकायुक्त चञ्चल दृष्टिसे इधर उधर देखती जाती थीं। उनकी मंद मुसकान महा मनोहर थी। बिंब (कुँदरू) फलके सदृश अधरकी अरुण द्युतिसे उनके कुन्दकलिका से उज्ज्वल दशन लाल देख पड़ते थे। वह कलहंसके समान मंदगतिसे पैदल जा रही थीं। उस समय उनके चरण, शोभायुक्त शब्दायमान नूपुरोंकी आभासे अत्यन्त सुन्दर जान पड़ते थे। देवी रुक्मिणीकी ऐसी अपूर्व छवि निहार कर, उद्दीपित कामकी पीड़ासे, रक्षा करनेके लिये आये अनेक युद्धोंमें जय पाये हुए यशस्वी वीर योद्धागण मोहित हो पड़े। रुक्मिणीने अश्व, रथ, गज आदि पर चढ़े हुए उन राजा लोगोंके चित्त अपनी उदार हँसी और लजीली चितवनसे चुरा लिये। वे लोग ऐसे मोहित हो कर एकटक रुक्मिणीकी ओर देखने लगे कि उनके हाथोंसे अस्त्र-शस्त्र गिर पड़े और उन्होने नहीं जाना। चलनेके मिससे हरिको अपनी शोभा दिखला रही रुक्मिणीकी छवि देख, सब साथके वीर योद्धा अचेत हो २ कर पृथ्वीपर गिरने लगे। कृष्णचन्द्रके आनेकी राह देखती हुई रुक्मिणीजी धीरे २ चंचल कमलकोषतुल्य चरणोंको धीरे २ उठा कर रखती हुई जा रही थीं। इसी अवसरमें भगवती रुक्मिणीने बाएँ हाथसे बिखरी हुई अलकोंको सँवारकर (मुख परसे हटाकर) साथ आये हुए राजोंकी ओर लज्जापूर्ण कटाक्षपात करते हुए देख दिया। उसी समय राजकुमारीको एक ओरसे आते हुए कृष्णचन्द्र भी देख पड़े। महाराज! राजकुमारी रथ पर चढ़ना चाहती थीं, इतनेहीमें माधव कृष्णचन्द्र बराबर आगये और शत्रुओंके आगे ही गरुड़चिन्हयुक्त रथ पर फुर्तीसे रुक्मिणीको चढ़ा कर चल दिये। जिन क्षत्रियोंने पीछा भी करना चाहा उनको कृष्णने वहीं ठंडा कर दिया। भगवान् कृष्णचन्द्र, जैसे सियारोंके बीचसे सिंह अपने भागको बलपूर्व्वक ले जाता है उस प्रकार बलभद्र आदि यादवोंके साथ आ कर रुक्मिणीजीको हर लेगये और रक्षा करनेवाले राजा लोग मुह ताकते ही रह गये, उनसे कुछ करते न बन पड़ा ॥५१॥५२॥५३॥५४॥५५॥५६॥

तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥
अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ५७

उस समय जरासंध आदि मानी राजालोग इस अपनी पराजय और यशके क्षयको न सहसके एवं आक्रोशपूर्व्वक कहने लगे कि हम लोगोंको धिक्कार है! जैसे मृगगण सिंहोंके भागको उनके सामनेसे ले जायँ वैसे ही आज गोपगण धनुषधारियोंके आगे आ कर हमारे यशको कन्याके साथ हर लेगये!! ॥ ५७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तम अध्याय।

रुक्मिणीका विवाह।

श्रीशुक उवाच–इति सर्वे समुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः ॥
स्वैः स्वैर्बलैः पराक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! सब राजालोग इस प्रकारके वचन कहते हुए अत्यन्त क्रोधपूर्व्वक कवच धारण कर अपने २ वाहनों पर सवार हुए एवं अपनी २ सेना साथ लेकर धनुष हाथमें ले कृष्णचन्द्रके पीछे चले ॥ १ ॥ उनको अपनी ओर आते देख यादवसेनाके यूथप योद्धा लोग पलट कर खड़े हो, अपने २ धनुष चढ़ा कर प्रत्यञ्चाका शब्द करने लगे ॥ २ ॥ घोड़े और हाथियोंकी पीठों पर बैठे हुए अस्त्र शस्त्र चलानेमें चतुर राजा लोग, मेघ जैसे पर्वतों पर बड़े २ बूँदोंसे जलकी वर्षा करते हैं वैसे ही यादवोंकी सेना पर निरन्तर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३ ॥ अपने स्वामीकी सेनाको बाणवर्षामें छिपते देख कर सुन्दर कमरवाली राजकुमारीने लज्जापूर्व्वक भयसे विह्वल हो रहे नेत्र उठा कर कृष्णचन्द्रकी ओर देखा ॥ ४ ॥ रुक्मिणीकी दशा देख कर भगवान् हँसे और कहने लगे कि "हे सुन्दर नयनवाली सुन्दरी! भय न करो। इसी समय तुम्हारी सेना (यादवलोग) शत्रुओंकी सेनाका संहार करेगी—इसमें कोई सन्देह नहीं है" ॥ ५ ॥ इधर गद, सङ्कर्षण आदि वीर यादवगण अपने शत्रुओंके विक्रमको न सह सके, अतएव शत्रुसेनाके घोड़े हाथी और रथों पर नाराच बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ६ ॥ उस समय रथ, अश्व और हाथियों पर बैठे हुए योद्धा लोगोंके करोड़ों कुण्डल, किरीट (कलँगी) और पगड़ियोंसे शोभित शिर एवं खड्ग, गदा व धनुष युक्त हाथ, कलाइयाँ, ऊरू तथा पैर कट २ कर युद्धभूमिमें गिरने लगे। ऐसे ही घोड़े, खच्चर, हाथी, ऊँट, गधे और पैदलोंके भी शिर कट २ कर पृथ्वी पर

गिरनेलगे ॥ ७ ॥ ८ ॥ जयकी इच्छा रखनेवाले यादवगण जब इस प्रकार सामन्तों सहित शत्रुसेनाका संहार करनेलगे तब जरासंध आदि राजालोग विमुख हो कर युद्धभूमिसे भागे ॥ ९ ॥ जिसकी स्त्री छिन गई हो उस पुरुषके समान शोकसे कातर होनेके कारण जिसका मुख सूख रहा है उस प्रभा और प्रभावसे हीन, उत्साहशून्य, हतबुद्धि शिशुपालके निकट आ कर समरसे भागे हुए उक्त जरासंध आदि राजालोग यों कहकर समझाने लगे कि हे पुरुषसिंह! तुम क्यों इतना उदास होते हो? इस उदासीको छोड़ो। राजन्! देखा जाता है कि प्राणियोंको कोई प्रिय या अप्रिय विषय स्थायी रूपसे नहीं प्राप्त होता। कभी अपने चित्तकी प्रिय बात होती है और कभी अपनी इच्छाके विरुद्ध अप्रिय बात होती है, यह चक्र चलता ही रहता है ॥ १० ॥ ११ ॥ जैसे नचानेवाले (जादूगर) की इच्छाके अनुसार कठपुतली नाचती है वैसे ही यह देहधारी जीव ईशके वशमें रह कर सुख और दुःखकी चेष्टा (पुण्य, पाप) करता है एवं सुख और दुःख पाता है। जरासन्ध कहता है, देखो मैं तेईस २ अक्षौहिणी सेना लेकर कृष्णसे युद्ध करनेके लिये सत्रह बार गया और बराबर हारता रहा। अन्तमें अट्ठारहवीं बार मैंने उसको भगा दिया और विजयको प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ १३ ॥ तथापि देखो, मैं न कभी अपनी हार पर शोक करता हूँ और न अपनी जीत पर हर्ष मनाता हूँ; मैं जानता हूँ कि दैवके द्वारा प्रेरित बहुत ही प्रबल एवं अटल 'काल' इस जगत्को भलाई बुराई और सुख-दुःख देता है ॥ १४ ॥ इस समय भी श्रेष्ठ वीरोंमें श्रेष्ठ हम लोग, कृष्ण जिनका पालन करनेवाला है उन थोड़े से यादवोंसे हार गये ॥ १५ ॥ किन्तु इसका शोच व्यर्थ है। यह समय हमारे शत्रुओंके अनुकूल है, इस लिये उन्होंने हमको जीत लिया; जब समय हमारे अनुकूल होगा तब हम उनको जीतलेंगे ॥ १६ ॥ मित्रगणके इस प्रकार आश्वास देने पर शिशुपाल अनुचरोंसहित अपने पुरको लौट गया और मरनेसे बचे हुए राजा लोग भी अपने २ नगरोंको चले गये ॥ १७ ॥ राजन्! श्रीकृष्णद्रोही बलवान् रुक्मी अपनी बहनके हर लेजानेका समाचार पाकर उसको नहीं सह सका। उसने उसी समय अत्यन्त कुपित होकर कवच पहना और धनुष हाथमें लिया एवं सब राजोंके आगे प्रतिज्ञा की कि "समरमें कृष्णको बिना मारे और बिना रुक्मिणीको लौटा कर लाये मैं कुंडिनपुरमें नहीं प्रवेश करूँगा-यह मैं आप लोगोंसे सत्य कहता हूँ" ॥१८॥१९॥२०॥ यों प्रतिज्ञा करके रुक्मीने रथमें चढ़ कर सारथीसे कहा कि जिधर कृष्ण है उधर ही घोड़ोंको हाँक कर रथ लेचल, उससे मैं युद्ध करूँगा। अत्यन्त दुर्बुद्धि गोपाल जिस अपने बलके घमंडसे बलपूर्वक मेरी बहनको हर लेगया है, आज मैं इन तीक्ष्ण बाणोंसे उसके उस घमंडको मिटाऊँगा ॥२१॥२२॥ ईश्वरकी महिमा और शक्तिको न जाननेवाला कुबुद्धि रुक्मी इस प्रकार

बकता हुआ अकेले अपना रथ दौड़वा कर कृष्णके निकट पहुँचा और कोपपूर्वक "खड़ा रह, खड़ा रह" कहने लगा। फिर रुक्मीने धनुष चढ़ा कर कृष्णके तीन वाण मारे और कहा कि—"रे यदुकुलदूषण! क्षण भर ठहर जा; कौआ जैसे घृतको ले भागे उस भाँति मेरी बहनको चुरा कर कहाँ लिये भागा जाता है? हे मंद! तू बड़ा मायावी है, आज मैं तेरे घमंडको मिटा दूँगा। तू कपटयुद्धमें बड़ा निपुण है। कन्या देकर, अपने प्राण लेकर भाग जा, नहीं तो अभी मेरे वाणोंके प्रहारसे प्राणहीन होकर शीघ्र ही पृथ्वी पर सोवेगा"। रुक्मीके दुर्व्वचन सुनकर कृष्णचन्द्र मुसकाये और उन्होने रुक्मीका धनुष काटकर छः वाण उसके शरीरमें मारे। कृष्णचन्द्रने आठ वाणोंसे उसके रथके चारो घोड़े मारडाले और दो वाणोंसे सारथीको मारडाला एवं तीन वाणोंसे ध्वजा काट डाली। रुक्मीने दूसरा धनुष लेकर कृष्णचन्द्रके पाँच वाण मारे। उन बहुतसे वाणोंका प्रहार सह कर कृष्णचन्द्रने दूसरा भी धनुष काट डाला। रुक्मीने और धनुष लिया, कृष्ण भगवान्ने वह भी काट डाला ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ परिघ, पट्टिश, त्रिशूल, ढाल-तर्वार, शक्ति और तोमर आदि जो २ शस्त्र रुक्मीने हाथमें लिया उसको कृष्णचन्द्रने फुर्तीसे काट डाला ॥२९॥ तब रुक्मी खड्ग हाथमें लेकर मारनेकी इच्छासे रथसे पृथ्वी पर फाँद पड़ा और जैसे जलनेके लिये पावक पर पतङ्ग आक्रमण करता है वैसे कृष्णकी ओर झपटा ॥ ३० ॥ कृष्णचन्द्रने उसके खड्ग और ढालको बीचमें ही तिल २ करके काट डाला। फिर कृष्णचन्द्रने रुक्मीको पकड़ लिया और तीक्ष्ण तर्वार लेकर उसको मारनेके लिये उद्यत हुए ॥ ३१ ॥ अपने भाईके वधका उद्योग देख कर सती रुक्मिणीजी भयसे विह्वल हो पतिके पैरों पर गिर पड़ीं और इस प्रकार दीन वचन कहने लगीं कि हे योगेश्वर! आपकी शक्ति या स्वरूप अप्रमेय है। हे देवदेव हे जगत्के स्वामी! हे कल्याणरूप! हे महाबाहो! मेरे भाईका वध करना आपको उचित नहीं है ॥३२॥३३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि राजन्! उस समय भयके कारण रुक्मिणीजीके शरीरमें कँपकँपी सी चढ़ी थी और शोकके वेगसे मुख सूख रहा था एवं आँसुओंसे गला रुँध गया था। कातरताके कारण उनके गलेसे सुवर्णकी माला गिरपड़ी। इस दशासे जब रुक्मिणीने पैर पकड़ कर प्रार्थना की तब दयासिन्धु कृष्णचन्द्र उसके वधसे निवृत्त हुए, किन्तु योंही नहीं छोड़ दिया। कृष्णने दुर्वचन कहनेवाले अपकारी रुक्मीको दुपट्टेसे रथके पीछे बाँध दिया और उसकी दाढ़ी, मूछ और शिरके केश स्थान २ पर थोड़े २ छोड़ कर सब उड़ादिये। इधर कृष्णने रुक्मीको इस प्रकार विरूप कर दिया, उधर श्रेष्ठ वीर यादवगण, हाथी जैसे नलिनीवनको रौंद कर उसका सत्यानाश कर दें वैसे ही उद्धत शत्रुसेनादलको दलमल कर गरजने लगे ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ यादवलोग शत्रुसेनाको नष्ट करके निकट आये, और उन्होने वहाँ आकर हतप्राय

(अधमरे) रुक्मीको पूर्वोक्त दशामें देखा। दयालु विभु बलदेवजीको दया आगई, उन्होने रुक्मीको बंधनसे खोल दिया और कृष्णसे कहा कि कृष्ण! यह तुमने बुरा किया, अपने बन्धुकी दाढ़ी मूछ मूड़कर उसको बिरूप बनाना हम लोगोंके लिये निन्दाकी बात है, यह वधके समान दण्ड है। हे साध्वी रुक्मिणी! भाईका रूप बिगाड़नेकी बात सोचकर तुम हम पर रोष न करना। कोई किसीको सुख या दुःख नहीं पहुँचा सक्ता, क्योंकि सब लोग अपने २ कर्म्मोंका फल पाते हैं। कृष्ण! बन्धुने चाहे मार डालने योग्य कोई अपराध किया हो तो भी उसका वध करना उचित नहीं है। उसको छोड़ ही देना चाहिये। क्योंकि वह अपने दोषसे आप ही मर जाता है, तब मरेको क्या मारना?। हे रुक्मिणी! प्रजापतिने क्षत्रियोंके लिये ऐसा ही धर्म्म नियत किया है, इसके अनुसार भाई भाईको भी मार डालताहै। यह अति उग्र धर्म्म है, तथापि हमारा इसमें अपराध नहीं है ॥ ३६ ॥ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ जो लोग ऐश्वर्य्यमदमें अंधे हो रहे हैं वे राज्य, लक्ष्मी, भूमि, धन, तेज, मान वा अन्य कारणोंसे मानी लोगोंका तिरस्कार (या तिरस्कारकी चेष्टा) करते हैं ॥ ४१ ॥ तुम्हारे जो भाई, सर्वदा सब प्राणियोंका अप्रिय-अनिष्ट किया करते हैं, तुम अज्ञ व्यक्तियोंकी भाँति उन्हींके मंगलकी कामना करती रहती हो; सुतराम् तुम्हारी यह बुद्धि विषम है, क्योंकि वही उन लोगोंके लिये अमङ्गल है ॥ ४२ ॥ "यह मित्र है, यह शत्रु है, यह उदासीन है" इस प्रकारका मोह देहात्मवादी (देहहीको आत्मा माननेवाले) लोगोंके आत्माको ईश्वरकी मायाके कारण रहता है। सब देहधारियोंका आत्मा एकमात्र विशुद्ध है। सब मूढ़ व्यक्ति जलमें चन्द्र और घटादि पदार्थोंमें आकाशकी भाँति उस एक आत्माके विषयमें अनेक-कल्पना करते हैं। यह देह, आदि और अन्तसे युक्त है। अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवात्मक यह (लिंग) शरीर आत्मामें अविद्याके द्वारा कल्पित है। यही (लिंग) शरीर देहधारी जीवको जन्म-मरणके चक्रमें डालता है ॥४३॥४४॥४५॥ जैसे सूर्य्यसे चक्षु इन्द्रिय और रूपका प्रकाश होता है वैसे ही आत्मासे उक्त अधिभूत आदिका प्रकाश होता है। अतएव अधिभूत आदिक असत् हैं, सुतराम् उनके साथ आत्माका न संयोग है और न वियोग है ॥ ४६ ॥ जन्म-आदि, देहके ही विकार (रूपान्तर) हैं, आत्माके कभी नहीं। जैसे चन्द्रमाका स्वयं जन्म (उदय) मरण (अस्त होना) नहीं है, उसकी कलाएँ ही प्रकाशित और नष्ट होती हैं, वैसे ही आत्माके भी जन्मादि नहीं हैं; आत्माका मरण अमावास्याकी भाँति है ॥ ४७ ॥ जैसे निद्रित व्यक्ति मिथ्या विषयोंमें भोक्ता, भोग्य और भोगका अनुभव करता है वैसेही अज्ञव्यक्ति संसार-भोग करते हैं ॥ ४८ ॥ इस कारण हे शुचिस्मिते! आत्माको कष्ट और मोहमें फँसानेवाले इस अज्ञानजनित शोकको उक्त तत्त्वज्ञानसे दूर करके, तुम स्वस्थ हो कर धैर्य्य धारण करो ॥ ४९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि राजन्! क्षीणअंगवाली सुन्दरी रुक्मिणीने भगवान् बलरामके इस प्रकार प्रबोध देने पर वैमनस्यको छोड़दिया और शुद्ध बुद्धिसे मनको स्थिर किया ॥ ५० ॥ कृष्णके हाथों रुक्मीका बल और प्रभाव नष्ट हो गया, उसके केवल प्राण बच गये और मनोरथ नहीं पूर्ण हुआ। उसको भगवान्ने छोड़ दिया, तब उसने वहाँसे चलकर, रहनेके लिये, राहमें एक भोजकट नाम बड़ा भारी पुर बसाया। उसने युद्धमें जाते समय क्रोधसे प्रतिज्ञा की थी कि "मैं दुर्बुद्धि कृष्णको बिना मारे और बिना अपनी छोटी बहनको लौटाकर लाये कुंडिनपुरमें नहीं आऊँगा," उसी प्रतिज्ञाको पालता हुआ वह नवीन बसाये हुए भोजकटमें निवास करने लगा ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! भगवान् कृष्ण, राजोंको इस प्रकार जीतकर रुक्मिणीजीको द्वारकापुरीमें लेगये और वहाँ उन्होने राजकुमारीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ५३ ॥ राजन्! उस समय यदुपति कृष्णके अनन्यप्रेमी यादवोंके घरोंमें महामहोत्सव होने लगे ॥ ५४ ॥ सुमार्जित मणिमय कुण्डल धारण किये हुए महा आनन्दित नरनारीगण, विचित्र वैवाहिक वस्त्र धारण किये हुए वर और वधूको देनेके लिये, अनेक प्रकारके बहुमूल्य उपहारकी सामग्रियाँ लाये ॥ ५५ ॥ उठायेगये इन्द्रध्वज (बड़े २ झंडे, जो उत्सवोंके अवसर पर ही खड़े किये जाते हैं), विचित्र माला, वस्त्र और रत्नोंसे रचित कृत्रिम तोरण आदिसे यदुपुरी सुसज्जित की गई। हर एक द्वार पर धरे हुए खील, दूबके अंकुर, फूल और पल्लव आदि माङ्गलिक द्रव्य एवं पूर्ण कलश, अगुरु, धूप व दीप इत्यादिसे पुरीकी अत्यन्त शोभा हुई ॥ ५६ ॥ निमन्त्रणमें आये हुए प्रिय इष्ट मित्र राजा लोगोंके हाथियोंके मदसे ही यदुपुरीके मार्गोंमें छिड़काव सा होगया। प्रत्येक द्वार पर खड़े किये गये सुपारीके गुच्छोंसे युक्त केलेके वृक्षोंसे पुरीकी शोभा चौगुनी होगई ॥ ५७ ॥ पुरीमें कुरु, संजय, कैकय, विदर्भ, यदु और कुन्ति आदि वंशोंके लोग उत्सुकताके कारण चारो ओर दौड़ २ कर अपने इष्ट, मित्र, बन्धुओंसे मिलते और परस्पर प्रसन्न होते थे ॥५८॥ इधर उधर गाये जारहे रुक्मिणीहरणके वृत्तान्तको सुन कर राजालोग और राजकुमारियाँ व राजकुमार अत्यन्त विस्मित हुए ॥ ५९ ॥

द्वारकायामभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ॥
रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६०

राजन्! द्वारकामें श्रीकृष्णको, लक्ष्मीका अवतार जो रुक्मिणी हैं उनसे मिलते देख कर पुरवासियोंको परम आनन्द हुआ ॥ ६० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तम अध्याय ।

प्रद्युम्नका जन्म व शम्बरासुरका वध ।

श्रीशुक उवाच—कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ॥
देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! वासुदेव जिसके अधिष्ठाता हैं उस चित्तमें उत्पन्न होनेके कारण वासुदेवका अंश कामदेव, पहले रुद्रके कोपानलमें जल गये थे, उन्होने फिर देह पानेके लिये उन्ही वासुदेवका आश्रय लिया ॥ १ ॥ वही कामदेव श्रीकृष्णके वीर्य्य द्वारा रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न होकर "प्रद्युम्न" इस नामसे विख्यात हुए । प्रद्युम्नजी किसी बातमें अपने पिता कृष्णसे कम नहीं थे ॥ २ ॥ कामरूपी शम्बर दैत्य प्रद्युम्नको अपना पूर्वशत्रु (कामदेव) जान कर बाल्यकालमें—दाँत भी न निकले थे—उसी समय सूतिकागृहसे उठा लेगया और उनको सागरमें फेंक कर अपने घर चला गया ॥ ३ ॥ एक बलवान् मत्स्यने बालक प्रद्युम्नको निगल लिया । वह मत्स्य भी और मत्स्योंके साथ मछली पकड़नेवालोंके जालमें फँस गया ॥ ४ ॥ धीमर लोग उस बड़े मत्स्यको राजाके योग्य भेंट समझ कर शंबरके निकट लेगये । शम्बरासुरके रसोंइये लोग भोजनागारमें उस बहुत बड़े विचित्र मत्स्यको लेगये । उन्होने वहाँ ले जा कर शस्त्रसे उस मत्स्यका पेट फाड़ा ॥ ५ ॥ उस मत्स्यके उदरमें एक बहुत ही सुन्दर नरबालकको पा कर उन रसोंइयोंने आश्चर्य्य किया और फिर उस बालकको ले जा कर मायावती को दिया । मायावती भी उस बालकको देख कर चकित और शंकित हुई कि मछलीके पेटसे मनुष्यका बालक कैसे उत्पन्न हो सक्ता है? अथवा मछलीके निगल लेने पर उसके पेटमें कैसे जीता रह सक्ता है? इसी अवसरमें महर्षि नारदने जाकर उस बालकका तत्त्व, अर्थात् उसके विषयमें जानने योग्य सब बातें, उसकी उत्पत्ति और सागरमें गिर कर मछलीके पेटमें जाना आदि सब वृत्तान्त कह सुनाया । राजन् ! वह तो कामदेवकी पतिव्रता पत्नी रति थी; शिवके कोपानलमें जले हुए पतिके फिर देह धारण करनेकी प्रतीक्षा कर रही थी । शम्बरासुरने उसको अपने यहाँ रसोंई करने व उसकी देखरेख रखनेके लिये रक्खा था । रतिने जब जाना कि वह बालक और कोई नहीं साक्षात् उसीके पति कामदेव हैं, तब वह परम प्रेमसे उनका पालन पोषण और रक्षा करने लगी । थोड़े ही समयमें श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नजी जवान हुए । प्रद्युम्नजीका रूप ऐसा सुन्दर था कि उसे देखनेवाली स्त्रियाँ मनको अपने वशमें नहीं रखसक्ती थीं । देवी रति सुरतिको उद्दीप्त करनेवाले सलज्ज भावसे मंद २ मुसकाती हुई उन्नत

बंक भ्रुकुटीके द्वारा कुटिल कटाक्षपातसे उन कमलदलसदृश विशाल लोचनवाले, आजानुबाहु, नरलोकसुन्दर स्वामीको रिझाती हुई प्रीतिपूर्वक उनके निकट रहने लगी। यह भाव देख कर भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नने रतिसे कहा कि "माता! तुम्हारी बुद्धिमें यह विपरीत भाव कैसा देख पड़ता है? तुम माताका भाव छोड़ कर पत्नीके भावसे मेरे पास रहती हो; इसका क्या कारण है?" ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ रतिने कहा। "प्रभो! तुम नारायणके पुत्र हो। यह दुष्ट शम्बरासुर तुमको तुम्हारे घरसे उठा लाया था। मैं तुम्हारी पूर्व्व जन्मकी धर्म्मपत्नी रति हूँ और तुम कामदेव हो ॥ १२ ॥ इस शम्बरासुरने तुम्हारे दाँत भी नहीं निकलने पाये थे उसी अवस्थामें तुमको समुद्रमें फेंक दिया था। प्रभो! तदनन्तर एक मत्स्य तुमको समुद्रमें निगल गया, और उसी मत्स्यके उदरसे तुम यहाँ निकले ॥ १३ ॥ अब तुम इस दुर्द्धर्ष, दुर्जय और अनेकों माया जाननेवाले अपने शत्रु शंबरासुरको इस समय मोहन आदि मायाओंसे नष्ट करो। पुत्रके खोजानेसे तुम्हारी माता, जिसका बछड़ा खोगया हो उस गऊके समान, पुत्रस्नेहसे आकुल, कातर और दुःखित होकर कुररी (एकप्रकारका पक्षी जो आकाशमें कतार बाँध कर "कों २" करता हुआ चलता है) की भाँति शोकसे विलाप किया करती है" ॥ १४ ॥ १५ ॥ यों कह कर मायावतीने महात्मा प्रद्युम्नको सब माया-ओंको मिटानेवाली महामाया नाम विद्या बतलाई ॥ १६ ॥ उक्त महाविद्या पाकर प्रद्युम्नजी शम्बरासुरके निकट गये और असह्य कटु वचन कह कर उसका तिरस्कार करने लगे; जिसमें वह कुपित हो कर युद्ध करनेके लिये उद्यत हो ॥१७॥ पादप्रहारसे कुपित सर्पकी भाँति शम्बरासुर उन कटुवाक्योंको न सह सका, उसके नेत्र क्रोधके आवेशसे लाल हो गये एवं तत्क्षण वह गदा हाथमें लेकर घरसे बाहर निकल आया। शम्बरासुरने बलपूर्वक वेगसे कई बार घुमा कर वह गदा महात्मा प्रद्युम्नके ऊपर चलाई और जैसे आकाशमें बिजलियोंकी परस्पर टक्कर होनेसे घोर शब्द हो उस प्रकार गर्जने लगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ किन्तु अपने ऊपर आ रही शत्रुकी गदाको भगवान् प्रद्युम्नने अपनी गदा पर रोक लिया और फिर क्रोधपूर्वक सिंहनाद करते हुए अपनी घोर गदा शत्रुके ऊपर चलाई ॥ २० ॥ शम्बरासुरने देखा कि सम्मुखयुद्धमें मैं पार नहीं पाऊँ गा, इस कारण वह असुर मय दानवकी अपूर्व्व आसुरी मायाका आश्रय लेकर अदृश्य हो गया एवं आकाशमें खड़े हो अदृश्य भावसे कृष्णतनय प्रद्युम्नजी पर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा ॥२१॥ महारथी रुक्मिणीनन्दनने जब देखा कि दुष्ट दैत्य अन्तरिक्षसे छिपे २ पत्थरोंकी वर्षा करके पीड़ा पहुँचाता है तब उसी मायावतीकी बताई हुई सब मायाओंको मिटानेवाली सत्त्वगुणमयी महाविद्याका प्रयोग किया ॥ २२ ॥ तदनन्तर उस दैत्यने यक्ष, गन्धर्व्व, पिशाच और राक्षसोंकी सैकड़ों मायाएँ प्रकट कीं, परन्तु उनको महामति प्रद्युम्नने उसी

क्षण नष्ट कर दिया ॥ २३ ॥ अन्तमें प्रद्युम्नजीने एक तीक्ष्ण तर्वार लेकर उससे शम्बरासुरका किरीटविभूषित, कुण्डलमण्डित, अरुणवर्ण दाढ़ी मोछोंसे युक्त मस्तक बलपूर्वक धड़से अलग कर दिया ॥ २४ ॥ उस समय देवगण उनके ऊपर राशि २ फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे । मायावती आकाशमें चलनेकी शक्ति रखती थी; वह अपने पति प्रद्युम्नको पीठ पर चढ़ा कर आकाशमार्गसे द्वारका पुरीको लेगई ॥ २५ ॥ राजन् ! दामिनीयुक्त श्याम मेघके समान शोभायमान प्रद्युम्नने पत्नीसहित अन्तःपुरमें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ प्रद्युम्नजीका शरीर श्यामवर्ण था, उस शरीर पर पीतपटकी अपूर्व्व शोभा थी । आजानुबाहु प्रद्युम्नके नयन अरुणवर्ण, हास्य परमसुन्दर, मुखमण्डल महामनोहर कमलके तुल्य था; उस पर भ्रमरतुल्य काली अलकें बिखरी हुई थीं । स्त्रियोंने समझा कि कृष्णचन्द्र आरहे हैं, अतएव लज्जित हो कर इधर उधर छिप गईं ॥२७॥२८॥ क्रमशः कुछ विलक्षणता देख कर स्त्रियोंने जाना कि यह कृष्ण नहीं हैं, कोई और है । तब सब स्त्रियाँ आनन्दपूर्वक स्त्रीरत्नयुक्त प्रद्युम्नजीके निकट आ कर आश्चर्य्यके साथ उनको देखने लगीं ॥ २९ ॥ उस समय प्रद्युम्नको देखनेसे असितापांगी विदर्भनरेशकी कन्या रुक्मिणीको अपने खोएहुए पुत्रका स्मरण हो आया। स्नेहके कारण रुक्मिणीके स्तनोंसे आपहीआप दुग्ध निकलने लगा ॥ ३० ॥ रुक्मिणीजी अपने मनमें कहने लगीं कि–"यह पुरुषश्रेष्ठ कौन है ? यह कमललोचन किसका पुत्र है ? किस कामिनीने इसको अपने गर्भमें रक्खा है ? इस पुरुषके साथ यह श्रेष्ठ स्त्री कौन है ? मेरा जो पुत्र सूतिकागृहसे नष्ट होगयाथा, जिसका पता अबतक नहीं लगा है, वह भी यदि कहीं जीता जागता होगा तो उसकी अवस्था और रूप भी ऐसा ही होगा । यह पुरुषश्रेष्ठ आकार, अंगगठन, गति, स्वर, हँसी और चितवन आदि बातोंमें मेरे स्वामीके समान है । इसका क्या कारण है ? क्या यह वही बालक है जो मेरे गर्भसे उत्पन्न हुआ था ? क्यों कि यह मुझे बहुतही प्रिय जान पड़ता है और शुभसम्बादकी सूचना देती हुई मेरी बाईं भुजा भी फड़क रही है" । रुक्मिणीजी इसी प्रकार अपने मनमें तर्कवितर्क कर रही थीं कि इतनेमें उत्तमश्लोक भगवान् देवकीनन्दन देवकी और वसुदेवके साथ वहाँ पर उपस्थित हुए ॥३१॥३२॥३३॥३४॥३५॥ यद्यपि भगवान् जनार्दनको सब वृत्तान्त विदित था तथापि वह चुपचाप खड़े रहे । इतनेमें नारदजीने सब वृत्तान्त कह सुनाया कि इनको शंबर दैत्य हर ले गया था और अब यह उस शत्रुको मार कर आये हैं, यह तुम्हारे ही पुत्र प्रद्युम्न हैं ॥ ३६ ॥ यह महाआश्चर्य्यमय वृत्तान्त सुनने पर सब अन्तःपुरकी स्त्रियाँ, जैसे कोई मराहुआ बन्धु फिर जीवित हो कर आ मिले उस प्रकार प्रद्युम्नको पा कर परम प्रसन्न हुईं ॥ ३७ ॥ देवकी, वसुदेव, कृष्ण, बलदेव और सब स्त्रियोंसहित रुक्मिणीने नववधूयुक्त प्रद्युम्नको गलेसे लगाया और परमानन्दित हुए ॥ ३८ ॥ खोए हुए

प्रद्युम्नको फिर आये हुए सुन कर सब द्वारकावासी लोग कहने लगे कि "अहो! बड़े भाग्यकी बात है कि खोया हुआ बालक, जिसके जीवित रहनेमें भी सन्देह था, आपही आगया" ॥ ३९ ॥

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावा-
स्तन्मातरो यदभजन् हृदिरूढभावाः ॥
चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे
कामे स्मरेऽक्षिविषये किमुतान्यनार्यः ॥ ४० ॥

हम पहले ही कह चुके हैं प्रद्युम्नका रूप व आकार कृष्णके समान था, वह कृष्णका प्रतिबिंब जान पड़ते थे। इसी कारण उनकी माताएँ भी उनको आत्मीय और भर्ताके भावसे मन-ही-मन अनुरक्त हो कर भजती थीं। इसमें कोई आश्चर्य्य नहीं है, क्यों कि जिसके स्मरणसे ही क्षोभ होता है उसी कामका अवतार प्रद्युम्नजी आँखोंके आगे हर घड़ी रहते थे। जब माताओंकी यह दशा थी तब अन्य कामिनियोंके लिये क्या कहना है! ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तम अध्याय।

स्यमन्तकहरण।

श्रीशुक उवाच—सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥
स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सत्राजित् नाम यादवने पहले कृष्णको अपराध लगाया। किन्तु फिर वह अपराध क्षमा करानेके लिये स्यमन्तकमणिसहित अपनी कन्या सत्यभामा उनको ब्याह दी ॥ १ ॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि भगवन्! सत्राजित् ने श्रीकृष्णका क्या अपराध किया था? और उन्होने दिव्य स्यमन्तकमणि कैसे और किससे पाई थी? एवं उन्होने हरिको अपनी कन्या किस लिये दी? यह सब वृत्तान्त विस्तारपूर्व्वक हमसे कहिये ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! सत्राजित् यादव सूर्य्यदेवके परमभक्त और सखा थे। सूर्य्यदेवने सन्तुष्ट और प्रसन्न हो कर उनको स्यमन्तक नाम दिव्य मणि दी। उस मणिको कंठमें पहने हुए सत्राजित् द्वारकापुरीमें आये। उस मणिके तेजसे सत्राजित् दूसरे सूर्य्य जान पड़ते थे। उस तेजके कारण कोई पुरवासी न पहचान सका कि यह सत्राजित् हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ दूरसे देखने पर सब लोगोंकी आँखें चौंधिया

गईं। तब वे लोग चौसर खेल रहे भगवान् कृष्णके पास आकर सूर्य्यनारायणको आते जान कर शंकित भावसे कहने लगे कि "हे नारायण! हे शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले दामोदर! कमलनयन! गोविन्द! यदुनन्दन! आपको प्रणाम है ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे जगन्नाथ! यह सूर्य्यनारायण अपनी तीक्ष्ण किरणोंसे हमारे नेत्रोंमें चकाचौंध उत्पन्न करते हुए आपको देखनेके लिये आरहे हैं ॥ ७ ॥ हे प्रभो! आप यदुवंशमें छिपे हुए हैं-यह जान कर सूर्य्य देव आपको देखने आरहे हैं। भगवन्! सब देवगण सदा आपके मिलनेके मार्गकी खोजमें रहते हैं, परन्तु पाते नहीं हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! उन अजान लोगोंकी ये बातें सुन कर कमलनयन भगवान्ने हँस कर कहा कि-"यह सूर्य्यदेव नहीं हैं, सत्राजित् नाम यादव हैं; यह प्रकाश उनके कंठमें पड़ी हुई मणिका है"। सत्राजित्ने अपने श्रीसम्पन्न भवनमें प्रवेश करके ब्राह्मणोंके द्वारा मङ्गलाचरण कराके देवालयमें मणिको धर दिया ॥ ९ ॥ १० ॥ वह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देती थी। उसमें एक गुण यह भी था कि जहाँ धर कर उसकी पूजा की जाती थी उस देशमें दुःखके कारण जो दुर्भिक्ष, अकालमृत्यु, अमङ्गल, सर्पभय, आधि व्याधि, अशुभ और महामारी आदि अरिष्ट हैं उनकी बाधा नहीं होती थी ॥ ११ ॥ देवकीनन्दनने एक समय वह मणि उग्रसेनके लिये माँगी, किन्तु धन-लोभी सत्राजित्ने कृष्णके महत्त्वका ध्यान न करके देनेसे नाहीं कर दी। राजन्! तदनन्तर एक दिन सत्राजित्का भाई प्रसेन उस महातेजस्वी मणिको पहने हुए घोड़े पर चढ़ कर वनमें मृगया (शिकार) करनेके लिये गया। वनमें एक सिंहने घोड़े सहित प्रसेनको मार कर मणि छीन ली। वह सिंह पर्वतकी कंदरामें प्रवेश कर रहा था उ[illegible] उसको जाम्बवान् नाम ऋक्षराज मिल गये। जाम्बवान्ने मणि लेनेकी इच्छासे उस सिंहको मार डाला और अपने बिलमें जाकर वह मणि अपनी कन्याको खेलनेके लिये देदी। इधर सत्राजित् अपने भाईका पता न पाकर अत्यन्त विचलित हुए और सन्तापपूर्वक कहने लगे कि "मेरा भाई गलेमें मणि पहन कर वनको गयाथा, अवश्य ही मणि लेनेके लिये कृष्णने उसको मरवा डाला होगा"। बात कहीं मुखसे निकलने पर छिपती है? यह बात एक कानसे दूसरे कानमें पहुँची, और सब लोग इस प्रकार परस्पर कानाफूसी करने लगे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ भगवान् कृष्णने जब यह सुना तब नगरवासियोंको साथ ले, अपना कलंक मिटानेके लिये प्रसेनको ढूँढने चले ॥ १७ ॥ वनमें इधर उधर खोज करने पर उन्होने सिंहके द्वारा मारे गये प्रसेन और उसके घोड़ेको एवं तदनन्तर ऋक्षराजके द्वारा निहत उस सिंहको भी देखा ॥ १८ ॥ वहाँ पर अपार अन्धकारसे आवृत ऋक्षराजका भयानक बिल भी उनको मिला। भगवान् कृष्णचन्द्र सब लोगोंको बिलके बाहर ठहराकर अकेले ही उसके भीतर

गये ॥ १९॥ भगवान्ने देखा कि एक बालिका उस मणिको लिये खेलरही है। भगवान् वह मणि लेनेके विचारसे वहाँ उस कन्याके पास खड़े होगये। अपूर्व मनुष्य कृष्णचन्द्रको देख कर उस बालिकाकी धाय डरकर चिल्लाउठी। धायकी चिल्लाहट सुन कर बलवानोंमें श्रेष्ठ जाम्बवान् वहाँ दौड़ कर आये एवं क्रोधपूर्वक अपने प्रभु कृष्णचन्द्रसे भिड़ गये। दोनोंको जयकी इच्छा थी, इस कारण मांसके लिये जैसे दो 'बाज' लड़ते हैं वैसेही दोनो सुभट अस्त्र, शस्त्र, पत्थर, वृक्ष, बाहु, मुष्टि इत्यादिसे अतिघोर द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। क्रोधके आवेशसे अपने स्वामी कृष्णकी यथार्थ शक्ति और प्रभावको न पहचाननेके कारण जाम्बवान्ने उनको एक साधारण मनुष्य समझा एवं इस प्रकार युद्ध किया। अट्ठाईस दिनोंतक निरन्तर दिन और रात बराबर वज्रप्रहारके सदृश कठोर घूसों से दोनोंने परस्पर युद्ध किया॥२०॥ ॥२१॥२२॥२३॥२४॥ अन्तमें कृष्णने कठोर घूसोंकी चोटने जाम्बवान्के सुदृढ़ अंग-बन्धनोंको ढीला कर दिया; उनके शरीरसे पसीना बहने लगा। तब अत्यन्त विस्मित हो कर जाम्बवान्ने भगवान्से कहा कि—"मैंने अब जाना, आप पुराणपुरुष परमेश्वर सबके स्वामी, सर्वशक्तिमान् श्रीविष्णु भगवान् हैं। सब प्राणियोंके प्राण, इन्द्रिय—बल, मानसिक बल और शारीरिक बल आप ही हैं। जो लोग विश्वकी सृष्टि करते हैं, आप उन प्रजापतियोंको उत्पन्न करनेवाले हैं। सृष्टिमें जितने पदार्थ देख पड़ते हैं उनका उपादान-कारण भी आप ही हैं, सुतराम् आप पुराणपुरुष हैं। जो लोग सृष्टिका संहार करते हैं उनके ईश्वर महाप्रबल "काल" आपही हैं। आप सब आत्माओंके आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ प्रभो! आपहीके किञ्चित् उद्दीप्त कोप-कृत-कटाक्ष-पातसे सागरके भीतर रहनेवाले मगर, तिमिंगिल आदि जीव जन्तु क्षोभसे चंचल हो उठे थे और सागरने भी समय आपको पार जानेके लिये मार्ग दिया था, तथापि अपने यशको चिरकाल तक स्थिर रखनेके लिये आपने सेतुरचना कराई और उस पार जाकर अपने तीक्ष्ण वाणोंसे राक्षसराज रावणके शिर काट गिराये एवं अपने यशके प्रकाशसे लंकाको उज्ज्वल कर दिया" ॥ २८ ॥ इस प्रकार ऋक्षराजके हृदयमें जब ज्ञानका उदय हुआ तब देवकीनन्दन कमलनयन अच्युतने अपना मंगलमय हाथ फेरकर परम-भक्त ऋक्षराजकी सब थकन और शिथिलता दूर कर दी और फिर परम कृपा-पूर्वक मेघके सदृश गंभीर स्वरसे कहा कि—"हे ऋक्षराज! मणिके लिये मैं इस तुम्हारे बिलमें आया हूँ; इस मणिसे मैं अपने मिथ्या कलंकको मिटाऊँगा"। भगवान्के ये वचन सुन कर जाम्बवान् बहुत सन्तुष्ट हुए एवं पूजाके लिये उपहारमें मणिसहित वह अपनी जाम्बवती नाम कन्या कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दी ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इधर बिलके बाहर ठहरे हुए नगरवासी लोगोंने कृष्णकी आज्ञाके अनुसार बारह दिन तक उनके निकलनेकी राह देखी। जब बारह दिनमें कृष्णचन्द्र नहीं बाहर निकले तब तेरहवें दिन दुःखित और निराश

हो कर सब नगरवासी लोग द्वारकापुरीको लौट गये। देवकी देवी, रुक्मिणी, वसुदेव, सुहृद्गण और अन्यान्य सजातीय लोग यह सम्वाद पा कर कि 'कृष्ण-चन्द्र बिलसे बाहर नहीं निकले—उसीमें रह गये' अत्यन्त शोकाकुल और दुःखित हुए ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ सब द्वारकावासी लोग सत्राजित्को भला-बुरा कहते हुए 'श्रीकृष्ण फिर हमसे आकर मिलें'—इस कामनासे चन्द्रभागा नाम महामाया दुर्गा देवीकी आराधना करने लगे ॥ ३५ ॥ पूजा समाप्त होने पर इधर दुर्गादेवीने अमोघ आशीर्वाद दिया और उधर उस आशीर्वादको सत्य करते हुए कृष्णचन्द्र कार्य्य सिद्ध करके पत्नी जाम्बवतीको साथ लिये द्वारका पुरीमें आगये। भगवान्ने आकर अपने इष्ट-मित्र और बंधु-बान्धवोंको आनन्दित कर दिया ॥ ३६ ॥ यमलोकसे लौटे हुए मृत व्यक्तिके समान कृष्णको आये देख कर एवं उनके कंठमें स्यमन्तकमणि तथा साथमें एक सुंदरी स्त्री देख कर सब पुरवासी लोग अत्यन्त प्रसन्न हो कर महाउत्सव करने लगे ॥३७॥ तदनन्तर भगवान्ने सभामें सब राजा लोगोंके आगे सत्राजित्को बुलाया एवं जिस प्रकार मणि मिली थी सो सब कह कर उनको मणि देदी ॥ ३८ ॥ सत्राजित्ने लज्जित हो कर वह मणि लेली और वहाँसे शिर नीचा किये हुए अपने अपराधके लिये पश्चात्ताप करते २ अपने भवनको गये। वह उस अपराधकी चिन्तासे व्याकुल हो उठे एवं बलवान्के साथ झगड़ा ठाननेके कारण बहुतही घबड़ाये। सत्राजित् सोचने लगे कि "किस प्रकार मैं इस अपने अपराधको मिटाऊँ? कैसे अच्युत भगवान्को प्रसन्न करूँ? क्या करनेसे मेरा मंगल होगा? क्या करनेसे लोग मुझे अविचारी, कृपण, मन्दमति, धनलोलुप न कहें? मेरी कन्या स्त्रीरत्न है, मैं उस स्त्रीरत्नके साथ यह मणिरत्न देकर कृष्णको प्रसन्न करूँ—यही एक उपयुक्त उपाय है। इसके सिवा और उपायसे इस अपराधका प्रायश्चित्त न होगा" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ मनमें इस प्रकार निश्चय करके सत्राजित्ने आपहीसे श्रीकृष्णको अपनी कल्याणरूपिणी कन्या और वह मणि देदी। भगवान्ने विधिपूर्वक सत्राजित्की कन्या सत्यभामासे बिवाह किया ॥ ४३ ॥ सत्यभामाजी उत्तम शील, रूप, उदारता आदि गुणोंसे विभूषित थीं। अनेक राजोंने सत्राजित्से उनके लिये प्रार्थना की थी ॥ ४४ ॥

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥
तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥

भगवान्ने सत्राजित्से कहा कि—"हम मणि नहीं लेंगे। आप सूर्य्यके भक्त हैं, इस लिये यह सूर्य्यका प्रसाद आपहीके पास रहना चाहिये। हम केवल इसका फल (अर्थात् सुवर्ण) लेंगे" ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तम अध्याय।

स्यमन्तकोपाख्यान।

श्रीशुक उवाच–विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान्॥
कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून्॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! गोविंदको यद्यपि यह विदित था कि विदुरकी सहायतासे पाण्डवगण लाक्षाभवनसे सुखपूर्वक बाहर निकल गये वे लाक्षाभवनमें जले नहीं, तथापि पाण्डव लोग माता कुन्तीके साथ मानो वास्तवमें लाक्षाभवनके भीतर जल गये–इस प्रकार उक्त समाचारको सुन कर कुलोचित और लोकोचित व्यवहारकी पूर्त्तिके लिये वह बलभद्रके साथ कुरुदेशको गये॥१॥ वहाँ भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य्य, विदुर और गान्धारीसे मिल कर समान दुःख प्रकट करते हुए कृष्ण–बलभद्रने कहा कि "हाय! कैसे कष्टकी बात है!"। राजन्! इधर कृष्णचन्द्रके हस्तिनापुर जानेसे सुअवसर पाकर अक्रूर और कृतवर्म्माने शतधन्वासे कहा कि "देखो! सत्राजित्ने पहले हमलोगोंसे अपनी कन्याके देनेका प्रण किया था और फिर वही कन्या कृष्णचन्द्रको देदी। अब उससे वह श्रेष्ठ मणि क्यों नहीं लेते? जहाँ सत्राजित्का भाई प्रसेन गया है वहीं (यमलोकमें) सत्राजित्को भी पहुँचाना चाहिये–हमारी तो यही सम्मति है"॥ २॥ ॥ ३॥ ४॥ जिसका जीवन क्षीण हो गया है उस पापाचारी, महादुष्ट शतधन्वाने अक्रूर और कृतवर्म्माके कहनेमें आकर लोभवश सत्राजित्के घर जाकर सोतेहीमें उनको मार डाला॥ ५॥ पशुको मारनेके अनन्तर जैसे कसाई चला जाता है वैसेही निर्दय शतधन्वा सत्राजित्को मार कर और उत्तम मणि लेकर चला गया। अन्तःपुरकी स्त्रियाँ अनाथोंकी भाँति उच्च स्वरसे चिल्लाती और रोती रहीं, परन्तु उनके रोने या चिल्लाने पर उस निठुरने ध्यान नहीं दिया। सत्यभामाजी अपने पिताको निहत देख कर "हाय पिता" कहती हुई विलाप करने लगी। तदनन्तर उन्होने मृत पिताके शरीरको तेलसे भरी नावमें रख दिया और आप सन्ताप करती हुई हस्तिनापुरको गईं। वहाँ जाकर सत्यभामाने श्रीकृष्णचन्द्रसे पिताकी हत्याका सब वृत्तान्त कह सुनाया॥ ६॥ ७॥ ८॥ कृष्ण और बलदेव दोनो भाई, ईश्वर होने पर भी मनुष्यचरित्रका अनुकरण करके "हमलोगोंके लिये महाकष्ट उपस्थित हुआ" कह कर आँसू गिराते हुए विलाप करने लगे॥ ९॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचंद्र भाई और स्त्रीके साथ द्वारकापुरीको लौट आये और शतधन्वाको मारने व उससे मणि लेनेके लिये उद्यत हुए॥१०॥ दुराचारी शतधन्वाने जब जाना कि कृष्णचन्द्र मुझे मारनेके लिये उद्यत हैं तब वह भयभीत हो प्राण बचानेके लिये कृतवर्म्माके पास जाकर

उनसे सहायता माँगनेलगा । कृतवर्म्माने कहा–"भाई ! कृष्ण और बलभद्र साक्षात् ईश्वर हैं, मैं उनका सामना नहीं कर सक्ता । भला कौन व्यक्ति उनके विरुद्ध कार्य्य करके कुशलसे रह सक्ता है? जब राजा कंस ऐसा बली योद्धा उनसे द्रोह करनेके कारण अनुचरसहित राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो प्राण भी गँवा बैठा एवं जरासंध ऐसा सुभट सत्रह बार युद्धमें हारकर विरथ हो युद्धके विचारसे निवृत्त होगया, तब उन कृष्ण बलभद्रका अप्रिय करनेवाला कौन सुखी रह सक्ता है?" ॥११॥१२॥ ॥१३॥ जब इस प्रकार कृतवर्म्माने सहायता देनेसे नाहीं कर दी तब शतधन्वाने अक्रूरके पास जाकर उनसे सहायता माँगी । अक्रूरने भी कहा कि "उन ईश्वरके अवतार दोनो भाइयोंके बल और शक्तिको जानकर भी कौन उनके विरुद्ध काम करेगा? जो लीलापूर्वक इस विश्वको उत्पन्न करते हैं, पालन करते हैं एवं अन्तसमय इसका संहार करते हैं, बड़े २ प्रजापति जिनकी मायामें मोहित रहनेके कारण, चेष्टा तकको नहीं जान सक्ते, जिन्होने सात वर्षकी अवस्थामें—बालक जैसे धर्त्तीके फूलको खेलते २ उखाड़ ले वैसेही एक हाथसे गोवर्द्धनगिरिको उठालिया उन भगवान्, अद्भुतकर्म्म करनेवाले, अनन्त, आदिभूत, कूटस्थ, आत्मा, कृष्णचन्द्रको प्रणाम है" ॥ १४ ॥ ॥१५॥१६॥१७॥ जब अक्रूरसे भी सहायता नहीं मिली तब शतधन्वाने स्यमन्तक मणि तो अक्रूरजीको देदी और आप सौ योजन तक चलनेवाले घोड़ेपर चढ़कर वहाँसे भागा ॥ १८ ॥ कृष्णचन्द्र और बलभद्र भी गरुड़चिन्हयुक्त ध्वजावाले रथपर चढ़ कर महावेगशाली घोड़ों द्वारा गुरुद्रोही शतधन्वाके पीछे चले । मिथिलापुरीके उपवनमें पहुँच कर शतधन्वाका घोड़ा गिर पड़ा । तब शतधन्वाने घोड़ेको वहीं छोड़ दिया और आप भयके मारे पैदलही भागा; किन्तु कृष्णचन्द्रने भी कुपित होकर उसका पीछा किया । पैदल जा रहे कृष्णचन्द्रने पैदल भाग रहे शत्रुको थोड़ीही दूरपर पकड़ लिया और तीक्ष्ण धारावाले चक्रसे उसका शिर काट लिया एवं उसके वस्त्रोंमें वह मणि खोजने लगे । श्रीकृष्णचन्द्रने जब शतधन्वाके पास मणि नहीं पाई तब बड़े भाईके पास आकर कहा कि "हम ने व्यर्थही शतधन्वाको मारा, उसके पास मणि नहीं है" । बलभद्रने कहा । "शतधन्वाने वह मणि अवश्यही किसी अन्य व्यक्तिके पास रख दी है । तुम उस व्यक्तिका पता लगाओ–नगरमें जाओ, मैं अपने प्रियतमभक्त विदेहराज जनकसे मिलना चाहताहूँ" । यह कह कर यदुनंदन बलभद्रजी मिथिलापुरीको चलेगये ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ ॥२४॥ मिथिलानरेशने पूजनीय बलभद्रको आते देख, सहसा उठकर प्रसन्नतापूर्वक पूजनकी सामग्रियोंसे विधिपूर्वक पूजन किया ॥ २५ ॥ बलभद्रजी कई वर्षों तक मिथिलापुरीमें सुखसे रहे । उक्त घटनाके कुछ दिन बाद धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन मिथिलापुरीमें गया और वहाँ उसने महात्मा जनकके द्वारा आदरसहित पूजित हो कर बलभद्रसे गदायुद्ध सीखा ॥ २६ ॥ इधर प्रियाका प्रिय करनेवाले प्रभु

कृष्णने द्वारकापुरीमें आकर शतधन्वाके वध और उसके पास मणि न मिलनेका वृत्तान्त अपनी प्रिया सत्यभामासे कहा एवं सुहृद्जनोंको साथ लेकर अपने निहत बंधु सत्राजित्का पारलौकिक कृत्य सम्पन्न किया। अक्रूर और कृतवर्म्माने जब सुना कि शतधन्वा मारागया तब दोनो भयभीत होकर द्वारकासे परदेशको चल दिये। क्योंकि इन्होनेही सत्राजित्को मारने व मणि लेनेकी सम्मति शतधन्वाको दीथी ॥२७॥२८॥२९॥ महाराज! जब अक्रूरजी चलेगये तब द्वारकावासी लोग सदैव शारीरिक, मानसिक, दैविक और भौतिक आदि भाँति २ के सन्ताप और चिन्ताओंसे पीड़ित रहने लगे ॥ ३० ॥ पूर्वोक्त श्रीकृष्णके माहात्म्यको भूल जानेवाले कुछ लोग अक्रूरके प्रवासको द्वारकावासियोंके इस कष्टका कारण कहते हैं। किन्तु यह उनका कथन युक्तिसङ्गत नहीं जान पड़ता, क्योंकि श्रेष्ठ मुनिगण जिन हरिमें (अन्तःकरणात्मक लिंगशरीरसे) निवास करते हैं अर्थात् लीन रहते हैं, मग्न रहते हैं, वह हरि जहाँ रहें वहाँ ऐसे अनिष्टोंका संघटन असम्भव है। "एक समय राज्यमें बहुत दिनों तक इन्द्रकृत वर्षाके न होने पर काशिराजने अपनी कन्या गांदिनी अक्रूरके पिता श्वफल्कको व्याह दी थी, तब काशीमें वर्षा हुई, और सुकाल हुआ। अक्रूरजी उन्ही श्वफल्कके पुत्र हैं, अतएव उनका भी प्रभाव पिताके समान है। अक्रूरजी जिस स्थानमें रहते हैं वहाँ इन्द्रदेव भली भाँति जलकी वर्षा करते हैं और महामारी एवं अन्यान्य कष्टकारी उत्पात नहीं होते"—इस प्रकार वृद्ध लोगोंके मुखसे सुनकर भगवान्ने विचारा कि "इन उत्पातोंका कारण यहाँ अक्रूरका न रहना नहीं, बरन् मणिका न रहना है"। तदनन्तर अन्तर्य्यामी कृष्णचंद्रने अक्रूरको द्वारकापुरीमें सादर बुलवाया एवं यथाविधि सत्कार करके मनोहर मधुर वार्त्तालाप करते हुए मंद २ मुसकाकर कहा कि—"हे दानपति अक्रूर! शतधन्वा मणि तुमको देगया है और वह तुम्हारे पास है, यह मैं पहलेहीसे निश्चितरूपसे जानता हूँ। अक्रूरजी! सत्राजित्के कोई पुत्र नहीं है, इसलिये उनकी कन्याका पुत्रही मणिका यथार्थ उत्तराधिकारी है। क्योंकि जो कोई जिसको शेष ऋण (पितृऋण)से छुड़ा सके और जल-पिण्ड पहुँचा सके वही शास्त्रकी सम्मतिसे उसकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी हो सक्ता है। किन्तु उस मणिको अपने पास रखना अन्य किसीके लिये दुष्कर और कठिन काम है, अतएव वह मणि तुम्हारेही पास रहनी चाहिये; क्योंकि तुम सच्चरित्र हो। किन्तु मणिके न मिलनेकी बात पर हमारे बड़े भाईको भी कुछ अविश्वास सा है, इस लिये तुम सब बंधुओंके आगे एक बार वह मणि निकाल कर दिखादो। यदि तुम कहो कि मेरे पास मणि नहीं है, तो हमको सब विदित है, तुम्हारा यह कहना वृथा होगा। हमको विदित है कि इधर तुमने सुवर्णकी वेदियाँ (उसी मणिके सुवर्णसे) बनवा कर कईएक यज्ञ किये हैं"। इस प्रकार प्रभुके प्रबोध देने पर श्वफल्कपुत्र अक्रूरका भय जातारहा; उन्होने वस्त्रके भीतर

लपेटीहुई सूर्य्यके समान चमकदार वह स्यमन्तक मणि निकाल कर कृष्णके कर-कमलमें देदी। प्रभुने जातिवाले बांधवोंको वह मणि दिखाकर अपनेको लगे हुए मणिकी चोरीके कलंकको मिटादिया और फिर अपने कथनानुसार वह मणि अक्रूरको लौटा दी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥३८॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥

यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वी-
र्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ॥
आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा
दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ ४२ ॥

जो कोई भगवान् ईश्वरके विचित्र पुण्यचरित्रोंसे युक्त इस अरिष्टनिवारिणी मंगलकारिणी पतिततारिणी कथाको पढ़ता, सुनता अथवा सुमिरता है वह दुष्कीर्त्ति और पापपुंजसे मुक्त हो कर शान्तिलाभ करता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तम अध्याय।

कृष्णचन्द्रके विविधविवाह।

श्रीशुक उवाच-एकदा पाण्डवान्द्रष्टुं प्रतीतान्पुरुषोत्तमः ॥
इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! एक समय श्रीमान् पुरुषोत्तम कृष्णचन्द्रजी सात्यकी आदि अपने आत्मीयोंको साथ लेकर पाण्डवोंको देखनेके लिये हस्तिनापुर गये ॥ १ ॥ प्राणोंके लौट आने पर इन्द्रियाँ जैसे तुरन्त सचेष्ट हो अपने २ कर्म्म करने लगतीं हैं वैसे ही वीर पाण्डवगण मुक्तिदाता सब जगत्के स्वामी कृष्णचन्द्रको आते देख अपने २ आसनसे उठ खड़े हुए। उन्होने अच्युतको गले लगा लिया; भगवान्के अङ्गस्पर्शसे पाण्डवोंके पाप सब विनष्ट होगये। पाण्डवगण,-भगवान्के अनुरागपूर्ण, हास्ययुक्त मनोहर मुखको देख कर परम आनन्दित हुए। भगवान् कृष्णने युधिष्ठिर और भीमसेनके चरण छुए और अर्जुनको गलेसे लगा लिया एवं नकुल व सहदेवने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्र एक परम सुन्दर आसन पर विराजमान हुए; तब नवविवाहिता अनिन्दिता द्रौपदीजीने लज्जापूर्वक धीरे २ कृष्णचन्द्रके निकट आकर उनको प्रणाम किया ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ इस प्रकार सात्यकी

और पाण्डवोंके द्वारा पूजित व नमस्कृत होकर कृष्णचन्द्रजी आसन पर जब बैठे तब और २ लोग भी कृष्णचन्द्रसे यथायोग्य सत्कार व पूजन पाकर आसनों पर बैठे ॥ ६ ॥ तदनन्तर कुन्ती देवीने कृष्णके निकट जाकर उनको प्रणाम किया—स्नेहके कारण उनके दोनो नेत्र प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण हो गये। कुन्तीने गद्गद होकर कृष्णको हृदयसे लगा लिया एवं तदनन्तर उनसे अपने बंधु बांधवोंकी कुशल पूछने लगीं। भगवान्ने भी यथोचित उत्तर देकर अपनी बुआ कुन्तीसे उनकी और उनकी वधूकी कुशल पूछी। भगवान् भक्तोंका क्लेश मिटानेहीके लिये पृथ्वी पर प्रकट होते हैं—यह विचार कर प्रेमकी उमंगसे उमड़े हुए आँसुओंसे जिनका कंठ रुँध गया है एवं आँखोंमें प्रेमके आँसू भरे हुए हैं वह कुन्तीजी पहले पाये हुए अनेक कष्टोंका स्मरण करती हुई कृष्णसे कहने लगीं कि "हे यदुनंदन कृष्ण ! तुमने जब अपने सुहृद् जो हम हैं उनका स्मरण करके मेरे भाई अक्रूरको यहाँ कुशलवृत्तान्त जाननेके लिये भेजा था, तभीसे हम सकुशल हैं एवं तभी तुमने हमको सनाथ कर दिया था। तुम विश्व भरके बन्धु और आत्मा हो, अतएव तुमको "अपना है—पराया है"—इस प्रकारका भ्रम नहीं है। तथापि जो कोई तुम्हारा निरन्तर स्मरण करते हैं—तुम उनके सब क्लेशोंको और मानसिक चिन्ताओंको मिटादेते हो" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ युधिष्ठिरने कहा। "स्वामी ! न मालूम हम लोगोंने कौन ऐसा पुण्य किया है जो योगी जनोंको भी दुर्लभ जो आप हैं उन्होने अपना दर्शन देकर हम मंद-मतियोंको कृतार्थ किया" ॥ ११ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र इस प्रकार युधिष्ठिरके द्वारा पूजित और अभ्यर्थित होकर वर्षाऋतुके कई महीने तक हस्तिनापुरवासियोंके नयनोंको आनन्द देते हुए सुखपूर्वक वहाँ रहे ॥ १२ ॥ एक दिन शत्रुदलदलन वीरवर अर्जुनजीने अपना गाण्डीव धनुष और अक्षय-बाण-पूर्ण दोनो तर्कस लिये और उत्तम अभेद्य कवच पहना एवं कपिके चिन्हसे सुशोभित ध्वजावाले रथ पर भगवान् कृष्णचन्द्र सहित सवार होकर मृगया करनेकी इच्छासे, अनेकों सर्प सिंह आदि हिंसक जीव जहाँ अधिक तर रहते हैं उस घोर वनको गये ॥ १३ ॥ १४ ॥ वहाँ अर्जुनने तीक्ष्ण बाणोंसे अनेकानेक व्याघ्र, शूकर, भैंसे, रुरु, चौगड़े, शरभ, गवय, गैंड़े, हरिण और स्याही आदि जीवोंका वध किया। अनुचरगण उन निहत, यज्ञके योग्य पशुओंको राजा युधिष्ठिरके समीप लेगये। इधर कृष्णचन्द्र और अर्जुन—दोनो मृगया करते २ थक गये और प्यासे हुए तब जल पीनेकी इच्छासे निकटवर्तिनी यमुना नदीके किनारे पर गये ॥ १५ ॥ १६ ॥ वहाँ जाकर दोनो वीरोंने यमुनाके निर्मल जलमें हाथ पैर धोये और जलपान किया। कृष्ण और अर्जुनने यमुनाके किनारे एक परम सुंदरी कन्याको देखा। तब कृष्णचन्द्रके भेजनेसे अर्जुनजी उस सुन्दर मुख, सुन्दर दाँत और सुन्दर मुखवाली

कन्यारत्नके पास गये और बोले कि "हे सुन्दर श्रोणीवाली सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? किस विचारसे इस स्थान पर विचरती हो? हे कामिनी! जान पड़ता है अभी तुम्हारा विवाह नहीं हुआ और तुम अपने सदृश वरकी खोजमें हो" ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ कालिंदी अर्थात् उसी स्त्रीने कहा कि "हे पुरुषश्रेष्ठ! मैं भगवान् सूर्य्यकी कन्या हूँ और श्रेष्ठतम वरदानी विष्णु भगवान् मेरे पति हों-इस कामनासे यहाँ कठोर तप कर रही हूँ ॥ २० ॥ हे वीर! श्रीपतिके सिवा और किसीको मैं अपना पति बनाना नहीं चाहती। अनाथोंके नाथ वह मुकुंद भगवान् मुझ पर प्रसन्न हों। मेरा नाम कालिंदी है, पिताने इस यमुनाके जलमें मेरे लिये एक भवन बनवा दिया है। जबतक अच्युत भगवान् प्रसन्न होकर मुझको दर्शन न देंगे तबतक मैं उसी सुरक्षित भवनमें रह कर तप करूँगी" ॥२१॥२२॥ वासुदेव भगवान् पहलेहीसे इस वृत्तान्तको जानते थे, इस समय अर्जुनके मुखसे सब वृत्तान्त सुन कर उस कन्याके निकट गये और उसे रथ पर बिठाकर युधिष्ठिरजीके निकट आये। महाराज! तदनन्तर अर्जुनके अनुरोधसे कृष्णचन्द्रने विश्वकर्म्मा द्वारा एक विचित्र नगर बनवादिया। वास्तवमें उस नगरकी रचना परम अद्भुत थी ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रीतिके लिये भगवान् कृष्णचन्द्र और भी कुछ दिन उनके यहाँ रहे। इसी अवसरमें अर्जुनने अग्निको इन्द्रका खांडव वन जलानेकी आज्ञा दी। इन्द्रसे और अर्जुनसे युद्ध हुआ, उस समय कृष्णचन्द्र अर्जुनकी सहायता करनेके लिये उनके सारथी बने ॥ २५ ॥ अग्निने प्रसन्न होकर अर्जुनको विचित्र धनुष, श्वेतध्वजायुक्त रथ, दो अक्षय तर्कस एवं बड़े २ अस्त्रधारियोंके प्रहारोंसे भी न टूटनेवाला दिव्य कवच दिया। खांडव वनमें उस समय मयासुर भी था, उसको अर्जुनके कहनेसे अग्निने छोड़ दिया। मयासुरसे इसी कारण अर्जुनकी मित्रता हो गई। मयासुरने अपने मित्र अर्जुनको उपहारमें एक सुन्दर और विचित्र सभा बना दी। उसी सभामें प्रवेश करने पर दुर्य्योधनको स्थलमें जलका और जलमें स्थलका भ्रम होगया ॥२६॥२७॥ राजन्! तदनन्तर वर्षाके अन्तमें श्रीकृष्णचन्द्रजी पाण्डव आदि अपने बंधु बांधवोंसे मिलकर-पूछ कर-विदा हो कर सात्यकी आदि यादवोंके साथ द्वारकापुरीको लौट आये ॥ २८ ॥ कृष्णचन्द्रने पुरीमें आकर पुण्यऋतु और पुण्यनक्षत्रयुक्त लग्नके परम मंगलमय समयमें कालिन्दीके साथ विवाह किया ॥ २९ ॥ महाराज! विंद और अनुविंद नाम अवन्तीनरेश दोनो भाई दुर्य्योधनके वशवर्त्ती और आज्ञाकारी थे। उनकी बहनका नाम मित्रविंदा था। मित्रविंदाने स्वयंवरके अवसर पर कृष्णचन्द्रके कंठमें जयमाल डालनेका विचार किया, किन्तु कृष्णसे द्रोह करनेवाले दोनो भाइयोंने उसे ऐसा करनेसे रोका। मित्रविंदा, कृष्णकी बुआ राजाधिदेवीकी कन्या थी। कृष्णचन्द्र, उसी समय सब

राजा लोगोंको परास्त करके बलपूर्वक उनके आगे ही मित्रविंदाको हरकर घर ले आये ॥३०॥३१॥ राजन्! ऐसे ही कोशल देशके नरेश अयोध्याधिपति अत्यन्त धार्म्मिक नग्नजित्के परम कान्तिमती सत्या नाम कन्या थी। पिताके नामके अनुसार उसका दूसरा नाम नाग्नजिती भी था ॥ ३२ ॥ तीक्ष्ण सींगोंवाले, सुदुर्धर्ष, वीरगणके गंधको भी न सह सकनेवाले महादुष्ट सात बैलोंको एक ही रस्सीमें न नाथ सकनेके कारण राजालोग उस कन्यासे विवाह नहीं कर सके ॥ ३३ ॥ यह समाचार सुन कर यदुपति कृष्णचन्द्र अनेक अनीकिनी सेना साथ ले कोशलदेशको गये। कोशलनरेशने प्रसन्न हो, आसनसे उठकर भगवान्को उत्तम आसन और अर्घ्य दिया। इस प्रकार भगवान्का पूजन और आतिथ्य सत्कार करके अयोध्याधिपति नग्नजित् परमानन्दको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ अपने मनमाने इच्छानुरूप वरको आपहीसे आये देख कर नरेन्द्रकन्या सत्या मनही मन उन्हींको अपना पति मान कर कहने लगीं कि "यदि मैं आज तक अपने व्रतका पालन करती रही हूँ तो अग्निदेवके अमोघ आशीर्व्वादसे यह श्यामसुन्दर ही मेरे पति हों" ॥ ३६ ॥ नारायणका पूजन करके राजा नग्नजित्ने कहा कि "हे नारायण! हे जगन्नाथ! आप आत्मानन्दमें मग्न, अतएव सब प्रकार पूर्ण हैं; मैं क्षुद्र व्यक्ति आपका कौन कार्य्य करनेको समर्थ हूँ? लक्ष्मी, ब्रह्मा, शिव और अन्यान्य लोकपालगण जिनके चरणकमलोंके रजको अपने शिर पर सादर स्थान देते हैं, जो उचित समय पर अपने बनाये हुए धर्म्मसेतुकी रक्षाके लिये लीलाललाम देह धारण करते हैं उन आपको हम क्या करके सन्तुष्ट कर सक्ते हैं?" ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे कुरुनन्दन! भगवान् कृष्णचन्द्र आसन पर सुखपूर्वक बैठ कर मेघके समान गंभीर वाणीसे मुसकाते हुए कहने लगे कि "हे राजन्! कवियोंने अपने धर्म्मका पालन करनेवाले क्षत्रियके लिये 'कुछ माँगना' निन्दित कहा है; तथापि आपसे सुहृद्भाव होनेकी लालसासे हम आपकी कन्या माँगते हैं। किन्तु हम कन्याका मूल्यस्वरूप कुछ धन नहीं देंगे" ॥ ३९ ॥ ४० ॥ **राजाने कहा।** "हे नाथ! आप सम्पूर्ण गुणोंका एकमात्र आधार हैं एवं आपके शरीरमें अनिंदिता कमला नित्य निरन्तर निवास करती हैं। अतएव हे प्रभो! आपसे अधिक उत्तम एवं प्रार्थनीय और कौन कन्याका वर मिल सक्ता है? ॥ ४१ ॥ किन्तु हे यदुश्रेष्ठ! कन्याके योग्य वर पानेके लिये अर्थात् प्रार्थना करनेवाले पुरुषोंके पराक्रम व बलकी परीक्षाके लिये मैंने पहलेसे एक प्रण कर रक्खा है ॥ ४२ ॥ हे वीर! ये सात बैल दुर्दान्त हैं, इनको अब तक कोई वीर अपने वशमें नहीं कर सका। इन्होंने अनेक क्षत्रियोंके कुमारोंका अंगभंग करके उनको हतोत्साह कर दिया है ॥ ४३ ॥ हे यदुनन्दन! हे लक्ष्मीनाथ! यदि ये आपके द्वारा परास्त हों तो आप ही इस कन्याके अभिमत वर

होंगे" ॥ ४४ ॥ राजन्! इस प्रकार राजाका प्रण सुन कर वासुदेवने दुपट्टेको कस कर कमरसे बाँध लिया और सात भिन्न २ रूप धर कर लीलापूर्वक उन दुष्ट बैलोंको पकड़ कर रस्सियोंमें नाथ लिया। भगवान्ने इस प्रकार जिनका घमंड चूर हो गया है और वेग नष्ट हो गया है उन लीलापूर्वक नाथे गये बैलोंको लड़का जैसे लकड़ीके बैलोंको खींचे वैसे घसीटा ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ यह देख कर राजा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होने विस्मयपूर्वक आनन्दसे अपनी कन्याका हाथ भगवान् कृष्णचन्द्रको पकड़ा दिया। प्रभुने भी अपने सदृश भार्य्या नाग्नजितीसे विधिपूर्वक विवाह किया ॥ ४७ ॥ राजा नग्नजित्की रानियाँ भी यह देख कर कि कन्याको श्रीकृष्ण ऐसे प्रिय पति प्राप्त हुए, परम आनन्दको प्राप्त हुईं, आनन्दसे उनके शरीरोंमें रोमांच हो आया। इस विवाहके अवसर पर राजभवनमें और पुरीमें बड़ा ही उत्सव हुआ ॥ ४८ ॥ शंख, भेरी, ढोल आदि मांगलिक बाजे बजने लगे। स्त्रियाँ गाने लगीं और ब्राह्मणगण अमोघ आशीर्वाद देने लगे। विविध वस्त्र और माला आदिसे अलंकृत नरनारीगण वर और वधूको आशीर्वाद देकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। राजाने कंठमें पदक पहने हुए सुन्दर वेशवाली तीन हजार सुन्दरी युवती दासियाँ, भली भाँति सजी हुई दस हजार गौवें, नौ हजार हाथी, नौ लाख रथ, करोड़ घोड़े एवं नौ पद्म दास यौतुकमें दिये। परम आनन्दमें मग्न कोशलनरेशने कन्या और दमादको रथ पर चढ़ाकर विदा किया और स्नेहवश रक्षाके लिये बहुत सी सेना साथ करदी। कोशलनरेश इस प्रकार कन्या व दमादको विदा कर अपने पुरको लौट गये और सुखपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे ॥ ४९ ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ इधर जिन राजोंके घमंडको यादवोंने और नग्नजित्के बैलोंने भग्न कर डाला था उन्होने जब सुना कि कृष्णचन्द्र उसी कन्याको ब्याह कर लिये जाते हैं तब वे ईर्ष्यावश सहन न कर सके। उन्होने राहमें आकर कृष्णचन्द्रको घेर लिया और इन पर बाणोंकी वर्षा करने लगे। कृष्णचन्द्रके साथ उनके प्रिय सखा गांडीवधनुपधारी अर्जुन भी थे। उन्होने अपने बंधु कृष्णकी प्रीतिके लिये धनुष चढ़ा कर बाणोंकी वर्षासे विपक्षीय राजा लोगोंको यों भगा दिया जैसे सिंह छोटे २ मृगोंको भगा देता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ देवकीके पुत्र यदुश्रेष्ठ भगवान्ने वैवाहिक सामग्री(यौतुक)सहित, सत्याके साथ द्वारका पुरीमें प्रवेश किया। इस प्रकार भगवान् कृष्ण द्वारका पुरीमें रह कर विहार करने लगे ॥ ५५ ॥ इस विवाहके उपरान्त कृष्णचन्द्रने अपनी बुआ श्रुतकीर्त्तिकी कन्या केकयदेशजा भद्रासे विवाह किया। भद्राके भाई सन्तर्दन आदिने स्वयं सादर बुलाकर कृष्णको अपनी बहन ब्याह दी ॥ ५६ ॥ इस विवाहके उपरान्त जैसे गरुड़ अकेले ही अमृत हर लाये थे वैसे ही कृष्णचन्द्र अकेले जाकर मद्रदेशके राजाकी कन्या सुन्दर लक्षणवाली सुलक्षणाको स्वयम्वरसे हर लाये ॥ ५७ ॥

अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ॥
भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः ॥ ५८ ॥

राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णके हजारों स्त्रियाँ हुईं। वह भूमिनन्दन नरकासुरको मार कर उसके अन्तःपुरसे परम सुंदरी सोलह हजार एक सौ कन्याएँ हर लाये ॥ ५८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितम अध्याय ।

भौमासुरवध ।

राजोवाच–यथा हतो भगवता भामो येन च ताः स्त्रियः ॥
निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १ ॥

राजाने कहा। ब्रह्मन्! भौमासुरने इतनी कन्याओंको क्यों अपने अन्तःपुरमें बंद कर रक्खा था एवं भगवान् कृष्णने उस असुरको क्यों और कैसे मारा? यह सब विष्णु भगवान्के विक्रमका विषय आप हमसे कहिये ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा**। महाराज! भौमासुरने इन्द्रकी माता अदितिके कुण्डल और इन्द्रका छत्र (यद्यपि वह छत्र वरुणका था, परन्तु उसके छिन जानेसे इन्द्रका ही अपमान हुआ, क्योंकि इन्द्र सब लोकपालोंमें प्रधान हैं) बलपूर्वक छीन लिया एवं भूमिवंशज मंदरशिखरनामक महामणि जो इन्द्रके पास थी वह भी लेली। तब इन्द्रने कृष्णचन्द्रसे आकर भौमासुरकी दुष्टताका सब वृत्तान्त कहा। श्रीकृष्ण भगवान् उसी समय अपनी भार्य्या सत्यभामाको साथ ले, गरुड़ पर चढ़ कर भौमासुरके प्राग्ज्योतिषनाम पुरको गये। वह नगर बड़ा ही दुर्गम था। क्योंकि वह गिरिदुर्ग और शस्त्रदुर्गसे सुदृढ़ था एवं पर्वतों और शस्त्रोंके आवरणोंके बाद जल, अग्नि और वायुके आवरणोंसे सुरक्षित था। इस प्रकार वह नगर चारो ओरसे सुरक्षित और घिरा हुआ था। इसके सिवा मुर दैत्यके दश सहस्र अत्यंत प्रचंड पाशों द्वारा चारो ओरसे घिरा हुआ था। तात्पर्य्य यह कि उसके भीतर तक पहुँचना शत्रुके लिये कठिन ही नहीं, बरन् एक प्रकारसे असंभव ही था। किन्तु गदाधर कृष्णने पहुँचतेही गदाके प्रहारसे पहाड़ोंके आवरणको तोड़ डाला, बाणोंके प्रयोगसे शस्त्रोंके आवरणोंको नष्ट कर दिया, चक्रसे अग्नि, जल और वायुके आवरणोंको एवं खड्गसे मुर दैत्यके पाशोंको नष्ट किया तथा तदनन्तर प्रचण्ड शंखनादसे यन्त्रोंको तथा गुरु गदाके आघातसे शत्रुपक्षवाले साहसी वीरोंके हृदयोंके साथ

ही पुरके प्राकार (चहारदीवारी)को तोड़ डाला । उस समय पाँच शिरवाले मुर दैत्यके कानमें पाञ्चजन्यकी प्रलयकालीन वज्रपातके समान घोर ध्वनिने प्रवेश किया। वह दैत्य जलके भीतर पड़ा सो रहा था, सो शंखका शब्द सुनते ही उठ बैठा। वह दैत्य प्रलयकालके सूर्य्य और अग्निके समान उग्र मूर्ति धरकर, त्रिशूल हाथमें ले, सर्प जैसे गरुड़ पर चोट करनेको झपटे वैसे ही पाँचो मुख फैलाकर मानो तीनो लोकोंको लील लेगा यों कृष्णकी ओर वेगसे चला । उसने वह त्रिशूल बड़े वेगसे गरुड़के ऊपर मारा एवं पाँचो मुखोंसे भयानक शब्द किया । वह शब्द आकाश-मण्डल, स्वर्गलोक और दशो दिशाओंमें भर गया, अर्थात् उस शब्दसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त होगया ॥२॥३॥४॥५॥६॥७॥ भगवान्ने जब वह त्रिशूल गरुड़की ओर आते देखा तब शस्त्रकौशलप्रयोगपूर्वक दो वाणोंसे उसके तीन खंड कर डाले और फिर दैत्यके फैले हुए मुखोंमें कई तीक्ष्ण वाण मारे । वाणोंकी चोटसे व्याकुल और कुपित दैत्यने भी कृष्णचन्द्र पर गदाका प्रहार किया । गदाको अपनी ओर आते देख गदके अग्रज कृष्णने अपनी गदाके प्रहारसे उसके टुकड़े २ कर डाले । तब निःशस्त्र होने पर वह दैत्य दोनो हाथ उठाकर कृष्णकी ओर झपटा। तब अजित भगवान्ने लीलापूर्वक सुदर्शन चक्रसे उसके पाँचो शिर काट डाले । मुरके शिर कट गये और प्राण निकल गये तब वह इन्द्रके तेजसे जिसके शिखर कट गये हों उस पर्वतके समान जलके भीतर गिर पड़ा । ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान् और वरुण नाम मुर दैत्यके सातो पुत्र पिताके वधसे आतुर होकर भौमासुरकी आज्ञासे बदला लेनेके लिये उत्साह करके चले एवं पीठ नाम एक असुरको सेनापति बनाकर युद्ध भूमिमें आये । वे खड्ग, वाण, गदा, शक्ति, ऋष्टि, शूल आदि शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे । तब अमोघवीर्य्य भगवान् कृष्णने उक्त शस्त्रोंको अपने वाणोंसे तिल २ करके काटडाला एवं शिर, कंधे, भुजा, चरण और कवच जिनके कट गये हैं उन मुरके पुत्रोंको पीठनाम सेनापति सहित यमपुरको भेज दिया । पृथ्वीका पुत्र भौमासुर इस प्रकार अच्युतके चक्र और वाणोंसे अपनी सेना व सेनापतियोंको परास्त होते देख अत्यन्त कोप करके समुद्रसम्भव, मदमत्त हाथीपर चढ़कर युद्ध करनेके लिये निकला। उसके साथ बहुतसे समुद्रसंभव हाथी थे, जिनके गण्डस्थलसे निरन्तर मदकी धारा बह रही थी। तदनन्तर सूर्य्यके ऊपर विद्युत्युक्त मेघके समान गरुड़की पीठपर सत्यभामासहित विराजमान कृष्णको देखकर नरकासुरने उन पर एक शतघ्नी चलाई । योद्धा लोग भी अस्त्र और शस्त्र चलाकर संग्राम करने लगे । भगवान् कृष्णने उसी क्षण विचित्रपत्रयुक्त सुतीक्ष्ण वाणोंसे भौमासुरकी सेनाके घोड़े और हाथियोंका विनाश किया एवं पैदल व रथी लोगोंके बाहु, ऊरु, कंधे व शिर आदि अंग तथा शरीरोंको छिन्न भिन्न कर दिया ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! योद्धा लोगोंने जो अस्त्र

शस्त्र कृष्ण पर चलाये वे पास भी नहीं आने पाये, बीचहीमें कृष्णचन्द्रने तीन २ तीक्ष्ण वाणोंसे एक २ अस्त्र और शस्त्रके कई २ टुकड़े कर डाले ॥ १७ ॥ कृष्णचन्द्रको अपनी पीठ पर चढ़ाये हुए पक्षिराज गरुड़ भी अपने दोनो विशाल परोंकी थपेड़से मदमत्त मातंगदलको दलित करने लगे । गरुड़के प्रचण्ड तुण्ड (चोंच), पक्ष और नखोंके प्रहारसे पीड़ित हाथियोंका झुंड युद्धभूमिमें न टिकसका और युद्धसे विमुख होकर नगरकी ओर भागा । अब नरकासुर अकेला ही रह गया । गरुड़ने दैत्य सेनाको भगा दिया—यह देखकर नरकासुरने गरुड़के ऊपर एक अमोघ शक्ति चलाई । किन्तु गरुडके अंगमें जब इन्द्रका वज्र भी विफल होगया तब वह शक्ति क्या थी? जैसे फूलोंकी माला खींचकर मारनेसे गजराजको कुछ व्यथा नहीं होती और वह वैसे ही खड़ा रहता है वैसे ही गरुड़जी भी जहाँके तहाँ खड़े रहे ॥१८॥१९॥ ॥ २० ॥ तब भौमासुरने कृष्णको मारनेके अभिप्रायसे त्रिशूल हाथमें लिया, परन्तु उसकी इच्छा सफल नहीं हुई । क्योंकि त्रिशूल फेंकनेके पहले ही कृष्णने हाथी पर सवार नरकासुरका शिर तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे काट डाला । कुंडल और किरीट मुकुटसे सुशोभित नरकासुरका कान्तिमान् शिर कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा । यह देखकर दैत्यलोग हाहाकार करने लगे और ऋषिगण व देवतागण जय २ और साधु २ कह कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुकुंद पर फूलोंकी वर्षा व उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ २२ ॥ भौमासुरके मरने पर पृथ्वीने वैजयन्ती माला व वनमाला, तपाये हुए सुवर्णके बने हुए रत्नमण्डित चमचमाते हुए कुण्डल, वरुण का छत्र एवं मंदरशिखर नाम महामणि लाकर कृष्ण भगवान्को देदी और फिर हाथ जोड़, नम्रतापूर्वक भक्तिपूर्ण अंतःकरणसे उन्ही देवदेव संसारके स्वामी श्यामसुन्दरकी इस प्रकार स्तुति करने लगी ॥२३॥२४॥ पृथ्वीने कहा । "हे देवदेव ! हे ईश्वर ! हे शंख, चक्र और गदा धारण करने वाले ! हे परमात्मा ! आप निराकार निर्गुण होकर भी भक्तोंकी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करते हैं । आपको प्रणाम है ॥२५॥ हे अन्तर्यामी ! हे कमलनाभ ! हे कमललोचन ! आपको प्रणाम है । आपके चरण कमलतुल्य कोमल हैं और आपके वक्षःस्थलमें कमलके फूलोंकी माला शोभायमान है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! हे वासुदेव ! हे विष्णु ! हे बीजस्वरूप आदिपुरुष ! हे पूर्णज्ञानमय ! आपको प्रणाम है ॥ २७ ॥ आप ब्रह्म अर्थात् बृहत् हैं, आपकी शक्ति अनन्त है; अतएव जन्मरहित होकर भी आप जगत्के जन्मदाता परम पिता हैं । आप उत्कृष्ट और निकृष्ट—सब प्रकारके प्राणियोंके आत्मा अर्थात् परमात्मा हैं, हे अन्तर्यामी ! आपको प्रणाम है ॥ २८ ॥ प्रभो ! आप विश्वकी सृष्टिकी इच्छासे उत्कट रजोगुणको, जगत्को पालनेकी इच्छासे सतोगुणको एवं संसारके संहारकी इच्छासे तमोगुणको समय २ पर भजते हैं, तथापि मायामें लिप्त नहीं होते । अर्थात् उक्त तीनो गुणोंसे आच्छन्न नहीं होते । हे जगत्पति ! काल, प्रकृति

और पुरुष-सब आप ही हैं ॥२९॥ भगवन् ! आप अद्वितीय हैं, अर्थात् आपसे भिन्न और कुछ नहीं है । 'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय एवं इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता;-इन्हीसे चराचर जगत्का संगठन होता है'-आपमें लोगोंको इस प्रकारका भ्रम होता है (अर्थात् वास्तवमें आपहीसे इस जगत्की रचना होती है, क्योंकि उक्त पृथ्वी आदि उपादानोंकी सृष्टि आप हीसे होती है)॥३०॥ हे शरणागत जनोंके दुःखोंको दूरकरनेवाले ! यह भौमासुरका पुत्र भगदत्त भयभीत होकर आपके चरणोंकी शरणमें आया है-इसकी रक्षा करिये और अपना कलिकलुषनाशन करकमल इसके शिरपर धरिये" ॥ ३१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! प्रणत होकर भूमिने जब इस प्रकार विनीतवचनोंसे स्तुति और प्रार्थना की तब भगवान् कृष्णचन्द्रने प्रसन्न हो कर भगदत्तको अभयदान करके सम्पूर्ण समृद्धि-सम्पन्न भौमासुरके भवनमें प्रवेश किया ॥ ३२ ॥ राजन् ! महापराक्रमी भौमासुर राजा लोगोंकी सोलह हजार एक सौ कन्याएँ बलपूर्वक हर लाया था। श्रीकृष्णने अन्तःपुरमें जाकर उन सब कन्याओंको देखा ॥ ३३ ॥ वे सब स्त्रियाँ नरवर कृष्णको अन्तःपुरमें देखते ही मोहित होगईं एवं मनही मन उनको ईश्वरका भेजा हुआ अपना अभीष्ट पति मानकर इस प्रकार विधातासे प्रार्थना करने लगीं कि "हे विधाता ! यही कृष्णचन्द्र हमारे वर हों, हमारी इस इच्छाको आप स्वीकृत करिये"। विधातासे यों सबने अलग २ प्रार्थना की और अनुरागपूर्वक अपने २ हृदयमें श्रीकृष्णकी मनोहर मूर्त्ति स्थापित कर ली अर्थात् अपना २ हृदय कृष्णको अर्पण कर दिया ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ कृष्णचन्द्रने उन सब स्त्रियोंको पालकियोंपर बिठाकर द्वारकापुरीको भेज दिया । उनके साथ ही महाकोष, रथ, अश्व, अतुल ऐश्वर्य्य और वेगगामी ऐरावतके वंशमें उत्पन्न, चार दाँतवाले, शुक्ल वर्ण चौंसठ गजराज भी द्वारकापुरीको भेजे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्र अपनी प्रिया सत्यभामाके साथ उधरहीसे इन्द्रलोकको गये। महेन्द्र और इन्द्राणीने उनका आदर सत्कार व पूजन किया । भगवान्ने अदितिको उनके कुण्डल दिये और द्वारकापुरीको प्रस्थान किया । लौटते समय सत्यभामाके अनुरोधसे भगवान्ने कल्पवृक्षको उखाड़कर गरुड़की पीठ पर रखलिया । उस समय इन्द्र आदि देवगण युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए, तब कृष्णचन्द्रने उनको परास्त किया और कल्पवृक्ष लेकर द्वारका पुरीको प्रस्थान किया । कृष्णचन्द्रने कल्पवृक्ष लाकर सत्यभामाके भवनकी बगियामें लगा दिया; उससे भगवनके उपवनकी और भी शोभा अधिक होगई । कल्पवृक्षके आसवरूप गन्धके लोलुप स्वर्गलोकके भ्रमरगण कल्पवृक्षके पीछे २ स्वर्गलोकसे आकर द्वारकापुरीमें रहने लगे। श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! अहो देवतोंकी प्रकृति कैसी तामसी है! जिन इन्द्रने अपने प्रयोजनके लिये कृष्णचन्द्रके चरणोंमें अपना किरीट मुकुट रख दिया वही इन्द्र प्रयोजन सिद्ध

हो जाने पर उन्ही अपने सहायक स्वामी कृष्णसे उसी समय युद्ध करनेके लिये उद्यत होगये ॥३८॥३९॥४०॥४१॥ तदनन्तर भगवान् कृष्णचन्द्रने एक ही दिन एक ही मुहूर्त्तमें उन सोहल हजार एक सौ स्त्रियोंसे भिन्न २ भवनोंमें उतने ही रूप धर कर बिवाह किया ॥ ४२ ॥ उन रानियोंके भवन ऐसे समृद्धिसम्पन्न थे कि उनके समान वा अधिक कोई भवन तीनो लोकोंमें नहीं होगा। जिनके कर्म्म अचिन्त्य हैं वह अपने ही आनन्दसे परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्र, उन भवनोंमें निरन्तर निवास करके गृहस्थ धर्म्मका आचरण करनेवाले साधारण व्यक्तिके समान जैसे कोई कामी-विषयी पुरुषहो वैसे अपनी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंसे रमण करने लगे ॥ ४३ ॥ जिनकी पदवीको ब्रह्मा आदि भी भली भाँति नहीं जानते उन्ही लक्ष्मीपतिको पतिरूपसे पाकर वे सुन्दरियाँ अनुरागपूर्ण हँसी, चितवन एवं लज्जायुक्त नवसंगमकी बातचीत आदिके द्वारा प्रसन्न करती हुई आनन्दपूर्वक नित्य निरन्तर भजने लगीं ॥ ४४ ॥

प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौच-
ताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥
केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यै
र्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥

राजन्! सेवामें सैकड़ों दासियोंके उपस्थित रहने पर भी वे रानियाँ आपही श्रीकृष्णचन्द्रके आते समय उठकर आदरपूर्वक उनको भीतर लातीं, सुंदर आसनपर बिठलातीं, पैर धोतीं, पान देतीं, पैर दबातीं, पंखा डुलातीं और चंदनमाला आदिसे आभूषित करतीं, केशोंका संस्कार करतीं, स्नान करातीं एवं अनेक प्रकारके उपहार देकर सेवा करतीं थी ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

षष्टितम अध्याय।

श्रीकृष्ण व रुक्मिणीका वार्त्तालाप।

श्रीशुक उवाच—कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥
पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! एक समय जगद्गुरु श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीजीके भवनमें शय्या पर सुखसे बैठे हुए थे और रुक्मिणीजी सखियों सहित पंखा डुलाती हुई अपने पतिकी सेवा कर रही थीं ॥ १ ॥ जो ईश्वर लीलापूर्वक

इस विश्वको उत्पन्न करके पालन और संहार करते हैं वही जन्मरहित होकर भी अपनी बनाई हुई धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये यदुकुलमें उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ राजन्! वह रुक्मिणीका भवन अत्यन्त समृद्धिसम्पन्न था। उसमें मोतियोंकी झालरें जिनमें टँकी हैं ऐसे चंद्रातप (चँदोवे) तने हुए थे, ठौर २ पर मणिमय दीपक जल रहे थे, शोभाके लिये अनेक प्रकारके फूलोंके गुच्छे और मल्लिकाकी मालाएँ सजाई हुई थीं-जिनमें सुगंधके लोभसे भ्रमरपुंज बैठे हुए गुंजारव करते थे। सुंदर चाँदनी और उपवनमें लगे हुए कल्पवृक्षके फूलोंकी महक झरोखोंकी राहसे जाकर उस भवनके भीतर रहनेवालोंके हृदयको प्रफुल्लित और मनको प्रसन्न करती थी एवं अगुरुकी धूपका धुआँ उस भवनको आमोदित किये हुए था ॥ ३ ॥ ४ ॥ ॥ ५ ॥ राजन्! राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी उसी भवनमें पलँगके ऊपर दूधके फेनेके समान उज्ज्वल बिछौनों पर सुखसे बैठे हुए अपने पति जगत्पतिकी सेवा करने लगीं। देवी रुक्मिणी रत्नदण्डयुक्त बालव्यजन सखीके हाथसे लेकर आप डुलाने लगीं ॥ ६ ॥ ७ ॥ रुक्मिणीजी मणिमय नूपुरोंको चरणोंकी थपकसे बजाती हुई कृष्णचन्द्रकी सेवामें तत्पर थीं। उनकी कलाइयोंमें रत्नमणिमय कंकण, अँगुलियोंमें बहुमूल्य नग जिनमें जड़े हैं ऐसी अँगूठियाँ और हाथमें श्वेतव्यजन (पंखा) शोभायमान था। अञ्चलमें छिपे हुए उन्नत कुचोंमें लगे हुए कुङ्कुमकी प्रभासे अरुणवर्ण हारकी कान्ति और नितम्बों पर विराजमान अमूल्य काञ्ची (कर्धनी-तागड़ी) से रुक्मिणीजीकी अपूर्व्व शोभा देख पड़ती थी ॥ ८ ॥ रुक्मिणीजी साक्षात् लक्ष्मीका रूप थीं, उनका रूप मायामानवदेहधारी श्रीकृष्णके अनुरूप था; अलकजाल, दोनो कुण्डलोंकी झलक एवं पदक आदि आभूषणोंसे विभूषित कण्ठकी चारो ओर फैल रही कान्तिसे सुशोभित उनके आननचन्द्रसे मुसकानमय अमृतकी वर्षा हो रही थी। ऐसी अनन्यगति रुक्मिणीजीकी ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक मन्द २ मुसकाते हुए कृष्णचन्द्रने कहा-"हे राजकुमारी! लोकपालोंके समान वैभवशाली महानुभाव धनवान्, श्रीमान् एवं रूप, उदारता और बल द्वारा समृद्ध राजा लोग तुमसे बिवाह करना चाहते थे। मदनमत्त शिशुपाल तुमसे व्याह करनेके लिये दलबल सहित आचुका था; तुम्हारे भाई और पिताने भी तुम्हारा बिवाह शिशुपालके साथ करनेका निश्चय कर लिया था। तथापि सब प्रकार अपने योग्य उक्त राजकुमारोंको छोड़ कर तुमने, जो किसी बातमें अपने समान नहीं हैं उन हम ऐसोंको अपना पति क्यों बनाया? ॥ ९ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ हे सुभ्रु! हम राजा लोगोंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं, क्योंकि हमने अपनेसे बली लोगोंसे वैर बाँध रक्खा है। फिर हम राज्यासनके अधिकारी भी नहीं हैं ॥ १२ ॥ जिनका आचरण दुर्बोध है और जो स्त्रियोंके वशवर्त्ती नहीं हैं उन पुरुषोंकी पदवीका अनुसरण करनेवाली स्त्रियाँ प्रायः कष्ट

पाती और दुःख उठाती हैं ॥ १३ ॥ हे सुमध्यमे ! हम लोग निष्किञ्चन हैं और निष्किञ्चन जनही हमसे स्नेह करते हैं । अतएव समृद्धिसम्पन्न लोग प्रायः हमको नहीं भजते ॥ १४ ॥ जो लोग धन, जन्म, ऐश्वर्य्य, आकार और अवस्थामें अपने समान हों उन्हीसे मित्रता और विवाह करना सोहता है । उत्तम और अधमके साथ मित्रता और विवाह होना कभी भला नहीं है ॥ १५ ॥ हे विदर्भराजकुमारी ! तुम दूरदर्शिनी नहीं हो, इसी कारण पूर्वोक्त नीतिको बिना जाने तुमने मुझ ऐसे गुणहीन नरको भिक्षुकोंके (नारदके) मुखसे प्रशंसा सुनकर अपना पति ठीक कर लिया, वास्तवमें तुम ठग गईं ॥ १६ ॥ अस्तु अब भी तुम जिसके संगसे इस लोक और परलोकमें सुख पा सको ऐसे किसी अपने योग्य श्रेष्ठ क्षत्रियको ढूँढ लो ॥ १७ ॥ हे सुन्दर ऊरूवाली सुन्दरी ! शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र आदि राजा लोग और तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी भी हमसे वैरभाव रखता है । वीर्य्यके मदसे अंधे हो रहे उक्त घमंडी राजोंका गर्व खर्व करनेके लियेही मैं तुमको हर लाया था । क्योंकि असत् जनोंके तेजको मिटाना हमारा कर्त्तव्य है ॥ १८ ॥ १९ ॥ राजकुमारी ! तुम निश्चय जानो कि हम उदासीन हैं । हमको स्त्री, पुत्र और धन आदिकी कामना नहीं है, क्योंकि हम देह और गेह दोनोंके विषयोंमें निर्लिप्त हैं, आत्मलाभसे ही पूर्ण हैं । अतएव दीपादिककी ज्योतिके समान क्रियासे रहित केवल साक्षीमात्र हैं" ॥ २० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं ।** राजन् ! रुक्मिणीसे कृष्णचन्द्र कभी अलग न होते थे, सब समय उनके निकट बने रहते थे; इसी कारण उन्होने समझा कि कृष्णचन्द्र मुझको ही सबसे बढ़ कर मानते हैं । अतएव रुक्मिणीका दर्प दूर करनेके लिये इतना कह कर भगवान् चुप हो रहे ॥ २१ ॥ तीनो लोकके ईश्वर अपने प्यारे पतिके मुखसे ऐसे अप्रिय वचन, जैसे पहले कभी और नहीं सुने थे, सुनकर देवी रुक्मिणी बहुत ही भयभीत हुईं और उनका हृदय धड़कने लगा । वह अत्यन्त चिन्तित होकर अपने सुडौल नखोंकी प्रभासे और भी अरुण हो रहे चरणसे पृथ्वीको खोदती हुई मुख नीचा करके रोने लगीं । काजलमें मिल कर काले हो गये आँसुओंसे उनके पीन पयोधर भीग गये । दारुण मानसिक वेदनासे उनका कंठ रुँध गया, वह कुछ भी न कहसकीं । अत्यन्त दुःख, भय और शोकसे वह अचेत होगईं, हाथोंके कंकण शिथिल होकर खिसक गये और पंखा अलग गिर पड़ा । चिन्तासे चञ्चल शरीर भी, चेतनाशून्य होकर आँधीके झटकेसे जैसे कोई केलेका वृक्ष उखड़ कर गिर पड़े वैसे पृथ्वीतलपर गिर पड़ा और बाल खुल कर बिखर गये । रुक्मिणीजी हँसीकी गंभीरता न जानती थीं, इसी कारण उनकी यह दशा हुई । तब प्रियाके सुदृढ़ प्रेमको देख कर दयानिधान भगवान्को दया आगई, उसी समय उन्होने चतुर्भुज हो, झटपट पलँगसे उतर दो हाथोंसे रुक्मिणीको उठा लिया

और दो करकमलोंसे उनके बिखरे हुए केश सँवार कर आँसू पोंछे ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ महाराज ! समझानेमें चतुर, साधुओंकी एकमात्र गति प्रभु देवकी नन्दनने, हँसीकी गंभीरता न जाननेके कारण चिन्तित और दीन होरही एवं ऐसे गूढ़ उपहासके अयोग्य जो अनन्य प्रेम करनेवाली सती रुक्मिणीजी हैं उनको कृपापूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके अश्रुविकल नेत्र एवं शोकशुष्क पीन पयोधरोंको वस्त्रसे पोंछ कर यों समझाना आरंभ किया ॥ २७ ॥ २८ ॥ **भगवान्‌ने कहा** । "हे वैदर्भी ! तुम मेरे ऊपर रोष न करना। मुझे भली भाँति विदित है कि तुम मेरे सिवा किसी अन्य पुरुषको जानती भी नहीं। हे सुन्दरी ! तुम्हारे मुखसे प्रणय-कोपको प्रकट करनेवाली बातें सुनने एवं प्रणयकोपके कारण फरक रहे तुम्हारे अधर, कुटिल कटाक्षोंसे सुशोभित अरुण अपाङ्ग तथा भ्रूभंगके रंगसे मनोहर मुख देखनेके लिये ही मैंने यह हँसी की थी। हे भीरु भामिनी ! गृहस्थ लोगोंको गृहस्थाश्रममें यही परम लाभ है कि वे अपनी प्रियाके साथ हँसी दिल्लगीमें समयको व्यतीत करते हुए मनको बहलाते हैं" ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। महाराज ! भगवान्‌ने जब इस प्रकार समझाया और कहा कि मैंने तुमसे हँसी की थी, तब विदर्भनन्दिनीको धैर्य्य हुआ और उनके हृदयसे प्रियके त्याग करनेका भय जाता रहा ॥ ३२ ॥ हे भरतश्रेष्ठ ! तब रुक्मिणी देवी लज्जायुक्त मंदमुसकानके साथ सुन्दर स्नेहपूर्ण कुटिल कटाक्षोंसे पुरुषश्रेष्ठ कृष्णके ऐश्वर्य्ययुक्त मुखको देखती हुई इस प्रकार कहने लगीं ॥ ३३ ॥ **श्रीरुक्मिणीजीने कहा** । "हे कमलनयन ! आपने जो कहा कि 'मैं तुम्हारे सदृश न था, तुमने क्यों मेरे साथ विवाह किया—' इत्यादि । सो सत्य ही है, मैं आपके योग्य नहीं हूँ । कहाँ आप ब्रह्मादि तीनो देवोंके अथवा तीनो गुणोंके अधीश्वर अर्थात् नियन्ता एवं दिव्य शक्तिसम्पन्न भगवान् ! और कहाँ मैं गुणमयी प्रकृति ! मैं आपके समान कहाँ हो सक्ती हूँ । अज्ञ अर्थात् सकाम लोग ही मेरे चरणोंकी सेवा करते हैं ॥ ३४ ॥ हे विशालविक्रम ! आपका यह कथन भी सत्य है कि 'हम राजोंसे डर कर समुद्रकी शरणमें बसे हैं' । क्योंकि शब्दादि गुणही राजमान होनेके कारण 'राजा' हैं, उनके भयसे ही मानो समुद्रतुल्य अगाध अर्थात् विषयोंसे अपरिच्छिन्न शुद्ध भक्तोंके हृदयस्थलमें आप शयन करते हैं, अर्थात् निश्चलभावसे प्रकाशमान हैं । आप निरवच्छिन्न ज्ञानमय परमात्मा हैं, आपका यह कहना भी ठीक ही हैं कि 'हमने बलवानोंसे वैर बाँध रक्खा है, और हमको राज्यकी इच्छा वा अधिकार नहीं है' इत्यादि । क्योंकि जिनकी प्रबल इन्द्रियाँ बाहरी विषयोंमें लिप्त हैं उनसे अथवा प्रबल कुत्सित इन्द्रियोंसे ही आपको विद्वेष है अर्थात् उनकी प्रतीति आपको नहीं है। हे नाथ ! राजपद घोर अज्ञानरूप है, इसको पाकर मनुष्य कर्त्तव्याकर्त्त-

व्यके विवेकसे विहीन अन्धा सा होजाता है। उस राजपदको जब आपके सेवकलोगोंने छोड़ दिया अर्थात् उसकी इच्छा नहीं करते तब आपके लिये कहना ही क्या है ॥३५॥ भगवन् ! आपने अपने विषयमें और जो २ बातें कहीं हैं सो सब उचित और सत्य हैं। यथा, आपके चरणकमल मकरन्दका सेवन करनेवाले मुनिजनोंके ही आचरण दुर्बोध हैं, पशु समान अज्ञानी-विषयी मनुष्योंकी समझमें नहीं आते। जब आपका अनुसरण करनेवालोंका ही चरित्र अलौकिक एवं अचिन्त्य है तब हे भूमन् ! स्वयं साक्षात् ईश्वर जो आप हैं उनके चरित्रका दुर्बोध वा अलौकिक होना कुछ आश्चर्य्य नहीं है ॥३६॥ हे स्वामी ! जिन ब्रह्मादिकोंको और सब लोग पूजा करते हैं वे भी आदरसहित आपका पूजन करते हैं; अतएव आप निष्किञ्चन नहीं हैं। किन्तु आप एक प्रकारसे निष्किञ्चन ही हैं। क्योंकि आपसे भिन्न कुछ भी नहीं है। आप अन्तक हैं, ऐश्वर्य्यके मदमें अंधे हो रहे, अतएव केवल अपने शरीरके लालन पालनमें निरत लोग आपको नहीं जानते। आप सब पूजनीय जनोंमें श्रेष्ठ हैं, ब्रह्मादिक जगत्पूज्य देवता भी इष्टदेव मानकर आपको भजते हैं एवं वे ही आपको भी प्रिय हैं ॥ ३७ ॥ अच्छी बुद्धिवाले लोग जिसके मिलनेकी अभिलाषासे सब वस्तुओंका त्याग कर देते हैं, आप वही सम्पूर्णपुरुषार्थमयफलस्वरूप परमात्मा हैं। भगवन् ! पूर्वोक्त अच्छी बुद्धिवाले ब्रह्मादिसे ही आपका सेव्य-सेवकसम्बन्ध समुचित है। स्त्री-पुरुषरूप हमारा सम्बन्ध आपके योग्य नहीं है, क्योंकि इस सम्बन्धमें आसक्तिके कारण प्राप्त हुए सुख, दुःखोंसे हमलोग आकुल हैं ॥ ३८ ॥ संन्यस्त मुनिगण ही आपके प्रभावको जानते और कहते हैं; 'आप जगत्के आत्मा और आत्मज्ञानके देनेवाले हैं'-यह जानकर ही ब्रह्मादिकोंको छोड़ मैंने आपको अपना पति बनाया है। आपकी भ्रुकुटियोंके बीचसे उत्पन्न जो काल है उसके वेगसे जिनके मंगल और वैभवका विनाश हो सक्ता है उन ब्रह्मादि देवतोंको पति बनाना मैंने उचित एवं उत्तम नहीं समझा ॥ ३९ ॥ हे गदाग्रज गदाधर ! सिंह जैसे अपने गर्जनशब्दसे पशुपालकोंको भगाकर अपना आहार ले आता है वैसे ही आप शार्ङ्ग धनुषके नादसे राजोंको भगाकर अपना अंश अर्थात् भाग जो मैं हूँ उसको हर ले आये। वही आप उन्ही राजोंके भयसे समुद्रकी शरणमें आकर बसे हैं-इस अभिप्रायके आपके वचन ठीक नहीं जान पड़ते ॥ ४० ॥ हे कमलनयन ! अङ्ग, पृथु, भरत, ययाति और गय आदि महीशमौलिमुकुटमणि महाराजोंने भजनकी अभिलाषासे चक्रवर्त्ती राज्य छोड़ दिया और आपकी पदवी पानेके लिये वनमें जाकर तपमें निरत हुए। क्या उनको किसी प्रकारका कष्ट मिला ? अथवा वे आपकी पदवीको नहीं प्राप्त हुए ? नहीं २, वे सब कष्टोंके पार हो आपकी चरणपदवी पाकर परमानन्दमें लीन होगये हैं ॥ ४१ ॥ भगवन् ! आप सब गुणोंकी खान हैं। आपके पादारविन्दोंका मकरन्द-गन्ध साधुओंके

द्वारा वर्णित है और लक्ष्मी निरन्तर उसका सेवन करती हैं एवं भक्तजन उससे मोक्षको प्राप्त होते हैं । उसी चरणकमलमकरंदकी सुवासको सूँघकर, अपने प्रयोजनको विवेककी शुद्ध दृष्टिसे देखनेवाली कौन कामिनी फिर किसी मरणशील एवं सर्वदा कालके भयसे शंकित अन्य पुरुषका आश्रय लेगी ? ॥ ४२ ॥ आप जगत्के अधीश्वर आत्मा हैं–इस लोक और परलोकमें सब अभिलाषाएँ पूरी करनेवाले हैं; यह जान कर अपने अनुरूप जो आप हैं–उनको मैंने अपना पति बनाया । मेरी यही प्रार्थना है कि मैं देवता, पशु–पक्षी आदिकी, चाहे जिस योनिमें कर्म्मानुसार भ्रमण करूँ, सर्वत्र आपहीके चरणोंकी शरणमें रहूँ । नाथ ! जो लोग आपको भजते हैं, आप समदर्शी व निःस्पृह होकर भी उनको भजते हैं एवं आपके भजनद्वारा असत्य संसारसे मुक्ति मिलती है ॥ ४३ ॥ हे अच्युत ! हे शत्रुनाशन ! स्त्रियोंके गृहोंमें जो गधेके समान भार वहन करते हैं और बैलके समान नित्य गृहस्थीके व्यापारोंमें जुते रह कर क्लेश भोगते हैं, कुत्तेके समान जिनका निरादर होता है, बिलावके समान जो दीन बने रह कर सेवकोंके समान स्त्रीआदिकी सेवामें लगे रहते हैं वे आपके बताये हुए(शिशुपालआदि)नरपतिगण उसी स्त्रीके पति हों जिसके कानोंमें कभी आपकी उन पवित्र कथाओंने प्रवेश नहीं किया जिनको ब्रह्मा, शिव आदिकी सभाओंमें आदर मिलता है ॥ ४४ ॥ स्वामी ! जिसने आपके चरणारविन्दमकरंदकी सुगन्धको नहीं सूँघा वही मूढ़ स्त्री, ऊपर त्वचा, श्मश्रु, रोम, नख और केशोंसे आवृत एवं भीतर मांस, अस्थि, रक्त, कृमि, विष्टा, कफ, पित्त और वातसे परिपूर्ण जीवन्मृत पुरुषको कान्तभावसे भजेगी ॥ ४५ ॥ हे कमलनयन ! आप आत्मरत हो, मुझ पर भी आपकी अत्यन्त अधिक दृष्टि नहीं है, तथापि मेरी यही प्रार्थना है कि आपके चरणोंमें मेरा मन लगा रहे । आप इस जगत्की बढ़तीके लिये उत्कृष्ट रजोगुणको स्वीकार करते हुए जो मुझ पर दृष्टि डालते हैं उसीको मैं आपका परम अनुग्रह मानती हूँ ॥ ४६ ॥ हे मधुसूदन ! आपने जो कहा कि 'किसी अन्य अपने अनुरूप श्रेष्ठ क्षत्रियको ढूँढ लो'—सो आपका कथन मिथ्या नहीं है । क्योंकि जगत्में कोई २ स्त्रियाँ स्वामीके रहते भी अन्य पुरुष पर आसक्त हो जाती हैं–जैसे काशिराजकी कन्या शाल्वपर अनुरक्त और आसक्त होगई ॥ ४७ ॥ पुंश्चली स्त्रियोंका मन विवाह हो जाने पर भी नवीन २ पुरुषों पर आसक्त होता रहता है । किन्तु चतुर बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे ऐसी असती स्त्रियोंसे कभी विवाह न करें, क्योंकि ऐसी स्त्रियाँ दोनो कुलोंको कलंकित करती हैं, जिससे पुरुषकी भी इस लोकमें अकीर्त्ति और उस लोकमें दुर्गति होती है" ॥ ४८ ॥ श्रीभगवान्ने कहा । हे साध्वी ! हे राजकुमारी ! तुम्हारे मुखसे ऐसे ही वचन सुननेके लिये मैंने हँसी की थी । तुमने मेरे वाक्योंका यथार्थ अर्थ किया है ॥ ४९ ॥ हे कल्याणी ! तुम्हारा चित्त मुझमें

अत्यन्त अनुरक्त है, अतएव मुक्ति और निर्व्वाणके लिये तुम जिन २ वरोंको मुझसे माँगती हो वे सब तुमको सब समय प्राप्त हैं ॥ ५० ॥ हे पापरहित सुन्दरी! मैंने कुछ कठोर वाक्य कह कर तुमको कुपित करना चाहा, किन्तु तुम्हारे मनमें मेरा प्रेम वैसा ही बना रहा; इससे मुझको भली भाँति विदित होगया कि तुम्हारा हृदय पति-प्रेमसे परिपूर्ण है और तुम पातिव्रत्य धर्म्मको भली भाँति जानती हो ॥ ५१ ॥ मैं मोक्षका अधीश्वर अर्थात् देनेवाला हूँ; जो कामी नर या नारी तप और व्रत करके स्त्री-पुरुषोंके विषयभोगसुखकी कामनासे मेरा भजन करते हैं वे अवश्य ही मेरी मायामें मोहित हो रहे हैं ॥ ५२ ॥ हे मानिनी! मुक्ति और सब सम्पत्तियाँ मुझमें अवस्थित हैं और मैं सब सम्पत्तियोंका अधीश्वर हूँ। जो लोग मुझको पाकर मुझसे सम्पत्ति माँगते हैं वे अवश्य ही अभागे हैं। जो विषय नरकमें अर्थात् अत्यन्त निकृष्ट योनियोंमें भी मिलते हैं उनकी इच्छा रखनेवाले विषयी लोगोंको उन निकृष्ट योनियोंका संगम ही भला जान पड़ता है ॥ ५३ ॥ अतएव हे गृहेश्वरी! यह अत्यन्त हर्ष और मंगलकी बात है कि तुमने आज तक निष्काम भावसे मेरी सेवा की है। अन्य स्त्री ऐसी सेवा कभी नहीं कर सक्ती। विशेष करके जिनकी बुद्धि दूषित है, अतएव जो केवल शरीरके लालन पालनमें ही तत्पर हैं उन छलछंद करनेवाली स्त्रियोंके लिये तो यह अत्यन्त दुष्कर कर्म्म है ॥ ५४ ॥ हे मानिनी! मुझको गृहस्थाश्रममें तुम ऐसी प्रणयपूर्ण गृहिणी और नहीं देख पड़ती। तुमने मेरी प्रशंसा सुन कर विवाहके समय आये हुए राजों पर दृष्टि न करके अत्यन्त गुप्त रीतिसे ब्राह्मण देवताको मेरे निकट भेजा ॥ ५५ ॥ तुम्हारे भाईको मैंने विरूप बना दिया और द्यूतक्रीड़ामें बलदेवने उसको मार ही डाला परन्तु तुमने मेरे वियोगके भयसे उस असह्य घोर दुःखको सह लिया और कुछ भी नहीं कहा। इन्हीं बातोंसे तुमने मुझको जीत लिया है ॥ ५६ ॥ तुमने मुझको ही पति बनानेका दृढ़ निश्चय करके अपने प्रणकी सूचना देनेके लिये मेरे पास दूतको भेजा, और जब मेरे आनेमें विलम्ब हुआ तब सब जगत् शून्य देख तुमने विचार किया कि यह शरीर और किसीके योग्य नहीं है, इसका न रहनाही अच्छा है। मैं तुम्हारे प्रेमका बदला चुकानेमें असमर्थ हूँ-जो तुमने किया सो तुम्हारे ही योग्य है। मैं केवल तुमको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता रहूँगा" ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥
आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मान्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! इसी प्रकार आत्माराम जगदीश्वर कृष्णचन्द्र मनुष्योंका अनुकरण करके एकान्तकी बातचीत आदिके द्वारा रमा (रुक्मिणी) को

रमाते हुए स्वयं विभु तथा जगत्के गुरु होकर भी गृहस्थोंके समान अन्यान्य रानियोंके भवनोंमें रह कर गृहस्थधर्म्मका पालन करने लगे ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितम अध्याय ।

रुक्मीका वध ।

श्रीशुक उवाच–**एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशावलाः ॥**
अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन् ! श्रीकृष्णकी पूर्वोक्त रानियोंमें हर एकने दस २ पुत्र उत्पन्न किये । वे सब पुत्र किसी बातमें अपने पितासे कम नहीं थे ॥ १ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र आत्माराम हैं–इस बातको रानियाँ नहीं जानती थीं । इसी कारण श्रीकृष्णको अपने २ घरमें निरन्तर निवास करते देख कर हर एक स्त्री समझती थी कि "श्रीकृष्णचन्द्र मुझको ही सबसे अधिक चाहते हैं," किन्तु वे रानियाँ स्वयं परिपूर्ण भगवान्के सुन्दर मुखकमल, विशाल भुजा और नेत्र, प्रेमयुक्त हँसी, रसीली चितवन एवं मनोहर वार्त्तालापमें आप ही मोहित होजानेके कारण उनके मनको अपने लीलायुक्त हाव-भावसे वशीभूत नहीं कर सकीं ॥ २ ॥ ३ ॥ वे एकसे एक सुन्दरी सोलह सहस्र रानियाँ गूढ़ हास्ययुक्त कटाक्षोंके द्वारा सूचित 'भाव'से मनोहर, कमानके समान भ्रूमण्डलके द्वारा चलाये जानेवाले सुरत-मंत्र-पटु कामके बाणों व अन्यान्य उपायोंसे भी ईश्वरकी इन्द्रियोंको अपने वशमें नहीं कर सकीं ॥ ४ ॥ राजन् ! ब्रह्मा आदि देवता भी जिनकी पदवीको नहीं जानपाते उन रमापतिको, पतिके रूपमें, निरन्तर बढ़ रहे आनन्दके साथ अनुराग पूर्ण हँसी, चितवन, नवसंगमकी उत्सुकता आदि विविध हाव भाव व विभ्रमोंसे भज कर उन रानियोंने अपने २ जन्मको सफल किया । हर एक रानीके घरमें सैकड़ों दासियाँ थीं, तथापि (स्वामीके) आते समय प्रत्युद्गमन, आसनसमर्पण, चरण प्रक्षालन, उत्तम सामग्रियोंसे पूजन तथा चंदनमाला व अन्यान्य सुगंध वस्तु देना, उबटना लगाना, शिर मलना, स्नान कराना, पान देना, पैर दबाना, शयन कराना–इत्यादि कर्म्मोंसे प्रभुकी सदा सेवकाई करती थीं ॥ ५ ॥ ६ ॥ राजन् ! अब दस पुत्र उत्पन्न करनेवाली कृष्णकी रानियोंमें जिन आठ पटरानियोंका पहले वर्णन किया गया है उनके पुत्र प्रद्युम्न आदिका विवरण सुनिये ॥ ७ ॥ रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वीर्य्यशाली चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए । ये

सब किसी बातमें पितासे न्यून न थे । ऐसेही सत्यभामाके गर्भसे भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चंद्रभानु, बृहद्भानु, रतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए । जाम्बवतीके गर्भसे साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित्, विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविण, ऋतु नाम सब बातोंमें पिताके समान दस पुत्र उत्पन्न हुए । नाग्नजितीके गर्भसे वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु और श्रीमान् कुन्ति नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए । कालिन्दीके गर्भसे शुक, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए । माद्रीके गर्भसे प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्द्धग, महाशक्ति, सह, ओज और अपराजित नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए । मित्रविन्दाके गर्भसे वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महांशु, पावन, वन्हि और क्षुधि नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए । भद्राके गर्भसे संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, राम, आयु और सत्य नाम दस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ राजन्! भोजकट नगरमें रहनेवाले रुक्मिणीके बड़े भाई रुक्मीकी कन्या रुक्मवतीके साथ प्रद्युम्नका बिवाह हुआ । प्रद्युम्नके अनिरुद्धजी हुए ॥ १८ ॥ महाराज! पूर्वोक्त आठ पटरानियोंके तथा अन्यान्य सोलह हजार एक सौ रानियोंके गर्भसे उत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्रोंके भी करोड़ों पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥ राजा परीक्षित्ने पूछा कि "ब्रह्मन्! रुक्मीने अपने शत्रुके पुत्रको अपनी कन्या कैसे दी? वह तो कृष्णका कट्टर शत्रु था । कृष्णने अपमानपूर्वक जीत कर उसको छोड़ दिया था, अतएव वह कृष्णको मारनेके ताकमें रहता था । शत्रुने शत्रुके साथ बिवाहसम्बन्ध कैसे किया, सो मुझसे कृपा पूर्वक कहिये । योगी लोग भूत, भविष्य, वर्त्तमान, अतीन्द्रिय (जिसमें इन्द्रियोंकी गम्य न हो) दूरस्थ और परोक्षकी सभी बातें भली भाँति देख पाते हैं" । श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन्! यद्यपि श्रीकृष्णके हाथों हुए अपने अपमानके ध्यानसे रुक्मी मनमें शत्रुता ही रखता रहा, तथापि बहनको प्रसन्न रखनेके लिये उसने भांजेको अपनी कन्या ब्याह दी । प्रद्युम्नजी साक्षात् कामदेवका अवतार थे; इस कारण स्वयम्वरमें रुक्मवतीने मोहित होकर उन्हींके गलेमें जयमाल डाल दी । उस समय प्रद्युम्नजी अकेले ही युद्धमें सब एकत्रित हुए राजोंको जीत कर रुक्मवतीको हरलाये । राजन्! कृतवर्म्माके महाबली पुत्रसे विशाल नेत्रवाली परम सुन्दरी चारुमती नाम कन्याका बिवाह हुआ । हरिसे यद्यपि रुक्मीकी सुदृढ़ शत्रुता थी और वह यह भी जानता था कि ऐसा बिवाह धर्म्मसङ्गत नहीं है, तथापि स्नेहपाशमें बँध कर भगिनीका प्रिय करनेके लिये उसने अपने नाती अनिरुद्धको अपनी रोचना नाम पोती ब्याह दी । राजन् इसी अनिरुद्धके बिवाहके उत्सवमें रुक्मिणी, बलभद्र, केशव एवं प्रद्युम्न आदि सब भोजकट नगरको गये । वहाँ जब बिवाह हो गया तब कलिं-

गनरेश आदि घमंडी दुष्ट राजोंने रुक्मीसे कहा कि-"आज बलदेवको बुला कर चौसर खेलो और पाँसोंसे उनको जीतो। राजन्! बलभद्र चौसर खेलनेमें चतुर नहीं हैं तथापि उनको चौसर खेलनेकी बड़ी चाह रहती है" ॥ २० ॥ २१ ॥ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ रुक्मी इसमें सहमत हो गया। उसी समय बलदेवजी बुलाये गये और रुक्मी उनके साथ खेलने बैठा। बलभद्रने क्रमशः सौका, सहस्रका और फिर दश सहस्र मोहरोंका दाँव लगाया, उनको बराबर रुक्मी ही जीतता रहा। जब दश सहस्रका दाँव रुक्मीने जीता तब कलिंगनरेश ठट्ठा मार कर हँसा। बलदेवजी कलिंगनरेशकी अपमानसूचक हँसीको न सहसके और मन ही मन कुपित हुए। तदनन्तर रुक्मीने एक लाख मोहरोंका दाँव लगाया, उसे बलदेवने जीत लिया। किन्तु रुक्मीने कहा-"मैं जीता"। रुक्मीने सरासर छल किया, परन्तु बलदेवजीने कुछ समझ कर टाल दिया। फिर पर्वकालमें क्षोभको प्राप्त समुद्रके समान बढ़ रहे क्रोधके वेगको रोक कर बलदेवजीने दश कोटि मोहरोंका दाँव लगाया। उसको भी यथार्थमें बलदेवने जीता, परन्तु फिर रुक्मीने छलपूर्वक कहा कि नहींजी! यह दाँव मैंने जीता है, ये पास बैठे लोग ही कह दें कि किसने यह दाँव जीता"। इसी समय आकाशवाणी हुई-"धर्म्मकी बात यह है कि इस दाँवको बलदेवजीही जीते हैं, बलदेवजी सत्य कहते हैं, रुक्मी झूठा है"। किन्तु काल जिसके शिर पर सवार था उस रुक्मीने दुष्ट राजोंकी प्रेरणासे आकाशवाणीको भी न माना और ठट्ठा मार कर हँसते हुए बलदेवसे कहा कि-"तुम लोग गऊ चरानेवाले, वनवासी अहीर चौसर खेलना क्या जानो। राजा लोगही पाँसे और वाणोंसे खेलते रहते हैं, तुम्हारे ऐसे लोग नहीं खेल सक्ते" ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ॥३२॥३३॥३४॥३५॥ रुक्मीने जब इस प्रकार तिरस्कार किया और राजा लोगोंने हँस लिया तब बलदेवजी क्रोधके वेगसे सब सम्बन्ध और स्नेह भूल गये। कुपित बलभद्रने द्वारका परिघ (बेलन)को उठा कर रुक्मीके शिर दे मारा। उसी समय उस राजोंसे भरी मङ्गलसभामें रुक्मीका शिर चूर्ण होगया और प्राण निकल गये। जो कलिंगराज दाँत निकाल कर हँसा था वह रुक्मीका वध देख, प्राणलेकर भागा। किन्तु दस पग भी भाग कर न गया होगा कि उसको बलदेवजीने दौड़ कर पकड़ लिया और कुपित होकर सब दाँत गिरा दिये, क्योंकि वह खिलखिला कर हँसा था। और भी रुक्मीके साथी राजा लोग कोरे नहीं बचे; बलभद्रजीके बेलनकी चोटसे, बाहु, ऊरु, शिर आदि उनके अंग टूट फूट गये और शरीर रुधिरसे भीग गये एवं वे भयके मारे अपने २ प्राण लेकर भागे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८॥ अपने साले रुक्मीके मरनेका समाचार पाकर कृष्णचन्द्रने भला या बुरा कुछ नहीं कहा। क्योंकि भला कहनेसे रुक्मिणी और बुरा कहनेसे बलभद्रजी बुरा मानते ॥ ३९ ॥

ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥
रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥४०॥

तदनन्तर बलदेव आदि कृष्णके आश्रित यादव लोगोंने विवाहकी शेष रीतियाँ पूरी कीं और वर अनिरुद्धको नवविवाहिता स्त्रीसहित रथ पर बिठा कर भोजकट नगरसे द्वारकापुरीको गये ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितम अध्याय ।

बाणासुरके घरमें अनिरुद्धका पकड़ा जाना ।

राजोवाच—बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥
तत्र युद्धमभूद्घोरं हरिशंकरयोर्महत् ॥
एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । भगवन्! जिस प्रकार यदुश्रेष्ठ अनिरुद्धका विवाह बाणासुरकी कन्या ऊषाके साथ हुआ और उस विवाहमें जिस प्रकार कृष्णचन्द्र और शङ्करसे भयङ्कर युद्ध हुआ—हे महायोगी! सो सब वृत्तान्त आप हमसे कृपा कर कहिये ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजीने कहा । राजन्! राजा बलिके एक सौ पुत्रोंमें बाणासुर सबसे बड़ा था । जिन्होने वामनरूप हरिको तीनो लोकोंका राज्य दे डाला, बाणासुर उन्ही महात्मा बलिका पुत्र था । बाणासुरको शिव भगवान्का इष्ट था । वह मान्य, वदान्य (उदार), बुद्धिमान्, सत्यवादी, दृढ़व्रत और सुशील था । वह शोणितपुरमें राज्य करता था और शंभुके प्रसादसे सब देवता-लोग सेवक ऐसे उसके आज्ञाकारी थे । शंभुके प्रसादसे बाणासुरके सहस्र भुजाएँ हो गई थीं । जब शंभु ताण्डवनृत्य करते थे तब वह बाजा बजाकर उनको प्रसन्न करता था । शरणागतपालक, भक्तवत्सल, सब प्राणियोंके ईश्वर भगवान् शंकरने सन्तुष्ट हो कर उससे वर माँगनेके लिये कहा । तब बाणासुरने यह वर माँगा कि आप सदैव पास रह कर मेरे पुरकी रक्षा करिये ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ बाणासुरको अपने वीर्य्यका बड़ा घमंड हो गया । उसने अपने निकटवर्ती शिवके चरण-कमलोंपर सूर्य्यके समान चमकीला किरीट मुकुट धर कर कहा कि "हे महादेव! आप सब लोगोंके गुरु और ईश्वर हैं । जिन पुरुषोंकी कामना पूर्ण नहीं हुई उनकी कामनाएँ आपकी कृपासे पूर्ण हो जाती हैं; आप कल्पवृक्षके समान कामना पूर्ण करनेवाले दानी हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ६ ॥ ७ ॥ भगवन्!

आपके दिये हुए ये हजार हाथ मुझको बोझसे लगते हैं, क्योंकि मुझे आपके सिवा तीनो लोकमें कोई अपने समान पुरुष नहीं मिलता, जिससे मैं युद्ध करूँ। मेरे हाथोंमें बहुत खुजली उठी, तब मैं वह खुजली मिटानेके लिये दिग्गजोंसे युद्ध करने गया। हे आदिदेव! मैं राहमें बाहुओंसे पर्वतोंको चूर्ण करता हुआ चला, यह देख भयभीत हो कर वे दिग्गज भी भाग गये" ॥ ८ ॥ ९ ॥ बाणासुरके ये गर्व भरे वचन सुन कर भगवान्को क्रोध आगया। शंभुने एक झंडी देकर कहा कि "इसको ले जाकर तू अपने घरमें बाँध दे, जिस दिन आप-ही-आप यह झंडी टूट कर गिर पड़ेगी, उसदिन हे मूढ़! मेरे ही समान योद्धा तुझसे युद्ध करने आवेगा" ॥ १० ॥ यह सुन कर मन्दमति बाणासुर बहुत प्रसन्न होता हुआ अपने घरको गया और हे नृप! भगवान् शंकरके बताये हुए अपने वीर्य्यविनाशन दिनके आनेकी प्रतीक्षा करने लगा ॥ ११ ॥ बाणासुरके एक ऊषा नाम कन्या थी। परमसुन्दरी ऊषाने प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धको कभी देखा या सुना न था। एक दिन स्वप्नमें ऊषाने अनिरुद्धको देखा और उन पर आसक्त होगई। यकायक अनिरुद्धको न देख कर "मित्र! कहाँ गये?" कहती हुई जाग पड़ी। उस समय ऊषा प्रियवियोगसे विह्वल हो रही थी। ऊषाकी सब सखियाँ वहाँ उपस्थित थीं-उनको देखकर ऊषा बहुतही लज्जित हुई ॥ १२ ॥ १३ ॥ बाणासुरका एक कुंभाण्ड नाम मंत्री था, उसकी कन्या चित्रलेखा ऊषाकी प्रिय सखियोंमें थी। उसने विस्मित होकर ऊषासे पूछा कि-"हे सुन्दर भौंहवाली! तुम किसकी खोज करती हो? तुम्हारा मनोरथ क्या है? हे राजपुत्री! अभीतक तो तुम्हारा किसीके साथ विवाह नहीं हुआ" ॥ १४ ॥ १५ ॥ ऊषाने कहा-"सखी! मैंने स्वप्नमें एक परमसुन्दर पुरुषको देखा है, उसका वर्ण श्याम था, भुजाएँ विशाल थीं, दोनो नेत्र कमल ऐसे थे। वह पीताम्बर पहने हुए था। सखी! वास्तवमें उसका रूप स्त्रियोंके हृदयमें बस जानेवाला था। मैं उसी कान्तको खोज रही हूँ, वह अपना अधरमधु पिला कर, मेरी इच्छा पूर्ण नहीं होने पाई और मुझको दुःखके सागरमें डाल कर, न जानें कहाँ चला गया" ॥ १६ ॥ १७ ॥ चित्रलेखाने कहा। "मैं तुम्हारा दुःख अभी दूर कर दूँगी। तुम्हारा चितचोर तीन लोकमें जहाँ होगा वहाँसे उसको ले आऊँगी बता देना तुम्हारा काम है" ॥ १८ ॥ यह कह कर चित्रलेखाने उसी समय क्रमशः देवता, गन्धर्व्व, सिद्ध, चारण, नाग, दैत्य, विद्याधर और यक्षोंके चित्र लिखे। तदनन्तर मनुष्योंके चित्र लिखे ॥ १९ ॥ मनुष्योंमें वृष्णिवंशी यादवोंको लिखा, यादवोंमें शूरसेनका, फिर वसुदेवका चित्र लिखा। फिर कृष्ण, बलदेव और प्रद्युम्नके चित्र लिखे। प्रद्युम्नको देख ऊषा लज्जित हो कर सकुची ॥ २० ॥ तदनन्तर सखीने जब अनिरुद्धका चित्र बनाया तब उनको देख कर ऊषाने लज्जासे मुख नीचा किये हुए मुसकाकर कहा कि-"यही

वह हैं" ॥ २१ ॥ चित्रलेखाने योगविद्याके प्रभावसे जाना कि यह कृष्णके पौत्र अनिरुद्ध हैं। उसी समय चित्रलेखा आकाशमार्गके द्वारा कृष्णके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारका पुरीको गई ॥ २२ ॥ वहाँ पलँग पर पड़े हुए अनिरुद्धजी सो रहे थे। उसी समय चित्रलेखा योगबलसे अनिरुद्धका पलँग उठा कर शोणितपुरमें ले आई और अपनी सखीको उसके प्रियसे मिला दिया ॥ २३ ॥ परम सुन्दर अनिरुद्धको देखते ही ऊषाका मुखकमल प्रफुल्लित होगया। जहाँ पुरुषोंकी दृष्टि भी नहीं पड़सक्ती उस अन्तःपुरमें, तबसे ऊषा अनिरुद्धके साथ रमण करने लगी ॥ २४ ॥ सुन्दर वस्त्र, माला, चन्दन, धूप, दीप, आसन आदि सामग्री और भोजन एवं मधुर वचन तथा अन्यान्य प्रकारकी सेवासे ऊषाने इस प्रकार चित्तको वश कर लिया कि अनिरुद्धजी कन्याके अन्तःपुरमें छिप कर बहुत समय तक रहे। नित्य बढ़ रहे ऊषाके स्नेहमें अनिरुद्धजी ऐसे मग्न होगये कि उनको यह भी न जान पड़ा कि कितना समय बीत गया ॥ २५ ॥ २६ ॥ यदुवीरने भोग किया, ऊषाकी देह फफक उठी, कुमार व्रत नष्ट होगया। वह यौवनका उभार छिपाए नहीं छिप सक्ता। एक दिन ऊषा ऊपरसे झाँकी, लक्षण देख कर द्वारपालोंने शंकित हो बाणासुरसे जाकर कहा कि–"राजन्! हमें जान पड़ता है कि आपकी अविवाहिता कन्याके आचरण बिगड़े हुए हैं; जिनसे पिताके कुलको कलंक लगता है। प्रभो! हम हर घड़ी सावधानतासे उस घरकी रखवाली किया करते हैं। कोई पुरुष राजकुमारीको देख भी नहीं पाता, तब भी न जानें किस प्रकार यह अनर्थ हुआ? कुछ हमारी समझमें नहीं आता" ॥ २७ ॥ २८ ॥ कन्याको किसीने दूषित कर दिया–यह सुन कर बाणासुर बहुतही व्यथित हुआ और उसी समय जल्दीसे कन्याके भवनमें गया। वहाँ जाकर उसने देखा कि यदुश्रेष्ठ त्रिभुवन-सुन्दर साक्षात् कामदेवके पुत्र अनिरुद्धजी बैठे हुए हैं। उनके श्याम शरीर पर पीताम्बरकी अपूर्व शोभा है। नेत्र कमलदल ऐसे विशाल हैं, भुजाएँ लंबी २ हैं। कुंडल और अलककी झलक तथा मंदमुसकान व मनोहर चितवनसे मुख-मण्डलकी अपूर्व शोभा होरही है। प्रियाके स्तन–कुंकुमसे अनुरंजित मल्लिकाकी माला कंधों पर पड़ी हुई है। ऐसे अनिरुद्धको सामने बैठी हुई स्नेहयुक्त अपनी प्रियासे चौंसर खेलते देख कर बाणासुरको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ अस्त्र, शस्त्र ताने हुए बहुतसे भटोंके साथ बाणासुरको भवनमें आते देख कर अनिरुद्धजी भी द्वार पर लगा हुआ बेलन उठा कर, जैसे कालदण्ड लेकर संहारकी इच्छासे यमराज खड़े हों उस प्रकार खड़े हो गये ॥३२॥ वे सब भट चारो ओरसे पकड़नेके लिये जब उद्यत हुए तब वह, शूकरयूथपति जैसे कुत्तोंके झुंडको मारभगाता है वैसेही उनका विनाश करने लगे। उन सैनिकोंके शिर, ऊरू, भुजा आदि अंग टूट फूट गये और वे मार न सह सकनेके कारण उस घरसे बाहर निकल कर इधर उधर भागने लगे ॥ ३३ ॥

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ॥
ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्याश्रुकलाक्ष्यरौदीत्॥३४

तब महाबली बलिके पुत्र बाणासुरने कुपित होकर अपनी सेनाका संहार कर रहे अनिरुद्धको नागपाशमें बाँध लिया । अपने प्रियको बंदी होते देख ऊषा शोक और विषादसे विह्वल हो आँसू बहाती हुई रोने लगी ॥ ३४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितम अध्याय ।

बाणासुरसे व कृष्णचन्द्रसे युद्ध होना और युद्धमें कृष्णचन्द्रकी विजय ।

श्रीशुक उवाच—अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ॥
चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे भरतनन्दन! इधर अनिरुद्धको न देख कर उनके बन्धु बान्धवोंको बड़ा ही शोक हुआ । इसी प्रकार वर्षाके चार महीने बीत गये और अनिरुद्धका पता नहीं लगा ॥ १ ॥ चार महीने बाद एक दिन नारदजीने जाकर सब वृत्तान्त सुनाया कि अनिरुद्धने क्रुद्ध हो बाणासुरसे युद्ध किया और अन्तमें उसके बंदी हुए । यह सम्वाद पाकर, कृष्णही जिनके इष्टदेव हैं वे यादव लोग उसी समय अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित हो युद्धका सामान करके शोणितपुरको चलदिये ॥२॥ प्रद्युम्न, सात्यकी, गद, साम्ब, सारण, नन्द, उपनन्द और भद्र आदि श्रेष्ठ यादवोंने कृष्ण बलदेवके साथ बारह अक्षौहिणी सेनासे बाणासुरके पुरको चारो ओरसे जाकर घेर लिया ॥ ३ ॥ ४ ॥ जब यादवोंकी सेना नगरके बाग, प्राकार, अँटारी एवँ गोपुर आदिको तोड़ने फोड़ने लगी तब कुपित हो उतनी ही सेना ले बाणासुर भी युद्ध करनेके लिये निकल पड़ा । बाणकी ओरसे भक्तवत्सल भगवान् शंभु स्वयं नन्दी पर सवार हो अपने पार्षदों और पुत्रोंसहित युद्ध करनेके लिये आये ॥ ५ ॥ ६ ॥ उस समय कृष्ण और शिवसे, प्रद्युम्न और शिवके पुत्र कार्तिकेयसे, कुंभांड व कूपकर्ण और बलभद्रजीसे, बाणासुरके पुत्र और साम्बसे एवं बाणासुर और सात्यकीसे महाघोर युद्ध हुआ; जिसके सुननेसे भी रोम खड़े हो जाते हैं ॥ ७ ॥ ८ ॥ ब्रह्मादिक देवनायक, मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व अप्सरा, यक्ष आदि सब झुंडके झुंड देव—उपदेवगण युद्ध देखनेके लिये विमानों पर बैठ २ कर आये ॥ ९ ॥ कृष्णचन्द्रने शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए तीक्ष्ण नोकवाले बाणोंकी वर्षा करके शंकरके भूत, प्रमथ, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, बेताल, विनायक, प्रेतगण, मातृगण, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस आदि अनुचरोंको मार

भगाया ॥ १० ॥ ११ ॥ शिवजीने भाँति २ के अनेकों दिव्य अस्त्र कृष्णचन्द्र पर चलाये और कृष्णचन्द्रने भी कुछ विस्मय न करके लीलापूर्वक अपने अस्त्रोंसे उन अस्त्रोंको विफल कर दिया ॥ १२ ॥ कृष्णचन्द्रने ब्रह्मास्त्रको ब्रह्मास्त्रसे, वायव्यको पार्वतसे, आग्नेयको पर्जन्यास्त्रसे और पाशुपत अस्त्रको नारायणास्त्रसे शान्त किया ॥ १३ ॥ तदनन्तर कृष्णचन्द्रने शिव पर मोहन अस्त्र चलाया, जिससे मोहित हो कर शिवजी जम्हाई लेने लगे। उस समय भगवान् वासुदेव तर्वार, गदा, बाण आदिसे बाणासुरकी सेनाका संहार करने लगे ॥ १४ ॥ प्रद्युम्नके बाणोंकी वर्षासे कार्तिकेयके शरीरसे रुधिर बहने लगा एवं पीड़ित मयूर उनको लेकर रणभूमिसे टल गया ॥ १५ ॥ कुंभांड और कूपकर्ण, दोनो राक्षस बलभद्रके मूशलकी चोटसे मूर्च्छित हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े; तब उनकी सेना बिना किसी रक्षकके विकल हो कर भागी ॥ १६ ॥ रथ पर सवार बाणासुर, अपनी सेनाको भागते देख, अत्यन्त कुपित हो, सात्यकीसे युद्ध करना छोड़, कृष्णचन्द्रकी ओर चला ॥ १७ ॥ रणदुर्मद बाणासुरने एक साथ पाँच सौ धनुषोंकी प्रत्यञ्चाएँ खींच कर एक २ धनुष पर दो २ बाण चढ़ाये ॥ १८ ॥ किन्तु हरि भगवान्ने, बाणासुर बाण-वर्षा करने भी न पाया–पहले ही उसके सब धनुषोंको काट डाला और फिर उसके सारथी, घोड़े और रथको नष्ट करके शंख बजाया ॥ १९ ॥ पुत्रके प्राणों पर संकट देख कर बाणासुरकी माता कोटरा बाल खोल नंगी हो बाहर निकल आई और पुत्रके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये आकर कृष्णके आगे खड़ी हो गई ॥ २० ॥ भगवान्ने मुख फेर लिया–क्योंकि नंगी स्त्रीको देखना नीतिविरुद्ध बात है। इसी अवसरमें बाणासुर और रथ व धनुष लेनेके लिये पुरमें चला गया, क्योंकि उसका रथ और धनुष कृष्णके बाणोंसे कट गया था ॥२१॥ इधर जब सब भूतगण भाग गये तब शिवने तीन शिर और तीन पैरवाले ज्वरको छोड़ा। वह ज्वर दशो दिशाओंको अपने तेजसे जलाता हुआ कृष्णचन्द्रकी ओर चला। तब नारायण देवने उसको देख कर अपने ज्वर अर्थात् शीतज्वर (जूड़ी) को छोड़ा ॥ २२ ॥ महेश्वर और विष्णुके दोनो ज्वर परस्पर युद्ध करनेलगे। महाबली विष्णुके ज्वरसे पीड़ित हो कर चिल्लाता हुआ शंकरका ज्वर अन्यत्र कहीं अपनी रक्षा न देख, भयभीत हो, हाथ जोड़ कर इस प्रकार भगवान्की स्तुति करता हुआ शरणकी प्रार्थना करने लगा ॥ २३ ॥ २४ ॥

ज्वरने कहा–"आप अनन्तशक्तिशाली ईश्वर हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। आप सर्व्वात्मा, निरवच्छिन्न, विज्ञानमात्र और ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर हैं। आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति व संहारका कारण हैं। कर्म्मरहित होनेके कारण वेदोंके द्वारा जिसका ज्ञान होता है वह ब्रह्म भी आप ही हैं–आपको प्रणाम है। आप शान्तिमय हैं ॥ २५ ॥ काल, दैव, कर्म्म, जीव, स्वभाव, सूक्ष्म पञ्चतत्त्व,

प्राण, अहंकार, ग्यारह इन्द्रियाँ, पञ्चमहाभूत, देह एवं देहके बीजका उगना व बढ़ना—ये सब आपहीकी माया हैं; किन्तु आपमें इनका सद्भाव नहीं है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा करो ॥ २६ ॥ आप लीला करनेहीके लिये मत्स्य, कूर्म्म आदि योनियोंमें अवतार ले देवगण, साधुगणकी और सनातन लोकमर्यादाओंकी रक्षा एवं हिंसा करनेवाले उन्मार्गगामी दैत्य आदिका संहार करते हैं। आपका यह अवतार पृथ्वीका भार उतारनेके लियेही हुआ है ॥ २७ ॥ आपके शान्त और उग्र अत्यन्त भयानक दुस्सह तेजसे मैं तप रहा हूँ। देही लोग आशामें फँसे रह कर जबतक आपके चरणकमलोंकी सेवा नहीं करते तभी तक उनको सब प्रकारके तापोंकी पीड़ा रहती है। यही जान कर मैं आपके चरणोंकी शरणमें आया हूँ" ॥ २८ ॥ भगवान्‌ने कहा। "हे त्रिशिरा ज्वर! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ; अब तुझको मेरे ज्वरसे कुछ भय नहीं है। आजसे जो व्यक्ति हमारे सम्वादको सुनेंगे उनको तेरा भय नहीं रहेगा" ॥ २९ ॥ इस प्रकार जब कृष्णचन्द्रने कहा तब प्रणाम करके शिवका ज्वर चला गया। इधर बाणासुर भी दूसरे रथपर चढ़ कर युद्ध करनेके लिये जनार्दनके सामने आया ॥३०॥ तब बाणासुर कुपित हो कर हजारों हाथोंसे कृष्णचन्द्र पर अनेक शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा ॥ ३१ ॥ जब बाणासुर अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा तब भगवान् तीक्ष्ण धारा जिसकी है उस सुदर्शन चक्रसे जैसे कोई बड़े वृक्षकी शाखाओंको काटे उस प्रकार बाणासुरकी भुजाओंको काटना आरम्भ किया ॥३२॥ चक्रधर भगवान्‌को बाणासुरकी भुजाएँ काटते देख भक्तोंपर दया करनेवाले भगवान् शंकर उनके निकट आकर यों कहनेलगे ॥ ३३ ॥ **श्रीशंकरने कहा।** भगवन्! आप वेदोंमें छिपे हुए परमज्योतिःस्वरूप परब्रह्म हैं। जिनका मन निर्मल है वे साधुगण केवल आकाशके समान सर्वव्यापक भावसे आपको सर्वत्र देख पाते हैं ॥ ३४ ॥ आकाश आपकी नाभि है, अग्नि आपका मुख है, जल आपका वीर्य्य है, स्वर्ग आपका मस्तक है, दिशाएँ आपके कान हैं, पृथ्वी आपके चरण है, चन्द्रमा आपका मन है, सूर्य्य आपका नेत्र है, अहङ्कार-रूप मैं आपका आत्मा हूँ, समुद्र आपका उदर है, इन्द्र आपकी भुजा हैं ॥ ३५ ॥ औषधियाँ आपके रोम हैं, मेघ आपके केश हैं, ब्रह्मा आपकी बुद्धि हैं, प्रजापति तुम्हारी लिंगेन्द्रिय हैं एवं धर्म्म आपका हृदय है। ऐसे आपके त्रिलोकमय विराट्-रूपकी कल्पना की जाती है ॥ ३६ ॥ हे अकुंठित तेजवाले नाथ! आपका यह अवतार धर्म्मकी रक्षा और संसारके मङ्गलके लिये हुआ है। आप हम सब प्रजा-पतियोंके रक्षक हैं—हम लोग आपहीकी कृपा और सहायतासे समग्र ब्रह्माण्डका पालन करते हैं ॥ ३७ ॥ आप स्वप्रकाश, शुद्ध, तुरीय, आदिपुरुष, एकमात्र हैं। आपही सब जगत्‌का मुख्य कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है। आप

अद्वितीय ईश्वर हैं । तथापि सब विषयोंको प्रकट करनेके लिये अपनी मायाके योगसे प्रत्येक शरीरमें भिन्न २ प्रतीत होते हैं ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य्य, अपनी छायासे आच्छन्न होकर भी उस छायाको और रूपोंको प्रकाशित करते हैं, वैसे ही हे भगवन्! स्वप्रकाश आप मायाके गुणोंसे आच्छन्न होकर भी उन गुणोंको और गुणी अर्थात् जीवोंको प्रकाशित करते हैं । अर्थात् आप सर्वसाक्षी हैं । आपको संसारका बन्धन नहीं होसक्ता ॥ ३९ ॥ भगवन्! आपकी मायाने जिनकी बुद्धिको मोहित कर रक्खा है वे जीव–पुत्र, स्त्री और गृह आदिमें आसक्त रह कर दुःखसागरमें गोते खाते रहते हैं, कभी नीचे चले जाते हैं और कभी ऊपर आजाते हैं अर्थात् कभी निकृष्ट योनियोंमें और कभी उत्कृष्ट योनियोंमें जन्म पाते हैं–परन्तु इस आवागमनसे नहीं मुक्त होते ॥ ४० ॥ भगवन्! भाग्यवश इस मनुष्यदेहको पा कर भी जो अजितेन्द्रिय व्यक्ति आपके चरणकमलोंका आदर (भजन) नहीं करता वह अपनेको ठगनेवाला है, अतएव शोचनीय है ॥ ४१ ॥ यह इन्द्रिय सुख–देखनेमें सुख जान पड़ता है परन्तु वास्तवमें महादुःखरूप है । इसी इन्द्रिय-सुखके लिये जो कोई प्रिय, ईश्वर, आत्मा जो आप हैं उनके भजनसे विमुख रहता है वह अमृतको छोड़ कर विष–भोजन करता है ॥ ४२ ॥ ईश! मैं, ब्रह्मा आदिक देवगण और निर्मल अन्तःकरणवाले मुनिगण सब—प्रियतम आत्मारूप परमेश्वर जो आप हैं उनके सब प्रकार अर्थात् मन, वाणी और कायासे शरणागत हैं ॥ ४३ ॥ हे देव! जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और ध्वंसके कारण, शान्त-रूप,–अतएव कर्म्मरहित और सबके सुहृद्, आत्मा व दैव, तथा चराचर जगत्के व संपूर्ण आत्माओंके आधारस्थान–अतएव अनन्य जो एक मात्र आप हैं उनका भजन हम संसारसे मुक्त होनेके लिये करते हैं ॥ ४४ ॥ हे देव! यह बाणासुर मेरा परम प्रिय अनुचर है । मैंने इसको अभय वर दिया है । मुझे पूर्ण आशा है कि दैत्यराज बलि पर आपने जैसे अनुग्रह किया है वैसेही इस दास पर भी करेंगे । यही मेरी प्रार्थना है" ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने कहा । "भगवन्! आपका कथन हमको स्वीकृत है । आप जिसमें प्रसन्न हों वही हम करेंगे । आपने इसको अभय वर दिया सो उत्तम किया—मैंभी कहता हूँ कि यह अबसे अभय होगया ॥ ४६ ॥ यों भी मैं इस असुरका वध न करता, क्योंकि यह बलिका पुत्र है । मैं प्रह्लादको वर देचुका हूँ कि 'किसी तुम्हारे वंशजको मैं नहीं मारूँगा' ॥ ४७ ॥ केवल इसका गर्व खर्व करनेके लिये मैंने इसके बाहुओंको काटडाला है और पृथ्वीका भार जो इसकी बहुत सी सेना थी उसका संहार किया ॥ ४८ ॥ इसकी चार भुजा बच रही हैं–ये सदा बनी रहेंगी । यह बाणासुर अजर अमर रहेगा और आपके पार्षदोंमें प्रधान माना जायगा—इसको किसीसे भय न होगा" ॥ ४९ ॥ इस प्रकार कृष्णचन्द्रसे अभय वर पाकर बाणासुरने चरणों पर

गिर, दण्डवत् प्रणाम किया एवं अनिरुद्धको वधूसहित रथ पर बिठा कर सेवामें उपस्थित किया ॥ ५० ॥ सुन्दर वस्त्र व अलङ्कारोंसे सुशोभित सपत्नीक अनिरुद्धको आगे करके शंकरसे जानेकी अनुमति लेकर कृष्णचन्द्रने द्वारकापुरीको प्रस्थान किया। एक अक्षौहिणी सेना भी बाणासुरने अपनी ओरसे साथ कर दी ॥ ५१ ॥ इधर यह सुसमाचार सुनते ही द्वारका पुरी सुसज्जित की गई । प्रत्येक प्रासादमें मनोहर ध्वजाएँ फहराने लगीं। सब राहें और चौराहे सजाये गये । बंदनवार बाँधे गये-विविध विचित्र वस्त्र व फूलोंसे बनाये गये फाटकोंकी शोभा देखने ही योग्य हुई। भगवान् कृष्णचन्द्रने इस प्रकार सुसज्जित और सुशोभित नगरीमें वर और वधू सहित प्रवेश किया। पुरवासी, बंधुवर्ग और द्विजातियोंने आगे बढ़ कर अभ्यर्थना की एवं उस समय शंख, ढोल, नगाड़े आदि मांगलिक बाजे चारो ओर बजने लगे ॥ ५२ ॥

य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥
संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥

राजन्! जो कोई प्रातःकाल उठ कर कृष्णके साथ शंकरके युद्ध व कृष्णके विजयकी यह कथा पढ़ते या सुनते हैं वे कभी नहीं हारते ॥ ५३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितम अध्याय ।

नृग राजाकी कथा ।

श्रीशुक उवाच-एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥
विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारु, भानु और गद आदि सब यदुकुमार मिलकर खेलनेके लिये उपवनको गये ॥ १ ॥ वहाँ बहुत समय तक खेलनेके उपरान्त सब प्यासे हुए। जलकी खोजमें वे लोग एक कुँएके पास पहुँचे वह, कुआँ सूखा हुआ था। सबने झाँक कर देखा तो जलके बदले उसमें एक बड़ा भारी विचित्र जीव देख पड़ा ॥ २ ॥ पहाड़ ऐसे बृहत् गिरगिटको उसमें देख सबको बड़ा विस्मय हुआ। तब वे लोग कृपापूर्वक उस गिरगिटको ऊपर निकालनेकी चेष्टा करनेलगे ॥ ३ ॥ उन्होने चमड़ेके और सूतके बड़े २ रस्सोंसे बाँध कर उसको खींचा परन्तु उसको ऊपर न लासके । तब उन्होंने उत्सुकताके साथ कृष्णचन्द्रसे आ कर सब वृत्तान्त कहा ॥ ४ ॥ कमललोचन विश्वभावन भगवान्ने आ कर उसको देखा और जैसेही उसके

शरीरमें हाथ लगाया वैसेही उत्तम श्लोक कृष्णचन्द्रका हाथ लगतेही गिरगिटके शरीरको छोड़ कर वह एक सुन्दर पुरुष होगया। वह अद्भुत अलंकार और मालाओंसे विभूषित, सुवर्णवर्ण देवरूप होगया। यद्यपि भगवान् मुकुंद सर्वज्ञ हैं तथापि सबके यह जाननेके लिये कि 'इसको यह अधम योनि किस कुकर्मसे मिली'–उससे कृष्णचन्द्रने पूछा कि "हे महाभाग! सुन्दर रूपधारी तुम कौन हो? तुम तो कोई श्रेष्ठदेवता जान पड़ते हो। हे सुभद्र! कौन कर्मसे तुम्हारी यह दुर्दशा हुई थी तुम तो इस दशाके योग्य नहीं जान पड़ते हो, यदि यह सब हमसे कहना उचित समझो तो कहो। हम सुनना चाहते हैं।" ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! आनन्दमूर्त्ति श्रीकृष्णने जब इस प्रकार पूछा तब दिव्यरूपधारी राजा नृगने सूर्य्यके समान चमकीले किरीट मुकुटसे माधवके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके कहा कि "हे प्रभो! मैं इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजर्षियोंमें श्रेष्ठ नृग नाम राजा हूँ। दानी लोगोंकी गिनतीमें कदाचित् मेरा नाम भी आपने सुना होगा। नाथ! आप सब प्राणियोंके अन्तर्य्यामी अर्थात् बुद्धिके साक्षी हैं, आपको क्या नहीं विदित है। कालद्वारा आपकी दिव्य ज्ञान-दृष्टि अप्रतिहत है। तथापि आपकी आज्ञाके अनुसार मैं अपना पूर्ववृत्तान्त करता हूँ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ पृथ्वीमें जितने रजकण हैं, आकाशमें जितने नक्षत्र हैं एवं वर्षामें जितने बूँद गिरते हैं उतनी ही दुधार, तरुणी, सुशीला, सुरूपा, अच्छे गुणवाली, कपिला, जिनके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए हैं ऐसी वस्त्र–माल्य आदिसे अलंकृत, बछड़ेवाली, न्यायपूर्वक एकत्र की गई सुन्दर गौवें मैंने गुणशीलसम्पन्न, बहुकुटुम्बी, सदाचारनिरत, तपस्वी, वेदपाठी, उदारप्रकृति, सब शास्त्र पढ़ानेवाले श्रुतिकथित कर्म्म करनेवाले श्रेष्ठ और तरुण ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दी हैं ॥१२॥ १३ ॥१४॥ मैंने ब्राह्मणोंको गऊ सुवर्ण, भवन, घोड़े, हाथी, दासीयुक्त कन्याएँ, तिल, चाँदी, शय्या, वस्त्र, रत्न, परिच्छद और रथ आदि अनेकों बार दिये हैं, यज्ञ किये हैं, कुँए बावली– तालाब आदि बनवाये हैं ॥ १५ ॥ एक समय किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणकी एक गऊ मेरे दान करनेकी गौवोंके झुंडमें आकर मिल गई और किसीने नहीं जाना। मैंने बिना जाने वह गऊ दूसरे ब्राह्मणको दे डाली। वह ब्राह्मण उस गऊको लिये जारहाथा, राहमें गऊके पूर्व स्वामी ब्राह्मणने उसको देख कर कहा "यह गऊ तो मेरी है, तूने कहाँसे पाई?"। दूसरे ब्राह्मणने कहा–"नहीं, तू झूठ कहता है–यह गऊ मेरी है, मुझको अभी राजा नृगने दी है"। इस प्रकार झगड़ते हुए दोनो ब्राह्मण अपना २ कार्य्य सिद्ध करनेके लिये मेरे पास वह गऊ लेकर आये और उन्होने कहा कि–"राजा! तुम देनेवाले हो या हरनेवाले?"। उनके वचन सुन कर मैं बहुत व्याकुल हुआ। धर्मसङ्कट देख कर मैंने दोनो ब्राह्मणोंसे विनयपूर्वक

कहा कि–"आपमेंसे कोई एक लाख उत्तम गौवें लेकर यह गऊ दे दीजिये। मैं सेवक हूँ, मुझसे बिना जाने यह अपराध हो गया है; आप मुझ पर अनुग्रह करें। मैं इस अपराधसे नरक जाऊँगा, आप उस नरकसे मुझको बचाइये"। भगवन्! "मैं आपका दान नहीं लेना चाहता" कह कर गऊको छोड़ दूसरा स्वामी चला गया और पहला स्वामी भी "मैं दस लाख गौवें भी इसके बदलेमें न लूँगा" कह कर चला गया। इसी अवसरमें यमराजके दूत आकर मुझको यमराजके पास लेगये। हे देव-देव! हे जगन्नाथ! यमराजने वहाँ मुझसे पूछा कि–"राजन्! तुम पहले अपना पुण्य भोगोगे या पाप? धर्मानुष्ठान और दान करके तुमने जिन उज्वल लोकोंको प्राप्त किया है वे अनन्त हैं, क्योंकि तुम्हारे दान और धर्मकी सीमा नहीं है"। मैंने कहा कि–"हे देव! मैं पहले अपने पापकर्मका ही फल भोगना चाहता हूँ"। प्रभो! यह सुन कर यमराजने कहा–"अच्छा तो गिरो"। यमराजके यों कहते ही मैंने देखा कि मैं गिरगिट होकर नीचे गिर रहा हूँ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ केशव! मैं ब्राह्मणोंका भक्त, दानी और आपका सेवक था, इसी कारण गिरगिटकी योनिमें भी मुझको पूर्वजन्मका वृत्तान्त नहीं भूला। मुझे आपके दर्शनकी बड़ी लालसा थी। किन्तु मुझको बड़ा ही आश्चर्य्य होता है कि आपने किस प्रकार साक्षात् होकर मुझको दर्शन दिये। क्योंकि आप परमात्मा हैं, इन्द्रियोंमें इतनी शक्ति नहीं कि आपको जान सकें, अतएव बड़े २ योगी लोग भी उपनिषद्रूप नेत्रोंके द्वारा निर्म्मल अपने हृदयमें केवल आपका ध्यान कर सक्के हैं–आपके साक्षात् दर्शन उनको भी नहीं होते। संसारबन्धनसे छूटनेके दिन जिनके निकट आ जाते हैं उन्हींको आपके दर्शन होते हैं। मैं भव-दुःखसे अंधा हो रहा था। अब आपके दर्शन होनेसे अवश्य ही मैं संसारसे मुक्त होगया। हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे गोविन्द! हे पुरुषोत्तम! हे नारायण! हे हृषीकेश! हे पुण्यश्लोक! हे अच्युत! हे अव्यय! हे कृष्ण! आप आज्ञा दीजिये, मैं देवलोकको जाऊँ। मेरी यही प्रार्थना है कि मैं चाहे जिस स्थानमें रहूँ, मेरा चित्त आपके ही चरणकमलोंमें लगा रहे। आपहीसे सब विश्वकी सृष्टि होती है, तथापि आपमें विकारका लेश भी नहीं है; क्योंकि वह माया आपहीकी शक्ति है, जिससे सृष्टि होती है। आप सब प्राणियोंका आधार हैं, आनन्दस्वरूप हैं एवं इष्टापूर्त्त आदि कर्मोंका फल देनेवाले हैं–आपको प्रणाम है" ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** यों कह कर राजा नृगने चरणों पर शिर रख भगवान्को प्रणाम किया और परिक्रमा की एवं भगवान्से आज्ञा ले सबके सामने श्रेष्ठ विमान पर चढ़ कर दिव्य लोकको गये ॥ ३० ॥ तब ब्रह्मण्यदेव धर्मात्मा देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने राजोंको शिक्षा देते हुए अपने बान्धवों और बन्धुओंसे कहा कि "अहो! बहुत थोड़ेसे भी थोड़ा ब्राह्मणका धन खाकर अग्निके समान तेजस्वी पुरुष भी उसको नहीं पचा सक्ते; तब अपनेको ईश्वर (समर्थ)

माननेवाले राजोंके लिये क्या कहना है ? उनको तो सदा ब्राह्मणके धनसे बचना चाहिये । मैं हलाहल विषको विष नहीं मानता, क्योंकि उससे बचनेके लिये उपाय है । मेरी समझमें ब्राह्मणका धन ही विष है, जिससे बचनेका उपाय, पृथ्वी पर क्या-तीनो लोकोंमें नहीं है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ फिर विष तो केवल खानेवालेहीके प्राण लेता है और अग्नि भी जलसे शान्त होजाता है, परन्तु ब्राह्मणरूप काष्ठसे उत्पन्न ब्रह्म-स्व-रूप अग्नि मूलसहित सम्पूर्ण वंशको भस्म कर देता है॥३४॥यदि इच्छापूर्वक ब्राह्मणकी अनुमति न प्राप्त हो और उसकी सम्पत्तिका अन्यायसे भोग करे तो उस पुरुष-की तीन पीढ़ियाँ (बाप, दादा, परदादा) नरकको जाती हैं और जो कोई बलपूर्वक ब्राह्मणकी सम्पत्तिको छीन कर खाता पीता और उड़ाता है उसकी दस जो पहले होगई हैं और दस जो आगे होंगी, बीस पीढ़ियाँ उसके साथ नरकमें पड़कर कष्ट भोग करती हैं । जो लोग ब्राह्मणकी सम्पत्ति पर दाँत लगाते हैं वे मानो स्वयं नरक जानेकी अभिलाषा करते हैं । विप्रसम्पत्तिको हरनेवाले अज्ञ राजोंको नहीं सूझता कि हम अपने हाथों राजलक्ष्मीको ढकेलकर अपनेको नरकमें गिरा रहे हैं । उदार, कुटुम्बी ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति या वृत्ति छिन जानेपर वे रोते हैं; उनके आँसुओंके जलसे जितने पृथ्वीके रज-कण भीगते हैं उतने ही वर्षों तक उनकी सम्पत्ति या वृत्तिके हरनेवाले राजा और राजकर्म्मचारी लोग अपने २ परिवार सहित घोर कुम्भीपाक नरकमें गर्मतेलमें पकाये जाते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ॥ ३८ ॥ जो कोई अपनी या पराई दी हुई ब्राह्मणकी सम्पत्ति या वृत्तिको हर लेता है वह साठ हजार वर्ष विष्ठामें कीड़ा होता है ॥ ३९ ॥ मैं यही चाहता हूँ कि मैं कभी जाने या बिनाजाने ब्राह्मणके धनका अपहरण न करूँ । जो दुष्ट राजालोग ब्राह्मणकी सम्पत्ति लेना चाहते हैं वे अल्पायु, राज्यसे भ्रष्ट, पराजित होते व व्याकुल रहते हैं॥४०॥ अतएव हे बन्धु-बान्धवगण ! ब्राह्मण यदि अपराध भी करे तो उसका अप्रिय या अनिष्ट न करना । ब्राह्मण चाहे मारे या गालियाँ दे, तो भी तुम उससे द्रोह न करके प्रणाम ही करना । जैसे मैं सब समय ध्यान रख कर ब्राह्मण-वन्दना करता हूँ वैसे ही तुम लोग भी नम्रतापूर्वक प्रणाम किया करो । जो कोई ऐसा न करेगा उसको मैं कड़ा दंड दूँगा । ब्राह्मणका धन, हरनेवालेको नरकमें गिराता है, इसका प्रमाण तुमने प्रत्यक्ष ही देखा है कि बिना जाने ब्राह्मणकी सम्पत्ति हरनेके लिये महादानी धर्म्मात्मा नृगको गिरगिटकी योनिमें जाना पड़ा" ॥४१॥४२॥४३॥

एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः ॥
पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥

सब लोकोंको पवित्र करनेवाले भगवान् कृष्ण द्वारकावासियोंको यों उपदेश सुनाकर अपने मन्दिरमें चलेगये ॥ ४४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्ठितम अध्याय ।

बलभद्रका रास-विलास ।

श्रीशुक उवाच—बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान्रथमास्थितः ॥
सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे कुरुश्रेष्ठ! एकदिन भगवान् बलभद्रका मन अपने सुहृद् जनोंको देखनेके लिये उत्कंठित हो आया और वह उसी समय रथपर चढ़ कर नन्दके गोकुलको गये ॥ १ ॥ गोकुलमें पहुँचते ही चिरकालसे उत्कण्ठित गोप और गोपियोंने बलभद्रजीको हृदयसे लगा लिया । तदनन्तर बलभद्रजीने प्रणाम किया और उन्होने भी शुभ आशीर्वाद देकर इनका अभिनन्दन किया ॥ २ ॥ नन्द यशोदाने कहा-"हे दाशार्ह! हे जगदीश्वर! आप अपने अनुजसहित चिरकाल तक हमारी रक्षा करो" । यों कह कर उन्होने बलभद्रजीको गोदमें लेलिया और आनन्दके आँसुओंसे बहुत देर तक उनको भिगोते रहे ॥ ३ ॥ जो गोप अवस्थामें बड़े थे उनको बलभद्रजीने स्वयं प्रणाम किया और जो अवस्थामें छोटे थे उन्होने इनको प्रणाम किया । इसी प्रकार अवस्था, मित्रता और सम्बन्धके अनुसार हँस कर और हाथ मिला कर बलभद्रजी सब गोपोंसे मिले और बोले । जब बलदेवजी प्रेमपूर्ण गद्गद् वचन कह कर सब प्रकारकी कुशल पूछ चुके तब कमललोचन श्रीकृष्णके पीछे जिन्होने सब विषय छोड़ दिये हैं वे गोपगण उनसे कहने लगे कि "हे राम! हमारे सब बन्धु बान्धव कुशलसे हैं? तुम दोनो भाई अब स्त्री, पुत्र वाले हुए हो, भला क्या अब कभी हमाराभी स्मरण करते हो? बड़ी बात जो दुष्ट कंसको तुमने मारा और अपने बान्धवोंको कष्टसे छुड़ाया और अब सब शत्रुओंको हरा कर एक दुर्भेद्य दुर्गमें रहते हो" ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ गोपियाँ बलभद्रको देख कर बहुत प्रसन्न हुईं और हँसती हुई पूछने लगीं कि—"नागरी स्त्रियोंके प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण सुखपूर्वक क्षेमकुशलसे हैं? वह क्या कभी पिता माता और बन्धु-बान्धवोंका स्मरण करते हैं? वह महापुरुष क्या कभी हमारी सेवाकी चर्चा करते है? हे यदुनन्दन! हे प्रभो! हमने उनके लिये, जिनको छोड़ना सहज नहीं है उन माता, पिता, भ्राता, पति और बहनोंको छोड़ दिया, तथापि वह एकदम सब मित्रता और प्रेमके बंधनको तोड़ हमको छोड़ मुह मोड़ कर चले गये! यदि कहो कि तुमने जाते समय उनको रोक क्यों न लिया? तो जाते समय वह जो कह गये थे कि 'हम शीघ्रही लौट आवेंगे' उस पर हम स्त्रियाँ कैसे न विश्वास करतीं?" । और एक गोपीने कहा कि "नगरकी स्त्रियाँ तो बड़ी ही चतुरा होती हैं, वे कैसे अव्यवस्थितचित्त कृतघ्न कृष्णके वचनों पर विश्वास करती हैं? अथवा

कृष्णकी बातें बहुतही मनोहर और मधुर होती हैं, अतएव पुरनारियाँ भी उनके सुन्दर मन्दमुसकानसे सुशोभित कटाक्षोंमें मोहित हो जाती होंगी, उनका चित्त कामकी उमंगसे चंचल हो जाता होगा–इससे वे उनके वचनों पर विश्वास कर लेती होंगी"। अन्य एक गोपीने कहा। "हे गोपियो! उनकी बातोंसे हमको क्या प्रयोजन है? और और बातें करो। यदि हमारे विना वह सुखसे समय बिताते हैं तो हम भी उनके बिना समय बिता सक्ती हैं" ॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥ १४ ॥ यों कह कर सब गोपियाँ श्रीकृष्णकी हँसी, बातचीत, सुंदर चितवन, चाल और प्रेमालिङ्गन आदिको स्मरण करती हुई विलाप करने लगीं ॥ १५ ॥ तब अनेक प्रकारके अनुनय करनेमें चतुर भगवान् बलभद्रने श्रीकृष्णके मनोहर संदेश सुना कर उन गोपियोंको समझाया ॥ १६ ॥ भगवान् रोहिणीनन्दन रात्रिके समय गोपियोंसे विहार करते हुए चैत्र और वैशाख दो महीने तक वहाँ रहे। बलभद्रने उन गोपियोंके साथ पूर्ण चन्द्रमाकी किरणोंसे समुज्वल एवं कुमुदगंधसे मनोहर यमुनाके उपवनमें विहार किया ॥ १७ ॥ १८ ॥ उस समय वरुणजीकी भेजी हुई वारुणी (मदिरा) वृक्षकोटरसे बह कर अपने सुवाससे उस वन भरको सुगंधित करने लगी ॥ १९ ॥ वायुके द्वारा उस वारुणीकी सुवास बलभद्र तक पहुँची, उस गंधको सूँघ कर बलभद्रजीने स्त्रियों सहित वहाँ जाकर वारुणी मदिराको पिया ॥ २० ॥ इस प्रकार मदसे जिनके नेत्र विह्वल हो रहे हैं वह उन्मत्त बलदेवजी वनमें विचरने लगे और स्त्रियाँ उनके पवित्र गुण गाने लगीं ॥२१॥ भगवान् बलभद्रके कंठमें माला तथा वैजयन्तीमाला और एक कानमें एक कुंडल एवं मुसकानसे मंजुल मुखमण्डलमें पसीनेके बूँद सुशोभित हो रहे थे। उस समय ईश्वर बलभद्रने जलविहार करनेकी इच्छासे यमुनाको अपने निकट बुलाया। किन्तु यमुना वहाँ नहीं आई। यह देख कर बलभद्रजीने जाना कि "मुझे मतवाला जान कर यमुनाने मेरी आज्ञाका अनादर किया है," अतएव कोपपूर्वक उन्होने हलसे यमुनाको अपनी ओर खींचते हुए कहा कि–"पापिनी! मैंने तुझको बुलाया, किन्तु तूने मेरा अनादर किया और यहाँ नहीं आई। तूने अपने मनका काम किया, अतएव मैं अपने हलसे खींच कर मूशलसे तेरे सैकड़ों टुकड़े कर डालूँगा" ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥ राजन्! इस प्रकार बलभद्रजीने डाँटा, तब भयभीत व चकित हो कर यमुना उनके पैरों पर गिर कर कहने लगीं कि "हे राम! हे महाबाहो! मैं आपके विक्रमको नहीं जानती थी। हे विश्वनाथ! आप अपने एक अंशसे इस पृथ्वीको धारण किये हुए हैं। हे भगवन्! मैं आपकी अपार महिमाको नहीं जानती। हे विश्वात्मा! हे भक्तवत्सल! मैं शरणागत हूँ, मुझे छोड़ दीजिये—मेरी रक्षा कीजिये" ॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ इस प्रकार अधीनतापूर्वक प्रार्थना करने पर भगवान् बलभद्रने यमुनाको छोड़ दिया; और हथनियोंके साथ जैसे गजराज क्रीड़ा करे

उस प्रकार गोपियोंके साथ यमुना जलमें घुस कर जलविहार करना आरंभ किया ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक जलविहार करनेके उपरान्त भगवान् जब जलसे बाहर निकले तब लक्ष्मी देवीने उनको नीलाम्बर और उत्तरीय वस्त्र तथा महामूल्य अलंकार व मङ्गलमयी एक माला दी ॥ २९ ॥ तब बलभद्रजी उत्तम नीलाम्बर धारण करके एवं सुवर्णकी माला पहन कर व चंदन लगा कर इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान सुशोभित हुए ॥ ३० ॥ हे राजन्! जहाँ पर बलभद्रजीने यमुनाको हलसे खींचा था वहाँ अब भी अनन्तवीर्य्य बलदेवके बलको बताती हुई यमुना टेढ़ी देख पड़ती है ॥ ३१ ॥

एवं सर्वा निशा याता एकेव रमतो व्रजे ॥
रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥

हे तात! इस प्रकार व्रजवनिताओंके माधुर्यविलासके द्वारा आकृष्ट-हृदय होकर बलदेवजीने उनके साथ रमण किया और रासविलासमें दो महीनेकी रात्रियाँ एक रात्रिके समान बीत गईं ॥ ३२ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितम अध्याय।

मिथ्या-वासुदेव और काशिराजका वध।

श्रीशुक उवाच—नन्दव्रजं गते रामे करूषाधिपतिर्नृप ॥
वासुदेवोऽहमित्यज्ञो दूतं कृष्णाय प्राहिणोत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! बलदेवजी तो नन्दके व्रजको गये। इधर कुछ दिनके उपरान्त करूष देशके अधिपति अज्ञानसे अंधे हो रहे पौण्ड्रकने "मैंही वासुदेव हूँ" ऐसा निश्चय करके भगवान् श्रीकृष्णके निकट एक दूत भेजा ॥ १ ॥ अज्ञ लोगोंने "आप ही भगवान् जगत्पति वासुदेव पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए हैं" इस प्रकार कह कर पौण्ड्रकको बहँकाया। अतएव करूषराजने अपनेको अच्युतका अवतार मान लिया एवं खेलके समय बालकों द्वारा कल्पित राजाकी भाँति उस अज्ञ मन्दबुद्धिने द्वारकामें अव्यक्तगति नारायणके निकट अपना दूत भी भेज दिया ॥२॥३॥ द्वारका जा कर दूत कृष्णकी सभामें उपस्थित हुआ एवं वहाँ पर बैठे हुए कमलनयन प्रभु श्रीकृष्णसे उस दूतने इस प्रकार पौण्ड्रकका संदेश सुनाया कि-"करूषराजने कहा है कि मैं ही एकमात्र वासुदेव हूँ, और कोई वासुदेव नहीं है; जीवोंपर दया करके मैंने अवतार लिया है। तुम मिथ्या

'वासुदेव' नामको छोड़ दो । हे यादव! तुमने मूढ़तावश जो मेरे चिन्ह धारण किये हैं उन सबको त्याग कर मेरी शरणमें शीघ्र आ क्षमा माँगो, नहीं तो मेरे साथ युद्ध करो" ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! उग्रसेन आदि सभासद लोग जो वहाँ उपस्थित थे वे अल्पबुद्धि पौण्ड्रककी यह मिथ्या आत्मश्लाघा सुन कर ऊँचे स्वरसे हँसनेलगे। भगवान्ने भी हँसकर दूतसे कहा कि उससे कह देना कि "रे मूढ़! जिन लोगोंकी सहायताके बल और घमंड पर तू इस प्रकार मिथ्या आत्मश्लाघा करता है उनपर और तुझ पर अपने सुदर्शन आदि चिन्ह मैं आकर छोड़ूँगा। तू जिस मुखसे अपनी झूठी बड़ाई करता है उस मुखको छिपा कर जब समरभूमिमें शयन करेगा तब कंक, गृध्र और वक आदि सब पक्षी तुझको घेर कर बैठेंगे और कुत्ते तेरी शरणमें आवेंगे" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके कहे हुए तिरस्कारसूचक वचन जैसेके तैसे दूतने जा कर अपने स्वामीसे कह दिये। श्रीकृष्णजी भी इधर रथपर चढ़कर काशीको चले। महारथी पौण्ड्रक अपने पुरमें था, वह भी इस प्रकार समर करनेके लिये श्रीकृष्णका उद्योग देख कर दो अक्षौहिणी सेना ले शीघ्र पुरसे बाहर निकला ॥ १० ॥ ११ ॥ राजन्! उसका मित्र काशिराज भी एक अक्षौहिणी सेना लेकर सहायताके लिये उसके साथ आया। इस प्रकार तीन अक्षौहिणी सेना सहित समरभूमिमें खड़े हुए पौण्ड्रकको भगवान्ने देखा कि वह भी अपनेही समान शंख, श्रेष्ठ खड्ग, गदा, शार्ङ्ग धनुष और श्रीवत्स आदि चिन्ह धारण किये हुए है। गलेमें कौस्तुभ व वनमालासे विभूषित है। पीताम्बर और उत्तरीय वस्त्र एवं अमूल्य चूड़ाभरण धारण किये हुए अपने ही समान (बनावटी) वेषसे, रंगभूमिमें नटके समान, युद्धभूमिमें गरुड़की ध्वजावाले रथ पर अवस्थित पौण्ड्रकको देख कर भगवान् बहुत ही हँसे। कानोंमें मकराकृत कुंडल धारण किये हुए शत्रुकी सेना हरिके ऊपर शूल, गदा, परिघ, शक्ति, ऋष्टि, प्रास, तोमर, खड्ग, पट्टिश और बाणोंकी वर्षा करने लगी। युगान्तके समय प्रचण्ड होकर अग्नि जैसे प्रजागणको भिन्न२ रूपसे पीड़ित करता है वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रने गदा, खड्ग, चक्र और बाणसमूहसे पौण्ड्रक और काशिराजकी चतुरंगिणी सेनाको अलग २ पीड़ित करना आरम्भ किया। कृष्णचक्रके प्रहारसे जिनके खंड२ होगये हैं उन रथ, घोड़े, हाथी और पैदलोंसे व्याप्त वह समरभूमि साहसी वीर पुरुषोंको प्रसन्न और उत्साहित करती हुई प्रलयकालमें रुद्रकी अति भयानक क्रीड़ाभूमि मसानके समान जान पड़ने लगी। तदनन्तर वासुदेवने सामने आकर मिथ्यावासुदेवसे कहा कि हे पौण्ड्रक! तूने दूतके द्वारा जिन सब अस्त्र-शस्त्रोंके छोड़नेके लिये मुझसे कहला भेजा था उन सब अस्त्र-शस्त्रोंको मैं इस समय तेरे ऊपर छोड़ता हूँ। साथ ही यदि युद्ध करना न चाहूँगा तो तेरे मिथ्या नामको भी छोड़कर तेरी

शरणमें आ जाऊँगा। इस प्रकार आक्षेपपूर्ण वचन सुना कर भगवान्ने इन्द्र जैसे वज्रसे पर्वतको भेदते हैं वैसे बाणवर्षासे पौण्ड्रकके रथको काट कर सुदर्शन चक्रसे उसके शिरको भी काट डाला। साथ ही एक बाणसे उसके सहायक काशिराजका भी शिर काट कर वायुसंचालित कमलपत्रके समान काशीपुरीमें पहुँचा दिया ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥२२॥ इस प्रकार गर्वित पौण्ड्रकको उसके सहायक सखासहित मार कर श्रीकृष्णचन्द्रने राहमें सिद्धगणके मुखसे अपनी अमृतमय कथाएँ सुनते हुए लौट कर द्वारकापुरीमें प्रवेश किया ॥ २३ ॥ राजन्! पौण्ड्रक शत्रुतावश सब समय भगवान्का ध्यान किया करता था, अतएव उसके सब कर्म्मबन्धन शिथिल होगये थे। बस, इसी कारण सर्वदा हरिके रूपका ध्यान करनेसे मरनेके उपरान्त वह तन्मय होगया ॥ २४ ॥ इधर काशी पुरीमें राजद्वार पर काशिराजका कुण्डलमण्डित कटा हुआ शिर देख कर "यह क्या है? किसका शिर है?" इस प्रकार कहते सब पुरवासी लोग आन्दोलन करने लगे ॥२५॥ तदनन्तर जब सबने जाना कि यह काशीपतिका शिर है तब रानियाँ, राजकुमार और बन्धुबान्धवगण एवं प्रजागण "हाय, हम मरगये! हाय, राजन्! हाय, नाथ! हाय, नाथ!" कह कर विलाप करने लगे ॥ २६ ॥ तदनन्तर काशिराजका पुत्र सुदक्षिण जब पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया कर चुका तब उसने प्रतिज्ञा की कि "मैं जब अपने पिताके मारनेवालेको मार कर बदला लेलूँगा तभी पिताके ऋणसे मुक्त होऊँगा"। यह निश्चय करके वह उपाध्यायके साथ परम समाधि लगा कर महेश्वरकी आराधना करने लगा ॥ २७ ॥ भगवान् शंकरने उसकी आराधनासे प्रसन्न व मुग्ध हो प्रकट होकर कहा कि- "जो इच्छा हो, वह वर माँग"। उसने यही वर माँगा कि "जिसने मेरे पिताको मारा है उसके वधका उपाय बताइये" ॥ २८ ॥ शंकरने कहा कि "तुम ब्राह्मणोंके साथ यज्ञके देव दक्षिणाग्निकी भली भाँति उपासना करो। ऐसा करनेसे प्रमथगणपरिवृत वह अग्नि हिंसाकार्य्य(मारण)में नियुक्त होकर तुम्हारे संकल्पको सिद्ध करेगा। परन्तु स्मरण रहे कि जो कोई ब्राह्मणोंका भक्त होगा उस पर उसका विक्रम नहीं काम देगा, अर्थात् विफल हो जायगा" ॥२९॥३०॥ काशिराजके पुत्र सुदक्षिणने महादेवकी यह आज्ञा पाकर नियमधारणपूर्वक श्रीकृष्णके ऊपर उक्त विधिके अनुसार अभिचारविधिका अनुष्ठान किया। ऐसा करने पर कुण्डसे वही अति भयानक रूपधारी दक्षिणाग्नि मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उसकी शिखा व श्मश्रुके केश तपेहुए ताँबेके समान अरुणवर्ण थे, दोनो नेत्रोंसे चिनगारियाँ निकल रही थीं एवं दाढ़ें व प्रचण्ड भौंहें उसके मुखमंडलको महाभयानक बनाये हुए थीं। वह अग्नि अपनी जीभसे चौंहोंको बारम्बार चाटता हुआ, ताड़ ऐसे लंबे पैरोंसे पृथ्वीको कँपाता हुआ, अपने तेजसे दशो दिशाओंको जलाता हुआ

प्रमथगणको साथ लिये द्वारकाकी ओर दौड़ा । वह प्रज्वलित मूर्तिमान् अग्नि नग्नवेष था । अभिचारक्रियाके लिये उत्पन्न उस भयंकर अग्निको आते देख कर वनको जलता देख जैसे पशुपालक लोग भयसे प्राण लेकर भागते हैं वैसे ही डरकर द्वारकावासी लोग प्राण बचानेके लिये इधर उधर भागने लगे । भगवान् उससमय सभामें बैठेहुए चौंसर खेल रहे थे । सब भयसे आतुर पुरवासी लोग भगवान्के पास जा कर दीन भावसे पुकार कर कहने लगे कि–"हे त्रिलोकीके ईश्वर! यह घोर अग्नि पुरको जला रहा है, इससे हमारी रक्षा करो" । सब प्राणियोंके अन्तर्यामी श्रीकृष्णचन्द्रने प्रजागणको आकुल और अपने आत्मीयोंको भयभीत देख कर हँसते हुए कहा कि–"डरो नहीं, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा" । सब जगत्के भीतर और बाहरके साक्षी भगवान् जान गये कि यह "माहेश्वरी कृत्या" है, अतएव उसका विनाश करने के लिये उन्होने अपने पास ही उपस्थित सुदर्शन चक्रको आज्ञा दी ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ भगवान्का श्रेष्ठ अस्त्र सुदर्शन, उस समय करोड़ सूर्य्यके समान प्रज्वलित हो प्रलयकालीन अग्निके समान भयंकर रूप धारण कर उस अग्निके आगे आया । सुदर्शनके प्रचण्ड तेजसे आकाश, अन्तरिक्ष और दशो दिशाएँ व्याप्त और प्रकाशित होगईं ॥ ३९ ॥ सुदर्शन चक्रके तेजसे पीड़ित वह कृत्यानल प्रतिहत हो कर लौट पड़ा । चक्रपाणिके चक्रके तेजसे जिसका तेज नष्ट हो गया उस कृत्यारूप अग्निने वहाँसे लौट वाराणसी पुरीमें आकर सुदक्षिणको ऋत्विजों सहित तत्क्षण ही भस्म कर डाला । अपने किये अभिचारसे वह दुष्ट आप ही नष्ट हो गया । विष्णुके चक्र सुदर्शनने भी उस अग्निका पीछा नहीं छोड़ा और उसके पीछे पुरीमें प्रवेश करके अट्टालिका, सभामण्डप, हाट, बाट, गोपुर अट्टालक, कोष्ठसमूह, कोषशाला, हस्तिशाला, अश्वशाला और अन्नशाला आदिसे सुशोभित वाराणसीपुरीको भस्म कर दिया । सहजमें ही लीलापूर्वक ये सब दुष्कर कर्म्म करके सुदर्शनचक्र लौट कर कृष्णके निकट आ गया ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

य एवं श्रावयेन्मर्त्य उत्तमश्लोकविक्रमम् ॥
समाहितो वा शृणुयात्सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

राजन्! जो मनुष्य सावधानतासहित मन लगा कर उत्तमश्लोक हरिके इस अद्भुत विक्रम–व्यापारको सुनता या सुनाता है वह सब पापोंसे मुक्त होजाता है ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्ठितम अध्याय ।

द्विविद वानरका वध ।

राजोवाच–भूयोऽहं श्रोतुमिच्छामि रामस्याद्भुतकर्मणः ॥
अनन्तस्याप्रमेयस्य यदन्यत्कृतवान्प्रभुः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्म्म करनेवाले, अनन्त, अप्रमेय, प्रभु बलभद्रजीने जो और कर्म्म किये हों उन उनके विक्रमोंको मैं सुनना चाहता हूँ । **श्रीशुकदेवजीने कहा ।** राजन्! सुग्रीवका मंत्री और मैंदका भाई वीर्य्यवान् द्विविद नाम एक वानर भौमासुरका परम मित्र था ॥१॥२॥ भौमासुरको जब कृष्णचन्द्रने मार डाला तब मरे हुए मित्रका बदला चुकानेकी इच्छासे राष्ट्रविप्लव करनेकी अभिलाषासे वह वानर द्वारकामें आकर घोर उत्पात करने लगा । कभी वह आग लगा कर आसपासके पुर, ग्राम, व्रज और आकरोंको भस्म कर देता, कभी पर्वत उठा कर देशोंके ऊपर छोड़ देता, जिससे वे देश नष्ट होजाते । इस प्रकार जहाँ दुष्टदमनकारी कृष्णचन्द्र निवास करते थे उन आनर्त्त देशके पुरोंको वह विनष्ट करने लगा । वह उत्पाती वानर समुद्र में घुस कर जलको उलचकर किनारेकी ओर फेकता, जिससे किनारेकी बस्तियाँ बह जातीं । वह दश हजार हाथियोंके समान बली दुष्ट द्विविद कभी श्रेष्ठ ऋषियोंके आश्रमोंमें जा कर वहाँके वृक्षोंको उखाड़२ कर फेक देता और मलमूत्रके द्वारा हवनकी अग्निको बुझाकर कुंडोंको दूषित कर देता । जैसे भ्रमर और २ कीड़ोंको पकड़ कर ले जाता है और अपने रहने के बिलमें बंद कर देता है वैसे ही घमंडी बानर भी स्त्री पुरुषोंको पकड़ कर ले जाता और कंदरामें डाल कर पत्थरसे उसका द्वार बंद कर देता ॥३॥४॥५॥६॥७॥ इसी प्रकार अनेक देशोंको उजाड़ता और कुलनारियोंको दूषित करता वह वानर इधर उधर विचरता रहता था । एक दिन सुललित संगीतका मधुर स्वर सुन कर वह वानर रैवतक पर्वत पर चढ़ गया । वहाँ जा कर उसने देखा कि भगवान् यदुपति बलभद्रजी विराजमान हैं, उनके गलेमें वनमाला पड़ीहुई है एवं सब अंग देखनेमें परम सुंदर हैं । वह सुन्दर रमणियोंकी मण्डलीके बीचमें बैठे हुए वारुणी मदिरा पान कर रहे हैं । उनके नेत्र मदके कारण विह्वल हो रहे हैं । उनका विशाल शरीर देखनेसे जान पड़ता है कि कोई मदमत्त गजराज हथनियोंके साथ विहार कर रहा है । इस प्रकार स्त्रियोंके साथ मदिरापान और गान कर रहे बलभद्रको देख वह दुष्ट वानर एक वृक्ष पर चढ़ गया और उसकी शाखाओंको वेगसे हिलाता हुआ अपनी गुप्त इन्द्रिय दिखा कर किलकिला शब्द करने लगा । स्त्रियाँ स्वाभाविक

चञ्चल और हास्यप्रिय होती हैं, अतएव वे (बलभद्रकी स्त्रियाँ) वानरकी यह ढिठाई देख कर हँसने लगीं। वह दुष्ट वानर बलभद्रजीके आगे ही फिर अपनी गुप्त इन्द्रिय दिखा कर भौंह मटकाकर मुख बना कर बारम्बार उन स्त्रियोंको चिढ़ाने लगा। तब श्रेष्ठ वीर बलदेवने कुपित हो एक पत्थरका बड़ा भारी टुकड़ा उठा कर उसके खींच मारा। वह वानर उस शिलाप्रहारको बचा गया और बलभद्रके आगे धरे हुए मदिराके पात्रको फुर्तीसे लेकर दूर भाग गया और दूरसे हँस२ कर बलदेवजीके हृदयमें कोप उपजाने लगा। इतना ही तिरस्कार करके वह दुष्ट नहीं शान्त हुआ। उसने मदिराके पात्रको पटक कर फोड़ डाला और फिर स्त्रियोंके कपड़े खींच २ कर फाड़ता हुआ अनेक नीच व्यवहारोंसे बलभद्रके कोपको बढ़ाने लगा। उस मदोद्धत दुष्टके इस प्रकार अविनीत और नीच व्यवहारको देख कर तथा यह जान कर कि इसी दुष्टने यहाँके अनेकों देशों व पुरोंको उजाड़ कर दिया है, भगवान् बलभद्र क्रोधसे विह्वल होगये। वह उसी समय उसको मारनेके लिये हल और मूशल लेकर उठ खड़े हुए॥८॥९॥१०॥११॥ ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ महाबली द्विविद भी युद्धके लिये उद्यत हुआ। उसने एक बड़ा भारी शालका वृक्ष उखाड़ लिया और निकट आकर बलभद्रजीके मस्तक पर बड़े वेगसे प्रहार किया॥ १७॥ संकर्षण देव पर्वतके समान अटल भावसे उसी स्थान पर खड़े रहे, जब वह वृक्ष शिरके ऊपर आया तो उसको उन्होने एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरे हाथसे वानर पर मूशलका प्रहार किया। मूशलके प्रहारसे उस वानरका शिर फट गया और रुधिरकी धारा बहने लगी। उस समय जैसे किसी पर्वतसे पानीमें घुलकर गेरूकी धारा बहचले वैसे ही उस वानरकी शोभा हुई। उस प्रहारको न मान कर फिर दारुण क्रोध करके उस वानरने एक पत्र-शून्य वृक्षका ठूँठ उखाड़ कर बलभद्रके शिर पर बड़े वेगसे खींच मारा। किन्तु कुपित हो बलभद्रजीने बीचमें ही उस वृक्षके सैकड़ों टुकड़े कर डाले। वानरने और भी कुपित हो और एक वृक्ष बलभद्र पर चलाया। भगवान्ने उसके भी सैकड़ों टुकड़े कर डाले। इस प्रकार जब युद्ध करनेमें बारम्बार उद्यम वृथा गया तब वह वानर मारे क्रोधके आपेसे बाहर हो गया। यहाँतक कि उसने उस वन भरके वृक्ष उखाड़२ कर बलभद्रजी पर चलाये, जिससे कि वह वन एक प्रकार वृक्षोंसे शून्य होगया। जब वृक्ष चुक गये और कुछ भी न हुआ तब वह वानर अत्यन्त कुपित हो बलभद्रके ऊपर पत्थरोंकी वर्षा करने लगा। किन्तु उन शिलाओंको भी यदुनायकने अपने मूशलके प्रहारसे चूर२ कर डाला॥१८॥ ॥१९॥२०॥२१॥२२॥२३॥ अन्तको ताड़ ऐसे लंबे दोनो हाथोंसे घूसा बाँध कर वह वानर दौड़ा और रोहिणीनन्दनके निकट आकर उनके वक्षःस्थल पर उसने घूँसे मारे। भगवान् बलभद्रने कुपित हो हल मूशलको धर दिया और दोनो हाथोंसे

क्रोधपूर्वक कंठ और बाहुके बीचमें पकड़ कर उस वानरको पीड़ा पहुँचाई । मर्म-स्थलमें पीड़ित होने पर उस वानरके मुखसे रुधिर गिरने लगा और वह तुरन्त प्राण-हीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥२४॥२५॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जैसे आँधीकी थपेड़से समुद्रके भीतर जा रही नाव हिलने लगती है वैसे ही उस वानरका शरीर जब गिरा तो उसके धमाकेसे कंदराओं, शिखरों और वृक्षोंसहित वह पर्वत हिल गया ॥ २६ ॥ उस समय आकाशसे देवता, सिद्ध और मुनीन्द्रगण फूलोंकी वर्षा करते हुए "जयजय, नमोनमः, साधु साधु" कह कर प्रसन्नता प्रकट करने लगे ॥ २७ ॥

एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम् ॥
संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत् ॥ २८ ॥

इस प्रकार जगत्को सतानेवाले और उथल-पथल मचानेवाले दुष्ट द्विविदको मार कर अपने परिजनोंके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए भगवान् बलभद्रने पुरमें प्रवेश किया ॥ २८ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितम अध्याय ।

बलदेवविजय ।

श्रीशुक उवाच-दुर्योधनसुतां राजन् लक्ष्मणां समितिंजयः ॥
स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! दुर्य्योधनके एक कन्या थी, उसका नाम था लक्ष्मणा । उसका स्वयम्वर रचा गया । शत्रुओंको जीतनेवाले जाम्बवतीके पुत्र वीर सांब अकेले ही स्वयम्बरमें पहुँचे और उस कन्याको हर कर द्वारकाको चले ॥ १ ॥ यह देख सब कौरवगण कुपित होकर कहने लगे कि "यह बालक बड़ाही ढीठ है । देखो न! कन्याकी इच्छा न होने पर भी हम सबको तृणसम तुच्छ मान कर बलपूर्वक उसे हर ले गया । इस लिये यही उचित है कि इस ढीठ बालकको पकड़ कर बंदी बना लो, वृष्णि (यादव) लोग हमारा क्या कर लेंगे? वे तो हमारे ही प्रसादसे राज्यभोग कर रहे हैं, हमने ही उनको राज्य दिया है, वे तो स्वयं राज्यके अधिकारी नहीं हैं । और पुत्रका पकड़ा जाना सुन कर यदि यादव लोग चढ़ाई करके आवेंगे तो यहाँ उनका घमंड चूर हो जायगा और वे प्राणायामादि उपायोंसे जिनका दमन किया गया है उन इन्द्रियोंके

समान शान्त हो जायँगे" ॥२॥३॥४॥ कुरुवृद्ध भीष्म पितामहने भी इसका अनुमोदन किया, बस–फिर क्या था; भीष्मपितामहको आगे करके कर्ण, शल्य, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु और दुर्य्योधन आदि कई चुने हुए महारथी योद्धा पकड़नेके लिये सांबके पीछे चले। महारथी अनुचरों सहित धृतराष्ट्रके पुत्रोंको पीछा करते देख क्षत्रियश्रेष्ठ साम्ब निर्भय भावसे सुन्दर धनुष लेकर अकेले ही सिंहके समान युद्ध करनेके लिये खड़े होगये ॥५॥६॥ साम्बको पकड़नेकी इच्छासे "ठहर ठहर" कहते हुए कुपित कौरवगण निकट आगये और धनुष चढ़ा कर वाणोंकी वर्षा करने लगे। कर्ण उन सबमें अगुआ था ॥ ७ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! जब कौरवोंने इस प्रकार आक्रमण किया तब जैसे सिंहको क्षुद्र मृग घेर लें और वह उनको कुछ न समझे वैसे ही बालक और अकेले होने पर भी सांब घबड़ाये नहीं। वह उनके आक्रमणको न सह कर क्रोधपूर्वक सुंदर धनुष चढ़ा कर युद्ध करने लगे। साम्बने कर्ण आदि छः महारथियोंको उतने ही वाणोंसे अलग २ घायल किया। उन महारथी शत्रुओंने भी सांबके इस कर्म्मकी प्रशंसा की। महाराज! कौरवोंने भी कृष्णपुत्र सांबका रथ काट डाला। चार जनोंने सांबके चारो घोड़ोंको और एकने सारथीको मार डाला एवं एकने धनुषको काट डाला। इस प्रकार कौरवोंने युद्धभूमिमें अकेले सांबको बड़े कष्टसे रथहीन करके बाँध लिया। जय पाकर कुमार सांबको कन्यासहित पकड़ आनन्द मनाते हुए कौरव लोग अपने पुरको लौट गये। नारदने जाकर यह सब वृत्तान्त द्वारकापुरीमें कहा। सुन कर वीर यादवोंको बड़ा क्रोध हो आया एवं वे उग्रसेनकी आज्ञा पाकर कौरवोंसे युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए। परन्तु बलभद्रजीकी यह इच्छा न थी कि कौरवों और यादवोंमें परस्पर युद्ध हो; इस लिये कलिकलुषनाशन बलभद्रने कुपित और युद्धके लिये उद्यत यादवोंको समझा बुझाकर शान्त किया और आप मेल करानेकी इच्छासे ग्रहोंसहित चन्द्रमाके समान सूर्य्यसम प्रकाशमान रथ पर चढ़ कर कुलके बड़े बूढे लोगों और ब्राह्मणोंको साथ लेकर हस्तिनापुरकी ओर चले ॥८॥९॥१०॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥ हस्तिनापुर पहुँचकर बलभद्रजी पुरके बाहर उपवनमें ही ठहरे और धृतराष्ट्रका अभिप्राय जाननेके लिये उद्धवजीको कौरवोंकी सभामें भेजा ॥१६॥ उद्धवने भी सभामें जाकर यथोचित रीतिसे धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य्य, वाल्हीक और दुर्य्योधन आदिको प्रणाम करके कहा कि "बलभद्रजी आये हैं" ॥१७॥ वे अपने प्रियतम सुहृद् बलभद्रजीका आना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होने पहले उद्धवका पूजन और सत्कार किया एवं फिर मांगलिक पूजनसामग्री लेकर बलदेवजीके पास चले। सब लोग विधिपूर्वक बलभद्रजीसे मिले, फिर गोदान और अर्घ्यदान कर, जो लोग बलभद्रजीके प्रभावको जानते थे

उन्होने शिर झुका उनको प्रणाम किया। तदनन्तर परस्पर कुशल-प्रश्नके उपरान्त जब सब सुखसे बैठे तब बलभद्रजीने धीर भावसे कहा कि "राजाधिराज प्रभु उग्रसेनने जो आज्ञा तुमको दी है उसको चित्त लगाकर सुनो और शीघ्र ही उसे पालन करो। उन्होने कहा है कि तुम कई जनोंने जो अधर्म्मपूर्वक एक धर्मयुद्ध करनेवाले बालकको पकड़कर बंदी बनाया है उसको हम लोग इस लिये सहे लेते हैं कि जिसमें हम बंधुओंमें मेल बना रहे और युद्ध न हो। अतएव इसीसमय तुम उस बालकको हमें दे दो" ॥ १८ ॥१९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ प्रभाव, उत्साह और बलके उल्लेखसे युक्त एवं अपनी शक्तिकी समताकी सूचना देनेवाले बलभद्रके वचन सुनकर कौरवगण अत्यन्त कुपित हुए और कहने लगे कि– "अहो! यह बड़े आश्चर्य्यकी बात है! दुरत्यय कालचक्रकी गतिके प्रभावसे आज चरणपादुकाएँ मुकुटके स्थान शिर पर चढ़ना चाहती हैं। कुन्तीके बिवाह द्वारा इन यादवोंके साथ हमारा योनिसम्बन्धमात्र है, इसी सम्बन्धके कारण ये लोग हमारे बराबर बैठने उठने और साथ भोजन करने लगे। अब ये इतने मूढ़ होगये हैं कि हमारे ही दियेहुए राज्यासनको पाकर हमारी समता करने लगे!! हमलोग कुछ ध्यान नहीं देते, अतएव ये लोग स्वतन्त्रतापूर्वक राजोंके समान चामर व्यजन, शंख, श्वेत छत्र, किरीट, मुकुट, उत्तम आसन एवं शय्याआदि राजभोग्य सामग्रियोंका उपभोग करते हैं। अहो! हमारे ही अनुग्रहसे सुखसमृद्धिसम्पन्न होकर ये यादवगण आज हमको ही आज्ञा दे रहे हैं! अतएव जैसे सर्प दूध पिलानेवालेहीको काटता है उसी प्रकार उपकार करनेवालों ही पर चोट करनेवाले यादवोंकी यह ढिठाई क्षमा करने योग्य नहीं है। अभी इनसे उक्त राजचिन्ह छीन लेने चाहिये। भीष्म, द्रोण आदि कौरव यदि न चाहें तो इन्द्रकी भी सामर्थ्य नहीं है कि वह किसी वस्तुको अपने पास बलपूर्वक रख सकें। सिंहके भागको कहीं सियार या साधारण भेंड़ा पचा सक्ता है?" ॥२३॥२४॥ ॥२५॥२६॥२७॥२८॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे कुरुश्रेष्ठ! जन्म, बन्धु, लक्ष्मी आदिके प्रबल मदोंसे अपनेको भूले हुए अर्थात् मदान्ध, असभ्य कौरवगण यों कटु वचन कहकर नगरमें चले गये। भगवान् बलभद्रजी कौरवोंके ऐसे दुष्ट व्यवहारको देखकर और कटु वाक्योंको सुनकर अत्यन्त कुपित हुए। क्रोधके कारण उनका रूप ऐसा रौद्र होगया कि कोई उनकी ओर भली भाँति नेत्र उठाकर देखनेका साहस नहीं कर सका। भगवान् बलभद्र क्रोधके आवेशमें वारम्वार उच्च स्वरसे हँस कर आप ही आप कहने लगे–"यह बात बहुत ही ठीक है कि अनेक प्रकारके मदोंसे अंधे हो रहे दुष्ट लोग शान्तिकी इच्छा नहीं करते; जैसे पशुगण डंडेकी चोटसे ही सीधी राह पर आते हैं वैसे ही दण्डके द्वारा वे शांत किये जा सक्ते हैं। अहो! मैं तो इनकी भलाईके लिये कुपित कृष्णको और युद्धके लिये

उद्यत यादवोंको रोककर और किसी प्रकार समझा बुझाकर यहाँ मेलके लिये आया था, किन्तु ये मतिमन्द लड़ाई में निरत और दुष्ट हैं अतएव गर्वपूर्वक इन्होने मेरा तिरस्कार किया और कटु वचन कहे। इन्द्र आदि श्रेष्ठ लोकपालगण भी जिनकी आज्ञाको शिर आँखों पर लेते हैं वह वृष्णि और अन्धक यादवोंके अधीश्वर उग्रसेन इन दुष्टोंकी दृष्टिमें विभु (आज्ञा देनेवाले) पदके योग्य नहीं हैं! जो सुधर्म्मा सभामें विराजमान हैं, जिन्होने कल्पवृक्ष लाकर अपने भवनके उपवन में लगाया है वह कृष्णचन्द्र अधिपतिके आसनके योग्य नहीं है! अखिलेश्वरी साक्षात् लक्ष्मी नित्य-निरन्तर जिनके चरणकमलोंका सेवन करती है वह लक्ष्मीपति राज्यभोग्य सामग्रीका भोग करने योग्य नहीं हैं! तीर्थस्वरूप योगीजन तीर्थ मान कर जिसकी उपासना करते हैं उस हरिचरणकमल-रजको लोकपालगण अपने उत्तम मुकुटमण्डित मस्तकों पर सादर स्थान देते हैं। मैं, ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि सब उन्ही ईश्वर कृष्णचन्द्रकी अंश कला हैं और उन्हीके चरणोंकी सेवामें तत्पर रहते हैं। उन कृष्णके राज्यासन कहाँ है? ठीक है यादवगण कौरवोंके दिये राज्यासनका भोग करनेवाले हैं और यह भी ठीक ही है कि हमलोग चरणपादुकाएँ हैं एवं कौरवलोग शिर हैं। अहो! मतवालोंकी भाँति ऐश्वर्य्यके मदमें चूर इन घमंडी कौरवोंकी बे-सिर-पैरकी रूखी बातोंको स्वयं शासक होकर भी कौन सहसक्ता है?"। तदनन्तर "आज मैं पृथ्वीको कौरवोंसे सूनी कर दूँगा"-ऐसा कह कर दारुण क्रोधसे मानो तीनो लोकोंको भस्म कर देंगे, इस भाँति हल हाथमें लिये भगवान् बलभद्र उठ खड़े हुए और गंगामें गिरा देनेके लिये हस्तिनापुरको हलके अग्रभागसे गंगाकी ओर घसीटा ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ हलके द्वारा खींचे गये नगरको नावके समान घूम कर गंगामें गिरते देख सब कौरवगण भयसे व्याकुल हो उठे एवं प्राण बचानेकी इच्छासे अपने कुटुम्ब-परिवारसहित लक्ष्मणा और साम्बको आगे करके हाथ जोड़े नम्र भावसे उन्ही प्रभु बलभद्रकी शरणमें आये और कहनेलगे कि हे राम! हे राम! हे सम्पूर्ण जगत्के आधार! हम आपके प्रभावको नहीं जानते। हे अधीश्वर! हम महामूढ़ और कुमति हैं, आप हमारे अपराधोंको क्षमा करिये। आपको ऐसा ही उचित है। आप इस सृष्टिकी सृष्टि, पालन और ध्वंसका एकमात्र कारण हैं। आप निराश्रय हैं। आप जिस समय क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त होते हैं उस समय ये सब लोग आपकी क्रीड़ाकी सामग्रीके समान उत्पन्न होते हैं। हे सहस्र मस्तकवाले अनन्त! आप ही अनन्त लीलाओंके लिये इस पृथ्वीमण्डलको अपने एक मस्तक पर धरे हुए हैं। अन्तसमय जो अपनेमें विश्वको लीन करके अकेले अवशिष्ट रहते और अनन्त-शय्या पर शयन करते हैं वह शेषशायी नारायण भी आप ही हैं।

आप जगत्की स्थिति और पालनमें तत्पर होकर सत्त्वगुणको ग्रहण किये हुए हैं । शत्रुताके कारण आप किसीसे द्वेष या मात्सर्य्य नहीं रखते, बरन् कभी २ जगत्को शिक्षा देनेके लिये ही आप कुपित होते हैं । हे सर्व्वभूत-स्वरूप! हे सर्व्वशक्तिधर! हे अव्यय! हे विश्वकर्म्मा! आपको प्रणाम है । हम सब लोग आपकी शरणमें आये हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । राजन्! जिनका नगर हिल उठा उन विपन्न भीतचित्त, शरणागत कौरवोंने जब इस प्रकार नम्र वचनोंसे प्रसन्न किया तब भगवान् बलभद्रने उनको अभयदान किया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर दुहितावत्सल दुर्य्योधनने साठ वर्षकी अवस्थावाले बारह सौ प्राचीन गजराज, दस हजार घोड़े, स्वर्णनिर्मित-सूर्य्यकिरणयुक्त छः हजार रथ एवं स्वर्णपदकभूषित ग्रीवावाली एक हजार दासियाँ यौतुकमें कन्या और वरको दी ॥ ५० ॥ ५१ ॥ यह सब सामग्री लेकर यादवश्रेष्ठ भगवान् पुत्र और वधूको आगे करके सुहृद्गणके द्वारा अभि-नन्दित हो पुरीको लौटे ॥ ५२ ॥ तदनन्तर अपनी पुरीमें आकर हलधरजी अनुरक्तचित्त बन्धु-बान्धवोंसे मिले और कौरवोंने जैसा व्यवहार पहले और पीछे किया सो सब वृत्तान्त उनसे भरी सभामें कह सुनाया ॥ ५३ ॥

अद्यापि च पुरं ह्येतत्सूचयद्रामविक्रमम् ॥
समुन्नतं दक्षिणतो गङ्गायामनु दृश्यते ॥ ५४ ॥

राजन्! हस्तिनापुर नगर दक्षिण भागमें गंगाकी ओर उन्नत है और अभी तक बलभद्रजीके विक्रमको जगत्में प्रकट कर रहा है ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितम अध्याय ।

मायाविभववर्णन ।

श्रीशुक उवाच—नरकं निहतं श्रुत्वा तथोद्वाहं च योषिताम् ॥
कृष्णेनैकेन बह्वीनां तद्दिदृक्षुः स नारदः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । महाराज! नारदने सुना कि नरकासुरको मार कर भगवान् कृष्णचन्द्रने उसकी बंदिनी सोलह हजार एक सौ कन्याओंसे बिवाह किया है । यह सुनकर नारदको बड़ा विस्मय हुआ और वह इस विचित्र व्यापारको देखनेकी इच्छासे द्वारकापुरीमें आये । नारदजी मन-ही-मन विचारने

लगे कि "अहो यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है! एक श्रीकृष्णने एकही शरीर से भिन्न२ महलोंमें सोलह हजार एक सौ स्त्रियोंसे विवाह किया!"। नारदने आकर देखा कि द्वारकाके फूलेहुए उपवन और बागोंमें पक्षी और भौंरे मनोहर मधुर बोलियाँ बोल रहे हैं एवं सब सरोवर फूलेहुए इन्दीवर, पद्म, कल्हार, कुमुद और उत्पल आदि भाँति२ के कमलोंसे व्याप्त हो रहे हैं। हंस और सारसोंके झुंड उन सरोवरोंके किनारे बैठे हुए ऊँचे स्वरमें तानें मार रहे हैं। वह पुरी स्फटिक और चाँदीके बनेहुए लाखों नवीन महलोंमें जड़ीहुई महामरकत मणियोंकी चमकसे प्रकाशित होरही है एवं रत्नजटित पर्य्यङ्क उनमें अपूर्व भावसे शोभायमान हैं। परस्पर बँटेहुए राजपथ, क्षुद्रपथ, चत्वर, आपण (बाजार) अन्न आदिकी शालाएँ एवं अनेकानेक देवालयोंसे वह नगरी बहुत ही भली और मनोहर जान पड़ती है। उसके मार्ग, आपणमार्ग, देहली आदि स्थानोंमें सुगंधित जलसे छिड़काव किया गया है। पुरीमें प्रायः सर्वत्र वायुसे लहरा रही पताकाएँ और ध्वजाएँ घोर घामको रोककर अपनी छाया फैला रही हैं॥१॥२॥३॥ ॥४॥५॥६॥ नगरीके भीतर हरिके श्रीसम्पन्न एवं सर्व्वलोकपालपूजित अन्तःपुरकी रचनामें विश्वकर्म्माने अपना विशेष कौशल (कारीगरी) झलकाया है। वह विशाल अन्तःपुर कृष्णकी स्त्रियोंके सोलह हजार महलोंसे सुशोभित है। उसी अन्तःपुरमें पहुँच कर देवऋषि नारदने एक बड़ेभारी महलमें प्रवेश किया। नारदने देखा कि वैडूर्य्यके फलकों पर विद्रुमके बहुतसे बड़े२ खंभे उस महलमें स्थापित हैं। दीवारें सब इन्द्रनीलमणिकी बनीहुई चमक रही हैं। जहाँ तहाँ विश्वकर्म्माके बनायेहुए मोतियोंकी झालरोंसे युक्त उत्तम चँदोवे तनेहुए हैं। उत्तम मणियोंकी मालाओंसे विभूषित हाथीदाँतके पलँग पड़े हुए हैं, जिनमें उत्तम रत्न जड़े हुए शोभाको बढ़ा रहे हैं। सुन्दर वस्त्र धारण किये, कंठमें सुवर्णके आभूषण पहने दासियाँ और सुंदरवस्त्र पहने, मणिकुण्डलधारी, जामा व पगड़ीसे सुशोभित दास लोग अपने२ स्थान पर खड़े हुए उस भवनको सुशोभित कर रहे हैं। बहुत से रत्नदीपक अपने स्वच्छ प्रकाशसे भवनके अंधकारको दूर कर रहे हैं। महाराज! वहाँ सुलग रहे अगुरुके धुँएको देख मेघके भ्रमसे विचित्र बलभियोंमें बैठे हुए मोर प्रसन्नता प्रकट करनेवाली आनन्द ध्वनिके साथ नाचने लगते हैं। नारदने उस भवनमें यदुपति कृष्णको देखा कि बैठेहुए हैं और समान-गुण-रूप-अवस्था तथा सुन्दर वेषवाली दासियोंसे घिरी हुई श्रीमती रुक्मिणी देवी सुवर्णदण्डयुक्त चामर हाथमें लिये उनकी सेवा कर रही हैं। सम्पूर्ण धार्म्मिकोंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्ण नारदजीको देखते ही सहसा रुक्मिणीके पलँगसे उठ बैठे और हाथ जोड़ किरीटमण्डित मस्तक रख कर ऋषिके चरणोंमें प्रणाम किया एवं उनको अपने आसन पर बिठलाया। राजन्! भगवान् कृष्णके चरणोंका धोवन (गंगा) सब

तीर्थोंसे बढ़कर अथवा सर्वतीर्थमय है एवं वह कृष्णचन्द्र स्वयं सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र श्रेष्ठ गुरु हैं, तथापि उन्होने नारदजीके चरणोंको भक्तिसे धोकर उस जलको अपने सब अंगों पर एवं शिर पर डाल लिया। वह भगवान् सत्य-सत्यही साधुजनोंके स्वामी हैं। उनका 'ब्रह्मण्यदेव' यह नाम गुणकृत है, वास्तवमें वही इस नामके योग्य हैं। पुरातन ऋषि नरके सखा नारायण श्रीकृष्णचन्द्रने देवर्षि-श्रेष्ठ नारदकी पूजा करके विधिपूर्वक कहेगये, परिमित, अमृततुल्य मधुर "भले आप आये, बड़े भाग्यसे आपके दर्शन हुए" इत्यादि वचनोंसे प्रिय सम्भाषण किया। तदनन्तर फिर कृष्णचन्द्रने कहा कि "प्रभो! आपका क्या कार्य्य करना होगा, मुझको आज्ञा दीजिये" ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ ॥ १५ ॥ १६ ॥ नारदने कहा-"हे विभो! हे सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी! सब लोगोंसे मित्रभाव एवं दुष्टोंका दमन करना, ये दोनो बातें आपमें हैं, सो कुछ आश्चर्य्य नहीं है। हे महायशस्वी! हम भलीभाँति जानते हैं कि जगत्की स्थिति और रक्षाके ही लिये आपका यह स्वेच्छावतार होता है ॥ १७ ॥ भगवन्! अपने जनोंके लिये मुक्तिमय आपके चरणकमलोंको अगाध बोधवाले ब्रह्मादिक भी हृदयमें धर कर ध्याते हैं, क्योंकि ये चरण संसाररूप कूपमें पड़े हुए लोगोंके लिये कूपसे निकालनेवाला एकमात्र अवलम्ब हैं। आज इनके साक्षात् दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य होगया: मैं सदैव इन्ही चरणोंका ध्यान करता हुआ विचरता रहता हूँ। भगवन्! ऐसी कृपा करो जिसमें आपका ध्यान बना रहे" ॥१८॥ हे अंग! योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णचन्द्रकी योगमाया देखनेके लिये नारदजी उस महलसे निकल कर दूसरे महलमें गये ॥१९॥ वहाँ भी जाकर नारदने देखा कि श्रीकृष्ण भगवान् अपनी प्रिया और उद्धवके साथ चौंसर खेल रहे हैं। भगवान्ने उठकर मुनिको बैठनेके लिये आसन दिया, पूजन किया और जैसे नारदसे भेंट ही नहीं हुई इस प्रकार कहा कि "मुनिवर! आप कब आये? आप तो स्वयं परिपूर्ण हैं, हमारे समान अपूर्ण व्यक्ति आपका कौन सा अभीष्ट पूरा कर सक्ते हैं? हे ब्रह्मन्! तथापि आज्ञा करिये, हम उसे पालन करके अपने जन्मको सफल करें"। नारदजी मारे विस्मयके कुछ भी न कहसके और चुपचाप उठकर तीसरे महलमें गये ॥ २० ॥ ॥ २१ ॥ २२ ॥ वहाँ भी नारदने देखा कि भगवान् अपने पुत्रों और पौत्रोंको खेला रहे हैं। और महलमें जाकर नारदने देखा कि भगवान् स्नान करनेके लिये जा रहे हैं ॥ २३ ॥ इसी प्रकार नारदने अनेक महलोंमें जाकर देखा और सर्वत्र भगवान्को भिन्न २ अवस्थामें पाया। कहीं आहवनीय आदि अग्नियोंमें हवन एवं पञ्च-महायज्ञ करते, कहीं ब्राह्मणोंको भोजन कराकर बचे हुए अन्नसे भोजन करते, कहीं सन्ध्योपासनमें मौनभावसे गायत्रीका जप करते, कहीं ढाल तर्वार हाथमें लिये खड्ग-विद्याका अभ्यास करते, कहीं घोड़ेकी पीठ पर, कहीं

हाथीकी पीठ पर विचरते हुए देखा । कहीं देखा कि भगवान् सो रहे हैं और बन्दीजन स्तुति करके जगा रहे हैं । कहीं देखा कि उद्धव आदि मंत्रियोंसे बैठे हुए सलाह कर रहे हैं । कहीं देखा कि सुन्दर स्त्रियोंके बीचमें घिरे हुए उनके साथ जलविहार कर रहे हैं । कहीं देखा कि सुन्दर और भली भाँति अलंकृत असंख्य गौवें ब्राह्मणोंको दे रहे हैं । किसी महलमें इतिहास, पुराण आदि मंगल कथाएँ सुनते हुए पाया । कहीं देखा कि प्रियाके साथ हँसी दिल्लगी करते हुए उनको प्रसन्न कर रहे हैं । कहीं २ क्रमशः धर्म्म, अर्थ, कामका सेवन और साधन करते देखा । कहीं देखा कि प्रकृतिसे परे पुरातनपुरुष कृष्णचन्द्र अपने ध्यानमें निविष्टचित्त हैं । कहीं देखा कि अभिलाषपूरण, भोगप्रदान और पूजा करके बड़े बूढ़े गुरुजनोंकी सेवा कर रहे हैं । कहीं देखा कि कुछ राजोंके साथ युद्ध करनेकी और कुछ राजोंके साथ सन्धि करनेकी सलाह कर रहे हैं । कहीं देखा कि बलरामके साथ बैठे हुए साधुजनोंकी भलाई और मंगल सोच रहे हैं । कहीं देखा कि शुभ समयमें अपने पुत्र और पुत्रियोंका, यथायोग्य गुण, रूप, विभवमें समान पात्री और पात्रोंसे विवाह कर रहे हैं । कहीं देखा कि कन्या और दामादोंको बिदा कर रहे हैं और कहीं देखा कि उनको बुला रहे हैं और ऐसे समयमें महा उत्सव हो रहा है एवं योगेश्वर कृष्णके पुत्र पौत्रादिके महा उत्सवोंको देख कर सब दर्शक लोग विस्मित हो रहे हैं । कहीं समृद्धिसम्पन्न अनेक यज्ञोंसे अपने अंश देवतोंका पूजन कर रहे हैं । कहीं कूप, आराम और देवालय आदिकी प्रतिष्ठा करके इष्टा-पूर्त्त आदि कर्मोंका अनुष्ठान कर रहे हैं । कहीं श्रेष्ठ यादवोंके साथ सिन्धुदेशके घोड़े पर चढ़कर शिकार खेलने जा रहे हैं, कहीं यज्ञके योग्य पशुओंको मारकर लिये आ रहे हैं । कहीं अव्यक्तस्वरूप योगेश्वर कृष्णचन्द्र विशेष २ भावोंका संभोग करनेके लिये अन्तःपुरके महलोंमें स्त्रियोंके बीच विराजमान हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकार नारदजी मानुषी लीला कर रहे केशवकी योगमायाको देख मंद मुसकानके साथ उनसे कहनेलगे कि "हे प्रभो! आपकी योगमायाके विभवको बड़े २ योगेश्वर भी नहीं देख पाते, किन्तु मैं आपके चरणोंका सेवक हूँ–ऐसी मुझको प्रतीति होती है, अतएव मैं जानसका हूँ । हे देव! जो सब लोक आपके यशसे उज्ज्वल हो रहे हैं वहाँ मैं जाना चाहता हूँ, मुझको आज्ञा दीजिये । मैं आपकी भुवनपावनी लीलाओंको गाता हुआ विचरण करता रहता हूँ" । **श्रीभगवान्ने कहा** । "ब्रह्मन्! मैं धर्मका कहनेवाला करनेवाला और अनुमोदन करनेवाला हूँ । सब लोगोंको धर्मकी शिक्षा देनेके लिये ही इस रूपसे मैं अवस्थित हूँ, मेरी योगमाया देखकर तुमको मोहित न होना चाहिये" । **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । राजन्! नारदने एकमात्र कृष्णचन्द्रको ही सब भव-

नोंमें गृहस्थोंको पवित्र करनेवाले धर्मोंका आचरण करते देखा। अनन्तवीर्य्यशाली कृष्णकी योगमायाके महाविभवको वारम्वार देख कर नारदको बड़ा विस्मय और कौतुक हुआ। श्रीकृष्णने श्रद्धायुक्त चित्तसे इस प्रकार धर्म अर्थ कामके द्वारा भली भाँति ऋषिका पूजन किया और वह उन्ही कृष्णचन्द्रका स्मरण करते हुए वहाँसे चलदिये। राजन्! सम्पूर्ण जगत्के मंगलके लिये मायाशक्ति-धारी उन्ही नारायणने मनुष्यपदवीका अनुकरण करते हुए सोलह हजार श्रेष्ठ कामिनियोंके भवनोंमें उनके लज्जापूर्ण सौहार्द, कटाक्ष और हासविलासका संभोग करते हुए इसी प्रकार विहार किया ॥ ३७-४४ ॥

यानीह विश्वविलयोद्भववृत्तिहेतुः कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा भक्तिर्भवेद्भगवति ह्यपवर्गमार्गे ४५

विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति व प्रलयके कारणरूप हरिने जो इस पृथ्वीमें असाधारण व अलौकिक कर्म किये हैं उन कर्मोंको जो लोग गाते, सुनते अथवा उनका अनुमोदन करते हैं उनको मुक्तिदायक भगवान्की भक्ति मिलती है ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सप्ततितम अध्याय।

श्रीकृष्णके पास जरासंधके सताये राजोंके भेजे दूतका आना।

श्रीशुक उवाच-अथोपस्युपवृत्तायां कुक्कुटान्कूजतोऽशपन् ॥
गृहीतकण्ठ्यः पतिभिर्माधव्यो विरहातुराः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! एक समय सबेरेके समय कुक्कुट (मुर्गे) शब्द कर रहे थे। श्रीहरि इतने समय तक स्त्रियोंके गलेमें हाथ डाले हुए सो रहे थे। इस समय कृष्णचंद्रकी स्त्रियाँ प्रिय पतिके वियोगके भयसे कातर होकर विरहके कारण उन कुक्कुटोंको भला-बुरा कहने लगीं। उस प्रभातसमयमें भ्रमरसमूह कल्पवृक्षके सुगंधको ले जानेवाले वायुके साथ गान करने लगे एवं सब पक्षीगण जाग २ कर बंदीगण की भाँति श्रीकृष्णको जगानेके लिये मानो ऊँचे स्वरसे मधुर बोलियाँ बोलने लगे। उन पक्षियोंका शब्द अत्यन्त सुन्दर, मधुर होने पर भी, प्रियकी दोनो बाहुओंके भीतर पड़ीहुई रुक्मिणी आदि रानियोंको आलिंगन-वियोगकी घबराहटसे मुहूर्त्त भरके लिये भी असह्य था। ब्राह्म मुहूर्त्तमें उठ कर हाथ पैर धोकर आचमन करके माधवने सब इन्द्रियोंको प्रसन्न और मनको स्वस्थ किया। तदनन्तर उपाधिशून्य, आत्मसंस्थित, अव्यय, अखंड, अज्ञान-निर्मुक्त

होनेके कारण साक्षात् ज्योतिःस्वरूप एवं जगत्की उत्पत्ति व नाशका कारण जो अपनी शक्तियाँ हैं उनके द्वारा जिनकी सत्ता लखी जाती है वह श्रीकृष्णचन्द्र ब्रह्मनामक सदानन्दमय अपने ही रूपके ध्यानमें मग्न हुए। साधुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने निर्मल जलमें स्नान करके वस्त्र और उत्तरीय धारण किया एवं यथाविधि सन्ध्योपासनादि नित्य-कर्म्म और अग्निमें हवन करके मौनभावसे अवस्थित हो गायत्रीका जप करने लगे ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ तदनन्तर सूर्य्योदय होने पर उठ कर हरिने सूर्य्य-देवको प्रणाम किया। फिर उन्होने अपने ही अंश जो देवता, ऋषि, पितर, बड़े-बूढ़े और ब्राह्मण हैं उनकी पूजा की। तदनन्तर भली भाँति अलंकृत ब्राह्मणोंको पट्टवस्त्र, मृगचर्म्म और तिलसहित तेरह अधिक चौरासी हजार गौवें दीं; जिनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए थे, मोतीकी मालाएँ गलेमें पड़ी थीं, सुन्दर झूलें पीठ पर पड़ी थीं। ऐसी दुधार, एक बारकी ब्याई, सुशीला, सवत्सा गौवें देकर माधवने अपनी विभूति जो गऊ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सम्पूर्ण प्राणी हैं उनको नमस्कार किया और कपिला गऊ आदि मांगलिक पदार्थोंका स्पर्श किया। फिर मनुष्यलोकके लिये आभूषणस्वरूप भगवान्ने अपनेको वस्त्र, आभूषण, दिव्य माला और चंदन आदिसे विभूषित किया एवं घृत, दर्पण, वृष, द्विज और देवतोंके दर्शनके उपरान्त सब वर्णके पुरवासी और अन्तःपुरचारी लोगोंको उनकी चितचाही वस्तुएँ दीं। इस प्रकार अपनी प्रजाको सन्तुष्ट करके स्वयं भी आनन्दित हुए। तदनन्तर पहले चन्दन, पान आदि देकर ब्राह्मणोंका सत्कार किया और फिर मित्र, आत्मीय और रानियोंसे मिल कर उनको सन्तुष्ट किया ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ इसी अवसर पर सारथी, सुग्रीव आदि श्रेष्ठ अश्वोंसे युक्त रथ लेकर आया और प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। सूर्य्यनारायण जैसे उदयाचल पर आरूढ़ होते हैं वैसे ही भगवान् कृष्णचन्द्र सारथीका हाथ पकड़ कर सात्यकी और उद्धवके साथ रथ पर सवार हुए। अन्तःपुरकी कामिनियाँ उस समयकी छविको लज्जापूर्ण प्रेम दृष्टिसे देखने लगीं, भगवान् उनके लिये क्षण भर वहाँ ठहर गये। बड़े ही कष्टसे वे स्त्रियाँ हटीं और भगवान् भी अपनी मधुर हँसीसे उनके मनको हरते हुए अन्तःपुरसे बाहर निकले। इस प्रकार सब भवनोंसे भिन्न २ रूपधारी भगवान् बाहर निकले और फिर एकरूप हो कर सब यादवोंसे सुशोभित सुधर्मा सभामें जाकर विराजमान हुए। राजन्! जिन लोगोंने काम, क्रोध आदि बड़े बली छः शत्रुओंको जीत लिया है वे ही सुधर्मा सभामें प्रवेश कर सक्ते हैं। यदुश्रेष्ठ विभु कृष्णचन्द्र उसी पवित्र सभामें प्रवेश करके तारागणसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान अपने तेजसे उस स्थानको प्रकाशमय करते हुए पुरुषसिंह यादवोंके बीचमें शोभायमान हुए। राजन्! वहाँ हँसी करनेवाले विदूषकगण अनेक रसीली बातें कह कर और नाट्याचार्य्य व नर्त-

कियाँ अपने २ कलाकौशलसे प्रसन्न करते हुए भगवान्‌की उपासना करने लगे। सूत, मागध और बंदीगण प्रशंसा करते हुए मृदंग, वीणा, मुरज, वेणु, करताल और शंख आदि बाजे बजा कर नृत्य-गानके द्वारा कृष्णचंद्रको सन्तुष्ट करने लगे। वहाँ बैठेहुए कुछएक सभाचतुर, वाक्पटु ब्राह्मणगण वेदमंत्रोंकी व्याख्या करने एवं पूर्वकालके पवित्र यशवाले राजोंकी कथाएँ कहने लगे ॥ १४ ॥ ॥१५॥१६॥१७॥१८॥१९॥२०॥२१॥ राजन्! इसी समयमें उस स्थान पर एक ब्राह्मण, जो पहले कभी नहीं आया था, वहाँ आया। भगवान्‌के पास उसके आनेकी सूचना दी गई, तदनन्तर प्रभुकी आज्ञाके अनुसार द्वारपाल उसको सभामें ले आया। ब्राह्मणने आकर परमेश्वर भगवान्‌को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और फिर जरासंधके सताये राजोंका सँदेसा इस प्रकार कहने लगा कि– "हे नाथ! जरासंधने दिग्विजय किया था, उस समय जो राजा लोग उसके आगे 'नत' नहीं हुए उनको पकड़ कर उस दुर्वृत्त मगधराजने अपने गिरिव्रज नामक दुर्भेद्य दुर्गमें बलपूर्वक कैद कर रक्खा है। वे राजे बीस हज़ार हैं। उन राजोंने कहा है कि "हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे प्रपन्नभयभंजन! हम लोग भेद-भाववाले हैं, भवभयसे भीत होकर आपकी शरणमें आये हैं। लोग, सकाम और निषिद्ध कर्मोंमें निरत होकर आपके बताये हुए आपके पूजनरूप कुशलकारी कर्म करनेमें असावधान रहते हैं, उनको जो बलवान् पुरातनपुरुष तत्क्षण अचानक आकर धर दबोचता है और उनकी जीवनाशाको मिटा देता है वही काल-स्वरूप आप हैं; आपको हम प्रणाम करते हैं। आप जगदीश्वर हैं, साधुओंकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेहीके लिये आपने पृथ्वीतल पर अवतार लिया है। हे ईश्वर, अन्य कोई आपकी आज्ञाका उल्लंघन करता है अथवा लोग अपने २ कर्मोंका फल भोगते हैं, सो हम नहीं जानते (अर्थात् जरासंध आपकी इच्छा-के विरुद्ध हमको सता रहा है अथवा हमलोग अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं सो हमको नहीं विदित है)। राजसुख विषयसाध्य और परतन्त्र होनेके कारण स्वप्नके सदृश है। हमलोग निरन्तर भयसमन्वित मृतकतुल्य शरीरसे भारस्वरूप उसका वहन करते हैं। निष्काम लोग आपसे जो स्वतःसिद्ध सुख पाते हैं उस सुखको आपकी माया में भूलकर छोड़ देनेके कारण ही हमलोग सम्पूर्ण कष्टोंसे पीड़ित हो रहे हैं। आपके चरणकमल प्रणत जनोंके शोक-सन्तापको हरनेवाले हैं। इस मगधराजके दस हजार हाथियोंके इतना बल है। सिंहसदृश पराक्रमी यह निठुर राजा हमको मेषपालकके समान अपने दुर्भेद्य दुर्गमें बंद किये हुए हैं। भगवन्! आपसे हमारी यही प्रार्थना है कि आप इस जरासंधरूप कर्म्मबन्धनसे हमको छुड़ाइये। हे उद्यत सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले! जरासंधने आपसे अठारह बार संग्राम किया है। सत्रह बार वह आपसे हारा, एवं केवल एकबार

अनन्तवीर्यशाली होकर भी मनुष्यचरित्रका अनुकरण करनेवाले जो आप हैं उनको अपनी समझमें जीत कर बड़े ही घमंडके साथ आपके जन जो हमलोग हैं उनको पीड़ित कर रहा है। हे अजित! इस विषयमें आप जो कर्त्तव्य समझें सो करें'। इस प्रकार मगधराजके बंदी राजोंने आपके दर्शनकी अभिलाषा करके आपके चरणकमलोंका आश्रय लिया है। आप दीनजनोंका मङ्गल करिये।" राजदूतके ये वचन पूर्ण भी नहीं हुए थे, उसी समय परमतेजस्वी, पिंगलवर्ण जटाजूटधारी देवर्षि नारदजी सूर्य्यके समान आकाशमार्गसे सभामें आकर उपस्थित हुए। सब लोकेश्वरोंके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मुनिको देखते ही सभ्यगण और अनुचरगण सहित उठकर आनन्दपूर्वक उनको प्रणाम किया एवं पूजाके उपरान्त जब नारदजी आसन पर सुखपूर्वक बैठे तब विधिपूर्वक श्रद्धापूर्ण व्यवहारसे उनको सन्तुष्ट करके भगवान्ने इस प्रकार मधुर वचन कहे। भगवान्ने कहा मुनिवर! इस समय तीनो लोक निर्भय हैं न? किसीको किसीसे किसी प्रकारका भय तो नहीं है? आप सब लोकोंमें विचरते रहते हैं। हमको आपका दर्शन हुआ सो हम अपने लिये परम लाभ समझते हैं। ईश्वर के बनाये हुए इन सब लोकोंमें कुछ भी ऐसा नहीं है जो आपका जाना हुआ न हो। अतएव मैं आपसे यह जानना चाहताहूँ कि इस समय पाण्डव क्या कर रहे हैं?। नारदजीने कहा कि विभो! हे भूमन्! आप साक्षात् ब्रह्म हैं तथापि जिसका प्रकाश प्रच्छन्न है उस अग्निके समान अपनी शक्तियोंके द्वारा अन्तर्यामीरूपसे सब प्राणियोंमें वर्तमान रहकर अपनी दुरन्त मायासे सबको मोहमें डाले हुए हैं, जिससे वे अपनेहीमें स्थित आपको नहीं देख पाते। मैंने आपकी मायाको बहुत बार देखा है, इसलिये आपके ऐसे प्रश्नसे मुझको कुछ विस्मय नहीं है। यह जगत् वास्तवमें अविद्यमान अर्थात् असत् है, तथापि, आपकी मायाके द्वारा विद्यमान, अर्थात् सत् प्रतीत होता है। आप अपनी मायाके द्वारा इसकी सृष्टि और संहार करते हैं। अतएव आपकी चेष्टाको कौन जान सक्ता है? मैं आपको केवल प्रणाम करता हूँ; क्योंकि आपका स्वरूप अचिन्त्य है। अनर्थप्रवर्तक शरीरके बन्धनसे संसारमें प्रवृत्त, और इसी कारण मुक्तिके विषयमें अज्ञ, जीवके लिये आपने अपने अनेक लीलावतारोंके द्वारा ज्ञान उपजानेवाला अपना सुयश संसारमें फैलाया है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ! भगवन्! आप ब्रह्म हैं, किन्तु इस समय मनुष्यचरित्रका अनुकरण कर रहे हैं, अतएव मैं आपकी बुआके लड़के और भक्त पाण्डवोंके राजकाजका समाचार सुनाता हूँ। पाण्डुके पुत्र राजा युधिष्ठिर आपको सन्तुष्ट करनेके लिये श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ करेंगे। आप इस सुकार्य्यका अनुमोदन करिये। उस श्रेष्ठ यज्ञमें बड़े २ देवता और यशस्वी राजालोग भी आपके दर्शनकी कामना करके आवेंगे। भगवन्! जब महानीच चांडाल भी,

अखंड ब्रह्मरूप जो आप हैं उनके नाम और कर्म्मोंको सुनकर, कहकर और स्मरण कर पवित्र होजाते हैं, तब जो लोग साक्षात् आपका दर्शन व स्पर्श करके धन्य हो चुके हैं उनके लिये क्या कहना है । आपका यश दशो दिशाओंमें, स्वर्गमें, मनुष्यलोकमें, पातालमें व्याप्त हो रहा है एवं आपके चरणोंका धोवन गंगा, भोगवती और मन्दाकिनी नामसे स्वर्गलोक, मनुष्यलोक और पाताल लोकको पवित्र कर रही है" । श्री शुकदेवजी कहते हैं । महाराज ! नारद के वाक्यमें जरासन्धविजयकी बात गुप्तरूपसे रहने पर भी सर्वसाधारण सभासद नहीं समझसके, अतएव उसे स्पष्ट करनेके लिये इस भावसे भगवान् वाक्य-कौशलपूर्वक अपने भृत्य उद्धवसे बोले, मानो वह यह निश्चय नहीं करसके कि क्या करना चाहिये । भगवान्ने कहा " हे उद्धव ! तुम हमारे प्रिय बन्धु और श्रेष्ठ मन्त्री हो, क्योंकि तुम बुद्धिमान् चतुर और प्रत्येक कर्त्तव्य के तत्त्वको भली भाँति जानते हो । अतएव हम तुमको अपने दिव्य नेत्र समझते हैं । तुम्हारे वाक्य पर मैं श्रद्धा करताहूँ, अतएव अब प्रथम क्या करना चाहिये सो कहो" ॥२२-४६॥

इत्युपामन्त्रितो भर्त्रा सर्वज्ञेनापि मुग्धवत् ॥
निदेशं शिरसाधाय उद्धवः प्रत्यभाषत ॥ ४७ ॥

सर्वज्ञ होकर भी अजानकी भाँति स्वामीने कर्तव्य पूछा; उद्धवने भी स्वामी-की आज्ञा शिरोधार्य्य समझकर यों उत्तर दिया ॥४७॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितम अध्याय ।

श्रीकृष्णका हस्तिनापुर जाना ।

श्रीशुक उवाच-इत्युदीरितमाकर्ण्य देवर्षेरुद्धवोऽब्रवीत् ॥
सभ्यानां मतमाज्ञाय कृष्णस्य च महामतिः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! कृष्णके पूर्वोक्त वाक्य सुन कर एवं देवर्षि नारद, सभ्यगण और श्रीकृष्णके मनके भावको समझ कर उद्धवने कहा कि देव! आपकी बुआके लड़के राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, इस लिये आपको वहाँ जाना चाहिये और शरणागत राजोंकी रक्षा करना भी कर्त्तव्य है। मेरी समझमें देवर्षिकी इच्छानुसार आप पहले हस्तिनापुर चलिये । क्योंकि हे विभो! राजा युधिष्ठिर सब दिशाओंको जीत लेंगे तभी राजसूय यज्ञ होगा । उसी दिग्विजयमें जरासंध भी जीता जायगा, इससे दोनो काम बन जायँगे। ऐसा करनेसे हमारा

महत् उद्देश्य भी सिद्ध हो जायगा और राजालोग भी बन्धनसे छूट कर आपके सुयशको फैलावेंगे। राजसूय यज्ञ भी पूर्ण होगा और शरणागतोंकी रक्षा भी हो जायगी। स्वामी! जरासंधके दस हजार हाथियोंके इतना बल है। समान बली भीमसेनके सिवा और २ बलवान् योद्धा भी उसका सामना नहीं कर सक्ते। वह द्वन्द्वयुद्धमें हराया जा सक्ता है, अन्यथा सैकड़ों अक्षौहिणी सेनासे भी कभी नहीं जीता जा सक्ता। वह कभी ब्राह्मणको विमुख नहीं फेरता। भीमसेन ब्राह्मणके वेषसे जा कर उससे द्वन्द्वयुद्ध करनेकी प्रार्थना करेंगे और आपके आगे द्वन्द्वयुद्धमें उसको मारेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप अरूप कालस्वरूप हैं, जैसे वास्तवमें आप ही जगत्की सृष्टि और संहार करते हैं और ब्रह्मा व शिव सृष्टि और प्रलयके निमित्तमात्र हैं वैसेही जरासन्धके वधमें, सबकाम करनेवाले आप ही हैं, भीमसेन तो केवल निमित्तमात्र हैं। जैसे गोपियोंको चन्द्रचूड़ यक्षसे, गजराजको ग्राहसे, जानकीको रावणसे और वसुदेवको कंससे आपने छुड़ाया है और उन्होने निजमोक्षरूप आपकी लीलाको गाया है, एवं जैसे मुनिगण और हमलोग आपके चरणोंकी शरणमें रह कर सर्वदा मोक्षगान करते हैं वैसे ही जब वे सब जरासंधके बंदी राजा लोग कारागारसे छुटकारा पावेंगे तब उनकी रानियाँ अपने २ पतियोंके छुटकारेकी लीलाको अपने २ घरमें आनन्दसे गावेंगी। कृष्णचन्द्र! जरासंधके वधसे अनेक प्रयोजन सिद्ध होंगे; राजोंके पुण्यके फलसे इस यज्ञका आप भी अनुमोदन करें ॥१॥२॥ ॥३॥४॥५॥६॥७॥८॥९॥१०॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! देवर्षि नारद, श्रीकृष्ण एवं सब यादवोंने उद्धवके इस प्रकार युक्तियुक्त और सब प्रकार मंगलकारी वाक्योंका आदर किया। तब सब प्रकार समर्थ भगवान् देवकीनन्दनने बड़े-बूढ़े गुरुजनोंको हस्तिनापुर चलनेकी सूचना देकर दारुक, जैत्र आदि अनुचरोंको चलनेकी आज्ञा दी। फिर शत्रुनाशन बलदेवकी आज्ञा लेकर भगवान्ने पहले रानियोंको अपने २ पुत्र और अन्यान्य सामग्री सहित आगे करके आप सारथीके द्वारा लायेगये गरुड़ध्वज रथ पर चढ़ कर हस्तिनापुरको प्रस्थान किया। रथी, हाथी, सवार, पैदल और घोड़ेसवार लोगोंकी भयानक चतुरंगिणी सेना भी भगवान्के साथ चली। मृदंग, भेरी, ढोल, शंख, और गोमुख आदि बाजोंका शब्द आकाशमें गूँजने लगा। श्रीकृष्ण भगवान् द्वारकापुरीसे बाहर निकले। पतिव्रता रानियाँ उत्तम वस्त्र, आभूषण, चन्दन और माला आदिसे सुशोभित होकर अपने २ पुत्रोंको लिये नरयान, अश्वयान और सुवर्णकी पालकियोंमें चढ़कर अपने पति गोविन्दके पीछे २ चलीं। चारो ओरसे ढाल-तर्वार लिये सिपाही लोग उनकी रक्षाके लिये नियुक्त थे। भली भाँति अलंकृत अनुचरोंकी स्त्रियाँ और वारवनिताएँ खस और फूस व सिर्की आदिके कृत्रिम भवन तथा कम्बल और वस्त्रादि गृह-सामग्रीको बैल गाड़ियों पर रखकर चलीं। इस प्रकार कृष्णचन्द्रके साथ मनुष्य, ऊँट, बैल, भैंसे, गर्दभ, खच्चर, छकड़े और

हथनी आदिसे व्याप्त सेना दूर २ तक चारो ओरकी पृथ्वीको ढँकती हुई चली। तुमुल कोलाहलसे व्याप्त वह सेना, बड़े २ विशाल ध्वजपट, छत्र, चामर, उत्तम अस्त्र-शस्त्र, किरीट मुकुट, अन्यान्य आभूषण और सुवर्णमंडित रथों पर, दिनके समय चमकीली सूर्य्यकी किरणें पड़नेसे, तिमिंगिल और तरंगोंसे क्षोभको प्राप्त महासागरके समान सुशोभित हुई। तदनन्तर देवर्षि नारद श्रीकृष्णके द्वारा पूजित एवं श्रीकृष्णके दर्शनसे प्रसन्न हो, उनके उक्त गमनोद्योगको देख, प्रणाम करके हृदयमें उन्ही इष्टदेवका ध्यान करते हुए वहाँसे विमानमार्ग अर्थात् आकाशमें चले गये ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ तदनन्तर जरासंधपीड़ित राजोंके भेजे दूतको भगवान्ने मधुर वचनोंसे सन्तुष्ट करते हुए कहा कि "दूत! तुम राजोंसे कहना कि डरो नहीं, तुम्हारा मङ्गल हो, मैं शीघ्र ही दुष्ट जरासंधको मारूँगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है"। यह सुनकर दूत वहाँसे राजों के पास गया और जो कुछ कृष्णचन्द्रने कहाथा सो सब उसने उनसे कहा। राजा लोग भी अपने छूटनेके लिये निपट उत्सुक होकर कृष्णचन्द्रके आनेकी प्रतीक्षा करने लगे। हरि भगवान् भी आनर्त्त, सौवीर, मरुदेश और कुरुक्षेत्रको लाँघकर गिरि, नगर, ग्राम, व्रज और आकर आदिकी शोभा निहारते हुए दृषद्वती और सरस्वती नदियोंके उस पार उतरे, और फिर पाञ्चाल व मत्स्य देश होकर हस्तिनापुरमें पहुँच गये। मनुष्योंके लिये जिनका दर्शन दुर्लभ है उन्ही श्रीकृष्णके आगमनका सुसमाचार पाकर युधिष्ठिरजी परम प्रसन्न हुए और उसी समय उपाध्याय और बन्धुवर्ग सहित कृष्णचन्द्रको आगेसे लेनेके लिये पुरीके बाहर निकले। जैसे इन्द्रियाँ प्राणसे मिलें उस प्रकार पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरजी गीत वाद्य आदि मंगल शब्द एवं वारम्वार होरही वेदध्वनि सहित आदरपूर्वक कृष्ण भगवान्के निकट आये। श्रीकृष्णको देखतेही युधिष्ठिर के हृदयमें स्नेहसागर उमड़ आया। बहुत दिनोंके बाद अपने परम प्यारे कृष्णचन्द्रको देखकर और वारम्वार गलेसे लगाकर युधिष्ठिरजी परम प्रसन्न हुए। लक्ष्मी जिसमें स्थिरभावसे रहती है उस सर्वमङ्गलमय हरिके पवित्र शरीरके आलिंगनसे राजा युधिष्ठिरके सब अशुभ नष्ट होगये एवं दोनो नेत्र आनन्दके आँसुओंसे परिपूर्ण हो आये और परमानन्दके कारण सब शरीरके रोम खड़े होगये। राजा युधिष्ठिर थोड़ी देरके लिये सब लोकव्यवहार भूलकर परमानन्दमें मग्न होगये। भीमसेनने भी मामाके पुत्र कृष्णको हँसकर हृदयसे लगालिया और नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहाये एवं नकुल, सहदेव तथा अर्जुन भी सुहृत्तम अच्युतसे मिलकर परम प्रसन्न हुए और आनन्दके आँसुओंसे कृष्णचन्द्रके अंगोंको भिगोने लगे ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥२४॥ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ अर्जुन, कृष्णचन्द्रसे मिले और नकुल व सहदेवने मिलकर

कृष्णचन्द्रको प्रणाम किया एवं कृष्णचन्द्रने भी मिलकर युधिष्ठिर व भीमको प्रणाम किया। फिर कृष्णचन्द्रने ब्राह्मण और बड़े-बूढ़े लोगोंको यथायोग्य प्रणाम करके मान्य कुरु, केकय और संजय देशोंके नरपतियोंका सम्मान किया। ब्राह्मण गण, वेदपाठके द्वारा एवं सूत, मागध, बन्दीजन और उपासकगण मृदंग, वीणा, शंख, पटह, पणव और वेणु आदि बाजे बजाकर नृत्य-गीतादिकेद्वारा कमललोचन कृष्णको सन्तुष्ट करने लगे। जिनके नाम और गुणोंके कीर्त्तनसे शरीर और मन पवित्र होता है उनके शिरोमणि भगवान्ने बन्धुओंके बीचमें सब दर्शकोंके मुखसे अपनी सुख्याति सुनते हुए उस भलीभाँति अलंकृत इन्द्रप्रस्थमें प्रवेश किया। छिड़काव करनेकी कोई आवश्यकता नहीं हुई, पुरीके सब मार्गोंमें गजराजोंके मदजलसे आप-ही-आप छिड़काव सा होगया। विचित्र ध्वजा, कनकतोरण, पूर्ण कलश आदि मांगलिक चिन्होंसे सुशोभित हस्तिनापुरकी कृष्णचन्द्रके आनेसे और भी शोभा बढ़गई। स्थान२ पर नवीन वस्त्र, अलङ्कार और फूलमाला पहने तथा चन्दन लगाये विशुद्धचित्त स्त्री और पुरुषोंके झुंड कृष्ण-दर्शनके लिये उत्सुक देख पड़ने लगे। इस प्रकार कृष्णचन्द्र राजमार्गसे होकर राजभवनके निकट पहुँच गये। कृष्णचन्द्रने कुरुराजके निवासभवनको देखा। वहाँ प्रत्येक गृहमें श्रेणीबद्ध रत्नदीपक जल रहे हैं और यथोचित स्थानों पर पूजाकी सामग्रियाँ सजाई हुई रक्खी हैं। भवनके झरोखों और जालियोंसे सुगन्धित धूपका धुआँ निकलकर आनेवालोंके चित्तको प्रसन्न कर रहा है एवं भवनके ऊपरी भागमें पताकाएँ फहरा रही हैं। ऊपरी खंडमें सुवर्ण-कलशमण्डित, रत्नजटित अनेक रजतरचित गृहोंसे वह राजभवन एक बड़े विमानके समान शोभायमान होरहा है। दर्शनीय रूपवाले श्रीकृष्णके आनेका समाचार सुनते ही सब पुरकी सुन्दरियाँ, उत्सुकताके कारण शिथिल होगये केशबन्धन और नीबीको फिरसे बाँधती हुई अपने २ घरके कामों को और शय्या पर पड़े हुए पति व पुत्रोंको वैसे ही छोड़कर यदुपतिको देखनेके लिये राजमार्गमें अपने २ घरके कोठों पर आने लगीं। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसे परिपूर्ण राजमार्गमें जा रहे स्त्रीमण्डलीमण्डित कृष्णचन्द्रको देखकर भवनों पर चढ़ी हुई स्त्रियाँ उन पर फूलोंकी वर्षा करती हुई मन-ही-मन (कृष्णसे) मिलकर परम प्रसन्न हुईं। राजन्! पुरनारियोंने विस्मयपूर्ण दृष्टिके द्वारा हरिका स्वागत किया और चन्द्रमाके चारो ओर अवस्थित तारासमूहके समान प्रिय पति कृष्णचन्द्रके निकट विराजमान रुक्मिणी आदि रानियोंको देखकर परस्पर एक एकसे कहने लगीं कि अहो! इन स्त्रियोंने कौन ऐसा पुण्य-कर्म किया है जो उदार हास्य, लीलाविलास एवं मनोहर दृष्टिके द्वारा यह पुरुषश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र नित्य इनको आनन्दित करते रहते हैं? ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ मुख्य २ श्रेणीके पुरवासियोंने ठौर २ पर माङ्गलिक सामग्रियोंसे

कृष्णका पूजन-सत्कार किया। इस प्रकार प्रीतिसे जिनके नयनारविंद प्रफुल्लित हो रहे हैं वे अन्तःपुरनिवासी जन अत्यन्त प्रीतिपूर्वक कृष्णचन्द्रको घेरकर राजमन्दिरके भीतर लेगये। कुन्तीजी, अपने भतीजे त्रिभुवनेश्वर कृष्णको देखकर परम प्रसन्न हुईं एवं पुत्रवधू सहित पलँग परसे उठकर उन्होंने कृष्णचन्द्रको हृदयसे लगालिया। देवदेवेश मुकुंदको आदरसहित घरमें लाकर राजा युधिष्ठिर ऐसे आनन्दमें मग्न होगये कि उनको पूजाका क्रम भी भूलगया। राजन्! श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी बुआ कुन्ती एवं गुरुपत्नियोंको प्रणाम किया एवं कृष्णचन्द्रकी छोटी बहन सुभद्रा व द्रौपदीने उनको प्रणाम किया। द्रौपदीने सासके उपदेशके अनुसार रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, जाम्बवती, कालिंदी, मित्रविन्दा, शैब्या और नाग्नजिती आदि सब कृष्णचन्द्रकी रानियोंका सादर सत्कार किया और उनके साथ जो अन्यान्य स्त्रियाँ आई थीं उनका भी वस्त्र, माला और अलंकार आदि देकर सत्कार किया। इसी प्रकार धर्म्मराज युधिष्ठिरजी, सेना, मंत्रीगण और रानियोंसहित जनार्दन कृष्णचन्द्रको नित्य नवीन सुखभोगके द्वारा सन्तुष्ट करने लगे। राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये श्रीकृष्णचन्द्र कई महीने तक हस्तिनापुरमें रहे और अर्जुनके साथ रथ पर चढ़ कर अनेक स्थानोंका निरीक्षण किया ॥ ३६-४४ ॥

तर्पयित्वा खाण्डवेन वह्निं फाल्गुनसंयुतः ॥
मोचयित्वा मयं येन राज्ञे दिव्या सभा कृता ॥ ४५ ॥

कृष्णचन्द्रने उसी समयमें अर्जुनके द्वारा अग्निको जलानेके लिये खाण्डव नाम इन्द्रका वन दिलाकर प्रसन्न किया और मयासुरको अग्निमें जलनेसे बचाया। मयासुरने भी बदलेमें महाराज युधिष्ठिरको एक विचित्र और दिव्य सभा बना दी ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितम अध्याय।

जरासंधका वध।

श्रीशुक उवाच-एकदा तु सभामध्य आस्थितो मुनिभिर्वृतः ॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्भ्रातृभिश्च युधिष्ठिरः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। राजन्! एक समय राजा युधिष्ठिरजी मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भाई, आचार्य्य, कुलके बड़े-बूढ़े, सम्बन्धी और बान्धवगणके साथ सभामें बैठे हुए थे। राजा युधिष्ठिर सबके आगे श्रीकृष्णसे कहने लगे कि

हे कृष्ण! हे गोविन्द! सब यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूय यज्ञके द्वारा आपकी पवित्र विभूति जो देवगण हैं उनका पूजन करनेके लिये मैंने विचार किया है। प्रभो! अब उस विचारको पूर्ण करना आपके हाथ है। हे कमलनाभ! हे ईश्वर! जो पवित्र अन्तःकरणवाले लोग निरन्तर आपके चरणोंकी शरणमें रहते हैं—आपके चरणोंका ध्यान करते हैं अथवा अमंगल-नाशके लिये शुद्ध भावसे आपके पवित्र नामोंका कीर्तन करते हैं वे ही संसारके बंधनसे छूट कर सुखी होते हैं एवं अन्यान्य मंगल भी (कामना करनेसे) उनको प्राप्त होते हैं। किन्तु आपकी कृपाके बिना चक्रवर्त्तियोंको भी संसारसे मुक्ति अथवा अन्यान्य सम्पूर्ण मङ्गल नहीं प्राप्त होते। अतएव हे देव! मैं चाहता हूँ कि ये सब उपस्थित लोग आपके चरणारविन्दोंकी सेवाकी महिमा देखें। हे विभो! कुरु और सृंजय वंशके लोगोंमें जो लोग आपको भजते हैं और जो नहीं भजते—उन दोनोंकी स्थिति आप संसारको दिखलाइये। भगवन्! आप उपाधिहीन और सबके प्रिय आत्मा हैं, सुतराम् समदर्शी और आत्माराम हैं, अतएव आपमें 'यह अपना है और यह पराया है' इस प्रकारकी भेद-भावना नहीं है। तथापि जो लोग आपके सेवक हैं उन पर आप कल्पवृक्षके समान प्रसन्न होते हैं। जो व्यक्ति जैसी आपकी सेवा करता है उसको आप भी उसीके अनुरूप फल देते हैं—इसमें कभी विपर्य्यय नहीं होता ॥१॥२॥३॥४॥५॥६॥ **श्रीभगवान्ने कहा।** हे राजन्! हे शत्रुदलदलन! आपका विचार अत्यन्त उत्तम है, राजसूय यज्ञ करनेसे आपकी विमल कीर्ति दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो जायगी। महाराज! ऋषिगण, पितृगण, देवगण, आपके बन्धुगण एवं मैं—सब चाहते हैं कि यह महायज्ञ करिये। अतएव सब राजोंको जीत कर और समग्र पृथ्वीमण्डलको अपने वशमें करके आप इस महायज्ञके अनुष्ठानका आरंभ करिये। इसी समय यज्ञके योग्य समग्र उत्तम सामग्री एकत्रित करनेके लिये आज्ञा दीजिये। राजन्! आपके ये चारो भाई लोकपालोंके अंशसे उत्पन्न हैं; ये सब राजोंको जीत लेंगे। राजन्! अजितेन्द्रिय लोगोंके लिये मैं अजेय हूँ। आप जितेन्द्रिय हैं, इस कारण आपने मुझको अपने वशमें कर लिया है। आप निश्चिन्त रहिये, राजोंकी कौन कहे—देवतालोग भी मेरे भक्तको, प्रभाव, यश, लक्ष्मी अथवा सैन्य आदि सामग्रीसे नहीं हरा सक्ते" ॥७॥ ॥८॥९॥१०॥११॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! भगवान्के मुखसे ऐसे मधुर वाक्य सुनकर प्रसन्नताके कारण युधिष्ठिरका मुखकमल प्रफुल्लित होउठा। उन्होने विष्णुके तेजसे परिवर्द्धित अपने भाइयोंको इस प्रकार दिग्विजयके कार्य्यमें नियुक्त किया। सृंजय देशके नरपतियों सहित सहदेवको दक्षिण दिशा जीतनेके लिये, मत्स्य देशके नरपतियों सहित नकुलको पश्चिम दिशा जीतनेके लिये, केकय देशके नरेशों सहित अर्जुनको उत्तर दिशा जीतनेके लिये एवं मद्रदेशके नरेशों सहित पराक्रमी भीमसेनको पूर्वदिशा जीतनेके लिये युधिष्ठिरजीने आज्ञा दी। राजन्! उक्त वीर

पाण्डव चारो दिशाओंके राजोंको बलपूर्वक वशमें करके बहुत सा धन लेकर महाराज युधिष्ठिरके निकट आगये । एक जरासंधको छोड़ कर सभी राजे परास्त हो गये–यह सुन कर राजा युधिष्ठिर बहुत ही चिन्तित हुए। तब भगवान्‌ने उसी उपायका प्रस्ताव किया, जिसे उद्धवने यदुसभामें बताया था । राजन्! तदनन्तर उसी प्रस्तावके अनुसार भीमसेन, अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्राह्मणके वेषसे जरासंधकी राजधानी गिरिव्रजको गये ॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ अतिथिकी बेलामें ये तीनो ब्राह्मणवेषधारी क्षत्रिय गृहस्थ जरासंधके घर पर पहुँचे और इन्होने ब्रह्मण्य मगधराजसे इस प्रकार प्रार्थना की कि "हे राजन्! हम प्रार्थी अतिथि हैं, आपके पास बहुत दूरसे आये हैं। इस लिये जो कुछ हम माँगें सो आप दीजिये । आपका कल्याण हो । क्षमाशील व्यक्तियोंके लिये कुछ भी असह्य नहीं है, असत् जनोंके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे न कर सक्ते हों, दानी लोगोंके लिये कुछ भी ऐसा नहीं है जिसे वे न दे सक्ते हों और समदर्शियोंके लिये कोई भी पर (गैर) नहीं है । जो कोई स्वयं समर्थ होकर भी इस अनित्य शरीरसे सज्जनोंके द्वारा गाने-योग्य अविनाशी यशका संचय नहीं करता वह निन्दनीय एवं शोचनीय है । देखिये, हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव, मुद्गल, महाराज शिबि, राजा बलि, व्याध, कपोत पक्षी एवं अन्यान्य अनेक उदारहृदय लोग अपने अनित्य शरीरसे नित्य लोकको प्राप्त हुए हैं"[1] ॥ १७ ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ श्री शुकदेवजी कहते हैं। महाराज ! स्वर, आकार और कलाइयोंमें पड़े हुए धनुषकी डोरीके चिन्हों (घट्टों) से जरासंधने जान लिया कि ये ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं । जरासंधको यह भी जान पड़ा कि मैंने इनको

---

१ हरिश्चन्द्र विश्वामित्रसे उऋण होनेके लिये रानी और राजकुमारको बेंचकर स्वयं चांडाल बने और सत्यका पालन किया–इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र अयोध्यावासी लोगों सहित स्वर्गको गये। रन्तिदेव अड़तालीस दिनों तक सहित कुटुंबके भूखे प्यासे पड़े रहे और उनचासवें दिन मिला हुआ अन्न-जल भी अतिथियोंको देकर ब्रह्मलोकको गये। उंञ्छवृत्तिवाले मुद्गल ऋषि छः महीने तक सकुटुम्ब अन्नके बिना भूखे रहे और अन्न पाने पर फिर भी आप नहीं खाया, अतिथिको देदिया और उसीके फलसे ब्रह्मलोकको गये । राजा शिबिने शरणागत कपोतकी रक्षाके लिये अपना मांस काटकर बाजको दिया और अन्तमें स्वर्गको गये । बलिने जान-बूझकर अपना सर्वस्व वामनरूप विष्णुको देदिया और भगवान्‌के प्रिय हुए । कपोतने अपने अतिथि व्याधको कबूतरी सहित अपना मांस खानेको दिया और आप विमान पर बैठकर तत्क्षण स्वर्गको सिधारा । व्याध भी उनके धार्मिक भावको देखकर विरक्त होगया और उसीसमय वनमें लगीहुई दावानलमें जलकर पापहीन हो स्वर्गको गया, इत्यादि । ये कथाएँ और २ पुराणोंमें विस्तारसे कही गई हैं।

कहीं देखा है। मगधराज जरासंध मनमें सोचने लगा कि अवश्य ही ये लोग क्षत्रिय हैं और मेरे पास ब्राह्मणका वेष बनाकर आये हैं। किन्तु ये ब्राह्मण बनके आये हैं, इस लिये मैं माँगने पर इनको अपना परम प्रिय और दुस्त्यज आत्मा भी देदूँगा—नहीं न करूँगा। इन्द्रका राज्य, जिसे बलिने बलपूर्वक ले लिया था, फिर इन्द्रको देनेके लिये, वामनरूप धर ब्राह्मणवेषसे विष्णु राजा बलिके पास गये और छलपूर्वक बलिको राज्यैश्वर्य्यसे भ्रष्ट कर दिया, तथापि बलिकी विमल कीर्त्ति तीनो लोकोंमें अब तक गाई जाती है। दैत्यराज बलिने जान लिया था कि यह वामनरूपी विष्णु छल करने आये हैं और शुक्राचार्य्यने भी कहा था कि यह छली विष्णु हैं, इनको पृथ्वी न देना, तथापि उन्होने ब्राह्मणरूपी विष्णुको नहीं लौटाया और पृथ्वी दी। यह देह एक-न-एक दिन अवश्य नष्ट होजायगा; तब क्षत्रिय यदि अपने अनित्य शरीरसे ब्राह्मणका काम बना कर महायश पानेकी चेष्टा न करे तो उसका जीवन ही वृथा है" ॥ २२ ॥ ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ उदारहृदय जरासंधने यों विचार कर श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनसे कहा कि "हे ब्राह्मणो! जो तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो। तुम यदि मेरा शिर भी माँगोगे तो मैं अपने हाथसे काटकर तुमको देदूँगा" ॥ २७ ॥ जरासंधके उदार वचन सुन कर भगवान् कृष्णचन्द्रने कहा कि "हे राजेन्द्र! हम ब्राह्मण नहीं, क्षत्रिय हैं। हम तुम्हारे पास युद्धयाञ्चाके लिये आये हैं—और कुछ नहीं माँगना चाहते। यदि इच्छा हो तो हम तीनोमें चाहे जिससे द्वन्द्व युद्ध करो। यह कुन्तीके पुत्र भीमसेन हैं, यह इनके भाई अर्जुन हैं और मैं इनके मामाका लड़का और तुम्हारा शत्रु कृष्ण हूँ" ॥ २८ ॥ २९ ॥ मगधराज जरासंध कृष्णके वचन सुन कर ऊँचे स्वरसे हँसा और फिर कुछ कुपित होकर कहने लगा कि "अरे मन्दमति क्षत्रियो! यदि तुम युद्ध करना चाहते हो तो मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा। किन्तु कृष्ण! तू कायर और भगोड़ा है, युद्ध-भूमिसे घबड़ा कर भाग जाता है; तू अपनी मथुरा पुरी छोड़, समुद्रकी शरणमें जाकर बसा है, तुझसे मैं नहीं युद्ध करूँगा। यह अर्जुन भी मुझसे अवस्थामें छोटा है और मेरे समान बल भी इसमें नहीं है, इसका शरीर भी मेरे तुल्य नहीं है; अतएव यह मुझसे युद्ध भी नहीं कर सक्ता। हाँ, भीमसेन बल आदिमें मेरे समान है, इसके साथ मैं युद्ध करूँगा" ॥ ३० ॥ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ इतना कह कर राजा जरासन्धने एक बड़ी भारी गदा भीमसेनको दी और वैसी ही एक गदा आप लेकर पुरसे बाहर निकला ॥ ३३ ॥ तदनन्तर समस्थल पर वे दोनो रणदुर्मद वीर भिड़ कर वज्र ऐसी कठिन गदाओंसे परस्पर प्रहार करने लगे। बाईं और दाहिनी ओर भाँति २ के पैंतरे बदलते हुए दोनो वीरोंका वह युद्ध रंगभूमिमें उतरे हुए दो नटवरोंके युद्धके समान सुशोभित हुआ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ उस समय

परस्पर गदाओंके घात-प्रतिघातसे दो वज्रोंके टकरानेका ऐसा घोर कठोर चटचटा-शब्द होने लगा, जैसे दो हाथी लड़ें और उनके दाँतोंकी टक्करोंका शब्द हो वैसेही गदाओंका शब्द सुन पड़ता था॥३६॥तदनन्तर बड़े वेगसे चलाई जारही दोनो गदाएँ दोनो वीरोंके कन्धे, कटि, हाथ, ऊरू और जत्रु आदि सुकठिन अंगोंकी वारम्वार चोट खाकर उसी प्रकार चूर्ण होगईं जिस प्रकार क्रोधाकुल होकर युद्ध कर रहे दो गज-राजोंके शुण्डादण्डमें पड़ कर मंदारके वृक्षकी शाखाएँ चूर २ हो जायँ ॥ ३७ ॥ इस प्रकार जब दोनो गदाएँ चूर होगईं तब दोनो वीर पुरुष और भी कोप करके वज्रके समान कठोर मुष्टियों (घूसों) से परस्पर प्रहार करने लगे । दो गजरा-जोंके समान युद्ध कर रहे उन वीरोंके मुष्टिप्रहारसे वज्रपातसदृश कठोर शब्द होने लगा ॥ ३८ ॥ राजन्! शिक्षा, बल और ओजमें समान दोनो वीर इस प्रकार समानभावसे सत्ताईस दिनों तक लड़ते रहे । सत्ताईस दिनों तक कोई भी कम नहीं पड़ा और किसीका वेग नहीं घटा । ये लोग दिनको युद्ध करते थे और रात्रिको पास ही पास सोते थे । एक दिन रातको भीमसेनने मामाके पुत्र कृष्णसे कहा कि "माधव! मैं जरासंधको युद्धमें नहीं जीत सक्ता" । भगवान् कृष्णचन्द्र जानते थे कि जरासंध मराहुआ उत्पन्न हुआथा, उसके शरीरके दो टुकड़े अलग२ थे और उन टुकड़ोंको एकमें जोड़ कर जरा राक्षसीने जीवित कर दिया था। अमोघदर्शन कृष्णने हाथ फेर भीमसेनको युद्ध-श्रम-रहित करके अपने तेजसे शक्तिशाली बना दिया । सबेरे जब फिर युद्ध होने लगा तब शत्रुके वधका उपाय विचार

कर, भीमसेनके सामने ही, उनको दिखा कर कृष्णचन्द्रने एक तिनका उठा लिया

हाथमें एक शाखाको लेकर उसको बीचसे फाड़ डाला। भगवान्के इस संकेतको महाबली वीरवर भीमसेन समझ गये। भीमसेनने उसी समय शत्रुको पृथ्वी पर पटक दिया और जिस प्रकार कोई गजराज किसी महावृक्षकी शाखाको सूँड़से पकड़ कर फाड़ डाले उस प्रकार एक पैरसे एक पैर दबा कर दोनो हाथोंसे दूसरा पैर पकड़ जरासंधके शरीरको बीचसे फाड़ डाला। जरासंधका शरीर गुदासे फट कर दो खंड होगया। एक २ चरण, वृषण, कटि, स्तन, कन्धे, बाहु, नेत्र, भौंह और कान आदिसे युक्त जरासंधके शरीरके दोनो टुकड़े अलग २ देख कर सब दर्शकोंको बड़ा ही विस्मय हुआ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मगधराजकी मृत्यु देख कर पुरवासी लोगोंमें हाहाकार मच गया। अच्युत और अर्जुनने गलेसे लगा कर भीमसेनका सत्कार किया ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

सहदेवं तत्तनयं भगवान्भूतभावनः ॥
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पतिं प्रभुः ॥
मोचयामास राजन्यान्संरुद्धा मागधेन ये ॥ ४९ ॥

तदनन्तर भूतभावन अमोघरूप प्रभु भगवान्ने जरासन्धके पुत्र सहदेवको मगधराज्यके सिंहासन पर बिठा कर उन जरासंधके बंदी राजोंको कारागारसे मुक्त किया ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितम अध्याय।

राजोंका कैदसे छूटना।

श्रीशुक उवाच—अयुते द्वे शतान्यष्टौ लीलया युधि निर्जिताः ॥
ते निर्गता गिरिद्रोण्यां मलिना मलवाससः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन् जरासंधने २० हजार ८ सौ राजोंको युद्धमें जीतकर गिरिव्रजमें कैद कर रक्खाथा। बहुत काल तक कैद रहने और क्लेश सहनेसे जिनके शरीर शिथिल होगये हैं, मुख सूख गये हैं, ऐसे भूख प्याससे पीड़ित मलिनमुख और मैले कपड़े पहने राजोंने कारागारसे छुटकारा पाकर घनश्याम कृष्णचन्द्रको देखा। राजोंने देखा कि वह पीत पट पहने हुए हैं, उनके हृदयमें श्रीवत्सका चिन्ह है, बड़ी २ चार भुजाएँ शोभायमान हैं, दोनो नेत्र कमलपुष्पके भीतरी भागके समान अरुणवर्ण हैं,

मुखमण्डल सुन्दर और प्रसन्न है, कानोंमें मकराकृत कुण्डल हैं और करकमलमें कमलका चिन्ह है। भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म विराजमान हैं और अंगोंमें किरीट मुकुट, हार, कटिसूत्र, कटक, अंगद आदि आभूषणोंकी निराली शोभा है। उनके वक्षःस्थलमें वनमाला पड़ी है और कंठमें पड़ीहुई कौस्तुभ मणि अपनी प्रभासे दर्शकोंकी आँखोंमें चकाचौंध उत्पन्न कर रही है। कृष्णभगवान्‌के ऐसे अनूप रूपको देखकर राजोंको जो परमानन्द प्राप्त हुआ उसीसे उनका कारागारवासका सब कष्ट और जन्मजन्मान्तरके समग्र पाप नष्ट होगये। जान पड़ताथा कि वे नेत्रोंके द्वारा कृष्णके सुधामय रूपको पी लेंगे, जिह्वासे चाट लेंगे और नासिकासे सूँघ लेंगे एवं भुजाओंसे लिपटा लेंगे। इस प्रकार प्रेमसे परिपूर्ण नरपतियोंने चरणों पर शिर रखकर हरिको प्रणाम किया और तदनन्तर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे ॥ १–७ ॥ **राजालोग कहने लगे।** हे देवदेवेश! हे अव्यय! आपको प्रणाम है। हे कृष्ण! हम आपके शरणागत भक्तजन हैं। हम अब राज्यभोग नहीं चाहते, क्योंकि हमारे हृदयमें वैराग्यका उदय हो आया है। बस, हमारी यही प्रार्थना है कि घोर संसारसे हमारा उद्धार करिये। हे नाथ! हे मधुसूदन! इस मगधराजके लिये हमारे हृदयमें अणुमात्र भी वैरभाव नहीं है। जो राजालोग राज्यसे भ्रष्ट हों उन्हे, ऐसा होना, अपने ऊपर आपकी परम कृपा समझना चाहिये ॥८॥९॥ जो राजा हैं वे राज्य और ऐश्वर्यके मदसे कुपथगामी होनेके कारण कल्याणको नहीं प्राप्त होते। वे आपकी मायामें मोहित होनेके कारण अनित्य सम्पत्तिको नित्य मान कर गर्वित होते हैं ॥ १० ॥ जैसे बालकगण मृगतृष्णाको जलाशय समझते हैं वैसे ही सब अविवेकी लोग वैकारिक मायाको सत् वस्तु समझते हैं ॥ ११ ॥ पहले ऐश्वर्यके गर्व्वसे हमारी बुद्धिको भी भ्रम हो गया था; पृथ्वी जीतनेकी इच्छासे हमलोग परस्पर स्पर्धा रखतेथे एवं अत्यंत दुर्मद होकर परस्पर निर्दयताका व्यवहार करनेमें भी नहीं सकुचते थे। कालरूप आप सदा शिर पर खड़े हैं, इसका ध्यान भी हमको न था और हम अपनी प्रजाको पीड़ा पहुँचाते थे। हे श्रीकृष्ण! वे ही हम अत्यन्त प्रबल व वेगशाली कालके दुरन्त वीर्य्य द्वारा आपकी कृपाके कारण राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट और गर्वविहीन हो कर आपके चरणकमलोंको स्मरण कर रहे हैं। अब हमको राज्यकी कामना नहीं है ॥ १२ ॥ १३ ॥ सब रोगोंकी जन्मभूमि इस अनित्य शरीरके द्वारा जिस राज्यका भोग किया जाता है उस मृगतृष्णातुल्य राज्यकी चाह हमको नहीं है। और केवल कानोंको रुचनेवाले (और वास्तवमें कुछ नहीं) कर्मफलस्वरूप स्वर्गादि लोकोंकी भी अभिलाषा हमको नहीं है ॥ १४ ॥ अतएव आप हमको वह उपाय बताइये जिससे संसारमें बारम्बार जन्म लेने पर भी हम आपके चरणकमलोंको न भूलें ॥ १५ ॥ श्रीकृष्ण, वासुदेव, हरि, परमात्मा, प्रणतार्तिहारी,

गोविन्दको हम वारम्वार प्रणाम करते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे वत्स! शरणागतपालक दयालु भगवान्ने बन्धनसे मुक्त राजोंके विनीत वचन सुन कर कहा कि "हे नरपतिगण! तुम्हारी इच्छाके अनुसार आजसे अवश्य ही मुझ अखिलेश्वर आत्माकी दृढ़ भक्ति तुमको प्राप्त होगी। तुम्हारा संकल्प अत्यन्त उत्तम है और तुमने जो कुछ कहा सो सम्पूर्ण सत्य है। मैं देखता हूँ कि सौभाग्य-मदका बढ़ना ही मनुष्योंकी उन्मत्तताका कारण है। कार्त्तवीर्य्य, नहुष, वेन, रावण, नरकासुर एवं अन्यान्य प्रतापशाली देवता दैत्य और राजा लोग ऐश्वर्य्यके गर्वसे अंधे हो कर अपने २पदसे भ्रष्ट हुए हैं। तुम लोग मनमें निश्चय कर लो कि उपजने-वाली देह आदि सब वस्तुओंका एक दिन अवश्य अन्त होगा। इस प्रकारका ज्ञान प्राप्तकर मेरा पूजन करो और सावधानतासे धर्म्मपूर्वक प्रजापालन करो ॥ १७-२१ ॥ केवल वंशवृद्धिके लिये गृहस्थाश्रममें रहकर स्त्री आदिका उपभोग करो और सुख, दुःख एवं शुभ, अशुभ-जो कुछ प्राप्त हो उसीमें सन्तुष्ट रहो। मुझमें मन लगाकर सांसारिक सुख भोग करो। इस प्रकार देहादि-भोगकी सामग्रियोंके मिलने या न मिलने में समान भावसे अनासक्त रहकर एवं आत्मानंदमें मग्न और व्रतपालनमें तत्पर रहकर सब प्रकारसे मुझमें ही मनको लगाओ। ऐसा करनेसे परब्रह्मस्वरूप जो मैं हूँ उसको अन्तसमय प्राप्त होगे ॥२२॥ ॥२३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! भुवनेश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने राजोंको इस प्रकार कर्त्तव्यका उपदेश करके उनको अभ्यङ्गपूर्वक स्नान करानेके लिये असंख्य दास दासियोंको आज्ञा दी ॥ २४ ॥ हे भारत! जब वे भलीभाँति स्नान करके उत्तम वस्त्र पहन चुके तब श्रीहरिकी आज्ञाके अनुसार जरासंधके पुत्र सहदेवने उनको उत्तम भोजन कराये और राजोंके योग्य श्रेष्ठ वस्त्र, भूषण, माला और चन्दन आदिसे उनका पूजन व सत्कार किया ॥ २५ ॥२६॥ मुकुंदकी कृपाके कारण बंधनसे छूटे हुए राजालोग इस प्रकार स्नान और पूजन व सत्कार होने पर रत्नजटित कुण्डलोंको पहनकर, वर्षाकाल बीतने पर ग्रहगण जैसे स्वच्छ रूपसे प्रकाशित होते हैं उस प्रकार शोभायमान हुए। इस प्रकार पूजन होजानेपर भगवान्ने विविध मधुर वचनोंसे उन मणि-सुवर्ण-भूषित राजोंको प्रसन्न किया एवं उत्तम रथ और घोड़ोंपर चढ़ाकर जो जिस देशका था उसको उस देशमें भेज दिया ॥ २७ ॥ २८ ॥ वे राजे, अत्यन्त महात्मा और दयालु कृष्णकी कृपासे इस प्रकार बन्धनमुक्त होकर उन्ही जगत्पति का ध्यान एवं उनके मनोहर चरित्रोंका कीर्तन करतेहुए परम आनन्दसे अपने २ देशको गये ॥ २९ ॥ अपने २ राज्यमें पहुँचकर उन्होने प्रजावृन्दके आगे महापुरुष कृष्णके जरासंधवध-रूप चरित्रको श्रद्धापूर्वक कहा और भगवान्की आज्ञाके अनुसार प्रजापालन और ईश्वरभजनमें सावधान होकर दुष्टोंका दमन करने लगे ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी

कहते हैं। राजन्! भगवान् केशव, इसप्रकार भीमसेनके द्वारा जरासंधका वध कराकर और सहदेवके द्वारा पूजित होकर कुन्तीके दोनो पुत्रों सहित गिरिव्रजसे हस्तिनापुरकी ओर चले ॥ ३१ ॥ इस प्रकार शत्रुको मारकर विजय प्राप्त करनेवाले तीनो वीरवरोंने हस्तिनापुरके निकट पहुँचकर अपने बन्धुओंको सुखी और शत्रुओंको दुःखित करते हुए विजय-प्रसन्नता-सूचक शंखनाद किया ॥ ३२ ॥ उस शंखनादको सुनकर हस्तिनापुरवासी समझ गये कि जरासंध मारागया और राजा युधिष्ठिरका मनोरथ पूर्ण हुआ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर भीमसेन, अर्जुन और जनार्दनने जाकर राजा युधिष्ठिरको प्रणाम किया और अपने द्वारा किये गये जरासंधके वधका वृत्तान्त कहा ॥ ३४ ॥

निशम्य धर्मराजस्तत्केशवेनानुकम्पितम् ॥
आनन्दाश्रुकलां मुञ्चन्प्रेम्णा नोवाच किंचन ॥ ३५ ॥

केशवकी कृपाका वर्णन सुनकर राजा युधिष्ठिर प्रेमसे गद्गद हो आनन्दके आँसू बहाने लगे। गंभीर आनन्दके उच्छ्वाससे उनका कंठ रुँधगया और वह कुछ न कहसके ॥ ३५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितम अध्याय ।

शिशुपाल-वध ।

श्रीशुक उवाच—एवं युधिष्ठिरो राजा जरासन्धवधं विभोः ॥
कृष्णस्य चानुभावं तं श्रुत्वा प्रीतस्तमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! राजा युधिष्ठिर, जरासंधके वध और श्रीकृष्णके प्रभावको सुन कर प्रसन्नतापूर्वक कृष्णचन्द्रसे कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! त्रैलोक्यके गुरु सनकादिक ऋषिगण एवं सम्पूर्ण लोक व लोकपालगण आपकी दुर्लभ आज्ञाको पाकर सादर शिर पर धारण करते हैं। हे कमलनयन! हे ईश्वर! हे भूमन्! वही भगवान् आप, दीन हो कर भी अपनेको ईश अथवा समर्थ माननेवाले जो हमलोग हैं उनकी आज्ञाका पालन करते हैं, यह अत्यन्त विडम्बनाका विषय है। आप एक, अद्वितीय, ब्रह्म परमात्मा हैं; सूर्य्यके तेजके समान किसी भी कर्म्मसे आपकी महिमा घटती-बढ़ती नहीं। हे माधव! हे अजित! अज्ञानी पशुओंकी तरह, आपके भक्तजन, शरीर आदि विषयोंमें "मेरा-तुम्हारा" अथवा "मैं-तुम" इस प्रकारकी भेदभावना नहीं रखते। अतएव आपके लिये क्या कहना है?" ॥ १-५ ॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने यों कहकर श्रीकृष्णके द्वारा

अनुमोदित हो, यज्ञ करने योग्य समयमें यज्ञ कराने योग्य ब्रह्मवादी ब्राह्मणोंको ऋत्विज आदि पदोंका 'वरण' दिया ॥ ६ ॥ राजन्! द्वैपायन, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वशिष्ठ, च्यवन, कण्व, मैत्रेय, कवष, त्रित, विश्वामित्र, वामदेव, जैमिनि, सुमति, क्रतु, पैल, पराशर, गर्ग, वैशम्पायन, अथर्व्वा, कश्यप, धौम्य, भार्गव, परशुराम, आसुरि, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दस, वीरसेन, अकृतव्रण और अन्यान्य ऋषिगण एवं द्रोणाचार्य्य, भीष्म पितामह, कृपाचार्य्य, पुत्रों सहित धृतराष्ट्र, महामति विदुर तथा ब्राह्मणगण, क्षत्रियगण, वैश्यगण, शूद्रगण तथा अपनी २ प्रजा व अनुचरगणसहित निमन्त्रित सब राजालोग यज्ञ देखनेके लिये आकर उपस्थित हुए। तदनन्तर सब ब्राह्मणोंने सुवर्णके हलसे शोध कर यज्ञभूमि प्रस्तुत की एवं वेदविधिके अनुसार राजा युधिष्ठिरको यज्ञकी दीक्षा दी। पहले लोकपाल वरुणके राजसूय यज्ञमें जिस प्रकार यज्ञसम्बन्धी पात्र आदि सब सामग्री सुवर्णकी बनाई गई थी उसी प्रकार युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी सब सामग्री सुवर्णकी प्रस्तुत की गई ॥ ७–१२ ॥ निमन्त्रण पाकर इन्द्रादि लोकपालगण, अपने गणों-सहित शङ्कर, ब्रह्माजी, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, सम्पूर्ण महासर्प, मुनिगण, यक्षगण, राक्षसगण, पक्षीगण, किन्नरगण, चारणगण और रानियों व राजकुमारों-सहित सब देशोंके राजालोग वहाँ आये और कृष्णके भक्त पाण्डुतनय युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञको देख कर विशेष विस्मित नहीं हुए और उन्होने यज्ञको सुसम्पन्न माना। देवतोंके तुल्य तेजस्वी ब्राह्मणोंने, जिस प्रकार देवतोंने वरुणको यज्ञ कराया था उसी प्रकार विधिपूर्वक महाराज युधिष्ठिरको यज्ञ कराया। यज्ञके उपरान्त सोमाभिषवके दिन राजा युधिष्ठिरने एकाग्रचित्त होकर महाभाग याजकों और सदस्योंकी विधिपूर्वक पूजा की। उस सभामें सबसे पहले पूजा पानेके योग्य अनेक महानुभाव उपस्थित थे,—यह देख कर सदस्यलोग इस विषय पर विचार करने लगे कि पहले किसका पूजन किया जाय। बहुत देर हुई और पूर्वोक्त विषयका कुछ निर्णय न हुआ, तब जरासंधके पुत्र सहदेवने कहा कि—"आप लोग विचार क्या कर रहे हैं? यदुगणके अधिपति भगवान् अच्युत कृष्ण-चन्द्रजी सबसे प्रथम पूजने योग्य हैं। देश, काल और पात्र एवं संपूर्ण देवता यही हैं, इनकी पूजा करनेसे सब सुसम्पन्न होगा। यह सब विश्वके आत्मा हैं, सम्पूर्ण यज्ञ इन्हींका स्वरूप हैं। यही अग्नि हैं, यही आहुति हैं और यही सम्पूर्ण मन्त्र हैं। यही ज्ञान और योगकी चरम सीमा हैं। यह केशव एक अद्वितीय हैं, यह सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त हैं। हे सभ्यगण! यह अनाश्रय, अजन्मा हैं। यह स्वयं इस जगत्की सृष्टि पालन और संहार करते हैं। ये सब लोग इन्हींकी कृपा-दृष्टिसे इस लोकमें विविध कर्म्म करते हुए मङ्गलमय धर्म्म, अर्थ, काम और मो-क्षको प्राप्त होते हैं; अर्थात् सम्पूर्ण कर्म्म और उन कर्म्मोंके फल इन्हींके अधीन हैं।

अतएव सबसे पहले महात्मा कृष्णचन्द्रका पूजन उत्तम रीतिसे करो । ऐसा करनेसे सब प्राणियोंका और आत्माका भी पूजन हो जायगा । यदि इच्छा हो कि हमारा किया हुआ दान और पूजन अक्षय व अनन्त हो तो सब प्राणियोंके आत्मा-स्वरूप, भेदभावरहित, शान्त और पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रका पूजन करो" ॥ १३-२४ ॥ श्रीकृष्णके प्रभावको भली भाँति जाननेवाले सहदेव इतना कहकर चुप होगये और सहदेवके सर्वसम्मत श्रेष्ठ वचन सुनकर सब साधुजन 'वाह २' कह कर वारम्वार उनकी प्रशंसा करनेलगे। राजा युधिष्ठिरने साधुओंके मुखसे साधुवाद सुन कर और सब सभासदोंके हृदयका भाव समझकर प्रेमानन्दसे विह्वल हो हृषीकेश कृष्णचन्द्रका पूजन किया। हरिके चरणोंको धोकर भार्य्या, अनुज, अमात्य, और सम्पूर्ण कुटुम्ब सहित राजाने परम श्रद्धा, भक्ति और आनन्द सहित उस लोकपावन चरणोदकको अपने शिर पर डाला। रेशमी पीतपट एवं अमूल्य आभूषण आदिसे कृष्णकी पूजा करते २ आनन्द और प्रेमके वेगसे राजा युधिष्ठिरके नयन आँसुओंसे पूर्ण होगये और कुछ समय तक वह कृष्णचन्द्रके मनोहर रूपको भली भाँति देख नहीं सके। श्रीकृष्णका इस प्रकार पूजन होते देख कर सभामें स्थित सब लोग प्रसन्न होकर जयजयकार करते हुए हाथ जोड़ कर हरिको प्रणाम करने लगे । उस समय कृष्णचन्द्रके ऊपर चारो ओरसे फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ २५-२९ ॥ राजन् ! श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन होते देखकर दमघोषतनय शिशुपाल अत्यन्त कुपित हुआ; श्रीहरिके ऐसे सम्मानको वह देख नहीं सका । शिशुपाल क्रोधके कारण अपने आसनसे उठ खड़ा हुआ और हाथ उठाकर क्रोधपूर्वक निर्भयचित्तसे इस प्रकार भरी सभामें भगवान्‌को सुनाकर कठोर और कटु वचन कहने लगा ॥ ३० ॥ **शिशुपालने कहा।** सब करनेमें समर्थ, काल दुरत्यय है-इस जनश्रुतिकी सचाई यहाँ साक्षात् देखपड़ी । एक बालकके कहनेसे बड़े २ बूढ़ोंकी भी बुद्धिको मोह होगया ! ॥ ३१ ॥ हे सम्पूर्ण सदस्यगण ! आप लोग 'पात्र' जाननेवालोंमें श्रेष्ठ हैं । "श्रीकृष्ण ही सबसे पहले पूजने योग्य है"-इस बालसुलभ वाक्यको आप यथार्थ न मानना ॥ ३२ ॥ तप, विद्या, व्रत और ज्ञानके द्वारा जिनके सब पातक नष्ट होगये हैं और अज्ञान मिटगया है, जो ब्रह्मनिष्ठ हैं, श्रेष्ठ लोकपाल गण भी जिनका पूजन करते हैं उन सभापति महर्षियोंके आगे यह कुलकलंक गोपाल कैसे पूजनके योग्य हो सक्ता है ? देवतोंके भाग पुरोडाशको कहीं अधम काक पा सक्ता है ? ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ यह कृष्ण, वर्ण आश्रम और कुलसे हीन है, सब धर्मोंसे बहिष्कृत है, स्वेच्छाचारी और गुणशून्य है । यह कैसे पूजनीय हो सक्ता है ? ॥ ३५ ॥ ययातिके शापसे श्रीभ्रष्ट, साधु-परित्यक्त एवं वृथा पान-निरत इनका कुल कैसे पूजनीय हो सक्ता है ? ॥ ३६ ॥ ये ब्रह्मर्षि-सेवित देशोंको छोड़ कर समुद्रके मध्यस्थित दुर्गमें जाकर बसे हैं और दस्युगणके समान

प्रजापीड़न करते हैं ॥ ३७ ॥ जिसका मंगल नष्ट हो गया है उस शिशुपालने इस प्रकारके अनेक कटु वचन कहे, परन्तु जैसे शृगालके शब्द पर सिंह ध्यान नहीं देता उस प्रकार कृष्णचन्द्रजी चुपचाप सब सुनते रहे और कुछ भी नहीं बोले ॥ ३८ ॥ सभासदगण उस असह्य (भगवान्‌की) निन्दाको न सुनसके और क्रोधपूर्वक शिशुपालको गालियाँ देते हुए हाथोंसे कान बंद करके वहाँसे उठ कर चल दिये ॥ ३९ ॥ जो व्यक्ति भगवान् या भगवान्‌के भक्तकी निन्दाको बैठे सुना करता है और (उस दुष्ट निन्दकको दण्ड देनेमें असमर्थ होनेपर) वहाँसे उठकर चला नहीं जाता उसका सब पुण्य नष्ट हो जाता है और वह नरकको जाता है ॥ ४० ॥ शिशुपालके मुखसे भगवान्‌की निन्दा सुन कर चारो पाण्डव और मत्स्य, सञ्जय, व केकय देशके राजालोग कुपित हो, अस्त्र शस्त्र ले शिशुपालको मारनेके लिये उठ खड़े हुए ॥ ४१ ॥ हे भरतनन्दन ! उनको इस प्रकार आक्रमण करनेके लिये उद्यत देखकर शिशुपाल रत्ती भर नहीं घबड़ाया। श्रीकृष्णकी ओरसे मारनेके लिये उद्यत राजोंको डाँटकर शिशुपालने भी अपनी ढाल और तर्वार उठा ली ॥ ४२ ॥ तब अपनी ओरसे लड़नेके लिये उद्यत पाण्डवों और राजोंको भगवान्‌ने रोक दिया और स्वयं कुपित हो अपनी ओर प्रहार करनेके लिये आ रहे शत्रु (शिशुपालका) का शिर तीक्ष्ण धारावाले सुदर्शन चक्रसे सबके देखते २ धड़से अलग कर दिया ॥ ४३ ॥ शिशुपालके मरने पर सभामें बड़ाभारी कोलाहल मचगया। उस समय शिशुपालके साथी सब नरपति अपने २ प्राण लेकर सभासे भाग गये ॥४४॥ राजन् ! जैसे कोई तारा आकाशसे गिर कर मार्गमें लीन हो जाता है वैसे ही शिशुपालके शरीरसे ज्योति निकल कर सबके आगे वासुदेवमें लीन होगई ॥ ४५ ॥ तीन जन्म तक वैरभावसे क्रोधपूर्वक दिन-रात कृष्णके ध्यानमें मग्न रहनेके कारण शिशुपालने श्रीहरिसे सारूप्य मुक्ति पाई। राजन् ! ध्यान ही ध्येय वस्तुके समान रूपके पानेका कारण है ॥ ४६ ॥ तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सदस्यों और ऋत्विजोंको मुह-माँगी मन-भाई दक्षिणा देकर और पूजा करके सन्तुष्ट किया एवं तदुपरान्त अवभृथ स्नान किया। इस प्रकार राजसूय यज्ञ करके राजा युधिष्ठिर पृथ्वीमण्डलके एकसम्राट् हुए ॥ ४७ ॥ योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरके यज्ञको भली भाँति पूर्ण कराकर बान्धवोंकी प्रार्थना पूर्ण करते हुए कई महीने तक हस्तिनापुरमें रहे ॥ ४८ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र, तदनन्तर राजा युधिष्ठिरकी इच्छा न होने पर भी उनसे बिदा होकर मंत्रियों, अनुचरों और रानियों सहित द्वारका पुरीको गये ॥ ४९ ॥ राजन् ! सनकादिकोंके शापसे वैकुंठवासी हरिसेवक जय और विजयके वारम्वार पृथ्वी पर जन्म पानेका वृत्तान्त मैं तुमसे विस्तारपूर्वक पहिले कह चुका हूँ ॥५०॥ राजसूय यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान करके, राजा युधिष्ठिर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंके बीच सुरसमाजमें

सुरराजके समान शोभायमान हुए ॥५१॥ राजा युधिष्ठिरके द्वारा किये गये पूजन और सत्कारसे सन्तुष्ट सम्पूर्ण देवता, मनुष्य और आकाशचारी लोग प्रसन्नतापूर्वक कृष्णकी और यज्ञकी बड़ाई करते अपने २ लोकको गये ॥ ५२ ॥ उस यज्ञको देखकर यदि कोई प्रसन्न न था तो वह कुरु-कुल-कलंक साक्षात् कलिका अवतार पापी दुर्य्योधन था, क्योंकि पाण्डुपुत्रकी वह परम वृद्धिको प्राप्त राज्यलक्ष्मी दुर्य्योधनके लिये निपट असह्य थी ॥ ५३ ॥

य इदं कीर्तयेद्विष्णोः कर्म चैद्यवधादिकम् ॥
राजमोक्षं वितानं च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥

जो कोई श्रीविष्णुके इन शिशुपालवध और नृपमोचन आदि चरित्रोंको एवं युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञके पवित्र उपाख्यानको मन लगाकर पढ़ता या सुनता है वह सब पापोंसे मुक्त होकर सुखी होता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितम अध्याय ।

दुर्योधनका अपमान ।

राजोवाच—अजातशत्रोस्तं दृष्ट्वा राजसूयमहोदयम् ॥
सर्वे मुमुदिरे ब्रह्मन्नृदेवा ये समागताः ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । हे ब्रह्मन् ! अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरके यज्ञका वैभव देखनेके लिये जो सब देवता, ऋषि और राजा आदि आये वे तो सब प्रसन्न हुए, परन्तु दुर्य्योधन अप्रसन्न रहा—इसका क्या कारण है ? ॥ १ ॥ २ ॥ **श्रीशुकदेवजी बोले** । राजन् ! तुम्हारे पितामह महात्मा युधिष्ठिरके यज्ञमें प्रेमवश सब बान्धवोंने भिन्न २ सेवाके कार्य्य अपने २ हाथमें लिये थे । भीमसेन पाकशालाके और दुर्य्योधन धनके अध्यक्ष थे । सहदेव सब आये हुए लोगोंका स्वागत करते थे और नकुल सब सामग्रीका संचय करते थे । अर्जुन अभ्यागत साधुओंकी सेवा करते थे और श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं उनके पैर धोते थे । द्रौपदीजी सबको भोजन देती थीं और महा उदार कर्णने दानका भार लिया था । हे राजेन्द्र ! इसी प्रकार सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य और विदुर आदिक और भूरिश्रवा आदि बाह्लीकके पुत्र एवं सन्तर्दन आदिक सब बान्धव राजा युधिष्ठिरकी प्रसन्नताके लिये भिन्न २ कार्योंमें लगे हुए थे ॥ ३–७ ॥ ऋत्विक्, सदस्य एवं बहुत से ऋषिगण और श्रेष्ठ बन्धुगणका, भली भाँति मीठे वचन अलंकार आदि सामग्री एवं दक्षिणासे सत्कार व पूजन कियागया । तदनंतर शिशु-

पालने शरीर छोड़कर यदुपतिके चरणोंमें स्थान पाया । उसके बाद राजा युधिष्ठिर अवभृथ स्नान करनेके लिये गंगातट पर गये । स्नान-सम्बन्धी महान् उत्सवमें मृदंग, शंख, पणव, ढोल, गोमुख, वीणा आदि अनेक प्रकारके बाजे बजने लगे । वारवनिताएँ आनन्दपूर्वक नृत्य करने लगीं और झुंडके झुंड गवैये लोग गान करने लगे । उनके वेणु, वीणा और करतालकी ध्वनि आकाशमण्डलमें गूँज उठी । सुवर्णकी मालाएँ पहने यदु, सृंजय, काम्बोज, कुरु, केकय और कोशल आदि वंशोंके नरेश, यजमान राजा युधिष्ठिरको आगे करके विविध वर्णवाली ध्वजा और पताकाओंसे सुशोभित एवं गज, अश्व, रथ और पैदलोंसे भली भाँति अलंकृत चतुरंगिणी सेनासे पृथ्वीको कँपाते हुए बाहर निकले । सदस्य, ऋत्विक् एवं अन्यान्य श्रेष्ठ ब्राह्मण भी पवित्र वेदध्वनि करते हुए आगे २ चले । उस समय देवर्षि, पितृगण और गन्धर्वगण फूलोंकी वर्षा करते हुए स्तुति करने लगे । स्त्रियों और पुरुषोंके झुंड चंदन, माला और श्रेष्ठ वस्त्र व आभूषणोंसे विभूषित होकर अनेक रंगके जलोंसे परस्पर भिगोते और गुलाल, केसर आदि मलते हुए क्रीडा करने लगे । वेश्याएँ और पुरुषगण तैल, गोरस, सुगंधित जल, हल्दी एवं गाढ़े कुंकुमको एक एक पर छिड़कते और लगाते हुए क्रीड़ा करने लगे ॥ ८–१५ ॥ यह उत्सव देखनेके लिये परम सुन्दरी देवताओंकी स्त्रियाँ श्रेष्ठ विमानों पर बैठ आकाश-मार्गमें आकर उपस्थित हुईं । इधर राजालोगोंकी रानियाँ भी रथ आदि यानों पर सवार होकर बाहर निकलीं । चारो ओरसे रक्षक सिपाही अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होकर उन सवारियोंके साथ चल । उन सब रानियोंने गंगातट पर पहुँचकर सखियों सहित जलमें प्रवेश किया । तब सखियाँ उनको जलके भीतर जलसे भिगोने लगीं । उस समय लज्जापूर्ण हँसीसे उन रानियोंके मुखकमल मानो खिल उठे । वे रानियाँ अपनी २ दासियोंके द्वारा अपने २ देवरों और सखियोंको जलसे भिगोने लगीं । उनके भीगे हुए वस्त्र शरीरमें चिपक गये और कुच, ऊरू एवं मध्य-भागआदि अंग प्रकट हो पड़े । जलविहारकी उत्सुकताके कारण उनकी चोटियाँ खुलगईं और मालाएँ अपने स्थानसे खिसक गईं । इस भावसे उनके मनोहर विहारको देखकर कामी पुरुषोंके चित्त चञ्चल हो उठे । उत्तम घोड़े जिसमें जुते हुए हैं ऐसे रत्नमाला विभूषित रथ पर सवार सपत्नीक राजा युधिष्ठिर, उस समय क्रियासमूह-सहित साक्षात् श्रेष्ठ यज्ञ राजसूयके समान सुशोभित हुए । तब ऋत्विक् लोगोंने पत्नीसंयाज एवं यज्ञान्त-स्नानसंबंधी सम्पूर्ण कर्मोंके पूर्ण होने पर आचमन करा कर द्रौपदीसहित राजा युधिष्ठिरको विधिपूर्वक गंगामें स्नान कराया । उस समय स्वर्गमें देवगण और पृथ्वीमें मनुष्यगण नगाड़े बजाने लगे एवं देवतागण, ऋषिगण, पितृगण और मनुष्यगण फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ १६–२०॥ फिर उसी स्थानपर आये हुए चारो वर्ण और चारो आश्रमोंके लोगोंने स्नान

किया। राजन्! उस समय स्नान करनेसे तत्क्षण लोगोंके सब प्रकारके महा पातक नष्ट हो जाते हैं। स्नान करके राजा युधिष्ठिरने नवीन रेशमी वस्त्र और अमूल्य उत्तम आभूषण पहने एवं वस्त्र व आभूषणोंसे ऋत्विजों व सदस्योंका पूजन किया। नारायणके भक्त राजा युधिष्ठिरने इसी प्रकार बन्धु, जातिवाले, निमन्त्रित नरपतिगण, सुहृद्गण एवं अन्यान्य सब लोगोंका सत्कार और पूजन किया। सब लोग देवतोंके समान कान्तियुक्त हो, मणिमय कुण्डल, पगड़ी, वस्त्र और महामूल्य हार पहन कर परम शोभायमान और प्रसन्न हुए। स्त्रियोंके मुखमण्डल भी कुण्डलोंकी झलकसे अपूर्व-शोभायुक्त देख पड़ते थे। वे स्त्रियाँ सुवर्णकी काञ्ची पहने हुए देवी सी जान पड़ती थीं। तदनन्तर सुशील ऋत्विक्वृन्द, ब्रह्मवादी सदस्यगण एवं ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, राजगण, देवर्षि, पितृगण, भूतगण, अनुचरवृंदसहित लोकपालगण और अन्यान्य जो लोग यज्ञ देखने आये थे वे सब, भली भाँति पूजा और सत्कारसे संतुष्ट हो, राजासे अनुमति लेकर आनन्दपूर्वक अपने २ भवनको गये। जैसे अमृत पीनेसे मनुष्योंका जी नहीं भरसक्ता वैसे ही वे सब लोग भगवद्भक्त राजर्षि युधिष्ठिरके यज्ञकी बारम्बार प्रशंसा करके भी नहीं तृप्त हुए; राह भर प्रशंसा करते ही रहे। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने सुहृद्, सम्बन्धी, बान्धव एवं श्रीकृष्णचन्द्रको भी प्रेमपूर्वक बिदा किया। उस समय वह वियोगके कष्टको न सहसकनेके कारण विह्वल होगये और उनका हृदय भर आया। राजन्! भगवान् कृष्णचन्द्र राजा युधिष्ठिरको अपने वियोगके कष्टसे विह्वल देख कर और उनके कातर वचन सुन कर दयापूर्वक आप कुछ दिनके लिये और ठहर गये और वीर साम्ब आदि यादवोंको द्वारका जानेके लिये आज्ञा दी। स्वामीकी आज्ञाके अनुसार यादवगण द्वारकापुरीको गये। धर्मावतार राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्णकी कृपा और संपूर्ण सहायतासे इस प्रकार मनोरथ-महासागरके पार पहुँचकर निश्चिन्त होगये ॥ २१–३० ॥ राजन्! इधर अच्युतके भक्त राजा युधिष्ठिरके ऐश्वर्य्यको देख और राजसूय यज्ञकी प्रशंसा सुन कर दुर्य्योधनको बड़ा ही सन्ताप हुआ। जिस मयासुर-रचित अन्तःपुरकी सभामें दैत्येन्द्र, सुरेन्द्र और नरेन्द्रोंके सम्पूर्ण विभव सुशोभित थे और जहाँ अपने पतियोंके निकट उपस्थित द्रौपदीजी उनकी सेवा करती थीं उसको देख कर राजा दुर्योधनका हृदय दुस्सह डाहकी अग्निसे जलने लगा। उस अन्तःपुरमें श्रीकृष्णचन्द्रकी रानियाँ भी रहती थीं। श्रोणीभारसे मंद २ गमन करनेवाली उन रानियोंके नूपुर आदि चरण-स्थित अलंकारोंकी झनकारसे वह भवन और भी शोभायमान था। उन रानियोंके कटितट अत्यन्त मनोहर थे। कुचमण्डलमें लगे हुए कुंकुमके लगनेसे ललाई लिये हुए उनके वक्षःस्थलमें विराजमान हार, उनकी सुन्दरताको बढ़ा रहे थे। उनके प्रफुल्लित कमलतुल्य मुखमण्डलोंमें हिल रही अलकोंकी और कनककलित

कुण्डलोंकी अपूर्व शोभा देख पड़ती थी ॥ ३१–३४ ॥ राजन्! उस मयासुरकी बनाई सभामें एक समय सम्राट् राजा युधिष्ठिर अपने नेत्र-स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र, बन्धुगण और भाइयों सहित साम्राज्यलक्ष्मीसे सुसम्पन्न होकर साक्षात् इन्द्रके समान सुन्दर सुवर्णके सिंहासन पर बैठे हुए थे और वंदीजन उनकी स्तुति कर रहे थे। इसी अवसरमें माला और किरीट मुकुट एवं खड्ग आदिसे सुशोभित महामानी दुर्य्योधनने भाइयों सहित उस सभामें प्रवेश किया। राहमें द्वारपाल आदिको डाँटता और झिड़कता हुआ दुर्य्योधन सभामें पहुँचा तो उसे मयासुरकी मायामयी रचनामें ऐसा मोह हो गया कि जहाँ सूखा था वहाँ तो जलके भ्रमसे उसने कपड़े समेट लिये और जलमें स्थलके भ्रमसे गिर पड़ा। राजन्! दुर्य्योधनकी यह दशा देख कर, युधिष्ठिरके रोकने पर भी, श्रीकृष्णका संकेत (इशारा) पाकर, भीमसेन, द्रौपदी आदि स्त्रियाँ एवं अन्यान्य उपस्थित राजा लोग ऊँचे स्वरसे हँसने लगे। दुर्य्योधन लज्जित हो गया और आन्तरिक क्रोधसे जल उठा एवं शिर झुका कर चुपचाप वैसे ही अपने भवनको लौट गया। यह अनर्थ देख कर सब सज्जन हाहाकार करने लगे और युधिष्ठिर भी कुछ उदास हो गये। किन्तु भगवान् कृष्णचन्द्रने भला या बुरा कुछ भी नहीं कहा। कृष्णचन्द्र पृथ्वीका भार उतारना चाहते थे, उनकी ही इच्छासे दुर्य्योधनको ऐसा भ्रम हुआ ॥३५–३९॥

एतत्तेऽभिहितं राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥
सुयोधनस्य दौरात्म्यं राजसूये महाक्रतौ ॥ ४० ॥

राजन्! तुमने जो पूछा कि युधिष्ठिरके यज्ञमें सब लोग प्रसन्न हुए और दुर्य्योधन क्यों अप्रसन्न रहा?–सो दुर्य्योधनकी अप्रसन्नताका यह वृत्तान्त मैंने तुमको सुना दिया ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितम अध्याय।

शाल्वके साथ युद्धका आरम्भ।

श्रीशुक उवाच–अथान्यदपि कृष्णस्य शृणु कर्माद्भुतं नृप ॥
क्रीडानरशरीरस्य यथा सौभपतिर्हतः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सौभ नाम विमानका स्वामी शाल्व जैसे मारा गया–सो क्रीड़ा करनेके लिये नरतनुधारी कृष्णचन्द्रका एक और अद्भुत कर्म्म सुनो। रुक्मिणीके बिवाहमें शिशुपालका मित्र शाल्व जरासन्ध आदि राजोंके

समान युद्धमें यादवोंसे हार गया था । उस समय शाल्वने अपने साथी सब राजोंके सन्मुख प्रतिज्ञापूर्वक कहा था कि "मैं अपने पौरुषसे यादव वंशका विनाश करूँगा, तुम लोग देखोगे कि पृथ्वी पर एक भी यादव जीवित न बचेगा"। मूढ़ राजा शाल्व इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वहाँसे चल दिया और नित्य एक मुट्ठी राख एक बार फाँक कर देवदेव प्रभु पशुपतिकी आराधना करने लगा । इस प्रकार घोर तप करते जब एक वर्ष बीत गया तब भगवान् आशुतोष महादेव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और शरणागत शाल्वसे बोले कि 'वर माँग' । शाल्वने शंकरसे एक ऐसा विमान माँगा जो यादवोंको डरानेवाला हो और जिसको देवगण भी न तोड़ सकें । भगवान् शंकर उसकी इच्छाके अनुसार 'तथास्तु' कह कर अपने लोकको चले गये । परपुरंजय शिवकी आज्ञासे मय दानवने शाल्वको एक दुर्भेद्य लौहमय सौभ-नामक विमान बना दिया । उस अन्धकारमय, दुष्प्राप्य, कामचारी विमानको पाकर यादवोंके किये वैरको स्मरण करता हुआ शाल्व, बदला लेनेकी इच्छासे उसी क्षण द्वारकापुरीको गया । शाल्वके साथ सेना भी बहुत थी । उसने आकर चारो ओरसे द्वारका पुरीको घेर लिया । उसकी सेना पुरीके उपवन, उद्यान आदिको उजाड़ने एवं गोपुर, द्वार, प्रासाद, अट्टालिका और तोलिका आदि स्थानोंको तोड़ने लगी । विमानसे पुरीके ऊपर अस्त्र-शस्त्र, शिला, वृक्ष, बड़े २ पत्थर और भयंकर सर्प तथा वज्र गिरने लगे । प्रचण्ड आँधी चलने लगी और उड़ी हुई धूलसे दशो दिशाओंमें अन्धकार छागया ॥ १-११ ॥ राजन्! पूर्वसमय जैसे त्रिपुरवासी दानवोंने पृथ्वीवासियोंको पीड़ित किया था उसी प्रकार विमानस्थित शाल्वके द्वारा पीड़ित श्रीकृष्णकी द्वारका पुरीके निवासीजन अत्यन्त पीड़ित हुए । अपनी प्रजाको इस प्रकार पीड़ित और व्याकुल देख कर महारथी वीर प्रद्युम्न भगवान्ने "डरना नहीं" कह कर सबको धैर्य्य दिया और आप रथ पर चढ़ कर शत्रुदमन करनेके लिये उद्यत हुए । प्रद्युम्नजीके साथ सात्यकी, चारुदेष्ण, साम्ब, अक्रूर, भाइयों सहित हार्दिक्य, भानुविन्द, गद, शुक, सारण एवं अन्यान्य महाधनुर्धारी यूथपतियोंके भी यूथपति सुभट यादवगण, अभेद्य कवच पहन कर रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंसे अलंकृत अपरिमित चतुरंगिणी सेना साथ ले, युद्ध करनेके लिये पुरसे बाहर निकले । तदनन्तर देवतोंसे और दानवोंसे अमृतके लिये जैसे घोर देवासुर संग्राम हुआ था उसी प्रकार शाल्वकी सेना और यादवोंसे महा भयानक युद्ध होने लगा । राजन्! उस महाभयानक युद्धकी कथा सुननेसे भी रोमाञ्च हो आता है । महाराज! सूर्य्य देव जैसे रात्रिके घोर अन्धकारको दूर कर देते हैं उसी प्रकार रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नने सौभपति शाल्वकी प्रसिद्ध मायाओंको दिव्य अस्त्रोंसे क्षण भरमें नष्ट कर दिया। प्रद्युम्नने पचीस लौहमुख, स्वर्णपुङ्ख, सन्नतपर्व्व सुतीक्ष्ण बाण मार कर शाल्वके

सेनापतिको घायल करडाला। फिर सौ बाण शाल्वके, एक २ बाण सब सैनिकोंके, दस २ बाण सब सेनानायकोंके एवं तीन २ बाण सब वाहनोंके मार कर उनको घायल किया। महात्मा प्रद्युम्नके इस महा अद्भुत कर्मको देख कर शत्रु और मित्र सभी उनकी प्रशंसा करने लगे। शाल्वका मयरचित मायामय विमान कभी बहुरूप और कभी एकरूप होजाता था। कभी देख पड़ता था और कभी अदृश्य हो जाता था। यादवगण उसकी गतिको नहीं देख पाते थे। शाल्वका विमान कभी पृथ्वी पर, कभी आकाशमें, कभी समुद्रके जल पर और कभी पर्वतके शिखर पर अलातचक्रके समान घूमने लगा ॥१२-२२॥ शाल्व और उसके सैनिकों सहित सौभ विमान जहाँ २ देख पड़ता था वहीं २ उस पर यदुयूथपति प्रद्युम्नजी बाणोंकी वर्षा करते थे। अग्नि और सूर्य्यके समान जिनका स्पर्श कष्टकारी है ऐसे विषधर सर्पके सदृश दुस्सह शत्रुपक्षके बाणोंसे, सेनासहित शाल्वका विमान छिन्न भिन्न होने लगा और बाणोंकी चोटसे शाल्वको मूर्च्छा आगई। दोनो लोकोंमें जय पानेकी इच्छा रखनेवाले यादव-भट भी शाल्वके सेनानायकोंके अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षासे पीड़ित होकर भी रणभूमिमें डँटे रहे। शाल्वके द्युमान् नाम मन्त्रीको पहले प्रद्युम्नने मूर्च्छित कर दिया था, इस समय उसकी मूर्च्छा जाती रही और उस बलीने प्रद्युम्नके निकट आकर उनके ऊपर वज्रलौहनिर्मित गदा चलाकर सिंहनाद किया। द्युमान्की गदाके प्रहारसे प्रद्युम्नका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया और वह अचेत होकर रथ पर गिर पड़े। कृष्णके सारथी दारुकका पुत्र अरिंदम प्रद्युम्नका सारथी था-वह सारथी और रथीके धर्मोंको भली भाँति जानता था; अतएव मूर्च्छित प्रद्युम्नको रणभूमिसे हटा कर अन्यत्र सुरक्षित स्थानमें लेगया। मूहूर्त्त भरमें सचेत हो प्रद्युम्नजीने अपने रथको युद्धभूमिमें न देख कर सारथीसे कहा-"अरे सारथी! तू मुझको युद्धभूमिसे हटा कर यहाँ लेआया, यह तूने अच्छा नहीं किया। छिः! छिः! मैं मूर्च्छित अवस्थामें सारथीके कारण रणभूमिसे हट आया-यह बहुत ही अयोग्य हुआ। मेरे सिवा यदुवंशके और किसी योद्धाका रणभूमिसे भागना नहीं सुना जाता। धर्मयुद्धसे भाग कर पिता कृष्णचन्द्र और चाचा बलभद्रको मैं कैसे मुख दिखाऊँगा? और उनसे क्या कहूँगा? उनसे मैं इस अपने अयोग्य कार्य्यका वर्णन कैसे करूँगा? मेरे भाइयोंकी स्त्रियाँ मुझको हँसेंगी और कहेंगी कि 'हे वीर! युद्धमें शत्रुने तुम्हारे वीर्य्यको कैसे नष्ट कर दिया? कहो तो सही'। यों हँस कर जब वे मेरे कायरपनका वर्णन करेंगी तो मैं उनको क्या उत्तर दूँगा?"। अपने स्वामीके ऐसे वचन सुन कर सारथीने कहा कि-"हे आयुष्मन्! हे विभो! सारथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़े हुए रथीकी रक्षा करे और रथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें पड़े हुए सारथीकी रक्षा करे। इसी धर्मके अनुसार मैंने ऐसा किया ॥ २३-३२ ॥

एतद्विदित्वा तु भवान्मयापोवाहितो रणात् ॥
उपसृष्टः परेणेति मूर्छितो गदया हतः ॥ ३३ ॥

शत्रुकी गदाके प्रहारसे आप पीड़ित होकर अचेत हो गये थे, इसीसे मैं आपको युद्धभूमिसे हटा लाया" ॥ ३३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितम अध्याय ।

शाल्ववध ।

श्रीशुक उवाच—स उपस्पृश्य सलिलं दंशितो धृतकार्मुकः ॥
नय मां द्युमतः पार्श्वं वीरस्येत्याह सारथिम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! प्रद्युम्नने जल लेकर मुख धोया और उत्तम अभेद्य कवच पहन, धनुष हाथमें ले, सारथीसे कहा कि 'मुझको वीर द्युमान्के निकट शीघ्र लेचल' । द्युमान् प्रद्युम्नकी सेनाको पीड़ित करके पीछे हटा रहा था, इसी अवसर पर वीर प्रद्युम्न वहाँ पहुँच गये और उन्होने उसके हृदयमें आठ नाराच बाण मार कर चार नाराचोंसे उसके घोड़ोंको और एक नाराचसे सारथीको मार डाला । तदनन्तर वीर प्रद्युम्नने एक नाराचसे उसके धनुषको और एक नाराचसे ध्वजाको काट कर एक नाराचसे उसका शिर धड़से अलग कर दिया । इधर गद, साम्ब, सात्यकी आदि वीर यादव सौभपति शाल्वकी सेनाका संहार करने लगे । सौभ-विमानके ऊपरसे लड़ रहे सैनिकोंके शिर कट २ कर समुद्रके जलमें गिरने लगे । राजन् ! परस्पर एक एकको मार रहे यादवों और शाल्वके सैनिकोंका उत्कट युद्ध सात दिन और सात रात तक बराबर इसी प्रकार होता रहा । यह तो हम कह ही चुके हैं कि धर्मराजके निमन्त्रणको पाकर श्रीकृष्णचन्द्र हस्तिनापुरको गये । राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया और शिशुपाल भी मारा गया । तदनन्तर अत्यन्त भयानक, अशुभसूचक असगुन होते देख सर्वज्ञ अन्तर्यामी कृष्णचन्द्र, बड़े बूढ़े कुरुवंशी, मुनिगण, कुन्ती, और पाण्डवोंसे मिल कर तथा उनसे आज्ञा लेकर द्वारका पुरीको चले । मार्गमें भगवान् मन-ही-मन विचारने लगे कि "मैं बलरामसहित हस्तिनापुरमें था, अवश्य ही शिशुपालके मित्र राजालोग यह अवसर पाकर द्वारकापुरीमें जाकर किसी-न-किसी प्रकारका उत्पात कर रहे हैं" ॥ १–६ ॥ भगवान्ने द्वारका पुरीमें पहुँच कर देखा कि वास्तवमें उनकी आशंका ठीक थी । पूर्वोक्त प्रकारसे अपने सुभटोंका विनाश होते देख कर कृष्णचन्द्रने

बलभद्रजीको पुरकी रक्षाके लिये नियुक्त कर सामने ही सौभ-विमानसहित शाल्व राजाको देख दारुक सारथीसे कहा कि–"हे सूत! इस दुष्ट शाल्वके निकट शीघ्र मेरे रथको ले चल; यह सौभपति अत्यन्त मायावी है, तथापि तुम तनिक भी डरना या घबड़ाना नहीं" ॥ ७–१० ॥ भगवान्‌के वचन सुन दारुक सँभलकर बैठगया और रथको हाँकने लगा। शत्रु और मित्र पक्षके सबलोगोंने गरुड़युक्त ध्वजाको देख कर जाना कि श्रीकृष्णचन्द्र आगये ॥११॥ उस समय शाल्वकी सेना हतप्राय होचुकी थी और वह शिथिल भी हो चला था। उसने युद्धस्थलमें कृष्णको आते देख दारुकके ऊपर एक महा भयानक शब्द करनेवाली शक्ति चलाई ॥ १२ ॥ वह प्रचण्ड शक्ति किसी बड़े भारी उल्कापिण्डके समान दशो दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित करती हुई बड़े वेगसे आकाशमार्ग हो कर दारुककी ओर चली, किन्तु पास आने भी नहीं पाई और भगवान्‌ने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके सैकड़ों खंड कर डाले ॥ १३ ॥ फिर भगवान् कृष्णचन्द्रने शाल्वके हृदयमें सोलह बाण मार कर, सूर्य्य जैसे अपनी किरणोंसे आकाशके अन्धकारको छिन्न-भिन्न कर डालते हैं उस प्रकार अपने असंख्य बाणोंसे आकाशमें घूम रहे सौभ विमानको छिन्न-भिन्न कर डाला॥१४॥तब शाल्वने शार्ङ्ग-धनुष-धारी कृष्णके शार्ङ्ग-धनुषयुक्त वाम बाहुमें कई बाण मारे और भगवान्‌के हाथसे छूट कर शार्ङ्ग धनुष गिर पड़ा। हे राजन्! यह एक बहुत ही अद्भुत बात हुई। यह देख कर सब दर्शक लोग हाहाकार करने लगे। शाल्व भी सिंहनाद करता हुआ जनार्दनसे कहने लगा कि–"अरे मूढ़! हमारे सामने तू हमारे मित्र और भाई शिशुपालकी स्त्रीको हर लाया एवं उस हमारे असावधान मित्रको सभामें तूने मार डाला। तू अपनेको समझता है कि मैं किसीसे हारनेवाला नहीं हूँ। यदि थोड़ी देर मेरे सामने ठहरनेका साहस करेगा तो मैं अभी तुझको अपने तीक्ष्णबाणोंसे उस लोकको भेजदूँगा जहाँसे कोई फिर लौट कर नहीं आता" ॥ १५–१८ ॥ भगवान्‌ने कहा। "रे मंद! तू वृथा अपनी बड़ाई हाँक रहा है, अपने पास ही अवस्थित अन्तकको नहीं देखता। वीर पुरुष अपना पराक्रम दिखलाते हैं-तेरी तरह वृथा बकबक नहीं करते" ॥ १९ ॥ इतना कह कर भगवान्‌ने क्रोधपूर्वक महा-भयानक वेगवाली गदासे शाल्व पर प्रहार किया। उस गदाके प्रहारसे शाल्व काँप उठा और उसके मुखसे रुधिर बहने लगा। जब गदाके प्रहारकी व्यथा कुछ निवृत्त हुई, तब शाल्व देखते ही देखते अदृश्य हो गया। घड़ी भरके बाद एक पुरुष कृष्णके समीप आया और प्रणाम करके रोते २ कहने लगा कि "ब्रह्मन्! देवी देवकीने मुझको आपके निकट भेजा है और कहा है कि हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे महाबाहु! हे पितृवत्सल! जैसे कोई हत्यारा वधिक किसी पशुको बाँध कर लेजाय उस प्रकार शाल्व आपके पिता वसुदेवको

बाँध कर ले गया है"। इस विप्रिय समाचारको सुन कर मनुष्यस्वभावका अनुकरण करके दयालु श्रीकृष्णचन्द्र स्नेहसे बिवश हो साधारण मनुष्यके समान कहने लगे कि "सब देवता और दैत्य भी मिल कर जिनको नहीं जीत सक्ते उन पुर-रक्षामें सावधान आर्य्य बलभद्रको जीत कर क्षुद्र शाल्व कैसे मेरे पिताको पकड़ ले गया? अथवा ऐसा भी हो सक्ता है, क्योंकि दैव बड़ा बलवान् है"। श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार कही रहे थे कि सौभराज शाल्व सामने प्रकट हुआ और वसुदेवके ऐसे आकारवाले एक व्यक्तिको दिखा कर श्रीकृष्णचन्द्रसे कहने लगा कि "देख, यही तुझको उत्पन्न करनेवाला तेरा पिता है, जिसके लिये तू इस पृथ्वी पर जीवित है। हे मूढ़! मैं तेरे ही आगे इसको मारता हूँ—यदि शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर"। यों झिड़क कर मायावी शाल्वने उस वसुदेवके अनुरूप व्यक्तिका शिर खड्गसे काट डाला और उस शिरको लेकर अपने विमान पर चला गया ॥ २०-२७ ॥ श्रीकृष्णभगवान्का ज्ञान स्वतःसिद्ध और पूर्ण है, तथापि स्वजनस्नेहके कारण मुहूर्त्त भर मनुष्य-स्वभावका अनुकरण कर वह शोक करने लगे। किन्तु महानुभाव कृष्णने बहुत शीघ्र जान लिया कि वह वास्तवमें शाल्वकी फैलाई हुई आसुरी मायाका प्रपञ्च है। अच्युतने क्षणभरमें देखा कि स्वप्न-प्रपंचके समान न वहाँ देवकीका दूत है और न पिताका शरीर है एवं शत्रु शाल्व अपने सौभ विमान पर बैठा हुआ आकाशमें उपस्थित है। यह देख कर भगवान् शाल्वको मारनेके लिये उद्यत हुए ॥ २८ ॥ २९ ॥ हे राजेन्द्र! पूर्वापरका विचार न करनेवाले कुछ ऋषियोंका ऐसा कथन है। ऐसा माननेसे उन्हींके पूर्वोक्त वाक्योंमें विरोध होता है—इसका ध्यान वे नहीं करते। देवगण जिनकी स्तुति करते हैं ऐसे अखंड ज्ञानविज्ञानसे पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रमें अज्ञ जनोंके शोक, मोह, स्नेह, भय आदि धर्मोंका होना निपट असंभव है। साधुजन, जिनके चरणोंकी सेवासे बढ़े हुए आत्मज्ञानके द्वारा अनादि अज्ञान(मैं दुबलाहूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि मिथ्या भावना)रूप ग्रहको मिटा कर अपने अनन्त ईश्वर—पदको प्राप्त होते हैं, उन साधुओंकी एकमात्र गति ईश्वर कृष्णचन्द्रको कैसे मोह होसक्ता है? अतएव उक्त मुनियोंका मत कुछ भी न होनेके कारण निपट अग्राह्य है। महाराज! शाल्व, बलपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। अमोघ पराक्रमवाले कृष्णचन्द्रने शत्रुके शस्त्रोंको मार्गमें ही काट २ कर निष्फल कर दिया और अनेक सुतीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुको घायल करके उसके कवच, धनुष और शिरकी रक्षा करनेवाले लोहेके टोपको काट डाला। तदनन्तर भगवान्की गदाके प्रहारसे शाल्वका सौभ विमान चूर्ण होकर समुद्रके जलमें गिर पड़ा। तब शाल्व उस विमानको छोड़ कर पृथ्वी पर खड़ा होगया और गदा उठा कर वेगसे कृष्णचन्द्रकी ओर झपटा। श्रीकृष्णने अपने सामने दौड़ कर आरहे शाल्वके गदायुक्त बाहुको

एक भल्ल बाणसे काट डाला एवं उसको मारनेके लिये प्रलयकालीन सूर्य्यके समान प्रकाशमान अद्भुत सुदर्शन चक्र हाथमें लेकर सूर्य्यसहित उदयाचलके समान सुशोभित हुए। राजन्! इन्द्रने वज्रसे जैसे वृत्रासुरका शिर काटा था वैसेही हरिने उस चक्रसे महामायावी शाल्वका किरीट मुकुट और कुण्डलोंसे सुशोभित शिर उसी क्षण धड़से अलग कर दिया। यह देख कर शाल्वके सब साथी हाहाकार करने लगे ॥ ३०-३६ ॥

तस्मिन्निपतिते पापे सौभे च गदया हते ॥
नेदुर्दुन्दुभयो राजन्दिवि देवगणेरिताः ॥
सखीनामपचितिं कुर्वन्दन्तवक्रो रुषाऽभ्यगात् ॥ ३७ ॥

राजन्! वह पापी मारागया और सौभ विमान गदाके आघातसे चूर्ण होगया—यह देख कर स्वर्गवासी देवगण अत्यन्त प्रसन्न हुए और नगाड़े बजाते हुए कृष्णचन्द्र पर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करने लगे। इधर दन्तवक्र अपने मित्र शिशुपाल और शाल्वके मरनेका समाचार पाकर उनका बदला चुकाने और उनके ऋणसे उऋण होनेके लिये कुपित होकर द्वारका पुरीको चला ॥ ३७ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितम अध्याय।

तीर्थयात्रामें बलदेवजीके हाथसे सूतका वध।

श्रीशुक उवाच—शिशुपालस्य शाल्वस्य पौण्ड्रकस्यापि दुर्मतिः ॥
परलोकगतानां च कुर्वन्पारोक्ष्यसौहृदम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा है। हे राजन्! महाबली दुर्मति दन्तवक्र, परलोकगत अपने मित्र शिशुपाल, शाल्व एवं पौण्ड्रककी भी मित्रताका बदला चुकानेके लिये क्रोध करके अकेले ही पैदल झपटता हुआ कृष्णके समीप आया। उसकी गतिके वेगसे पग-पग पर पृथ्वी कम्पायमान होती थी। उसको इस प्रकार गदा तान कर अपनी ओर आते देख, श्रीकृष्णजी शीघ्र रथसे फाँद कर पृथ्वी पर खड़े हो गये एवं जैसे सीमा सागरके वेगको रोकती है वैसे ही झपट कर आरहे शत्रुकी गतिको वहीं पर रोक लिया। महामदान्ध कारूषपति दन्तवक्रने गदा तान कर मुकुन्दसे कहा कि "बड़ी बात! बड़ी बात! जो इस समय मैं तुझको पागया। कृष्ण! तू मेरे मामाका पुत्र और मेरे मित्रोंको मारनेवाला है एवं इस समय मुझ-

को भी मारनेके लिये उद्यत है। अतएव रे मंद! मैं इस वज्र ऐसी गदासे आज तुझको मारूँगा। हे अज्ञ! मित्रवत्सल मैं अपनेही शरीरमें उत्पन्न रोगके समान अहितकारी तुझ बन्धुरूप शत्रुको मार कर अपने परलोकगत मित्रोंका ऋण चुकाऊँगा"। जैसे अंकुशके प्रहारसे गजराजको पीड़ा पहुँचाई जाती है उस प्रकार उक्त रूखे वाक्योंसे कृष्णको पीड़ित करके दुष्ट दन्तवक्रने अपनी गदा उनके मस्तकमें मारी एवं प्रहार करके सिंहके समान गर्जने लगा। युद्धस्थलमें गदाकी चोट खाकर भी यदुश्रेष्ठ कृष्णचन्द्र तनिक नहीं विचलित हुए। कृष्णचन्द्रने भी अपनी कौमोदकी गदा शत्रुके वक्षःस्थलमें मारी। उस प्रचण्ड गदाकी चोटसे दन्तवक्रका हृदय फट गया और मुखसे रुधिर गिरने लगा। उसके केश अस्तव्यस्त हो गये, हाथ-पैर फैल गये और उसका शरीर प्राणशून्य हो कर पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १-९ ॥ हे राजन्! जैसे शिशुपालके शरीरसे निकली हुई ज्योति कृष्णके चरणोंमें लीन हो गई थी वैसे ही दन्तवक्रके शरीरसे भी अत्यन्त सूक्ष्म ज्योति निकल कर सब देखनेवालोंके सामने कृष्णचन्द्रमें लीन हो गई। दन्तवक्रका भाई विदूरथ भाईके शोकसे पीड़ित होकर कृष्णको मारनेकी अभिलाषासे ढाल तर्वार लेकर बड़ी २ साँसें लेता दौड़ा हुआ आया। महाराज! श्रीकृष्णने तीक्ष्ण धारावाले चक्रसे, उस झपट कर आरहे विदूरथका भी किरीट-कुण्डल-युक्त शिर काट डाला। इस प्रकार सौभविमानसहित शाल्व और अनुजसहित दन्तवक्र आदि दुर्जय वीरोंको नष्ट करके, यादवोंसे घिरे हुए कृष्णचन्द्रने भली भाँति सजाई गई अपनी द्वारका पुरीमें प्रवेश किया। उस समय देवता और मनुष्यगण उनकी स्तुति करने लगे। मुनिगण, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, अप्सरोंके झुंड, पितृगण, यक्ष, किन्नर और चारणगण उनके प्रशंसनीय चरित्रको गाने लगे एवं देवगण उनके ऊपर परम आनन्दसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। हे राजेन्द्र! योगेश्वरोंके भी ईश्वर जगदीश्वर भगवान् कृष्णचन्द्रने लीलापूर्वक इन दुर्जय और महाबली वीरोंको परास्त किया-यह कुछ आश्चर्य्य नहीं है। किन्तु कुछ पशुओंके समान अज्ञानसे अंधे लोग कहते हैं कि वही कृष्णचन्द्र जरासंधसे हार गये थे ॥१०-१६॥ राजन्! एक समय बलभद्रजीने सुना कि कौरवों और पाण्डवोंमें परस्पर युद्ध होनेका उद्योग हो रहा है। यह जान कर भगवान् अनन्त तीर्थयात्राके बहानेसे टल कर प्रभासक्षेत्रको चल गये। दुर्य्योधन उनका शिष्य था एवं पाण्डव भी अपने बन्धु थे, अतएव उन्होने किसी ओरसे युद्धमें सम्मिलित होना उचित नहीं समझा। बलभद्रजीने प्रभासमें जाकर स्नान किया और देव, ऋषि, पितर तथा मनुष्योंको तृप्त व सन्तुष्ट किया। वहाँसे वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसहित विपरीतवाहिनी सरस्वतीके तट पर गये। वहाँसे क्रमशः पृथूदक, बिन्दुसरोवर, त्रितकूप, सुदर्शन नद, विशाला नदी, ब्रह्मतीर्थ, चक्रतीर्थ, पूर्ववाहिनी सरस्वती

एवं यमुना व गंगाके परवर्ती सब तीर्थोंमें होते हुए नैमिषारण्य क्षेत्रमें पहुँचे। सुदीर्घ समयके लिये दीक्षा लेकर महायज्ञमें प्रवृत्त मुनियोंने बलभद्रजीको देख उठ कर विधिपूर्वक उनका अभिनन्दन और प्रणाम करके उचित रीतिसे पूजन किया ॥ १७—२१ ॥ ब्राह्मणगण-सहित भली भाँति पूजित बलभद्रजीने मुनियोंके दिये आसन पर बैठ कर देखा कि महर्षि वेदव्यासके शिष्य रोमहर्षण व्यासासन पर बैठे हुए हैं। रोमहर्षणका जन्म सूतजातिमें हुआ था। बलभद्रजीने देखा कि वह उनको देख कर न खड़े हुए, न प्रणाम किया, न हाथ जोड़े। ब्राह्मणोंसे भी ऊँचे आसन पर इस प्रकार ढिठाईके साथ बैठे हुए सूतको देख कर बलभद्रजीको अपार क्रोध हुआ। कुपित होकर बलभद्रने कहा—"यह व्यक्ति प्रतिलोमज होकर भी इन सब धर्मपालक ब्राह्मणोंसे और हमसे ऊँचे आसन पर कैसे बैठा हुआ है? यह दुर्मति मारडालने योग्य है। यह भगवान् वेदव्यासका शिष्य है, इसने उनसे अनेक इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्र पढ़े हैं, तो भी इसमें शिष्टाचार और विनयका लेशमात्र नहीं है। यह अपनेको पण्डित मान कर वृथा घमंडमें चूर हो रहा है। यह आत्मदमन नहीं करसका, अतएव नटोंके समान इसका बहुत पढ़ना गुण नहीं समझा जासक्ता, वह सब निष्फल है; क्योंकि यह शास्त्रोक्त मार्ग पर स्वयं नहीं चलता। जो लोग केवल धर्मके चिन्होंको धारण करते हैं, परन्तु धर्मका पालन नहीं करते वे अधिक पापी हैं। धर्मका ध्वंस करनेवाले ऐसे लोगोंको मारनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है" ॥२२—२७॥ राजन्! भगवान् बलभद्र दुष्टोंके भी वध करनेका विचार छोड़ चुके थे, तथापि होनी तो टाले नहीं टलती! उन्होने पूर्वोक्त वाक्य कह कर हाथमें स्थित कुशके अग्रभागसे सूतका वध करडाला। यह देख कर मुनिगण हाहाकार करते हुए अत्यन्त खिन्न हो संकर्षण देवसे बोले—"प्रभो! आपने अधर्म्म किया। हे यदुनन्दन! जब तक हमारा यह यज्ञका अनुष्ठान समाप्त न हो तब तकके लिये हमने इन सूतको ब्रह्मासन एवं शारीरिक कष्टसे रहित आयु भी दी थी। आपने अजानकी भाँति इनका वध करके ब्रह्मवधके समान पाप कर डाला। भगवन्! आप योगेश्वर हैं, वेद भी आपको अपने नियमके अनुकूल चलने पर वाध्य नहीं कर सक्ते। तथापि हे लोकपावन! यदि आप अन्यके द्वारा प्रेरित न होकर, अन्य लोगोंको शिक्षा देनेके लिये स्वयं इस ब्रह्महत्याका प्रायश्चित्त करें तो बहुत उत्तम होगा" ॥ २८—३२ ॥ **श्रीभगवान् बलभद्रने कहा।** "मैं लोगों पर अनुग्रह करनेके लिये, अर्थात् उनको शिक्षा देनेके लिये इस हत्याका प्रायश्चित्त करूँगा। मुख्य पक्षमें प्रायश्चित्तके जो कुछ नियम हों उन्हे आप बतावें। हे मुनिवरो! इस सूतके लिये दीर्घ आयु, बल और इन्द्रियोंका शिथिल न होना आदि जो कुछ आप चाहें सो मैं अपनी योगमायाके बलसे सिद्ध कर दूँ" ॥ ३३ ॥३४॥

ऋषियोंने कहा। "हे राम! हम यह चाहते हैं कि जिसमें आपका अस्त्र और विक्रम तथा मृत्युका पराक्रम वृथा न हो एवं हमारे वाक्य भी असत्य न हों वैसा ही आप करिये" ॥ ३५ ॥ बलभद्रजीने कहा। "वेदमें कहा है कि जीव आप ही पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है। अतएव इसका पुत्र उग्रश्रवा नाम सूत इसके आसन पर बैठ कर आप लोगोंको पुराण आदि धर्म्मग्रन्थ सुनावेगा एवं आप लोगोंके कथनानुसार बहुत आयु, बल एवं इन्द्रियसम्बन्धी स्वस्थता भी उसको प्राप्त होगी ॥ ३६ ॥ हे श्रेष्ठ मुनिगण! अब आप लोगोंकी और क्या कामना है, कहिये, मैं उसे पूर्ण करूँ। हे ज्ञानियो! और मेरे अज्ञानकृत ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त क्या है, उसे भी विचार करके बतलाइये" ॥ ३७ ॥ ऋषियोंने कहा। "हे देव! इल्वलका पुत्र बल्वल नाम एक घोर दानव प्रत्येक पर्वमें आकर हमारे यज्ञको दूषित करता है ॥ ३८ ॥ नाथ! वह दानव पीब, रुधिर, विष्ठा, मूत्र, मदिरा और मांस आदि अशुद्ध पदार्थोंकी वर्षा करके हमारे यज्ञमें विघ्न करता है। उसको आप मारिये। यही आप मानो हमारी परम सेवा करेंगे ॥ ३९ ॥

ततश्च भारतं वर्षं परीत्य सुसमाहितः ॥
चरित्वा द्वादशान्मासाँस्तीर्थस्नायी विशुध्यसे ॥ ४० ॥

भगवन्! तदनन्तर आप बारह महीने तक काम–क्रोध आदिसे रहित हो, कष्ट सहते हुए भारतवर्षमें घूम कर तीर्थोंमें स्नान–दान आदि करिये; यही आपके लिये ब्रह्मवधका प्रायश्चित्त होगा ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितम अध्याय।

बलदेवजीकी तीर्थयात्रा।

श्रीशुक उवाच–ततः पर्वण्युपावृत्ते प्रचण्डः पांशुवर्षणः ॥
भीमो वायुरभूद्राजन्पूयगन्धस्तु सर्वशः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! तदनन्तर पर्व–समयमें धूलकी वर्षा करती हुई भयानक प्रचण्ड आँधी चलने लगी और चारो ओर घोर दुर्गन्ध उठी। उसके उपरान्त यज्ञशालामें पीब आदि अपवित्र पदार्थोंकी वर्षा होने लगी और थोड़ी देरमें वही भयंकर बल्वल दानव त्रिशूल हाथमें लिये देख पड़ा ॥ १ ॥ २ ॥ उस दानवका सुदीर्घ शरीर अञ्जनराशिके समान अत्यन्त काला था, उसकी शिखा और इमश्रुके बाल तपे हुए ताँबेके तुल्य लाल २ थे, टेढ़ी २ भौहोंसे भयानक

उसका मुख बड़ी २ दाढ़ोंसे और भी कराल हो रहा था ॥ ३ ॥ उसको देख कर बलरामने अपने शत्रुदलदलन मूशलको और दैत्यदलदमन हलको याद किया। याद करते ही वे दोनो शस्त्र तुरन्त आकर उपस्थित हुए ॥४॥ बलभद्रने क्रोध करके उस ब्राह्मणविरोधी आकाशचारी दैत्यको हलसे अपने समीप खींच कर उसके शिर पर मूशल मारा। मूशलके प्रहारसे उसका मस्तक चूर्ण होगया और वह मुखसे रुधिर उगलता हुआ आर्त्त नाद करके प्राणहीन हो वज्राहत, धातुप्रवाहसे अरुणवर्ण पर्वतके समान पृथ्वी पर गिर पड़ा॥५॥६॥यह देख कर वे सब महाभाग ऋषिगण परम प्रसन्न हो बलभद्रकी स्तुति व प्रशंसा करते हुए उनको अमोघ आशीर्व्वाद देने लगे। देवतोंने जैसे वृत्रासुरवधके उपरान्त इन्द्रका अभिषेक किया था उसी प्रकार ऋषियोंने दानववधके उपरान्त बलभद्रका अभिषेक किया ॥ ७ ॥ एवं उनको कभी न मुरझानेवाले कमलके फूलोंकी बनी हुई, लक्ष्मीकी निवासभूमि वैजयन्ती माला दी, तथा दिव्य वस्त्र, उत्तरीय और सब दिव्य आभूषण दिये ॥ ८ ॥ तदनन्तर ऋषियोंसे आज्ञा लेकर बलभद्रजीने ब्राह्मणोंसहित कौशिकी नदीमें जाकर स्नान किया। वहाँसे चलकर उस सरोवरमें गये जहाँसे सरयू नदी निकली है ॥ ९ ॥ अनुलोमक्रमसे सरयूमें स्नान कर प्रयागराजमें पहुँचे। वहाँ स्नान तथा देवता आदिका तर्पण करके पुलह ऋषिके आश्रमको गये। वहाँसे क्रमशः गोमती, गण्डकी, विपाशा नदी और शोण नदमें स्नान करते हुए गया क्षेत्रमें पहुँचे। गयामें पितृपूजन व पिण्डदान करके गङ्गासागर–सङ्गमको गये। वहाँ स्नान आदि करके महेन्द्राचलको गये। वहाँ परशुरामको देख कर व प्रणाम कर सप्तगोदावरी, वेणा, पंपा, भीमरथी आदि तीर्थोंमें होते हुए शिवके निवासस्थान श्रीशैल पर्वत पर गये। वहाँ शिवके और स्कन्ददेवके दर्शन करके द्राविड़ देशमें अवस्थित वेंकट पर्वतको गये। प्रभु बलभद्र वहाँसे कामकोष्टी, काञ्चीपुरी, श्रेष्ठ नदी कावेरी होते हुए श्रीरङ्ग नाम महापवित्र स्थानमें पहुँचे; जहाँ हरिभगवान् नित्य निवास करते हैं। फिर वहाँसे हरिके क्षेत्र ऋषभ पर्वत और दक्षिण–मथुराको देखते हुए महा-पातकनाशन सेतुबन्ध तीर्थको गये। वहाँ पर हलायुध बलभद्रने ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दस हजार गौवें दीं। वहाँसे कृतमाला और ताम्रपर्णी नदीमें स्नान करते हुए मलय पर्वतको गये। बलभद्रजी, वहाँ बैठे हुए अगस्त्य मुनिको अभिवादन व नमस्कार करके और उनसे आशीर्व्वाद व जानेकी अनुमति लेकर दक्षिणसमुद्रको गये और वहाँ कन्या नाम दुर्गा देवीके दर्शन किये॥१०–१७॥ हे राजेन्द्र! वहाँसे फाल्गुण नाम पवित्र क्षेत्रमें पहुँच कर, जहाँ विष्णु भगवान् नित्य निवास करते हैं उस पंचाप्सरसनाम परम पवित्र उत्तम सरोवरमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको दस हजार गौवें दीं॥१८॥ वहाँसे भगवान् बलभद्रजी केरल, त्रिगर्त्त आदि देशोंमें होते हुए गोकर्ण नाम शिवके क्षेत्रमें पहुँचे; जहाँ शङ्करदेव सदा निवास करते हैं ॥१९॥

द्वीपनिवासिनी आर्य्या देवीके दर्शन करते हुए बलभद्रजी सूर्य्यारक क्षेत्रको गये और वहाँसे तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या नाम नदियोंमें स्नान करते हुए दण्डकारण्य होकर माहिष्मती पुरीके पास बह रही नर्म्मदा नदीके तट पर पहुँचे। वहाँसे मनुतीर्थमें स्नान करते हुए फिर लौट कर प्रभास क्षेत्रमें आये ॥ २० ॥ २१ ॥ प्रभास क्षेत्रमें ब्राह्मण लोगोंके मुखसे कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सब क्षत्रिय वीरोंके विनाशकी चर्चा सुन कर भगवान् बलभद्रने जाना कि पृथ्वीका भार उतर गया ॥२२॥ उस समय भीमसेन और दुर्य्योधन, दोनो वीर युद्धभूमिमें गदायुद्ध कर रहे थे। यदुनन्दन बलभद्र उनके युद्धको रोकनेकी इच्छासे उस स्थान पर गये ॥ २३ ॥ उनको देख कर युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, अर्ज्जुन एवं श्रीकृष्णने प्रणाम किया एवं 'यह क्या कहनेके लियें यहाँ आये हैं'—यह सोच कर वे सब चुपचाप उनके मुखको निहारने लगे ॥ २४ ॥ बलभद्रजीने देखा कि भीमसेन और दुर्य्योधन, दोनो वीर गदा हाथमें लिये विजयकी इच्छासे भाँति २ के पैंतरे बदल रहे हैं ॥ २५ ॥ यह देख कर बलदेवने उनसे कहा कि "हे राजन्! और हे भीमसेन! तुम दोनो बल और वीरतामें समान हो। मेरी समझमें एक (दुर्य्योधन) शिक्षा (दावपेंच) में अधिक हैं और एक (भीमसेन) बल (दम) में अधिक है। तुम दोनो वीर्य्यमें समान हो, अतएव इस युद्धमें एककी जीत या एककी हार नहीं दिखाई देती। बस, तुम यह समझ कर इस निष्फल युद्धको रोक दो" ॥२६॥२७॥ राजन्! भीमसेन और दुर्य्योधनमें चिरकालसे शत्रुता चली आरही थी, परस्पर कहे हुए कटुवचनों और किये हुए अपकारोंको स्मरण करके वे दोनो एक एकके प्राण लेने पर उतारू थे; अतएव उन्होने बलभद्रजीके यथार्थ वचनों पर ध्यान नहीं दिया और लड़ते ही रहे ॥ २८ ॥ तब 'अदृष्ट बड़ा ही प्रबल है'—यह समझ कर बलभद्रजी वहाँसे चलदिये। बलराम भगवान् वहाँसे द्वारका पुरीको गये और सजातीय बन्धु उग्रसेन आदिसे मिल कर उनको प्रसन्न किया। प्रभु बलदेव द्वारकाधामसे चल कर फिर नैमिषारण्य क्षेत्रको गये। सम्पूर्ण प्रकारकी भेद-भावना छोड़ कर शान्तस्वरूप हो रहे यज्ञके अंगस्वरूप बलभद्रजीको उस पुण्यभूमिमें ऋषियोंने आनन्दपूर्वक विधिसहित अनेक यज्ञ कराये ॥२९॥३०॥ भगवान् बलभद्रने भी उनको विशुद्ध ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे मुनिगण इस विश्वको आत्मामें एवं आत्माको विश्वमात्रमें अवस्थित जान कर कृतार्थ हुए ॥३१॥ बलभद्रजीने जातिवाले, बन्धु, और सम्पूर्ण सुहृद् जनोंके साथ अपनी पत्नियों सहित यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान किया एवं सुन्दर वस्त्र व उत्तम माला पहन कर चाँदनी सहित पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए ॥ ३२ ॥ हे राजन्! मायामानवरूप, महाबली, अप्रमेय, अनन्त बलदेवजीने इस प्रकारके अनेकानेक पवित्र कर्म्म किये हैं ॥ ३३ ॥

योऽनुस्मरेत रामस्य कर्माण्यद्भुतकर्मणः ॥
सायंप्रातरनन्तस्य विष्णोः स दयितो भवेत् ॥ ३४ ॥

जो कोई प्रातःकाल और सन्ध्याके समय अद्भुत कर्म्म करनेवाले अनन्त बलरामके सब कार्य्योंको स्मरण करते हैं उन पर विष्णु भगवान् परम प्रसन्न होते हैं ॥३४॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अशीतितम अध्याय।

सुदामाचरित्र।

राजोवाच—भगवन्यानि चान्यानि मुकुन्दस्य महात्मनः ॥
वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य श्रोतुमिच्छामहे प्रभो ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा। हे भगवन्! हे प्रभो! महात्मा, अनन्तवीर्य्यशाली मुकुन्दके और २ सब चरित्र भी मैं सुनना चाहता हूँ। ब्रह्मन्! उत्तमश्लोक भगवान्की सत्कथाओंको एक बार सुन कर कौन सार-असारके बिवेकसे युक्त पुरुष फिर उनके सुननेकी इच्छा न करेगा? अवश्य ही अभिलाषाके वाण उसके हृदयको उन कथाओंके सुननेके लिये वारम्वार उत्कण्ठित करेंगे ॥ १ ॥ २ ॥ भगवन्! जिससे हरिके गुणोंका वर्णन किया जाय वही वाणी सफल है। जिनसे हरिकी सेवा और टहल की जाय वे ही हाथ सफल हैं। जिससे हरिको चराचर जगत्में व्याप्त समझ कर उनका मनन किया जाय वही मन सफल है। जिनसे हरिकी पतितपावनी पवित्र कथाएँ सुनी जायँ वे ही कान सफल हैं ॥३॥ जिससे हरिके चर और अचर—दोनो रूपोंको प्रणाम किया जाय वही मस्तक सफल है। जिनसे हरिके चर और अचर—दोनो रूपोंका दर्शन किया जाय वे ही नेत्र सफल हैं और जिनसे विष्णुके एवं उनके भक्तोंके चरणोदकका सेवन किया जाय वे ही अङ्ग सफल हैं ॥४॥ श्री सूतजी शौनक आदि ऋषियोंसे कहते हैं कि विष्णुदत्त राजा परीक्षित्के यों पूछने पर वेदव्यासतनय श्रीशुकदेवजी वासुदेव भगवान्में मन लगा कर बोले ॥ ५ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे राजेन्द्र! वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण कृष्णचन्द्रके लड़कपनके सखा थे। वह, इन्द्रियोंसे जिनका भोग किया जाता है उन विषयोंसे विरक्त, शान्त और जितेन्द्रिय थे। वह ब्राह्मण गृहस्थ थे। जो कुछ आपहीसे मिल जाता था उसीमें निर्व्वाह करते थे। वह स्वयं एक महामलीन फटे हुए वस्त्रका टुकड़ा पहने रहते थे और उनकी पतिव्रता स्त्री भी पतिके समान वैसा ही वस्त्र पहने रहती थी। नित्य भोजन न मिलनेके कारण

उनकी स्त्री भी उनके साथ भूखके असह्य कष्टको सहती थी । पति, सब भोगकी सामग्रियोंको नहीं लासक्ता था, यहाँतक कि आवश्यक वस्त्र और भोजनका भी प्रबन्ध न करता था, अतएव वह पतिव्रता स्त्री सर्वदा अत्यन्त दुःख सह कर जीवनके दिन बिताती थी । भूखसे जिसका मुख सूख रहा है उस पतिव्रताने एक दिन डरसे काँपते २ पतिके निकट जाकर कहा कि "मैंने सुना है साक्षात् लक्ष्मीपति, ब्राह्मणहितकारी, शरणागतपालक, यादवश्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आपके सखा हैं । हे महाभाग! वह साधुओंकी परम गति हैं, आप उनके निकट जाइये । आप कुटुम्बी हैं, दरिद्र होनेके कारण कष्ट पा रहे हैं, यह देख कर वह आपको अवश्य ही बहुत सा धन देंगे । वह भोज-वृष्णि-अन्धकवंशी यादवोंके स्वामी इस समय द्वारका पुरीमें रहते हैं । नाथ! वह जगद्गुरु अपने चरणकमलोंको स्मरण करनेवालेको अपना शरीर भी दे डालनेमें संकोच नहीं करनेवाले हैं; तब अपने परम भक्त जो आप हैं उनको उनसे धन मिलनेमें क्या सन्देह है? प्रभो! यद्यपि आपको धनकी रत्ती भर चाह नहीं है, तथापि बिना धनके गृहस्थीका निर्वाह होना कठिन है; इस लिये मेरी समझमें आपका उनके पास जाना उचित और आवश्यक है" । इस प्रकार स्त्रीके वारम्वार प्रार्थना करने पर उन दरिद्र ब्राह्मणने भी सोचा कि वहाँ जानेमें और कुछ मिले या न मिले, परन्तु परम लाभ यही होगा कि श्रीकृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शन अवश्य प्राप्त होंगे । यह सोच कर विप्रवर सुदामाने कृष्णके निकट जानेका निश्चय कर लिया और फिर स्त्रीसे कहा कि "हे कल्याणी! यदि कुछ कृष्णचन्द्रको भेंट देने योग्य सामग्री घरमें हो तो लाओ, जिसको लेकर मैं प्रभुके निकट जाऊँ" । घरमें तो कुछ था नहीं, अतएव सुदामाकी स्त्री परोससे चार मुट्ठी चाँवल माँग लाई और उनको एक मैले और फटे कपड़ेके टुकड़ेमें बाँध कर कृष्णको भेंट देनेके लिये पतिको दिया । उस चाँवलोंकी पुटकियाको लेकर विप्रवर द्वारकापुरीको चले । "कृष्णभगवान्के दर्शन मुझको किस प्रकार प्राप्त होंगे ?"-राहमें यही सोचते हुए सुदामाजी द्वारका पुरीमें पहुँचे ॥ ६-१५ ॥

हे राजेन्द्र! सुदामा ब्राह्मण तीन रक्षक सैनिकोंकी चौकियों और ड्योढ़ियोंको बे-रोक-टोक लाँघ कर भगवान्के अन्तःपुरमें पहुँचे । तदनन्तर जिनमें बिना आज्ञा वृष्णि और अन्धकवंशी यादव भी नहीं जासक्ते उन भगवान् कृष्णचन्द्रकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके महलोंमेंसे एक महलमें सुदामाजीने प्रवेश किया । वहाँ पहुँचतेही सुदामाजी ऐसे प्रसन्न हुए मानो उनको ब्रह्मानन्द प्राप्त हो गया । उस समय श्रीकृष्णचन्द्र उस महलमें प्रियाके पलँग पर लेटे हुए थे, सो विप्रवर सुदामाको दूरहीसे आते देख कर उठ बैठे और प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़, दोनो हाथ फैला कर प्रिय सखा सुदामाको हृदयसे लगा लिया । प्रिय सखा ब्राह्मणके अंगसंगसे भगवान्को परम प्रसन्नता प्राप्त हुई और आनन्दके

कारण उनके नेत्रकमलोंसे प्रेमके आँसू बहने लगे। राजन्! तदनन्तर अच्युतने प्रिय बन्धु सुदामाको आदरसहित लेजा कर अपने पलँग पर बैठाया एवं आप ही पूजनकी सामग्री लाकर, अपने हाथसे उनके चरणोंको धोकर, उस जलको, स्वयं त्रिलोकपावन हो कर भी, अपने शिर पर धारण किया। फिर प्रिय मित्रके शरीरमें दिव्यगन्धयुक्त चन्दन, अगुरु और कुङ्कुम लगाया एवं सुगन्धित धूप, दीप, इत्यादिसे पूजन करके दिव्य भोजन कराये और तदनन्तर पान और एक दुधार गऊ देकर कुशल पूछी। ब्राह्मण सुदामाका शरीर अत्यन्त मलीन और क्षीण था, देह भरमें ठौर २ नसें देख पड़ती थीं और वह एक फटा और मैला वस्त्र पहने थे। राजन्! साक्षात् लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणी देवी सखियों सहित रत्नदण्डयुक्त व्यजन हाथमें लिये उन्ही दरिद्रवेष ब्राह्मणकी सेवा करने लगीं। पुण्यकीर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्रको अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक एक दरिद्र भिक्षुककी पूजा करते देख अन्तःपुरमें रहनेवाले सब लोग अत्यन्त विस्मित हो कर परस्पर कहने लगे कि "अहो! लक्ष्मीहीन, जनसमाजमें मान न पानेवाले इस अधम, अवधूत, भिक्षुकने कौन ऐसा पुण्य किया है जो तीनो लोकोंके गुरु साक्षात् लक्ष्मीपतिने पलँग पर बैठी हुई लक्ष्मीको छोड़, बड़े भाईके समान आदरसहित गलेसे लगा कर इसका पूजन और सत्कार किया!" ॥ १६-२६ ॥ हे राजन्! फिर भगवान् कृष्णचन्द्र ब्राह्मण सुदामाका हाथ हाथमें लेकर उस समयकी मनोहर बातें करने लगे जिस समय दोनो जने गुरुके यहाँ रह कर एक साथ विद्याध्ययन करते थे। **भगवान्ने कहा**—"हे धर्मज्ञ विप्रवर! गुरुदक्षिणा देनेके उपरान्त गुरुके घरसे लौट कर तुमने अपने योग्य स्त्रीसे बिवाह किया या नहीं? मुझे विदित है कि सांसारिक भोगोंमें तुम्हारी रुचि नहीं हैं, अतएव तुम धनके उपार्जनकी चेष्टा भी नहीं करते। मित्र! इस संसारमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो विषयभोगमें आसक्त न हो ईश्वरकी मायाके द्वारा रचित विषय-वासनाओंको तज देते हैं और जैसे मैं केवल अन्य लोगोंको मार्ग दिखानेके लिये (ईश्वर होकर भी) कर्म्म करता हूँ उस प्रकार कर्म करते हैं। ब्रह्मन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जहाँ रह कर, गुरुसे सब जानने योग्य विषयोंको पढ़ कर, अज्ञानरूप अंधकारको नाँध कर, ज्ञानके प्रकाशमें पहुँचते हैं उस गुरुकुलमें हम और तुम साथ ही रहे हैं। भला कभी उस समयको स्मरण करते हो? मित्र! जिसके वीर्य्यसे जन्म होता है वह पिता प्रथम गुरु है और उससे श्रेष्ठ दूसरा गुरु वह है जो यज्ञोपवीत-संस्कारमें गायत्रीका उपदेश करके वेद पढ़ाता है और वेदविहित वर्णाश्रमसम्बन्धी सत्कर्मोंकी शिक्षा देता है तथा सब वर्ण और आश्रमवाले व्यक्तियोंका सबसे अधिक माननीय तीसरा गुरु मैं हूँ; अन्तःकरणमें अवस्थित मैं सबको विशुद्ध ज्ञानका उपदेश करता हूँ। ब्रह्मन्! इस पृथ्वी पर चारो वर्ण और चारो आश्रमके लोगोंमें वे ही स्वार्थ समझनेमें प्रवीण हैं जो मुझ गुरुके

उपदेश द्वारा सहजमें सुखपूर्वक अपार संसारसागरके पार पहुँच जाते हैं। मैं, जितना गुरुकी सेवा करनेसे सन्तुष्ट होता हूँ उतना किसी भी वर्णाश्रमधर्म्मके पालनसे नहीं सन्तुष्ट होता ॥ २७-३४ ॥ मित्र! वह घटना तो तुमको न भूली होगी? जब हम तुम गुरुके यहाँ रह कर एक-साथ विद्या पढ़ते थे। एक दिन हम और तुम गुरुपत्नीकी आज्ञासे लकड़ी लेनेके लिये महावनको गये। उस समय वर्षाऋतु नहीं थी, परन्तु अकस्मात् प्रचण्ड आँधी चलने लगी, मेघोंने आकाशमण्डलको घेर लिया एवं बड़े वेगसे जल बरसने लगा। बीच २ में बार २ होरही बिजलीकी घोर कठोर कड़कड़ाहट मनमें भय उत्पन्न करने लगी ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इतनेमें सूर्य्य भी अस्त होगये और दशो दिशाओंमें महा अन्धकार छागया। जहाँ पृथ्वी नीची थी वहाँ जल भर गया, जिससे ऊँचा नीचा कुछ भी न जान पड़ता था। उस समय राह चलना अत्यन्त कठिन था। प्रचंड वायुके झोंके और जलकी बौछारसे हमको अत्यन्त कष्ट होने लगा। हमको यह नहीं जान पड़ता था कि हम किस दिशाको जारहे हैं। हम और तुम शिर पर लकड़ीके गट्ठे धरे, एक एकका हाथ पकड़े, उस जलपूर्ण वनमें रात भर इधरसे उधर भटकते और क्लेश सहते रहे। सूर्योदय होनेमें कुछ ही देर थी, उस समय हमको ढूँढते २ हमारे आचार्य्य गुरु सान्दीपिनिजी वनमें पहुँचे और हमको इस प्रकार वनमें भटकते और कष्ट सहते देख कर दयापूर्वक कहने लगे-"अहो! पुत्रो! यह आत्मा ही सब प्राणियोंको परम प्रिय होता है। तुम उस प्रिय आत्माको तुच्छ और मुझको श्रेष्ठ समझ कर मेरे लिये ऐसे घोर कष्ट और दुःखको सह रहे हो! शुद्ध भावसे सर्वार्थसाधक शरीर तक अर्पण करदेनेसे बढ़ कर और क्या गुरुकी सेवा होसक्ती है? सत्-शिष्य इससे बढ़ कर गुरुकी सेवा नहीं कर सक्ते। हे मेरे प्रिय शिष्यो! मैं तुम्हारे इस कार्य्यसे तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सब मनोरथ मेरे आशीर्वादसे पूर्ण हों और जो तुमने वेद आदि शास्त्र मुझसे पढ़े हैं उनका सारांश (ज्ञान) इस लोक और परलोकमें भी कभी तुमको विस्मृत न हो" ॥ ३७-४२ ॥ ब्रह्मन्! इस प्रकार गुरुकुलमें रहनेके समय उस हमारे विद्यार्थी-जीवनमें जो अनेक घटनाएँ हुई हैं उनको कदाचित् आप न भूले होंगे? मित्र! गुरुकी कृपा-से ही मनुष्य शान्तिको प्राप्त होकर पूर्णमनोरथ होते हैं" ॥ ४३ ॥ भगवान्के मधुर मनोहर वचन सुन कर सुदामाने कहा-"हे देवदेव! हे जगद्गुरो! आप सत्यसंकल्प हैं; भाग्यवश गुरुकुलमें आपके सहवासको प्राप्त होकर मैं कृतार्थ हुआ। नाथ! आपकी कृपासे मुझको कोई कामना नहीं है; सब सुसम्पन्न है॥४४॥

यस्य च्छन्दोमयं ब्रह्म देह आवपनं विभोः ॥
श्रेयसां तस्य गुरुषु वासोऽत्यन्तविडम्बनम् ॥ ४५ ॥

प्रभो! सम्पूर्ण मङ्गलोंकी उत्पत्तिका आकर वेदमय ब्रह्म आपकी मूर्ति है। स्वामिन्! आपका गुरुकुलमें रह कर विद्या पढ़ना अत्यन्त विडम्बनाकी बात अथवा लोकाचरणमात्र है" ॥ ४५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कंधे उत्तरार्धे अशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

एकाशीतितम अध्याय।

सुदामाको महाऐश्वर्य्य मिलना।

श्रीशुक उवाच—स इत्थं द्विजमुख्येन सह संकथयन्हरिः ॥
सर्वभूतमनोऽभिज्ञः स्मयमान उवाच तम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! विप्रवर सुदामासे इस प्रकार बातें करके सब प्राणियोंके अन्तर्य्यामी सर्वज्ञ हरिने मंद २ मुसका कर फिर उनसे यों कहा। ब्राह्मणहितकारी, साधुओंकी एकमात्र गति भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने प्रिय मित्रकी ओर प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देख कर हँसते हुए कहा कि "ब्रह्मन्! तुम घरसे मेरे लिये क्या उपायन (भेंटकी सामग्री) लाये हो? भक्तोंकी प्रेमपूर्वक लाई गई अणुमात्र उपहारकी सामग्रीको मैं बहुत मानता हूँ; क्यों कि मैं प्रेमका भूखा हूँ। किन्तु अभक्तके द्वारा अर्पित बहुत सी सामग्री भी मुझको सन्तुष्ट नहीं कर सक्ती। मित्र! अवकाशके अनुसार शुद्धचित्त हो भक्तिपूर्वक अर्पित पत्र, पुष्प, फल और जलको भी मैं स्वीकृत करता हूँ और सन्तुष्ट होता हूँ"। राजन्! भगवान्के इस प्रकार कहने पर भी ब्राह्मण सुदामा साक्षात् लक्ष्मीके पतिको लज्जाके मारे वह थोड़ेसे चाँवलोंकी पुटकी न देसके। सुदामाने शिर झुका लिया और चाँवलोंकी पुटकी न दी, तब सब प्राणियोंके अन्तर्य्यामी हरि, अपने निकट ब्राह्मणके आनेका कारण समझ कर विचारने लगे कि यह मेरे निष्काम भक्त और प्रिय सखा हैं, इन्होने लक्ष्मीकी कामनासे अर्थात् धनकी अभिलाषासे कभी पहले मेरा भजन नहीं किया; किन्तु इस समय अपनी पतिव्रता प्रियाकी प्रार्थनासे मेरे पास आये हैं। अतएव मैं इनको वह सम्पत्ति दूँ जो देवतोंको भी दुर्लभ है"। यों विचार कृष्णचन्द्रने "यह क्या है?" कह कर जल्दीसे ब्राह्मणकी बगलमें दबी हुई वह चाँवलोंकी पुटकी, जिसको सुदामाने लज्जाके मारे वस्त्रसे छिपा लिया था, पकड़ कर खींच ली और "हे मित्र! यही तो मुझको अत्यन्त प्रसन्न करनेवाली भेंटकी सामग्री है। ये चाँवल मुझको और सम्पूर्ण जगत्को (क्यों कि मैं विश्वव्यापक हूँ) तृप्त करदेंगे"—यों कहते हुए एक मुट्ठी चाँवल फाँक कर और मुट्ठी भरी। तब पास ही बैठी हुई हरिके चरणकमलोंकी

किङ्करी, अनन्याश्रया लक्ष्मी रुक्मिणीने परब्रह्म यदुनन्दनका हाथ पकड़ लिया और कहा कि "हे विश्वरूप! बस कीजिये। आपकी इतनी ही प्रसन्नता, मनुष्योंकी आत्यन्तिक श्रीवृद्धिके लिये यथेष्ट है (अर्थात् मेरे कृपाकटाक्षसे लोगोंको मिलनेवाली इस लोक और परलोककी सब प्रकारकी सम्पत्ति अथवा ऐश्वर्य, इस ब्राह्मणको इतने ही चाँवलोंसे प्राप्त हो गया; अबकी और चाँवल फाँक कर क्या मुझे भी दे डालोगे?)" ॥ १-११ ॥ राजन्! भोजन आदिके उपरान्त सुदामाजीने वह रात्रि अच्युतके ही मन्दिरमें सुखपूर्वक बिताई। वहाँ सुदामाजीको ऐसा सुख मिला कि वह अपनेको स्वर्गमें बैठा हुआ समझने लगे ॥ १२ ॥ प्रातःकाल होने पर सुदामाजी अपने घरको चले। विश्वपिता, स्वानन्दपूर्ण श्रीकृष्णजी कुछ दूर तक साथ २ गये और प्रणाम तथा विनीत वचनोंसे प्रसन्न करके प्रिय मित्रको बिदा किया ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रने आपसे कुछ भी धन नहीं दिया और सुदामाजीने भी उनसे नहीं माँगा। सुदामाजीको महात्मा कृष्णचन्द्रके दर्शन पाकर परम आनन्द हुआ और साथही अपनी कृपणता (धनकी लालसा) पर बड़ी लज्जा लगी ॥१४॥ घर जाते समय राहमें ब्राह्मण सुदामा मन-ही-मन कहने लगे कि "अहो! मैंने ब्रह्मण्यदेव भगवान्की ब्राह्मणभक्ति भली भाँति देखी। देखो, उनके वक्षःस्थलमें साक्षात् लक्ष्मी निवास करती हैं, तथापि उन्होने मुझ महादरिद्रको हृदयसे लगा लिया। कहाँ मैं नीच दरिद्र! और कहाँ लक्ष्मीके पति श्रीकृष्णचन्द्र! तथापि मुझे ब्राह्मण समझ कर उन्होने गलेसे लगा लिया और जैसे बड़े भाईका आदर किया जाता है उस प्रकार अपनी प्रियाके पलँग पर ले जाकर बैठाया और मेरी राह चलनेकी थकावट दूर करनेके लिये राजरानी साक्षात् लक्ष्मीका अवतार रुक्मिणीजी चँवर डुलाने लगीं। जैसे भक्तिपूर्वक इष्टदेवका पूजन किया जाता है वैसे विप्रदेव हरिने अपने हाथसे मेरा पूजन किया और पैर दबाये, परम सेवा की! ॥ १५—१८ ॥ उन हरिके चरणोंकी सेवा, मनुष्योंको स्वर्ग, अपवर्ग, ऐहलौकिक महासम्पत्ति एवं सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाली है। तथापि अवश्यही 'यह निर्धन ब्राह्मण धन पानेसे अत्यन्त प्रमत्त हो कर मुझको भूलजायगा'-ऐसा विचार कर परम कृपालु प्रभुने मुझको यथेष्ट धन नहीं दिया" ॥ १९ ॥ २० ॥ राजन्! ब्राह्मण सुदामा यों विचारते हुए अपने भवनके निकट पहुँच गये। सुदामाने वहाँ पहुँच कर देखा कि जहाँ इनकी टूटी सी झोपड़ी थी उस स्थान पर सूर्य, अग्नि और चन्द्रमाके समान प्रभायुक्त बड़े २ ऊँचे महल बने हुए हैं। महलोंके आस-पास विचित्र उद्यान और उपवन उनकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। उन उपवनोंमें वृक्षोंकी शाखाओं पर बैठे हुए भाँति भाँतिके अनेक पक्षी, सुखपूर्वक कलोल करते हुए मधुर बोलियोंसे मनको मोहित कर रहे

हैं। नीचे सुन्दर सरोवरोंमें, जिनमें स्वच्छ जल लहरा रहा है, कुमद, कल्हार, उत्पल, पद्म आदि भाँति २ के कमलकुसुम फूल रहे हैं। सुन्दर वस्त्र और अमूल्य भूषण पहने हुए मृगनयनी स्त्रियाँ और पुरुष महलोंकी शोभाको बढ़ा रहे हैं। यह देख कर सुदामाजी आश्चर्य्यके मारे अवाक् रह गये। "यह क्या? यह किसका भवन है? यदि यह मेरे रहनेका स्थान है तो इस प्रकार इसकी दशाका परिवर्त्तन कैसे हो गया? मेरी तो टूटी सी छोटी सी एक झोपड़ी थी; यह ऐसा समृद्धि-सम्पन्न महल कैसे बन गया?"—इस प्रकार सुदामाजी अपने मनमें तर्क-वितर्क करने लगे। इतनेमें देव-देवियोंके समान प्रभासम्पन्न सुदामापुरवासी नर-नारियोंने आनन्दसहित गाते बजाते हुए वहाँ आकर आदरपूर्वक सुदामाजीको लिया और कहा कि "आप सोच विचार-क्या कर रहे हैं? यह आपहीकी पुरी है, आइये, चलिये" ॥ २१–२४ ॥ पतिके आनेका समाचार पाकर सुदामाकी स्त्रीको अत्यन्त आनन्द हुआ। वह अत्यन्त आदरके साथ पतिको लेनेके लिये शीघ्रता-सहित घरसे बाहर निकली। सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहने हुए सुदामाकी स्त्री साक्षात् लक्ष्मी जान पड़ती थी। पतिको देख कर प्रेमकी उत्कण्ठाके कारण उस पति-व्रताके दोनो नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगे। सुदामाकी स्त्रीने नेत्र मूँद कर मन-ही-मन प्रणाम करके पतिको हृदयसे लगा लिया। कंठमें सुवर्णपदक आदि पहने हुए सुन्दरी दासियोंके बीचमें, पत्नीको, विमान पर स्थित देवीके समान सुशोभित देख कर सुदामाजी बहुतही विस्मित हुए। फिर उन्होंने महेन्द्र-भवनकी भाँति अनेक मणिमय स्तंभोंकी पाँतिसे सुशोभित और अलौकिक समृद्धिसम्पन्न अपने भवनमें धर्मपत्नीके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश किया ॥ २५–२८ ॥ सुदामाने भवनमें प्रवेश करके देखा कि वहाँ हाथीदाँतके बड़े २ पलँग पड़े हैं, पलँगोंके सब सामान सुवर्णके बने हुए हैं और उन पर सुकोमल बिछौने बिछे हैं; जो दुग्धके फेन ऐसे उज्वल हैं। जिनकी सुवर्णकी डंडियाँ हैं ऐसे चामर और व्यजन रक्खे हुए हैं। कोमल आस्तरणोंसे आच्छादित सुवर्णके आसन (चौकी और कुर्सियाँ) बैठनेके लिये रक्खे हुए हैं। मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित कान्तिमान् वितान तने हुए हैं। स्वच्छ स्फटिकनिर्मित और महामरकत-मणिमय कुड्योंमें धरे हुए रत्नदीप सुशोभित हैं और ठौर २ पर उपस्थित परमसुन्दरी दासियाँ, अपने रूप और अलङ्कारोंकी कान्तिसे उस भवनकी शोभाको और भी बढ़ा रही हैं ॥२९॥३०॥३१॥ अपने भवनमें इस प्रकारके वैभवों-की वृद्धि देख, एकाग्रतापूर्वक उस अकस्मात् प्राप्त वैभवके मिलनेका कारण सोचते हुए सुदामाजी आप-ही-आप अपने मनमें कहने लगे कि "अवश्य यह महा ऐश्वर्य्यशाली यदुपतिका प्रसाद है। मुझ महाहतभाग्य, आजन्मदरिद्रको उनके कृपाकटाक्षके सिवा इस अतुल सम्पत्तिके मिलनेका और कोई कारण नहीं देख पड़ता।

मेघके समान कामवर्षासे याचकोंको तृप्त कर देनेवाले मेरे सखा लक्ष्मीपति यदुपति याचकको बिना बताये ही गुप्त रीतिसे बहुत कुछ देकर पूर्णमनोरथ कर देते हैं। वह भक्तोंके दिये हुए अति तुच्छ उपहारको भी अत्यन्त अधिक मानते और अपने अत्यन्त अधिक दानको भी स्वल्प ही समझते हैं। देखो, मैं एक मुट्ठी चाँवल भेंटके लिये लेगया था, महात्मा यदुपतिने उन थोड़ेसे चाँवलोंको प्रीतिपूर्वक आदरसहित लेकर यह अतुल सम्पत्ति मुझको दी। मेरी वारम्वार यही प्रार्थना है कि वारम्वार जन्मजन्मान्तरमें वही मेरे सुहृद् (प्रेमपात्र), सखा (हितका उपदेश करनेवाले) और मित्र (उपकारकर्त्ता) हों और मैं उनका अनन्यसेवक रहूँ। मैं इस सम्पत्तिको नहीं चाहता; मुझको प्रत्येक जन्ममें उन्ही सर्वगुणसम्पन्न, महानुभावकी विशुद्ध भक्ति और उनके भक्तोंका लोकपावन श्रेष्ठ संग प्राप्त हो। स्वयं विवेकसम्पन्न अजन्मा भगवान्, धनके गर्व्वसे धनवानोंका अधःपात होना देख कर, अविवेकी होनेके कारण अदूरदर्शी अपने जनको विविध सम्पत्ति और राज्य आदि वैभव नहीं देते" ॥ ३२-३७ ॥ श्रीमान् सुदामा ब्राह्मण, इस प्रकार निश्चय करके अनासक्त-भावसे स्त्री-सहित ईश्वरदत्त विषयोंका भोग करते हुए ईश्वरके भजनमें मनको लगा कर भोगके द्वारा धीरे २ विषयोंके त्यागका अभ्यास करने लगे ॥३८॥ हे राजन्! उन देवदेव यज्ञपति प्रभु हरिके, प्रभु और इष्टदेव ब्राह्मण हैं; अतएव ब्राह्मणोंसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है ॥ ३९ ॥ महाराज! भगवान्के सखा सुदामा ब्राह्मणने अपने भक्तोंके अधीन, अजित, भगवान् कृष्णचन्द्रके दुर्लभ दर्शन पाकर उन्हींके ध्यानसे अहं-भावको मिटा दिया एवं थोड़े ही समयमें ब्रह्मज्ञानियोंकी गति उसी विशुद्ध धाम(ब्रह्मपद)को प्राप्त हुए ॥ ४० ॥

एतद्ब्रह्मण्यदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मण्यतां नरः ॥
लब्धभावो भगवति कर्मबन्धाद्विमुच्यते ॥ ४१ ॥

राजन्! जो कोई मनुष्य, ब्रह्मण्यदेव भगवान्के इस ब्राह्मण-भक्ति-युक्त परम पवित्र चरित्रको श्रद्धापूर्वक सुनता है वह भगवद्भक्तिको प्राप्त हो कर शीघ्र ही कर्म्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितम अध्याय ।

कुरुक्षेत्रयात्रा ।

श्रीशुक उवाच—अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयोः ॥
सूर्योपरागः सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन्! श्रीकृष्ण और बलभद्र सुखपूर्वक द्वारका पुरीमें रह कर प्रजाका पालन करने लगे । इसी अवसरमें एक समय, जैसा कल्पके अन्तमें सूर्य्यका सर्वग्रास होजाता है वैसाही पूर्ण-सूर्य्यग्रहण आकर पड़ा ॥ १ ॥ सब लोगोंको उस सूर्य्यग्रहणका वृत्तान्त (ज्योतिषकी गणनाके द्वारा) पहलेहीसे विदित होगया, अतएव अनेकानेक मनुष्य, अनेकानेक देशोंसे पुण्यसञ्चयके द्वारा कल्याणप्राप्तिकी कामनासे उस दुर्लभ पवित्र पर्वमें स्नान दान आदि सत्कर्म करनेके लिये कुरुक्षेत्रमें अवस्थित स्यमन्त-पञ्चक नाम तीर्थको गये ॥२॥ हे राजन्! श्रेष्ठ योद्धा वीरवर परशुरामजीने पृथ्वीको एक प्रकार क्षत्रियोंसे शून्य करके राजोंके रुधिर-प्रवाहसे जिन पाँच महा-सरोवरोंको भर दिया था उन्हींका नाम स्यमन्तपञ्चक पड़ा । भगवान् ईश्वरावतार परशुरामने स्वयं कर्मबन्धनसे मुक्त होकर भी लोकशिक्षाके प्रयोजनसे साधारण मनुष्योंकी भाँति राजहत्याका प्रायश्चित्त करनेके लिये उस पवित्र स्थानमें महायज्ञके द्वारा विष्णुभगवान्की आराधना की थी ॥ ३ ॥४॥ हे भारत! उस बड़ी भारी तीर्थयात्रामें प्रायः सब भारतवासी स्त्री-पुरुष कुरुक्षेत्रको गये । महाराज! अक्रूर, वसुदेव, उग्रसेन आदि (वृष्णि आदि वंशोंके) यादवलोग भी अपने पापोंके नाशकी कामनासे कुरुक्षेत्रको चले । राजन्! गद, प्रद्युम्न, साम्ब, सुचन्द्र, शुक, सारण, सेनापति कृतवर्म्मा और भगवान् अनिरुद्धजी रक्षा करनेके लिये द्वारकामें ही रहे । राजन्! विद्याधरोंके समान प्रभाशाली सैनिक मनुष्योंको साथ लिये, विमान ऐसे रथों पर, चंचल जलकी लहरोंके समान वेगपूर्वक चलनेवाले घोड़ों पर और मदमत्त गर्जनकारी गजराजों पर चढ़े दिव्य पुष्पमाला, सुवर्णमाला, वस्त्र, कवच आदिसे अलंकृत, महातेजस्वी, सपत्नीक यादवगण, मार्गमें परम प्रभापूर्ण देवतोंके समान जान पड़ते थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ उन महाभाग्यशाली यादवोंने कुरुक्षेत्रमें पहुँच कर सूर्य्यग्रहणके समय स्यमन्तपञ्चकमें स्नान किया और ब्राह्मणोंको विधिवत् पूजनके उपरान्त वस्त्र, सुवर्णकी माला तथा सुवर्णकी मालाओंसे अलंकृत दुधार गौवें दीं एवं उस दिन निर्जल—निराहार व्रत किया। सूर्य्यको ग्रहणसे मुक्त देख कर फिर यादवोंने स्यमन्त-पञ्चकमें विधिपूर्वक स्नान किया और 'श्रीकृष्णचन्द्रके चरणोंमें हमारी अटल भक्ति हो' यह कामना करके सुन्दर स्वादिष्ट अन्न खिला कर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया

॥ ९ ॥ १० ॥ फिर श्रीकृष्णको ही अपना इष्टदेव माननेवाले यादवोंने उनसे आज्ञा लेकर आप भी भोजन किया और सुशीतल घनी छाँहवाले वृक्षोंके नीचे इच्छानुसार अपना २ डेरा डाला ॥ ११ ॥ राजन्! उस अवसर पर वहाँ मत्स्य, उशीनर, कोशल, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, कम्बोज, केकय, मद्र, कुन्ति, आनर्त और केरल देशके—श्रीकृष्णके सुहृद् और सम्बन्धी नरेश एवं और २ अनेकों कृष्णके अनुगत नरनाथगण आये थे। कृष्णके परम सुहृद् नन्द आदि गोपगण और कृष्णके देखनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित गोपियाँ भी वहाँ आई थीं। ये सब लोग कृष्णचन्द्रके दर्शन पाकर परम प्रसन्न हुए और कृष्णचन्द्रने भी इनसे मिल कर प्रसन्नता प्रकट की। सब परस्पर एक एकके प्रीतिपात्र और सुहृद् थे, अतएव परस्पर दर्शनके द्वारा उत्पन्न आनन्दके वेगसे उनके मुखकमल खिल उठे। वे, परस्पर एक एकके गले लग कर, नयनोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए असीम अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव करने लगे। सब स्त्रियाँ, मिल कर, परस्पर सौजन्यजन्य मंद हास्यसे सुशोभित प्रेमपूर्ण दृष्टि डालती हुई और परस्पर कुंकुममण्डित कुचमण्डलोंसे कुंकुमम ण्डित कुचमण्डलोंको मलती हुई बाँहें पसार कर एक एकको गले लगाने और आनन्दके आँसू बहाने लगीं। तदनन्तर बड़े बूढ़ोंको प्रणाम करने और छोटोंके द्वारा स्वयं वन्दित होनेके उपरान्त, परस्पर स्वागतसहित कुशलप्रश्न करके सब लोग कृष्णचन्द्रकी चर्चा करने लगे। भाई, भौजाई, भतीजे, भगिनियाँ, भगिनियोंके पुत्र, पिता—माता और कृष्णचन्द्रको देख कर एवं उनसे वार्तालाप करके देवी कुन्ती परम प्रसन्न हुईं और उनका सब शोक शान्त होगया ॥ १२—१८ ॥ कुन्तीजीने अपने भाई वसुदेवसे कहा कि "हे आर्य्य भाई! मैं अपनेको कृतार्थ नहीं समझती, क्योंकि आप लोग ऐसे श्रेष्ठ सत्त्वभाववाले होकर विपत्कालमें भी कभी हमारी खबर तक नहीं लेते। दैव जिसके प्रतिकूल होता है उसको सुहृद्, सजातीय, पुत्र, पिता-माता और भाई आदि स्वजन भी भूल जाते हैं" ॥ १९ ॥ २० ॥ **वसुदेवने कहा**। "हे अंब! हमको दोष देना वृथा है। बहन! मनुष्य दैवके हाथके खिलौने हैं। मनुष्य ईश्वराधीन है, ईश्वरके वशवर्ती होकर सब काम करता है। या यों कहो कि ईश्वर जो कराता है, वही मनुष्य करता है ॥२१॥ कंसके द्वारा अत्यन्त सताये जाने पर हम लोग इधर उधर चारो ओर भाग गये थे। बहन! फिर उसी कालरूप ईश्वरने हम सबको इस स्थान पर एकत्र कर दिया अर्थात् मिला दिया है" ॥ २२ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। राजन्! सबलोग वसुदेव और उग्रसेन आदि यादवोंके द्वारा पूजित होकर सत्कारसे परम प्रसन्न हुए और कृष्णके दर्शनसे प्राप्त परम आनन्दके कारण उनके शरीरोंमें रोमाञ्च हो आया। हे राजेन्द्र! भीष्म द्रोण, धृतराष्ट्र, पुत्रों सहित देवी गान्धारी, सपत्नीक पाण्डवगण, कुन्ती, सञ्जय, विदुर,

कृपाचार्य, राजा कुन्ति, भोज, विराट्, भीष्मक, नरश्रेष्ठ नग्नजित्, पुरजित्, द्रुपद, शैव्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मिथिलापति, मद्रपति, केकयनरेश, युधामन्यु, सुशर्म्मा और पुत्रसहित बाह्लीक आदि एवं युधिष्ठिरके अनुगत अन्यान्य राजा लोग, सपत्नीक श्रीकृष्णके श्रीनिकेतन शरीरकी शोभा और वैभवको देख कर बहुतही विस्मित हुए ॥ २३–२७ ॥ कृष्ण-बलभद्रने आदर-सत्कारसहित विधिपूर्वक उक्त सज्जन स्वजनोंकी पूजा की एवं वे लोग परम प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर, कृष्णके स्वजन जो यादव लोग हैं उनकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगे कि "अहो! हे भोजपति उग्रसेनजी! पृथ्वीतलवासी मनुष्यमात्रमें आप लोगोंका ही जन्म सफल है क्योंकि बड़े २ योगियोंको भी जिनके दर्शन दुर्लभ हैं उन्ही कृष्णचन्द्रको आप लोग सदैव वारम्वार देखते रहते हो। श्रुतियों द्वारा की गई जिनकी कीर्तिकी स्तुति और जिनके चरणकमलोंके प्रक्षालनका जल गंगा एवं जिनके शास्त्ररूप वाक्य इस विश्वको भली भाँति सम्पूर्ण रूपसे पवित्र कर रहे हैं एवं जिनके चरणकमलोंकी महिमाके प्रभावसे, यह पृथ्वी, कालवश शक्ति(प्रभाव)के क्षीण होने पर भी, हम लोगोंको सब वाञ्छित पदार्थ दे रही है वही साक्षात् श्रीविष्णु स्वयं मायामानवरूपसे तुम्हारे साथ दैहिक और वैवाहिक सम्बन्धमें बँध कर तुमको कृतार्थ कर रहे हैं। तुम नित्य उनको देखते हो साथ बैठते, उठते, खाते, पीते, सोते, चलते और बातचीत करते हो। आवागमनके मूलकारण गृहमें रह कर भी तुमलोग कृष्णकी कृपासे स्वर्ग (भोग) और अपवर्ग (मोक्ष) दोनोको पाकर पूर्णकाम हो रहे हो" ॥ २८ ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। वसुदेव आदि यादवोंके आनेकी खबर पाकर गोपगणसहित व्रजपति नन्दजी, श्रीकृष्ण–वसुदेव आदि प्रेमपात्र इष्ट, मित्र, स्वजनोंसे मिलनेके लिये उत्सुक होकर छकड़ों पर उपहारकी अनेकानेक सामग्रियाँ लाद कर वसुदेवके डेरेको गये। नन्दको देख कर बहुत दिनोंसे देखनेके लिये उत्कण्ठित यादवलोग परम प्रसन्न हुए। प्रिय प्राणोंको पाकर जैसे शरीर उठ खड़ा हो उस प्रकार यादवगण शीघ्रतासे उठ खड़े हुए और सबसे मिलने–भेंटने लगे। कंसके द्वारा प्राप्त अपने क्लेशोंको और नन्दके द्वारा किये गये अपने पुत्रोंकी रक्षा–रूप परम उपकारको याद करते हुए वसुदेवजी नन्दजीको गलेसे लगा कर अत्यन्त आनन्द व प्रेमसे विह्वल हो गये ॥३२॥३३॥ ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! कृष्ण और बलभद्रजी, पिता–माता (नन्द यशोदा) के गले लग कर और प्रणाम करके मुखसे कुछ भी न कह सके; प्रेमकी उमंगसे आँसू भर आये और उन आँसुओंसे कण्ठावरोध होगया। महाभागा यशोदाने पुत्रोंको गोदमें बिठा लिया और दोनो हाथोंसे हृदयसे लगा कर चिरविरह-तापसे तपे हुए हृदयको शीतल किया। यशोदाके सब शोक मिट गये। इसके

उपरान्त देवी रोहिणी और देवकीजी व्रजरानीसे मिल-भेंट कर उनकी की हुई मित्रताको याद करती हुई गद्गद स्वरसे कहने लगीं कि-"हे व्रजकी स्वामिनी! तुम्हारे किये हुए मित्रता और स्नेहके व्यवहारको कौन स्त्री भूल सक्ती है? इन्द्रके तुल्य ऐश्वर्य्यको पाकर भी तुम्हारे व्यवहार और उपकारका बदला नहीं चुकाया जासक्ता। ये दोनो बालक तुमको ही अपना पिता और माता समझते थे। जैसे पलकें दोनो नेत्रोंकी सब प्रकार रक्षा करती हैं, वैसेही अपने पुत्रसे भी बढ़ कर स्नेहसे, तुमने, इन अपने पिता-माताके द्वारा तुमको सौंपे गये बालकोंका भली भाँति पालन और पोषण किया। तुम साधुजन हो; साधुजनोंको, यह अपना है यह पराया है, ऐसा भेदभाव नहीं होता। तुमने प्रीतिपूर्वक इनकी रक्षा की और ये अकुतोभय रहकर इस अभ्युदयको प्राप्त हुए-इतने बड़े हुए" ॥ ३५-३९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! बहुत दिनोंके बाद गोपियोंको श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए। गोपियाँ, अपने एकमात्र अभीष्ट कृष्णके दर्शनमें पलकोंको विघ्न डालते देख, उन पलकोंके बनानेवाले ब्रह्माको दोष देती हुई बुरा-भला कहने लगीं, क्योंकि उनको उस समय पलकका झपकना भी असह्य कष्टदायक जान पड़ता था। गोपियाँ, बहुत दिनोंके बाद दुर्लभ कृष्णचन्द्रको नेत्रमार्गसे हृदयमें बिठला कर, इस प्रकार मनके द्वारा मिल कर, प्रियके प्रेममें मग्न और गद्गद हो गईं। ऐसी दशाको प्राप्त गोपियोंसे, एकान्तमें मिल कर-हृदयसे लगा कर कृष्णचन्द्रने कुशल पूछी और मन्द २ मुसका कर मधुर स्वरसे कहा कि "हे सब सखियो! भला कभी हमको याद करती हो? हम अपने बन्धु-बान्धवोंका कार्य्य सिद्ध करने लिये तुमको छोड़ कर चले आये और हमको, शत्रुओंके नाशकी चेष्टामें तत्पर रहनेके कारण, बहुत समय बीत गया, हम फिर तुमसे मिल नहीं सके। इस कारण तुम हमको अकृतज्ञ तो नहीं समझतीं? अकृतज्ञ या निठुर जान कर मुझसे घृणा तो नहीं करती हो? निश्चय जानो कि वह अचिन्त्य सर्वशक्तिमान् भगवान् ही, सब प्राणियोंके परस्पर संयोग और वियोगका एकमात्र कारण है, मनुष्य अपनी इच्छासे कुछ नहीं कर सक्ता। देखो, जैसे वायु ही-मेघ, तृण, रुई, धूलिकण इत्यादिके संयोग और वियोगका कारण है वैसे ही सृष्टिकर्त्ता (कालरूप) ईश्वर भी, सब प्राणियोंको कभी एकत्र कर देता है और कभी उनमें परस्पर वियोग करा देता है। सुन्दरियो! प्राणीमात्रको मेरे भजनभावसे ही मुक्ति मिल सक्ती है। बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमको मेरा दुर्लभ परमप्रेम प्राप्त हुआ है, इसी प्रेमके प्रतापसे तुम मुझ (आत्मस्वरूप) को पाओगी। हे स्त्रियो! जैसे आकाश, जल, वायु, तेज और पृथ्वी, ये पञ्चतत्त्व भौतिक पदार्थोंके आदि, अन्त, मध्यमें और भीतर बाहर वर्त्तमान हैं, वैसे ही मैं भी सब प्राणियोंके आदि, अन्त, मध्यमें और भीतर, बाहर वर्तमान हूँ। इस प्रकार भौतिकत्वके अविशेषसे चतु-

विध भूतसमूह, अपने कारण जो तत्त्व हैं उनमें (कार्य्यरूपसे) वर्त्तमान हैं (भोक्ता आत्मामें नहीं हैं) और आत्मा उनमें भोक्ताके रूपसे स्थित है (इस प्रकार उनमें आत्माकी व्याप्ति है, कारणस्वरूपसे नहीं है)। ऐसा समझ कर भौतिकरूप भोग्य पदार्थ भूतोंको और उनके भोक्ता आत्माको मुझ परिपूर्ण, आधाररूप परमात्मामें प्रकाशमान देखो" ॥४०-४७॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! इस प्रकार कृष्णके श्रीमुखसे श्रेष्ठ आत्मज्ञानकी शिक्षा मिलने पर, परम प्रेमपात्र कृष्णके निरन्तर ध्यान द्वारा वासनामय लिंगशरीररूप उपाधिसे मुक्त गोपियाँ, ब्रह्मस्वरूप कृष्णचन्द्रमें तन्मय होकर कहने लगीं कि— ॥ ४८ ॥

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ॥
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहंजुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४९ ॥

'हे पद्मनाभ!' यद्यपि हम गृहस्थीके जालमें जकड़ी हैं तथापि यही माँगती हैं कि अगाधबोध योगीजन अपने हृदयमें जिनका ध्यान करते हैं एवं जो संसाररूप कूपमें पड़े हुए व्यक्तिके लिये ऊपर पहुँचानेवाला अवलम्ब हैं उन आपके लोकपावन चरणोंको हम गृहमें रह कर भी न भूलें आपके चरणकमल सदैव हमारे हृदयमें रह कर, अपने प्रकाशसे अज्ञानकृत अन्धकारको दूर करते रहें ॥ ४९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्द्धे द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितम अध्याय।

श्रीकृष्णकी रानियोंका द्रौपदीसे अपने २ विवाहका वृत्तान्त कहना।

श्रीशुक उवाच—तथानुगृह्य भगवान्गोपीनां स गुरुर्गतिः ॥
युधिष्ठिरमथापृच्छत्सर्वांश्च सुहृदोऽव्ययम् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! प्राणीमात्रके गुरू और गति भगवान् कृष्णने उक्त प्रकारके उपदेशसे गोपियों पर अनुग्रह की और फिर युधिष्ठिर आदि सब बन्धुओंसे मिलकर कुशल पूछी ॥ १ ॥ इसप्रकार भली भाँति सत्कार करके लोकनाथके कुशल पूछने पर, श्रीहरिके पतितपावन चरणोंके दर्शनसे जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं ऐसे युधिष्ठिर आदि समग्र बन्धु-बान्धवगणने परम प्रसन्न होकर कहा कि "हे प्रभो! आपके चरणकमलोंका रस, देहधारियोंके देहदायक

अज्ञानको नष्ट कर देता है। वह महत्जनोंके मनसे मुखके द्वारा निकलता है। जिन्होने कभी कानोंके द्वारा उस रसको पिया है उनके अमङ्गल कहीं रह सक्ते हैं? हम आप भक्तवत्सल भगवान्को भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं। अपनेमें स्वयंकृत जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीनो अवस्थाएँ, आपके तेजसे आपही आपसे दूर रहती हैं; अतएव आप सर्व्वानन्दमय सच्चिदानन्दघन हैं। आप अखंड अर्थात् पूर्ण हैं, क्योंकि आपकी शक्ति कभी कहीं भी कुंठित नहीं हो सक्ती। काल पाकर लुप्त हो गये वेदोंकी रक्षा करनेको योग-मायाका अवलम्बन कर आप अरूप होकर भी अनेक रूप धरते हैं। आपही परमहंस जनोंकी एकमात्र गति हैं" ॥ २-४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। हे राजन्! इधर युधिष्ठिर आदि सम्पूर्ण इष्ट मित्र बान्धवगण इस प्रकार उत्तमश्लोकशिखामणि भगवान्की स्तुति कर रहे थे, उधर यादवोंकी और कौरवोंकी स्त्रियाँ मिल कर, तीनो लोकोंमें जिनका गान होता है उन हरिचरित्रोंकी चर्चा करने लगीं। यादवों और कौरवोंकी स्त्रियोंका वह सम्वाद मैं तुमसे कहता हूँ-सुनो ॥ ५ ॥ द्रौपदीजीने कृष्णचन्द्रकी स्त्रियोंसे पूछा कि—"हे रुक्मिणी, भद्रा, जाम्बवती, सत्या, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, रोहिणी, लक्ष्मणा एवं अन्यान्य सब कृष्णचन्द्रकी प्रिय पत्नियो! स्वयं भगवान् कृष्णने मायामानवशरीरसे मनुष्योंका अनुकरण करते हुए, जिस प्रकार तुम्हारे साथ विवाह किया, सो कहो-मैं सुनना चाहती हूँ" ॥ ६ ॥ ७ ॥ **रुक्मिणीजीने कहा**। "बहन द्रौपदीजी! शिशुपालके साथ मेरा ब्याह करानेके लिये जरासन्ध आदि राजा लोगोंने धनुष धारण किया, किन्तु श्रीकृष्णचन्द्र, उन दुर्जय भट नरपतियोंके शिर पर पैर रख कर, जैसे सियारोंके झुंडसे वीर सिंह अपने भागको ले आता है वैसे ही मुझको हर लाये। उन्ही श्रीनिवासके चरणपंकज मेरे पूजनीय हैं" ॥ ८ ॥ **सत्यभामाने कहा**—"भाई प्रसेनके मरनेसे मेरे पिताको बड़ा ही सन्ताप हुआ। श्रीकृष्णचन्द्र, अपने मणिकी चोरीके कलंकको मिटानेके लिये वनमें जाकर जाम्बवान् नाम ऋक्षराजको युद्धमें परास्त करके खोई हुई मणिको उनसे ले आये। यह देख कर अपने किये अपराधके कारण भयभीत और चिन्तित मेरे पिताने, यद्यपि मैं अन्य किसीको वाग्दत्ता हो चुकी थी, तथापि, उस अमूल्यमणिसहित मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया" ॥ ९ ॥ **जाम्बवतीने कहा**—"श्रीकृष्णचन्द्रको न पहचाननेके कारण पहले तो मेरे पिता जाम्बवान्ने उनसे सत्ताईस दिनों तक घोर युद्ध किया, परन्तु पीछेसे उनके असीम पराक्रमको देख कर जान गये कि यह मेरे स्वामी ईश्वर सीतापति हैं। तब चरणों पर गिर कर पिताने पूजोपहारस्वरूप मणिसहित मुझे कृष्णचन्द्रको अर्पण कर दिया। इस प्रकार प्रभुकी दासी होनेका सौभाग्य मुझको प्राप्त हुआ" ॥ १० ॥ **कालिन्दीने कहा**—"अपने सखा अर्जुनके द्वारा मुझको अपने चरण-

कमलके स्पर्शकी आशासे तप करनेमें तत्पर जान कर, भगवान् कृष्णचन्द्र, मेरे निकट गये और वहाँसे लाकर पाणिग्रहण किया। मैं उनके भवनको बहारनेवाली एक दासी हूँ" ॥ ११ ॥ **भद्राने कहा**—"श्रीनिवास श्रीकृष्ण स्वयं मेरे स्वयंवरमें गये और कुत्तोंके झुंडके बीचसे सिंह जैसे अपने भागको लेकर चला आता है वैसे विपक्ष राजोंको और विघ्न डालनेके लिये उद्यत मेरे भाइयोंको जीतकर उनके बीचसे मुझको ले आये। मेरी यही अभिलाषा है कि मैं सदैव जन्मजन्मान्तरमें इसी प्रकार उनके चरणोंकी दासी हुआ करूँ" ॥ १२ ॥ **सत्याने कहा**—"मेरे पिताने राजोंके बलकी परीक्षा करनेके लिये सात तीक्ष्ण सींगोंवाले हृष्ट, पुष्ट, बलिष्ठ बैल पाल कर उनको नाथनेवाले कुमारके साथ मुझे ब्याहनेकी प्रतिज्ञा कर रक्खी थी। भगवान् कृष्णचन्द्रने जाकर, जैसे कोई बालक बकरियोंको वशमें करले वैसेही उन वीरोंके घमंडको मिटानेवाले बली बैलोंको सहजही बलपूर्वक नाथ दिया एवं इस प्रकार वीर्य्यरूप मूल्य देकर और मार्गमें मेरे लिये लड़नेवाले राजोंको परास्त करके चतुरंगिणी सेना तथा दासीगणसहित मुझको ब्याहलाये। मैं यही चाहती हूँ कि चिरकाल तक उनकी दासी रहूँ" ॥ १३ ॥ १४ ॥ **मित्रविन्दाने कहा**—"द्रौपदीजी! मेरे चित्तको श्रीकृष्ण पर अनुरक्त जान कर, पिताने आपही मातुलपुत्र श्रीकृष्णचन्द्रको बुलाकर उनके साथ प्रीतिपूर्वक मेरा बिवाह कर दिया और यौतुकमें एक अक्षौहिणी सेना, दासियाँ एवं बहुत सा धन दिया। कर्मवश संसारके बीच अनेक योनियोंमें यह जीव घूमता रहता है; इस कारण मिलनेवाले प्रत्येक जन्ममें, मैं, ऐसेही हरिचरणोंके मङ्गलकारी स्पर्शको पाऊँ—मेरी यही अभिलाषा है" ॥ १५ ॥ १६ ॥ **लक्ष्मणाने कहा**—हे रानी! श्रीनारदके मुखसे हरिके जन्मकर्मविषयक चरित्रोंको वारम्वार सुननेके कारण मेरा भी मन, अपने पानेकी लालसा रखनेवाले बड़े २ लोकपालोंको छोड़कर कृष्णके चरणकमलोंका भ्रमर बन गया। हे साध्वी! भलीभाँति देख भाल कर और सोच समझ कर देवी लक्ष्मीने जिनको अपना पति बनाया है उनकी दासी होनेके लिये मेरा चित्त अत्यन्त उत्सुक हुआ। मेरे पिता बृहत्सेन मुझको बहुत चाहते थे, अतएव मेरे अभिमतको जान कर, उसके सिद्ध होनेके लिये उन्होने एक उपाय किया। रानी! जैसे तुम्हारे स्वयम्वरमें 'अर्जुनही तुम्हारे पति हों' इस विचारसे मत्स्यरचना की गई थी, वैसीही मत्स्यरचना मेरे स्वयम्वरमें भी की गई। परन्तु मेरे स्वयम्वरमें इतना विशेष था कि जिस खंभे पर मत्स्य था उसके नीचे एक कलशमें जल भरा रक्खा था। उस कलशके जलमें मत्स्यका प्रतिबिम्ब देख पड़ता था, अतएव दृष्टिको नीचे करके ऊपर मत्स्यको बेधना था। यह एक प्रकार असंभव कार्य्य कृष्णचन्द्रके सिवा अवश्य ही और सबकी शक्तिसे बाहर था। मेरे स्वयम्वरके वृत्तान्तको सुन कर सब प्रकारकी अस्त्रशस्त्र-विद्याके तत्त्वको

भली भाँति जाननेवाले हजारों राजकुमार अपने २ आचार्य्योंके साथ दूर २ से मेरे पिताके नगरमें आने लगे। वीर्य्य और अवस्थाके अनुसार मेरे पिताने सबका यथोचित सत्कार और पूजन किया। नियत समय पर मेरे पानेकी लालसासे सब राजकुमारोंने सभास्थलमें आकर लक्ष्यभेदके लिये रक्खे हुए धनुष और बाणको क्रमशः हाथमें लिया। किसीने धनुष उठा लिया, परन्तु उस पर डोरी न चढ़ा सकनेके कारण वैसे ही रख दिया, कोई किनारे तक डोरीको ले गये परन्तु धनुषके खिँचावको सँभाल न सके और उस धनुषके ही आघातसे पृथ्वी पर गिरकर अचेत हो गये। इसी प्रकार मगध, अम्बष्ठ और चेदि देशके नरेश तथा अन्यान्य सब वीर एवं भीम, कर्ण और दुर्य्योधन भी धनुष पर डोरी चढ़ा कर मत्स्यकी स्थितिको न जान सके, अतएव धनुष रख कर बैठ गये। तब तुम्हारे पति वीरवर अर्जुनने जलमें मत्स्यकी छाया देख, मत्स्यकी स्थितिको जानकर सावधानतासे बाण चलाया, परन्तु बाण उस मत्स्यको काट न सका, केवल स्पर्श करता हुआ लौट आया। इस प्रकार जब सब क्षत्रियगण लक्ष्यभेदमें असमर्थ हुए और सब मानियोंके मान भग्न हो गये, तब भगवान् कृष्णचन्द्रने उठ कर धनुष और बाण हाथमें लिया एवं लीलापूर्वक धनुषको तानकर उसमें बाण चढ़ाकर केवल एक बार जलमें मत्स्यके प्रतिबिंबको देखा और अभिजित् मुहूर्त्तमें बाणसे मत्स्यको काट कर पृथ्वी पर गिरा दिया। उस समय स्वर्गमें नगाड़े बजने लगे, देवतालोग परम प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षा करने लगे। तब श्रेष्ठ रेशमी नवीन वस्त्र और सुवर्णकी उज्ज्वल माला आदि अलंकारोंसे अलंकृत हो कर, हाथमें जयमाला लिये, नूपुरोंकी मधुर ध्वनि करती हुई, मैं, अन्तःपुरसे निकलकर स्वयम्वरकी सभामें गई। मेरी वेणीमें गूँथी गई सुगंधित फूलोंकी माला और मुखमण्डलमें लज्जापूर्ण मंद हँसी, अमल कपोलों पर पड़ रही रत्नकुण्डलोंकी झलक, देखनेवालोंके चित्तको चञ्चल कर रही थी। मैंने मुख उठाकर एक बार चारो ओर देखा और हास्ययुक्त स्नेहपूर्ण अतृप्त दृष्टिसे अपने प्रेमपात्र हरिको देखकर उनके गलेमें जयमाला डाल दी ॥ १७—२९ ॥ उसी समय मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी, ढोल आदि बाजे बजने लगे, नट और नर्त्तकी और गानेवाले नाचने और गाने बजाने लगे। द्रौपदीजी! जब मैंने इस प्रकार कृष्ण भगवान्को अपना स्वामी बनाया तब कामपीड़ित बड़े २ राजयूथपति स्पर्द्धावश मुझे बलपूर्वक लेजानेका उद्योग करने लगे। तब कवचधारी कृष्णने रथ पर मुझको बिठालिया और चतुर्भुज हो कर दो भुजाओंसे मुझको सँभाला एवं दो भुजाओंसे शार्ङ्ग धनुष लेकर उन राजोंको ललकारा। दारुक सारथी, काञ्चनभूषित रथको उन राजोंके बीचसे लेकर निकला। जैसे मृगोंके बीचसे मृगराज सिंह निकलता है वैसे ही कृष्णचन्द्र राजोंके बीचसे निकल गये और वे ताकते ही रह गये। रथ निकल जाने पर भी कुछ

राजोंने पीछा किया और कुत्ते जैसे सिंहको रोकना चाहें उस प्रकार कुछ नरपतियोंने आगे बढ़ कर–धनुष चढ़ा कर रोकना चाहा। उनमेंसे कुछ तो शार्ङ्ग धनुषसे छूटे हुए वाणोंके प्रहारसे सदाके लिये युद्धभूमिमें सोगये और कुछके बाहु-पैर आदि अंग कट–फट गये और वे युद्धभूमिसे अपने प्राण ले २ कर भागे ॥ ३०—३५ ॥ तदुपरान्त जैसे सूर्य्यनारायण अस्ताचलमें पहुँचते हैं उस प्रकार कृष्णचन्द्रनेभी, विविध वर्णकी ध्वजा, पताका और कृत्रिम पुष्प–पटनिर्मित द्वारों (फाटकों) से भली भाँति सजीगई और स्वर्गवासी तथा पृथ्वीवासी लोगोंके द्वारा प्रशंसाको प्राप्त अपनी द्वारका नगरीमें प्रवेश किया। मेरे बिवाहमें मेरे पिताने आये हुए सुहृद्, सम्बन्धी और बन्धु–बान्धवोंको महामूल्य वस्त्र, अलङ्कार, शय्या, आसन और अन्यान्य सामग्रियोंसे सन्तुष्ट किया एवं सब प्रकार परिपूर्ण भगवान् कृष्णको, भक्तिसहित यौतुकस्वरूप अनेकों दासियाँ, सब प्रकारकी सम्पत्ति और सेना, हाथी, घोड़े एवं महामूल्य अस्त्र–शस्त्र दिये। रानी! इस प्रकार सबके संगको छोड़ कर अर्थात् एकान्त अनुरागसे एवं अपने धर्म्मका पालन करनेसे हम सब, आत्माराम पूर्णकाम–घनश्यामकी साक्षात् गृहदासी हुई हैं" ॥ ३६—३९ ॥ अन्य सोलह सहस्र एक सौ रानियोंने कहा—"रानी! कृष्णचन्द्रने दलबलसहित भौमासुरको मार कर जब जाना कि भौमासुर दुष्टने दिग्विजयमें अनेकानेक राजोंको जीत कर उनकी कन्याओंको बलपूर्वक लाकर बिवाह करनेके लिये अन्तःपुरमें बंद कर रक्खा है, तब अन्तःपुरमें जाकर हमको उस कष्टसे छुड़ाया एवं स्वयं पूर्णकाम होकर भी, संसारसे छुड़ानेवाले अपने चरण-कमलोंको पानेकी लालसा रखनेवाली हम सब कामिनियोंको अपने चरणोंकी दासी बना लिया। रानी! हमको पृथ्वीमण्डलमात्रके साम्राज्य, इन्द्रके पद, भौज्यपद, अणिमादि सिद्धि, ब्रह्माके पद, मोक्ष और हरिके पद वैकुण्ठकी भी कामना नहीं है। हम केवल यही चाहती हैं कि इसी प्रकार सदा गदाधरके कमलाकुचकुंकुम-गन्धयुक्त चरणोंकी रजको मस्तकमें लगाती रहें। नदीतट पर गौवें चराते समय व्रजवनितावृंद, वनके तृणनिचय और गोपगण, जिसको पाकर कृतार्थ हुए, हम उसी महात्मा कृष्णचन्द्रके कमला-कुच-कुङ्कुम-गन्धयुक्त चरणोंकी रजको मस्तकमें लगा कर कृतार्थ होती रहें ॥ ४०–४२ ॥

व्रजस्त्रियो यद्वाञ्छन्ति पुलिन्द्यस्तृणवीरुधः ॥
गावश्चारयतो गोपाः पादस्पर्शं महात्मनः ॥ ४३ ॥

नदीतटपर गौवें चराते समय उत्कण्ठित व्रजवनिताएँ, वनके तृणनिचय और साथी गोपगण जिसको पाकर कृतार्थ हुए—हम, महात्मा कृष्णचन्द्रके उसी चरण-स्पर्शकी कामना करती हैं" ॥ ४३ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितम अध्याय ।

वसुदेवके यज्ञके महा उत्सवकी कथाका वर्णन ।

श्रीशुक उवाच-श्रुत्वा पृथा सुबलपुत्र्यथ याज्ञसेनी
माधव्यथ क्षितिपपत्न्य उत स्वगोप्यः ॥
कृष्णेऽखिलात्मनि हरौ प्रणयानुबन्धं
सर्वा विसिस्म्युरलमश्रुकलाकुलाक्ष्यः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं । हे राजन् ! कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा एवं अन्यान्य राजा लोगोंकी स्त्रियोंको और कृष्णको अनन्य भावसे भजनेवाली गोपियोंको भी कृष्णपत्नियोंका कृष्णके प्रति ऐसा अपूर्व अनुराग देख-सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ; उनके नेत्रकमल आनन्दके आँसुओंसे पूर्ण होगये ॥ १ ॥ इस प्रकार स्त्रियाँ स्त्रियोंसे और पुरुष पुरुषोंसे मिलकर वार्तालाप कर रहे थे-इसी अवसर पर भगवान् कृष्ण और बलभद्रको देखनेके लिये द्वैपायन वेदव्यास, नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, भरद्वाज, गौतम, परशुराम, शिष्यगणसहित भगवान् वशिष्ठ, गालव, भृगु, पुलस्त्य, कश्यप, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्माके पुत्र सनकादिक, अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य एवं वामदेव आदि श्रेष्ठ २ महर्षिगण वहाँ आकर उपस्थित हुए । पहलेसे बैठे हुए राजालोग, यादवलोग, पाण्डव कौरव और श्रीकृष्ण व बलरामजी, उन विश्ववंदित ऋषियोंको आते देखकर उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर प्रणाम किया । सबने उन ऋषियोंका यथायोग्य आदर और सत्कार किया और कृष्ण व बलभद्रने कुशल पूछकर स्वागत करके पाद्य, अर्घ्य, माला चन्दन और धूप-दीप आदिसे पूजन किया । इसके उपरान्त जब सब ऋषिगण अपने २ आसनों पर सुखसे बैठे तब धर्मरक्षक भगवान् उनसे यों कहने लगे और उस सभामें बैठे हुए सब लोग चुपचाप कृष्णके कथनको सुनने लगे ॥ २-८ ॥ **भगवान्ने कहा ।** "अहो ! आज हमारा जन्म सफल हुआ; आज देवतोंको भी दुर्लभ आपके दर्शनोंको पाकर हमारा जीवन सफल होगया । केवल प्रतिमाको ही देवरूपसे देखनेवाले भेदभावपूर्ण, स्वल्प अर्थात् तुच्छ तपमें तत्पर मनुष्योंको आप ऐसे योगीश्वरोंके दर्शन, स्पर्श, पूजन, प्रणाम, चरण-सेवन आदि और आपसे बातचीत करनेका सौभाग्य प्राप्त होना अत्यन्त कठिन ही नहीं, बरन् एक प्रकारसे असंभव सा है । वास्तवमें जलमय तीर्थ और मट्टी व पत्थरकी बनी प्रतिमाएँ तीर्थ या देवता नहीं हैं । और यदि उनको तीर्थ या देवता मान भी लें तो वे बहुत समय तक सेवा करने पर कहीं पवित्र करते हैं, परन्तु साधुओंके दर्शनसे ही शरीर और आत्मा शुद्ध हो जाता

है; अतएव सच्चे तीर्थ और देवता साधुलोग ही हैं। भेदभावनासे उपासित अग्नि, सूर्य, चन्द्र, तारागण, पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं वाक्य और मन आदिक अज्ञानको नहीं मिटासक्ते; किन्तु मुहूर्त भर भी साधुसेवा या सत्सङ्ग करनेसे तत्क्षण सब अज्ञान मिट जाता है। जो लोग साधुओंको आत्मा, आत्मीय, देवता और तीर्थ न समझकर बात, पित्त, श्लेष्मा इन तीन धातुओंसे रचित अर्थात् इन प्रकृतियोंसे परिपूर्ण स्वप्नसमान शरीरको आत्मा और भार्य्या आदिको आत्मीय तथा पार्थिव पदार्थोंसे निर्मित प्रतिमाओंको देवता एवं जलपूर्ण स्थानोंको तीर्थ समझते हैं वे पूरे बोझ ढोनेवाले गधे हैं, उनसे बढ़कर कोई बे-समझ नहीं है, उनको तनिक भी बिवेक नहीं है" ॥९-१३॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन् जिनकी बुद्धि किसी विषयमें, कहीं कुण्ठित नहीं है उन महापुरुष कृष्णके मुखसे ऐसे गूढ़ और अपूर्व वाक्य सुन कर कुछ देर तक तो वे ऋषिगण कुछ भी न कहसके; साधारण लोगोंके समान अपनेको भी धर्मके नियमोंको पालनेके लिये बिवश सा जतानेवाले भगवान्के इन वाक्योंका अर्थ लगानेमें या यों कहो कि समझनेमें उन महाज्ञानी महामुनियोंकी सूक्ष्म बुद्धि भी चकित सी होगई! थोड़ी देरतक विचार करने पर ऋषियोंने जाना कि भगवान् स्वयं परमेश्वर, धर्मके बनानेवाले होकर भी औरोंको धर्मका उपदेश करनेके लिये ऐसा कह रहे हैं। तब हँस कर ऋषियोंने जगद्गुरु कृष्णचन्द्रसे कहा कि-"हमलोग परमार्थके जाननेवाले अर्थात् तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, और जिन्होने विश्वकी सृष्टि की है उन प्रजापतियोंके भी अधीश्वर हैं, तथापि जिसकी मायामें मोहित हो रहे हैं वही परमेश्वर आप मायामानवरूपमें छिपे हुए साधारण मनुष्योंके ऐसे आचरण कर रहे हैं। अहो! भगवन्! आपकी चेष्टा अचिन्त्य है, आप क्या करते हैं या क्या करना चाहते हैं, सो कोई नहीं समझ सक्ता। प्रभो! अपनेही विकार जो घड़ा, सकोरा, दीपक, कुल्हड़ आदि हैं उनके द्वारा अनेक नाम और रूपोंको प्राप्त (किन्तु वास्तवमें एकही) पृथ्वीके समान आप भी स्वयं एकमात्र और अकर्म्मा होने पर भी अनेक प्रकारसे इस जगत्की सृष्टि, पालन और प्रलय करते रहते हैं किन्तु तब भी निर्लिप्त अर्थात् संसारके बन्धनसे मुक्त हैं। आप परिपूर्ण परमेश्वर हैं, आपके जन्म, कर्म केवल अनुकरणमात्र हैं। अपने जनोंकी रक्षाके साथ ही दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये ही आप सर्वदा समय २ पर शुद्धसत्त्वमूर्तिसे प्रकट हुआ करते हैं। आप ही सनातन वर्णाश्रमधर्मके चलानेवाले परम पुरुष हैं, अतएव अपनी लीलाओंसे उस वर्णाश्रमधर्ममय वेदमार्गका पालन किया करते हैं। तप, स्वाध्याय और संयमके द्वारा जिसमें कार्य्य, कारण और उन दोनोसे परे सच्चिदानन्दघन ब्रह्मकी उपलब्धि होती है वही वेदनामक शब्दब्रह्म आपका शुद्ध हृदय अर्थात् अन्तरङ्गरूप है। ब्रह्मन्! इस कारण आप शास्त्रयोनि अर्थात् सब शास्त्रोंकी उत्प-

त्तिका आधार कहलाते हैं और इसीसे अपने सत्धाम अर्थात् उपलब्धिका स्थान जो ब्राह्मणगण हैं उनका इतना आदर सत्कार और पूजन करते हैं। आप ब्रह्मभक्त लोगोंमें अग्रगण्य ब्रह्मण्यदेव और परममङ्गलमय अर्थात् सब कल्याणोंकी अन्तिम अवधि एवं सज्जनोंकी एकमात्र गति हैं; अतएव आज आपसे मिलनेसे हमारी विद्या, तपस्या, दृष्टि (ज्ञानदृष्टि व साधारण दृष्टि) और जन्म, सब सफल हो गया। अपनी ही योगमायासे जिनकी महिमा ढँकी हुई है, जिनकी मेधा (बुद्धि या ज्ञान) अकुण्ठित है, पासही रहनेवाले राजालोग और यादवलोग भी मायारूप यवनिकामें छिपेहुए होनेके कारण जिनके यथार्थ रूपको नहीं जानते उन्ही कालस्वरूप (सृष्टि आदिके कारण) ईश्वर (नियन्ता) कृष्णचन्द्रको प्रणाम है। ब्रह्मन्! जैसे निद्रित होकर स्वप्न देख रहा पुरुष, स्वप्नमें दिखाई देनेवाले विषयोंको सत्य मानता हुआ, उस समय मन और इन्द्रियोंके द्वारा, स्वप्नदृष्ट अपने राजा रंक या सिंह, व्याघ्र आदि रूपोंको सत्य समझता है, और वास्तवमें जो उसका नाम या रूप है उसको भूल जाता है, वैसेही मायामें मोहित ये सब जीव, मायाके प्रभावसे विवेक अर्थात् अपने रूपकी स्मृति अस्त होजानेके कारण आपको नहीं जानपाते। स्वप्नदृष्ट पदार्थोंके समान अनित्य विषयोंमें इन्द्रियोंकी प्रवृत्ति या रुचि-होना ही माया है। भगवन्! आज हमको आपके उन्ही पापपुंजविनाशन चरणकमलोंके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जिनको सुनिपुण योगीजन चिरकालके योगाभ्याससे विशुद्ध होरहे हृदयमें स्थापित करके भजते हैं और जिनसे पतितपावनी गंगा निकली हैं। नाथ! हमको अनुग्रह करके अपने चरणोंकी भक्ति दीजिये। क्योंकि निरन्तर बढ़ रही आपके चरणोंकी भक्तिसे जिनका वासनामय जीवकोष अर्थात् लिङ्गशरीर नष्ट होगया है वे निष्काम भक्तजन ही आपकी गतिको पाते हैं" ॥ १४–२६ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! इसप्रकार स्तुति और प्रार्थना करनेके उपरान्त श्रीकृष्ण, धृतराष्ट्र और युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर सब ऋषिलोग अपने २ आश्रमको जानेके लिये उद्यत हुए। ऋषियोंको जानेके लिये उद्यत देखकर महायशस्वी वसुदेवजी उठकर उनके निकट गये और विनयपूर्वक प्रणाम करनेके उपरान्त पैर पकड़ कर कहने लगे कि–"हे महात्मा ऋषिगण! श्रुतियोंमें कहा है कि वेदपाठी ब्राह्मणमें सब देवता रहते हैं, इस कारण आपलोग सर्वदेवमय हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे महर्षियो! आप लोग कृपा करके ऐसा कोई कर्म बताइये जिसके करनेसे कर्मोंका क्षय हो (अर्थात् मोक्ष मिले)। इस विषयको सुनने और जाननेके लिये मैं बहुत ही उत्सुक हो रहा हूँ" ॥ २७ ॥ ॥ २८ ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णको छोड़कर अपनेसे इस प्रकारका प्रश्न करते वसुदेवको देखकर मुनियोंको विस्मय हुआ। तब नारदजीने कहा कि–"हे महानुभाव महर्षि-

गण ! वसुदेवजी जो कृष्णभगवान्‌को बालक समझकर अपने कल्याणकी बात हमसे पूछते हैं सो कुछ आश्चर्य्य नहीं है । निकटकी उत्तम वस्तुका भी लोग उतना आदर नहीं करते । देखो गंगाके निकट रहनेवाले लोग, शुद्धिकी कामनासे, गंगाको छोड़कर दूरदेशके जलाशय अर्थात् तीर्थमें स्नान करने जाते हैं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ इस विश्वकी सृष्टि, पालन और संहारसे या कालके प्रभावसे अथवा आपही या दूसरेके द्वारा या गुण आदिसे, किसी प्रकारसे इन परमेश्वररूप कृष्णका ज्ञान खंडित वा नष्ट नहीं होता, सर्वदा अखंड, एकरूप रहता है, किन्तु जैसे, लोग, सूर्य्यके ही कार्य्य जो हिम, उपराग (ग्रहण), मेघ आदि हैं उनसे सूर्य्यको आच्छन्न (छिपा हुआ या ढँकाहुआ) समझते हैं, वैसेही ज्ञानहीन साधारण लोग, अप्रतिहत ज्ञानसम्पन्न अद्वितीय ईश्वरको, उसीके कार्य्य जो क्लेश (क्रोध, काम आदि), कर्म, कर्मोंके (सुख-दुःखरूप) फल, गुणप्रवाह और प्राण आदि हैं उनसे आवृत समझते हैं (अर्थात् अविवेकवश जो ये कृष्णके सम्बन्धी वसुदेव आदि, साक्षात् परमेश्वर कृष्णको अपनेही समान साधारण मनुष्य समझते हैं सो कोई विस्मयकी बात नहीं है, यह मायाकृत मोहकी महिमा है)" ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ तदनन्तर उन मुनियोंने सब राजोंके सुनते हुए कृष्ण, बलभद्रके आगे वसुदेवजीसे कहा कि–"हे महाभाग ! कर्मक्षय करनेवाला यही एक साधुजनोंका बताया हुआ उत्तम कर्म है कि निष्काम होकर श्रद्धापूर्वक सब यज्ञोंके ईश्वर यज्ञपुरुष भगवान् विष्णुकी विविध यज्ञोंसे आराधना करे । कर्मबन्धनसे छुड़ानेवाला यही एक सर्वोपरि उत्तम उपाय है । शास्त्ररूप आँखोंसे देखनेवाले पण्डितोंने विचार करके यही एक चित्तको शान्ति और आत्माको आनन्द देनेवाला, मोक्षका सुगम उपाय और परम धर्म बतलाया है । गृहस्थ द्विजातिके लिये यही मार्ग मङ्गलकारी है कि वह शुद्धचित्तसे श्रद्धापूर्वक अर्थात् निष्काम होकर परम पुरुषका पूजन और भजन करे । हे वसुदेव ! ज्ञानीको चाहिये कि यज्ञ और दानसे धनसम्पत्तिकी इच्छाको, गृहस्थाश्रमके भोगोंसे स्त्री-पुत्र आदिकी इच्छाको एवं कालके अनुसन्धानसे स्वर्गादि लोकोंके पानेकी इच्छाको छोड़ दे ॥ ३४–३८ ॥ सम्पूर्ण धीर लोगोंने पहले गृहस्थाश्रममें रहकर पूर्वोक्त रीतिसे विषयवासनाओंको छोड़ दिया और फिर तपोवनमें जाकर तप किया है । यही सनातन प्रथा है । वसुदेवजी ! जन्मसे ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनो वर्ण, देवता ऋषि और पितृगणके ऋणी होते हैं । जो द्विजाति—वेदाध्ययन, पुत्रोत्पादन और यज्ञके द्वारा इन तीनो ऋणोंको बिना चुकाये मोक्षकी चेष्टा करता है वह पतित होता है । हे महाभाग ! आप पुत्र उत्पन्न करके पितरोंके ऋणसे और वेदाध्ययन या ब्रह्मचर्य करके ऋषियोंके ऋणसे मुक्त हो चुके हैं; अब यज्ञके द्वारा देवतोंके ऋणसे मुक्त होकर गृहाश्रमको छोड़िये । हे वसुदेव ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि आपने

परम भक्तिसे जगदीश्वर हरिकी आराधना की है, जिसके कारण साक्षात् भगवान् आपके पुत्र हुए हैं। अर्थात् यह क्रम तो जिनका चित्त शुद्ध नहीं हुआ उनके लिये है, और आप तो कृतार्थ हो चुके हैं, तथापि लोकाचारके लिये आपको यज्ञ-करना चाहिये" ॥ ३९—४१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज ! महा-मनस्वी वसुदेवने मुनियोंके कथनको सुन कर चरणों पर शिर रखकर उनको प्रणाम किया और इस प्रकार प्रसन्न करके यज्ञकी इच्छा प्रकट करते हुए ऋत्विक् बननेके लिये उनसे प्रार्थना की। धर्मपूर्वक किये गये वसुदेवके वरणको उन मुनियोंने स्वीकृत किया और उसी उत्तम क्षेत्रमें धार्मिक वसुदेवको यज्ञकी दीक्षा देकर उत्तम सामग्रीसे सम्पन्न यज्ञका आरम्भ कराया। राजन्! वसुदेवजीने इस प्रकार यज्ञकी दीक्षा ली। उस समय यादव लोग और अन्यान्य राजालोग स्नान किये सुन्दर वस्त्र, कमलोंकी माला और अनेक अमूल्य अलंकार पहने यज्ञमण्डपमें आकर उपस्थित हुए। कंठस्थित सुवर्णनिर्मित पदक आदि आभूषणोंसे सुशोभित और सुन्दर वस्त्र पहने एवं हाथमें पूजाकी सामग्री लिये उनकी रानियाँ भी यज्ञ देखनेके यज्ञमण्डपमें आईं ॥ ४२—४५ ॥ उस समय मृदङ्ग, पटह, शंख, भेरी और ढोल आदि बाजे बजने लगे, नटलोग अपनी कलाएँ दिखाने लगे, वेश्याएँ नाचने लगीं, सूत-मागध-बंदीजन स्तुति करने लगे और कोमल-मधुर कंठ-वाली गन्धर्वोंकी स्त्रियाँ अपने पतियोंसहित गाने-बजाने लगीं। तदनन्तर वसुदे-वजीने अट्ठारह पत्नियों सहित देहमें उबटना लगवाया, और ऋत्विजोंने उनको विधिपर्वक मंत्र पढ़कर पवित्र जलसे स्नान कराया। उस समय दुकूल, बलय, हार, कुण्डल, नूपुर आदि पहने, भली भाँति शृंगार किये अट्ठारहो पत्नियोंसहित यज्ञकी दीक्षा लेकर कृष्णाजिनपर बैठे हुए वसुदेवजी, तारागणके बीचमें विराजमान पूर्ण चन्द्रमाके समान सुशोभित हुए। महाराज ! वसुदेवके यज्ञमें नवीन रेशमी पीताम्बर पहने हुए सदस्यगणसहित ऋत्विक्गण, इन्द्रके यज्ञके ऋत्विजोंके समान अपने २ आसनपर विराजमान हुए। उस यज्ञमण्डपमें अपने इष्ट, मित्र, बन्धु बान्धव एवं सपत्नीक पुत्र और पौत्रोंसे परिवृत कृष्णचन्द्र तथा बलभद्रजी—अपनी विभूतियोंसे परिवृत जीवात्मा और परमात्माके समान शोभायमान हुए। ऋत्विजोंने वसुदेवसे प्रत्येक यज्ञमें अग्निहोत्र आदि लक्षणोंसे युक्त ज्योतिष्टोम, दर्श, पौर्णमास आदि प्राकृत और शौर्यसत्र आदि वैकृत यज्ञ-विधिसे द्रव्य (पुरोडाश आदि), ज्ञान (मंत्र) और कर्मोंके ईश्वर विष्णुका पूजन कराया ॥ ४६—५१ ॥ तदनन्तर वसुदेवजीने उचित समय पर वेदोक्त विधिके अनुसार ब्राह्मणोंका पूजन किया और उनको दक्षिणामें गऊ, भूमि, सुन्दरी कन्या, वस्त्र, अलंकार और महामूल्य रत्न आदि धन देकर सन्तुष्ट किया। उन महर्षियोंने यज्ञके अन्तमें पत्नीसंयाज और अवभृथ स्नानके

सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मोंको पूर्ण करके यजमानसहित स्यमन्तपञ्चक नाम परशुरामके बनाये पवित्र सरोवरोंमें स्नान किया। इस प्रकार स्नान करके सुन्दर वस्त्र और अलंकारोंसे अलंकृत वसुदेवजीने सूत, मागध, बंदीजनोंको अनेक वस्त्र, अलंकार और सुन्दरी स्त्रियाँ देकर एवं दीन, अंधे, भूखे, नंगे मनुष्योंसे लेकर कुत्तों तकको अन्न, वस्त्र आदि देकर तृप्त और सन्तुष्ट किया। फिर वसुदेवने हाथी, घोड़ा, रथ आदि सामग्री देकर प्रेमपूर्ण वार्तालाप करके स्त्री-पुत्र-सहित बन्धुबान्धवोंको प्रसन्न किया और अपने इष्ट मित्र संबंधी विदर्भ, कोशल, कुरु, काशी, केकय और सृंजय आदि देशोंके नरेशोंको, सदस्य और ऋत्विजोंको एवं देवता, मनुष्य, भूतगण, पितृगण तथा चारण आदिको विधिपूर्वक पूजन करके सन्तुष्ट किया। ये सब लोग कृष्णसे आज्ञा लेकर यज्ञकी प्रशंसा करते हुए अपने २ घरको गये। वसुदेवके द्वारा भली भाँति पूजित धृतराष्ट्र, विदुर, पाँचो पाण्डव, भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नारद, भगवान् वेदव्यास और अन्यान्य सुहृद्, सम्बन्धी एवं बान्धवगण भी अपने बन्धु यादवोंसे मिल भेंट कर स्नेहवश बन्धुवियोगसे व्याकुल और खिन्न होकर अपने २ देशको चले। और २ लोग भी सब चले गये। किन्तु बन्धुवत्सल नन्दजी, श्रीकृष्ण, बलभद्र, उग्रसेन और वसुदेव आदि सुहृद्जनोंके आदरसहित पूजनको स्वीकृत करके उनके अनुरोधसे उनकी प्रसन्नताके लिये गोप-गोपियोंसहित कुछ समय तक वहीं टिके रहे ॥ ५२—५९ ॥ शीघ्र ही मनोरथरूप महासागरके पार पहुँचकर बन्धुगणसहित वसुदेवजीने प्रसन्नतापूर्वक हाथ पकड़कर नंदजीसे कहा कि—"भाई! ईश्वरकृत स्नेहरूपी पाशसे छूटना मनुष्योंके लिये अत्यन्त कठिन है। वीरलोग बलसे और योगी लोग ज्ञानसे भी इस सुदृढ़ स्नेहबंधनको नहीं काट पाते। नन्दजी! आप परोपकारी साधुजनोंमें अग्रगण्य हैं और हम अत्यन्त अकृतज्ञ हैं। आपने जो हमारे साथ मित्रताका अनुपम व्यवहार किया है उसका बदला यद्यपि हम नहीं देसक्ते तथापि वह निष्फल न होगा (अर्थात् उसका बदला आपको ईश्वरसे मिलेगा)। भाई! पहले हम असमर्थ होनेके कारण आपको प्रसन्न नहीं कर सके और इस समय भी सौभाग्यके मदसे विवेकरूप दृष्टिके नष्ट होनेके कारण आँखोंके आगे अवस्थित होनेपर भी आप ऐसे उपकार करनेवाले साधुओंको नहीं देख पाते। हे व्रजराज! हमतो यही कहते हैं जिस राज्यलक्ष्मीके होनेसे मदान्ध होकर, लोग अपने बन्धु, बान्धव और स्वजनोंको भी भूल जाते हैं वह राज्यलक्ष्मी, मङ्गलकी कामना करनेवाले पुरुषको कभी न प्राप्त हो" ॥६०—६४॥ यों कहते २ नन्दजीकी मित्रता अर्थात् उपकारका स्मरण हो आनेसे वसुदेवजीका शरीर शिथिल हो गया और वह प्रेमसे विह्वल हो आँखोंमें आँसू भर कर रोने लगे। नंदजी, अपने मित्र वसुदेव और कृष्ण—बलदेवकी प्रसन्नताके लिये तीन

महीने तक वहाँ रहे। यद्यपि नंदजी, जानेके लिये 'आज कल' करतेही रहे, परन्तु जाने नहीं पाये। यादवोंने तीन महीने तक अपने यहाँ रख कर नन्दजीका बहुत सत्कार किया। नन्दजीकी सब कामनाओंको कृष्ण, बलदेव और वसुदेवने पूर्ण किया और फिर महामूल्य आभूषण, रेशमी वस्त्र एवं अन्यान्य अमूल्य सामग्रियाँ देकर और रक्षाके लिये बहुत सी सेना साथ करके उनको बिदा किया। अपने बन्धु-बान्धव गऊ गोप और गोपियोंसहित नन्दजी, कृष्ण बलभद्र उग्रसेन उद्धव और वसुदेव आदिसे मिल कर और अनुमति लेकर व्रजको चले ॥६५-६८॥ हे राजन्! नन्दजी, गोपगण और गोपियाँ, कृष्णचन्द्रके चरणोंमें समर्पित मनको नहीं फेरसके, अतएव मनको वहीं छोड़ कर अत्यन्त कष्टसे व्रजको गये ॥६९॥ इस प्रकार बन्धु-बान्धवोंको बिदा करनेके उपरान्त, श्रीकृष्णही जिनके इष्टदेव हैं उन यादवोंने देखा कि वर्षा ऋतु आगई, अतएव वे भी द्वारका पुरीको चले ॥ ७० ॥

जनेभ्यः कथयांचक्रुर्यदुदेवमहोत्सवम् ॥
यदासीत्तीर्थयात्रायां सुहृत्संदर्शनादिकम् ॥ ७१ ॥

द्वारकामें पहुँचकर यादवोंने, जिस प्रकार कुरुक्षेत्रमें नंद आदि सुहृद् जनोंसे भेट हुई और वसुदेवजीके महा यज्ञका उत्सव हुआ, सो सब वृत्तान्त द्वारकावासियोंके आगे विस्तारपूर्वक कहा ॥ ७१ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितम अध्याय ।

श्रीकृष्ण और बलदेवकी कृपासे वसुदेवको ब्रह्मज्ञान और देवकीको मरेहुए छः पुत्र मिलनेकी कथा ।

श्रीबादरायणिरुवाच-अथैकदात्मजौ प्राप्तौ कृतपादाभिवन्दनौ ॥
वसुदेवोऽभिनन्द्याह प्रीत्या संकर्षणाच्युतौ ॥१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! कुरुक्षेत्रमें मुनियोंके मुखसे अपने पुत्र कृष्ण-बलदेवके अप्रतिम प्रभावका बिवरण सुनकर वसुदेवजीको विश्वास होगया कि ये साक्षात् ईश्वर सर्वशक्तिमान् हरि ही हैं। एक समय दोनो भाइयोंने पिता वसुदेवके निकट आकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। वसुदेवजीने भी प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देकर अभिनन्दन किया। इस प्रकार लोकाचार हो चुकनेपर वसुदेवने कृष्ण और बलरामसे कहा कि-"हे कृष्ण! हे महायोगी कृष्ण! हे सनातन संकर्षण! मैं आप दोनोको इस विश्वका कारण जो प्रधान और पुरुष हैं उनका भी

कारण अर्थात् साक्षात् ईश्वर समझता हूँ। जहाँ, जिसके द्वारा, जहाँसे, जिसके लिये, जिसके प्रति, जैसे, जब, जो जो होता है सो सब, प्रधान और पुरुषके ईश्वर साक्षात् भगवान् आपही हैं ॥ १–४ ॥ हे अधोक्षज! हे भगवन्! आप अपने द्वारा उत्पन्न इस बिविधविध विश्वमें चैतन्य आत्मरूपसे प्रवेश करके प्राण (क्रियाशक्ति) और जीव (ज्ञानशक्ति) रूपसे इसका धारण अर्थात् पालन और पोषण भी करते हैं ॥ ५ ॥ प्राण (क्रियाशक्ति) आदिक विश्वके कारणोंमें जो कुछ कार्य्यकारिणी शक्ति देखी जाती है वह ईश्वरकी ही है, वे केवल निमित्तमात्र हैं, क्योंकि परतन्त्र और परस्पर विसदृशभावसे युक्त हैं। जैसे लक्ष्य बेधनेकीशक्ति वाण चलानेवालेकी है, वाणकी नहीं है; वाण तो केवल निमित्तमात्र है; वैसेही प्राण आदिमें केवल चेष्टामात्र है; उनमें जो कार्य्य करनेकी शक्ति है सो चैतन्यरूप ईश्वरकी है ॥ ६ ॥ हे ईश्वर! चन्द्रमामें कान्ति, अग्निमें तेज, सूर्य्यमें ज्योति, नक्षत्रोंमें प्रभा, बिजलियोंमें सत्ता (स्फुरणमात्रसे अस्तित्व) सब वास्तवमें आपही हैं। पर्वतोंमें स्थिरता भी आपही हैं। पृथ्वी, पृथ्वीमें धारण करनेकी शक्ति और गंधगुण; जल, जलमें तृप्त करने और जीवित रखनेकी शक्ति और रसगुण; वायु, वायुमें चेष्टा, गति, इन्द्रियबल, मनोबल, और देहबल; सब आपही हैं ॥७॥ ८ ॥ दिशाओंका अवकाश, दिशाएँ, आकाश, आकाशका गुण शब्द, नाद, ओंकार, वर्ण और जिससे सब पदार्थोंके नामोंका निरूपण होता है वह वर्णपदात्मक बैखरी नामक स्थान या कोष भी आपही हैं ॥ ९ ॥ इन्द्रियोंमें विषयप्रकाशनशक्ति, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंमें अधिष्ठानशक्ति, बुद्धिमें अध्यवसायशक्ति और जीवमें प्रतिसंधानशक्ति या स्मरणशक्ति आप ही हैं ॥ १० ॥ पञ्चतत्त्वोंमें उनका कारण तामस अहंकार, इन्द्रियोंमें उनका कारण राजस अहंकार, इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवतोंमें उनका कारण सात्त्विक अहंकार और जीवोंमें उनके आवागमनका कारण प्रकृति आपही हैं ॥ ११ ॥ जैसे मृत्तिका-सुवर्ण आदि द्रव्योंके अनित्य विकार या रूपान्तर घट-कुण्डल आदिमें उनके कारणरूप वे मृत्तिका सुवर्ण आदि द्रव्य नित्य हैं वैसेही उक्त सब नश्वर भावोंमें आपही एक अविनश्वर नित्य पदार्थ हैं ॥ १२ ॥ सत्त्व, रज, तम नामक मायाके तीनो गुण और उनकी वृत्तियाँ अर्थात् महत्तत्त्व आदिक परिणाम–ये सब साक्षात् परब्रह्म जो आप हैं उनमें योगमायाके द्वारा कल्पित हैं ॥ १३ ॥ अतएव वास्तवमें उक्त सब भावविकार आपमें नहीं हैं। जब ये सब भाव आपमें विशेष रूपसे कल्पित होते हैं तब आपमें केवल उनकी प्रतीति होती है और आप कारणरूपसे उनका अनुसरण करते हैं। अन्य समयमें निर्विकल्परूपसे केवल आपही अवशिष्ट रहते हैं ॥ १४ ॥ इस गुणप्रवाहरूप संसारमें सर्वरूप आपकी सूक्ष्म अर्थात् निष्प्रपञ्च गतिको न जाननेके कारण देहाभिमानपूर्वक कर्म करते हुए

जीव, वारम्वार जन्म और मरणको प्राप्त होते हैं ॥ १५ ॥ हे ईश्वर! दैवसंयोगसे दुर्लभ मनुष्यजन्म पाकर—उसमें भी शरीरकी आरोग्यता और इन्द्रियोंकी स्वस्थता या कार्यक्षमता पाकर-जो कोई मुक्तिरूप सर्वोपरि स्वार्थके साधनेमें असावधानता या भूल करता है वह आपकी मायामें मोहित रह कर वृथा ही अपनी आयुको गँवा देता है ॥ १६ ॥ आपहीने इस सम्पूर्ण जगत्को देहमें एवं देहसे सम्बंध रखनेवाले स्त्री, पुत्र-पौत्रादिमें "मैं हूँ, यह मेरा है"-इस प्रकारके स्नेहमय मायापाशसे जकड़ रक्खा है ॥ १७ ॥ आप दोनो महानुभाव वास्तवम मेरे पुत्र नहीं हैं, बरन् साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियन्ता परमेश्वर हैं। पृथ्वीके लिये भार हो रहे दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करनेको आपने पृथ्वी पर अवतार लिया है। हे आर्त्तजनोंके बन्धु! इस समय, मैं, शरणागतजनोंको संसारके भयसे मुक्त करनेवाले आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। अब तक जो मैंने इन्द्रियभोग्य विषयोंमें लोलुप रह कर असत् शरीरको सत् आत्मा समझा और साक्षात् परमेश्वर जो आप हैं उनको अपना पुत्र समझा सो मायाकृत मोहमात्र था। आपहीने प्रत्येक युगमें सूतिकागृहमें मुझसे कहा है कि-"मैं अजन्मा ईश्वर होकर भी निजनिर्मित सनातन धर्म्मकी रक्षाके लिये तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ"। आप आकाशके समान अनेक शरीरोंको लेते और त्याग देते हैं, तथापि निर्लिप्त रहते हैं। हे उरुगाय! हे सर्वगत! आपकी विभूतिरूपिणी मायाको कौन जान सक्ता है?" ॥ १८-२० ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** महाराज! इस प्रकार पिताके तत्त्वज्ञानमय कथनको सुनकर यादवशिरोमणि भगवान् कृष्णने विनययुक्त हो, नम्रतापूर्वक हँसते हुए मधुर वाणीसे कहा कि-"हे पिता! आपने हमारे उद्देशसे जो यह भली भाँति तत्त्वोंका निरूपण किया उसको हम भी युक्तियुक्त मानते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे यदुनायक! मैं, आप लोग, आर्य्य बलदेव, ये द्वारकावासी लोग, यहाँतक कि सम्पूर्ण सचराचर जगत्, सब ब्रह्मस्वरूप है। जिज्ञासु व्यक्तिको चाहिये कि वह इसी प्रकार व्यापकरूपसे ब्रह्मका विचार करे ॥ २३ ॥ एकमात्र, स्वयं ज्योतिःस्वरूप, नित्य, अनन्य और निर्गुण ब्रह्म अपनेहीसे प्रकट गुणसमूहके द्वारा गुणकृत उपाधिस्वरूप तत्त्वोंमें अनेकरूप प्रतीत होता है ॥ २४ ॥ जैसे एकरूप आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी-उपाधिके अनुसार निजकर्तृककृत घट आदि पदार्थोंमें आविर्भाव, तिरोभाव, अल्पता, बहुलता और अनेकताको प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकट, नष्ट, अल्प, बहुल और अनेक प्रतीत होते हैं वैसेही ब्रह्मके विषयमें भी जानना चाहिये" ॥ २५ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** हे राजन्! भगवान्के उक्त वाक्योंको सुन कर वसुदेवके चित्तसे भेदभावना दूर हो गई और वह परम प्रसन्नता और शान्तिको प्राप्त हुए ॥ २६ ॥ हे गुरुश्रेष्ठ! कृष्ण-बलरामने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका

मराहुआ पुत्र परलोकसे लादिया; यह वृत्तान्त सुन कर देवी देवकीको बड़ा ही विस्मय हुआ। उस समय कंसके हाथों मारे गये अपने बालकोंका स्मरण होआनेसे स्नेहवश देवकीको बड़ाही दुःख हुआ और वह व्याकुलताके कारण रोती हुई कृष्ण-बलरामके निकट जाकर इस प्रकार दीन वाणीसे कहने लगीं कि—"हे अप्रमेयप्रभावसम्पन्न बलराम! और हे योगेश्वरोंके भी ईश्वर श्रीकृष्ण! मैं जानती हूँ कि आप ब्रह्मा आदि विश्वस्रष्टा देवतोंके भी ईश्वर आदिपुरुष हैं। हे आद्य! कालवश सत्त्व-बलसे हीन होकर शास्त्र-विहित मर्य्यादाका उल्लंघन करनेवाले, अतएव पृथ्वीके लिये भार हो रहे राजोंका संहार करनेके लिये आपने मेरे गर्भसे जन्म लिया है। मैंने सुना है कि आपने अपने गुरुको गुरुदक्षिणामें उनका मरा हुआ पुत्र यमलोकसे लादिया है। सो हे योगेश्वरोंके ईश्वर! यह सुन कर मुझको भी वैसी ही अभिलाषा हुई है—उसको आप पूर्ण करो, अर्थात् जिन मेरे पुत्रोंको कंसने मारडाला था उनको आप योगबलसे लाकर मुझे दिखा दो; मैं उनको देखना चाहती हूँ" ॥ २७–३३ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे महाराज! इस प्रकार माताकी आज्ञा पाकर कृष्ण और बलदेव दोनो भाई योगमायाके बलसे उसी समय सुतल लोकको गये ॥३४॥ विश्वमात्रके और विशेष कर अपने पूजनीय इष्टदेव आत्मस्वरूप कृष्ण-बलरामको अपने लोकमें देखकर राजा बलिको अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हुआ—उस अनुपम आनन्दसे दैत्यराजका हृदय गद्गद होगया। झटपट अपने पुत्र-पौत्रोंसहित आसनसे उठ कर राजा बलिने प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक बैठनेके लिये सुन्दर उत्तम आसन लाकर दिये। जब महात्मा दोनो भाई उन आसनों पर सुखपूर्वक बैठे तब बलिने भक्तिपूर्वक उनके चरणकमल धोकर उस चरणोदकको, जो ब्रह्मासे लेकर सम्पूर्ण चराचर जगत्को गंगाके नामसे पवित्र कर रहा है, परिवारसहित अपने शिरपर छिड़का, और फिर महामूल्य वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला, धूप, दीप सुधासम मधुर अन्न, ताम्बूल और धन रत्न आदि महासामग्रियोंसे एवं अपने वंश, विभव और शरीरसहित आत्माके समर्पणसे उनका पूजन किया ॥ ३५–३७ ॥ इस प्रकार विधिपूर्वक पूजन करनेके उपरान्त राजा बलि प्रभुके चरणकमलोंको गोदमें रख कर दबाने लगे। उस समय आनन्दके वेगसे बलिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया, नेत्रोंसे आँसू बहने लगे और चित्त प्रेमसे विह्वल होगया। इसके उपरान्त दैत्यराजने गद्गद वाणीसे कहा—"महान् अनन्तको प्रणाम है, विधाता कृष्णको प्रणाम है, सांख्य दर्शन और योगदर्शनका आविष्कार और प्रचार करनेवाले ब्रह्मस्वरूप परमात्माको प्रणाम है ॥३८॥३९॥ हे भगवन्! हम राजसी—तामसी प्रकृतिके जीव (असुर) हैं, किन्तु आपने आपहीसे आकर दर्शन दिया,—अतएव हमारी समझमें यद्यपि अज्ञानान्ध प्राणियोंके लिये आपका दर्शन दुष्प्राप्य और अत्यन्त दुर्लभ है, तथापि जिन पर आप अनुग्रह

करते हैं उनके लिये सुलभ है ॥ ४० ॥ दैत्य, दानव, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत, प्रमथ नायक आदि सम्पूर्ण राजसी और तामसी प्रकृतिके प्राणी,-विशुद्ध सत्त्वके धाम साक्षात् शास्त्रस्वरूप आपसे शत्रुता बाँधनेवाले हैं; हम और अन्यान्य असुर भी वैसे ही हैं । किन्तु गोपियाँ काम-भक्तिसे और कोई २ दैत्य प्रचण्ड वैरभावसे जैसे आपको प्राप्त हुए हैं वैसे सत्त्वशील और नगीची देवतालोग भी आपको नहीं पासक्ते ! इसीसे कहते हैं कि आपकी लीला अपरम्पार है ॥ ४१—४३ ॥ हे योगेश्वरोंके भी ईश्वर ! जब योगेश्वर लोग भी आपकी योगमायाके स्वरूप और विशेषको पूर्णतया नहीं जान पाते तब हम क्या हैं ?। अतएव हे दीनबन्धो ! हम पर प्रसन्न होकर ऐसी कृपा करिये कि निरपेक्ष मुनिगणके एकमात्र आश्रय जो आपके चरणकमल हैं उन्हींके भजनमें हम तत्पर रहें । आपके चरणोंकी सेवा ही सार-वस्तु है और गृहादिक विषय अन्धकूपके समान हैं। हमारी यही प्रार्थना है कि उक्त अन्धकारमय अन्धकूपसे निकल कर विश्वकी रक्षा करनेवाले जो आप हैं उनके चरणकमलोंमें हमारी प्रवृत्ति हो और हम सबके संगको छोड़ कर अथवा संसार भरके मित्र आपके भक्त महात्मा सज्जनोंके संगमें शान्तिको पाकर विचरण करें । हे सब जीवोंके ईश्वर ! हे प्रभो ! हमको आज्ञा देकर निष्पाप करिये । आपकी आज्ञाका श्रद्धापूर्वक पालन करनेसे लोग विधि-निषेधके अनुशासनसे मुक्त हो जाते हैं" ॥४४-४५॥ भगवान्‌ने कहा-"हे दैत्यराज ! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें ऊर्णाके गर्भसे मरीचि ऋषिके छः पुत्र हुए थे । ब्रह्माजीको अपनी कन्या पर अनुरक्त देखकर वे देवसदृश ऋषि पुत्र हँसे थे । इसी पापसे वे उसी क्षण आसुरी योनिको प्राप्त हुए, अर्थात् उनको हिरण्यकशिपुके वीर्यसे जन्म लेना पड़ा । उस जन्मके बाद योगमायाके द्वारा लाये जाकर वे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए और उनको दुष्ट कंसने मार डाला । देवी देवकी प्रबल पुत्रस्नेहके कारण उनके लिये शोच कर रही हैं और उनको देखना चाहती हैं । वेही बालक ये तुम्हारे पास वर्त्तमान हैं, मैं माताका शोक दूर करनेके लिये इनको लेजाऊँगा । तदनन्तर वे शापसे मुक्त और विगततापः होकर फिर देवलोकको चले जाँयगे । ये स्मर, उद्गीथ, परिष्वङ्ग, पतङ्ग, क्षुद्रभुक् और घृणि नामक ऋषिकुमार, मेरी कृपासे उत्तम गति (मोक्ष) को प्राप्त होंगे" ॥ ४७-५१ ॥ यों कह कर, राजा बलिके द्वारा भली भाँति पूजित कृष्ण-बलराम, उन बालकोंको लेकर द्वारकापुरीमें उपस्थित हुए । कृष्ण-बलभद्र द्वारा लाये गये पुत्रोंको देखते ही पुत्रस्नेहके कारण देवकीके स्तनोंसे आप-ही-आप दुग्ध बहने लगा । देवकीने प्रेमपूर्वक पुत्रोंको हृदयसे लगा लिया और गोदमें लेकर वारम्वार मस्तक सूँघने लगीं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ संसारचक्रको चलानेवाली भगवान् विष्णुकी मायामें मोहित देवकीजी पुत्रस्प-

र्शके कारण दुग्धपरिपूर्ण स्तन मुखमें देकर प्रीतिपूर्वक उन बालकोंको दुग्ध पिलाने लगीं ॥ ५४ ॥ कृष्ण भगवान्‌के पीनेसे बचा हुआ अमृतमय देवी देवकीका दुग्ध पीनेसे और नारायणरूप कृष्णके अङ्गस्पर्शसे उन बालकोंके शुद्ध अन्तःकरणमें आत्मज्ञानका उदय हुआ और वे सबके सामने ही गोविन्द, बलदेव, देवकी एवं वसुदेवको प्रणाम करके आकाशमार्गसे देवलोकको चले गये ॥५५॥५६॥ हे राजन्! इस प्रकार मरेहुए पुत्रोंका आना और जाना देखकर देवकीको अत्यन्त आश्चर्य्य हुआ और उन्होने समझ लिया कि यह सब योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णकी माया है ॥ ५७ ॥ हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ महाराज! अनन्तवीर्य्य परमात्मा श्रीकृष्णके ऐसे २ अनेकानेक अद्भुत कर्म्म हैं–जिनका अन्तही नहीं है ॥ ५८ ॥

सूत उवाच–य इदमनुशृणोति श्रावयेद्वा मुरारे-
श्चरितममृतकीर्तेर्वर्णितं व्यासपुत्रैः ॥
जगदघभिदलं तद्भक्तसत्कर्णपूरं
भगवति कृतचित्तो याति तत्क्षेमधाम ॥ ५९ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं । हे शौनकजी! पूजनीय व्यासतनय शुकदेवके द्वारा वर्णित, जगत्‌के पातकोंको नष्ट करनेवाला और भगवद्भक्तोंके लिये सुखदायी कर्णाभरणस्वरूप यह अमृतकीर्तिसम्पन्न मुरारिका अद्भुत चरित्र हैं। इसको जो लोग मन लगाकर सम्पूर्ण रूपसे प्रत्येक समय सुनते या सुनाते हैं उनका चित्त दृढ़रूपसे भगवान्‌में लग जाता है और वे अवश्य ही मंगलमय हरिधामको जाते हैं ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितम अध्याय।

सुभद्राहरण और भगवान्‌की मिथिलायात्राका वर्णन।

राजोवाच–ब्रह्मन्वेदितुमिच्छामः स्वसारं रामकृष्णयोः ॥
यथोपयेमे विजयो या ममासीत्पितामही ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा। ब्रह्मन्! हमारी दादी सुभद्रा देवी, जो कृष्ण–बलभद्रकी बहन थीं, उनके साथ महातेजस्वी अर्जुनजीका विवाह किस प्रकार हुआ? मैं यह कथा सुनना चाहता हूँ ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा** । राजन्! एक समय महापराक्रमी अर्जुन तीर्थयात्रा करनेके लिये निकले। प्रभास क्षेत्रमें पहुँच

कर अर्जुनने सुना कि—'बलभद्रजी मेरे मामाकी लड़की अर्थात् अपनी बहन सुभद्राका बिवाह दुर्य्योधनसे करेंगे, किन्तु कृष्ण आदिकी यह इच्छा नहीं है'। अर्जुनने चाहा कि सुभद्रासे मैं बिवाह करूँ। यह विचार कर त्रिदण्डधारण-पूर्वक संन्यासीके वेषसे-गुप्तरूपसे अर्जुनजी द्वारका पुरीको गये ॥ २ ॥ ३ ॥ अर्जुनजी स्वार्थ सिद्ध करनेके विचारसे चौमासे भर द्वारका पुरीमें रहे। पुरवासी-जन और स्वयं बलभद्रजी भी न पहचान सके कि यह अर्जुन हैं, अतएव उन्होने त्रिदण्डी यती जान कर इनका बहुत सत्कार और पूजन किया ॥ ४ ॥ एक दिन बलभद्रजी निमन्त्रण देकर भोजन करानेके लिये अर्जुनको घर लेगये। बलभद्र-जीने श्रद्धासे भिक्षा दी और अर्जुनजी भोजन करने लगे। वहाँ पर सुशीला और वीर पुरुषोंके मनको हरनेवाली कन्या (सुभद्रा) को देख कर अर्जुनका चित्त चंचल हो उठा और प्रसन्नताके कारण नेत्रकमल खिल उठे ॥ ५ ॥ ६ ॥ स्त्रियोंके मनको हरनेवाले अर्जुनको देख कर सुभद्राका भी मन वशमें नहीं रहा। वह सुकुमारी कुमारी मंद मुसकानसे सरस और लज्जापूर्ण कटाक्षोंसे अर्जुनको देखने लगी। सुभद्राने अपना हृदय अर्जुनको देदिया और एकटक उनकी वीर और मनोहर मूर्त्तिको निरन्तर निहारती रही ॥ ७ ॥ उस दिनसे वह मोहिनी मूर्त्ति अर्जुनके हृदयमें बस गई और प्रबल कामदेव अपने बाणोंकी चोटसे चित्तको अस्थिर करने लगा। इस प्रकार कामपीड़ासे व्याकुल अर्जुन, उस कन्याको ले भा-गनेका अवसर देखने लगे ॥ ८ ॥ इसी अवसरमें एक दिन बड़ी भारी देवयात्रामें रथ पर चढ़ीहुई सुभद्रा द्वारकाके अन्तःपुरके दुर्गसे निकल कर देवदर्शनके लिये चलीं। इस सुअवसरमें कृष्णचन्द्र, वसुदेव, और देवकीकी इच्छाके अनुसार महारथी अर्जुनजी राहसे सुभद्राको हरले गये। जो रक्षक सुभट शूर बाधा देनेके लिये उद्यत हुए उनको रथ पर स्थित अर्जुनने धनुष चढ़ा कर असह्य बाणोंकी वर्षासे भगा दिया। आत्मीय यादवलोग चिल्लाते ही रहे, और अर्जुनजी, जैसे अपने भागको सिंह ले जाता है वैसे सुभद्राको लेगये ॥ ९ ॥ १० ॥ यह वृत्तान्त सुन कर, पर्वके दिन महासागरके समान, बलभद्रजी अत्यन्त कुपित और क्षुभित हुए, किन्तु कृष्णचन्द्रने पैर पकड़ कर तथा अन्यान्य बन्धुओंने विनय और प्रार्थना करके शान्त कर दिया ॥ ११ ॥ तब बलभद्रजीने प्रसन्न होकर पीछेसे वर-वधूके लिये यौतुकस्वरूप महामूल्य गृहसामग्री, हाथी, रथ, घोड़े, रत्नालंकार, दासी और दास भेज दिये ॥ १२ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा**। हे महाराज! श्रुतदेव नाम एक विप्रवर श्रीकृष्णचन्द्रके अनन्य उपासक भक्त थे। वह शान्त चतुर विवेकी सन्तुष्ट ब्राह्मण केवल कृष्णभक्तिके सिवा और कोई प्रयोजन न रखते थे, ॥ १३ ॥ वह विदेह देशके अन्तर्गत मिथिला नाम पुरीमें रहते थे। श्रुतदेवजी गृहस्थ होकर भी जो कुछ आपहीसे मिल जाता था उसीसे सब काम निबाहते

थे। उनको जीवनरक्षामात्रके लिये आवश्यक अन्नादि नित्य मिल जाता था—इससे अधिक नहीं मिलता था। वह उतनेहीमें सन्तोष करके यथोचित रीतिसे अपने धर्मका पालन करते थे ॥ १४ ॥ १५ ॥ राजन्! उस समय मैथिलवंशज बहुलाश्व नाम नरेश उस राज्यके शासक थे। वह निपट निरभिमान राजा भी श्रुतदेवके समान अत्यन्त भगवद्भक्त और कृष्णचन्द्रके प्रेमपात्र थे ॥ १६ ॥ उन दोनो भक्तों पर प्रसन्न होकर अनुग्रह करनेके लिये प्रभु भगवान् कृष्णचन्द्र दारुक सारथीके लाये हुए दिव्य रथ पर चढ़ कर मिथिला पुरीको चले ॥ १७ ॥ भगवान्‌के साथ नारद, वामदेव, अत्रि, वेदव्यास, परशुराम, असित, अरुणि, बृहस्पति, मैं, कण्व, मैत्रेय और च्यवन आदिक ऋषि लोग भी चले ॥ १८ ॥ राजन्! ग्रहमण्डलीमण्डित सूर्य्यके समान भगवान् जिस २ देशमें पहुँचे वहाँ २ के पुरवासी और जनपदवासी लोग अर्घ्य आदि पूजनकी सामग्री हाथमें लिये उनके आगे आकर उपस्थित हुए ॥ १९ ॥ महाराज! आनर्त्त, मरु, कुरुजाङ्गल, कङ्क, मत्स्य, पाञ्चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोशल और अर्ण एवं अन्यान्य मार्गमें पड़नेवाले देशोंके रहनेवाले नर-नारीगणने, उदार हँसी और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे मनोहर हरिके मुखारविन्दको निरन्तर निहार कर अपने नेत्रोंको सफल किया। त्रिलोकगुरुके दर्शनसे उन नर-नारियोंका अज्ञान नष्ट होगया और उन्हे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई। श्रीकृष्णचन्द्र उन नरनारियोंको अभय और तत्त्वज्ञानका दान करते और उनके मुखसे दिग्दिगन्तको उज्ज्वल करनेवाला अशुभनाशक अपना सुयश सुनते हुए क्रमशः विदेहनगरमें पहुँच गये ॥ २० ॥ २१ ॥ मिथिला प्रान्तके पुरवासी और जनपदवासी जन अच्युतके आगमनका समाचार पाकर आनन्दपूर्वक पूजनकी सामग्री हाथमें लिये उनकी अभ्यर्थना करनेको अग्रसर हुए। उत्तमश्लोकके दर्शनसे उनके मुख और अन्तःकरण प्रफुल्लित हो गये। उन लोगोंने श्रीकृष्णको और जिनके नाम पहलेसे सुन रक्खे थे उन महर्षियोंको आदर सहित शिर झुका हाथ जोड़ कर प्रणाम किया ॥ २२ ॥ २३ ॥ 'हमपर अनुग्रह करनेके लिये जगद्गुरु कृष्णचन्द्र यहाँ आये हैं'—यह समझ कर मिथिलानरेश और श्रुतदेवने एकसाथ ही चरणों पर शिर रख, हाथ जोड़, यादवपति कृष्ण प्रभुसे प्रार्थना की कि 'आप ब्राह्मणश्रेष्ठ ऋषियों सहित हमारे आतिथ्य (मेहमानी) को स्वीकृत करके कृतार्थ कीजिये'। भक्तवत्सलने दोनो भक्तोंके आतिथ्यको स्वीकृत किया और दोनोकी प्रसन्नताके लिये दो रूप धर कर दोनोके घर गये। परन्तु श्रुतदेवने जाना कि भगवान् हमारेही यहाँ आये हैं और राजाने जाना कि भगवान् हमारेही यहाँ आये हैं ॥ २४—२६ ॥ राजन्! मिथिलानरेशने दूरसे आनेके कारण थके हुए मुनियोंको और भगवान्‌को बैठनेके लिये उत्तम आसन दिये। उन आसनों पर ब्राह्मणगण और भगवान् जब सुखपूर्वक बैठे तब

महामनस्वी नरेशने उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर पैर धोकर उस त्रिलोकपावन चरणोदकको अपने और कुटुम्ब भरके शिर पर छिड़का । आनन्द भक्तिसे राजाका हृदय गद्गद होआया और नेत्र आँसुओंके जलसे परिपूर्ण होगये । फिर राजाने भक्तिपूर्वक चन्दन, माला, वस्त्र, आभूषण, धूप, दीप, अर्घ्य और गोदानसे सबकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ २७–२९ ॥ तदनन्तर अन्न, जल और ताम्बूल आदिसे सबको तृप्त और सन्तुष्ट करके भगवान्के दुर्लभ चरणकमलोंको गोदमें लेकर दबाते हुए मिथिलानरेशने प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणीसे धीर स्वरसे कहा कि " हे विभो ! हे नाथ ! आप स्वयं प्रकाशमान हैं । सब जीवोंके चेतनदाता आत्मा और साक्षी अर्थात् प्रकाशक भी आप ही हैं । सदा अपने चरणकमलोंको भजनेवाले हमलोगोंको आज आपने दर्शन दिया । आपका कथन है कि 'मुझको अनन्त (बंधु), श्रीलक्ष्मी (स्त्री) और ब्रह्मा (पुत्र) भी एकान्त भक्तोंसे बढ़कर प्यारे नहीं हैं' । इस अपने वाक्यको सार्थक करनेके लिये ही आज आपने हमको दर्शन दिया है ॥ ३०—३२ ॥ भगवन् ! आप निष्किञ्चन, शान्त मुनियोंको आत्मज्ञानके देनेवाले हैं । यह जानकर भी कौन चतुर व्यक्ति आपके चरणकमलोंके भजनसे विमुख रहेगा ? ॥३३॥ आपने इस पृथ्वी पर संसारी मनुष्योंके बीच यदुवंशमें अवतार लेकर तीनो लोकोंके पापोंको नष्ट करनेवाला सुयश इस लिये फैलाया है कि लोग उसे कहकर और सुनकर संसारसे मुक्त हों ॥ ३४ ॥ भगवन् ! आप अकुण्ठित अनुभवसे पूर्ण, शान्त, तपस्वी, नारायण ऋषि हैं—आपको प्रणाम है ॥ ३५ ॥ हे सर्वव्यापक ! आप इन महर्षियों सहित कुछ कालतक हमारे घरमें रहकर अपने चरणोंकी पवित्र रजसे इस निमिकुलको पवित्र कीजिये" ॥ ३६ ॥ राजाकी प्रार्थनाको स्वीकृत करके लोकभावन भगवान् मिथिलापुरवासियोंके कल्याणके लिये कुछ काल तक वहाँ ठहरे ॥ ३७ ॥ राजन् ! जनकके समान श्रुतदेव ब्राह्मणने भी मुनियों सहित अच्युतको आये देख उठकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिजनित आनन्दमें मग्न हो नाचने लगे; उनको उस समय शरीरकी और वस्त्र आदिके गिरनेकी भी सुध-बुध नहीं रही ॥ ३८ ॥ उन्होने तृण, काष्ठ और कुशके आसन लाकर सबको बैठाया और प्रणाम स्वागत-प्रश्न करके भार्यासहित आनन्द पूर्वक सबके पैर धोये ॥ ३९ ॥ हे महाभाग ! श्रुतदेवके सब मनोरथ पूर्ण होगये । उन्होने हर्षित होकर उस पवित्र चरणोदकसे सपरिवार स्वयं स्नान किया और घरभरमें छिड़ककर उस भूमिको पवित्र किया ॥ ४० ॥ फिर अनायास मिली हुई फल, उशीर, सुवासित मधुर पत्ते, सुगन्धित मृत्तिका, तुलसीदल, कुश, कमल कुसुम और शान्ति देनेवाले सात्त्विक अन्न आदि सामग्रियोंसे पूजा करके वह अपने मनमें विचारने लगे कि "अहो ! मैं तो गृहरूप अन्धकूपमें पड़ा हुआ एक अधम व्यक्ति हूँ; जिन

चरणोंकी रजमें सब तीर्थ हैं और जो साक्षात् हरिके निवासका स्थान हैं, उन, इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका और साक्षात् विष्णु कृष्णचन्द्रका संगम मुझको कैसे प्राप्त हुआ!" ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ महाराज ! तदनन्तर श्रीकृष्णजी जब सब ब्राह्मणों सहित सुखपूर्वक आसन पर बैठे, तब स्त्री, पुत्र और स्वजनमण्डलीके साथ कृष्णचन्द्रके निकट बैठ उनके चरणोंको दबाते हुए श्रुतदेवने कहा कि–"हे परमपुरुष ! आप आज ही मुझको नहीं मिले हैं; जब अपनी शक्तियोंके द्वारा इस जगत्की सृष्टि करके निज सत्ता(चैतन्य)के द्वारा इसके अभ्यन्तरमें आपने प्रवेश किया था तभीसे आप मुझसे मिले हुए हैं। किन्तु जैसे निद्रित पुरुष, आत्ममाया अपनी अविद्याके द्वारा मनसे ही केवल स्वप्नकल्पित लोकसृष्टि करके उसमें प्रवेश करता हुआ अवभासमान होता है वैसेही आप भी केवल अभी दृष्टिगोचर हुए हैं ॥ ४३–४५ ॥ जो सब निर्म्मल अन्तःकरणवाले पुरुष, निरन्तर आपके गुण और कर्मोंको सुनते और गाते हैं—आपकी पूजा और वन्दना करते हैं—आपसे चित्तद्वारा मिलते रहते हैं—उन्हींके हृदयके भीतर आप प्रकट होते हैं; किन्तु मेरे तो नेत्रोंके आगे उपस्थित हैं, इस कारण मेरा अहोभाग्य है ॥४६॥ जिन लोगोंका चित्त सकाम कर्मोंमें अनुरक्त है उनके लिये आप हृदयमें रह कर भी अत्यन्त दूर हैं, और जो लोग निरभिमान हैं—जिनके अन्तःकरण आपके भजन, श्रवण और कीर्त्तनसे पवित्र हो गये हैं उनके लिये आप अत्यन्त निकट और सुलभ हैं ॥ ४७ ॥ भगवन्! आप अध्यात्मज्ञानियोंके विचारमें परमात्मा अर्थात् मोक्षदाता हैं और देहाभिमानी जीवोंके लिये अप्रकाशमान हैं, अतएव अपनी मायाके आवरणसे उनकी ज्ञानदृष्टिको ढँक कर जन्ममरणके भ्रमजालमें डालनेवाले हैं, सुतराम् सकारण (महत्तत्त्व आदिक कार्य्य) और अकारण (प्रकृति), दोनो प्रकारकी उपाधियोंको नियन्तारूपसे प्राप्त हैं। आप स्वयं उक्त उपाधियोंसे आवृत नहीं हैं और उक्त उपाधियोंके वशवर्त्ती जीवकी दृष्टिको अपनी वशवर्त्तिनी मायाके आवरणसे ढँके हुए हैं। हे अलुप्त ऐश्वर्य्यसे सम्पन्न ! हे परमात्मा ! आपको प्रणाम है ॥ ४८ ॥ हे देव ! हम आपके भृत्य हैं, कृपापूर्वक आज्ञा दीजिये कि हम आपकी क्या सेवा करें ? भगवन् ! जबतक आपके दर्शन नहीं मिलते तभी तक लोगोंको सांसारिक क्लेश भोगने पड़ते हैं" ॥ ४९ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। हे राजन्! मुनिके यथार्थ कथनको सुन कर प्रणत जनोंकी आर्त्तिको हरनेवाले भगवान् उनका हाथ पकड़ कर प्रसन्नतापूर्वक हँस कर बोले कि—"ब्रह्मन्! त्रिभुवनको अपने चरणोंकी रजसे पवित्र करते हुए विचरनेवाले ये सब मुनिगण मेरे साथ तुम पर अनुग्रह करनेके लिये तुम्हारे भवनमें पधारे हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ देखो–देवता, पुण्यक्षेत्र, और तीर्थ—कुछ काल तक दर्शन, स्पर्श और सेवा करनेसे धीरे २ पवित्र करते हैं, किन्तु साधु–ब्राह्मणोंको एक बार देखने और प्रणाम करनेसे ही

तत्क्षण शरीर और मन शुद्ध हो जाते हैं ॥ ५२ ॥ ब्राह्मण, जन्मसेही सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ और पूजनीय है और यदि वह तप, विद्या, सन्तोषसे युक्त तथा मेरी उपासना करनेवाला हो तो फिर उसके लिये क्या कहना है? ॥ ५३ ॥ ब्राह्मण मेरी ही मूर्ति है; मुझको यह चतुर्भुज रूप भी ब्राह्मणसे बढ़ कर प्रिय नहीं है । जितना मैं ब्राह्मणरूपकी सेवासे सन्तुष्ट होता हूँ उतना इस रूपकी पूजा और सेवासे नहीं सन्तुष्ट होता; क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय है और मैं सर्व देवमय हूँ ॥ ५४ ॥ ब्राह्मण, मुझको सर्वत्र व्यापक जानता और महत्तत्त्व, पञ्चतत्त्व आदि सहित सम्पूर्ण चराचर जगत्में मेरी ही भावना करता है एवं सबको मेरा ही स्वरूप मानता है ॥ ५५ ॥ मतिमन्द (नासमझ) लोग ऐसा न जान कर (अर्थात् ब्राह्मणोंको भी अपनेही समान साधारण मनुष्यमात्र समझ कर) ब्राह्मणोंको दोषदृष्टिसे देखते और उनका अनादर करते हैं; किन्तु जो लोग बुद्धिमान् हैं वे ब्राह्मणोंको मुझ आत्माका श्रेष्ठ रूप मानते और अपना गुरु व पूज्य समझ कर उनका आदर करते हैं ॥ ५६ ॥ इस लिये हे विप्रवर! इन सब ब्रह्मर्षियोंको मेरा ही स्वरूप समझो और श्रद्धापूर्वक इनका पूजन करो । इनकी पूजा करनेसे साक्षात् मेरी पूजा होगी और मैं प्रसन्न होऊँगा । अन्यथा और रूपोंमें बड़ी सामग्रियोंसे पूजा करने पर भी मैं पूर्णरूपसे नहीं सन्तुष्ट होता" ॥५७॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं । इस प्रकार प्रभुकी आज्ञा पाकर मैथिल ब्राह्मण श्रुतदेवजी, कृष्णसहित सम्पूर्ण ब्रह्मर्षियोंकी एकभावसे आराधना करके अन्तसमय सद्गतिको प्राप्त हुए ॥ ५८ ॥

एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान् भक्तवत्सलः ॥
उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात् ॥ ५९ ॥

राजन्! भक्तवत्सल भगवान् दोनो भक्तोंको इस प्रकार श्रुतिसम्मत ब्रह्मपरतारूप मुक्तिका मार्ग बता कर द्वारकाको लौट गये ॥ ५९ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितम अध्याय ।

वेदस्तुति ।

परीक्षिदुवाच–ब्रह्मन्ब्रह्मण्यनिर्देश्ये निर्गुणे गुणवृत्तयः ॥
कथं चरन्ति श्रुतयः साक्षात्सदसतः परे ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । हे ब्रह्मन्! जिसका प्रत्यक्षरूपसे निरूपण नहीं किया जा सक्ता और जो निर्गुण एवं सत् (कारण) असत् (कार्य्य), दोनोसे

परे है—उस परब्रह्मके रूप (तत्त्व)का वर्णन या निरूपण, सगुण श्रुतियाँ किस प्रकार करती हैं? ॥ १ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे राजन्! ईश्वरने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके लिये लोगोंके (उक्त चतुर्वर्गके साधनस्वरूप) बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंकी सृष्टि की है ॥ २ ॥ पूर्वजोंके भी पूर्वज ब्रह्मा आदि आचार्योंने बुद्धि आदिके द्वारा इन परब्रह्मपरायण उपनिषद् वाक्योंका धारण (मनन) किया है (अर्थात् शिष्टपरम्परासे आरही इन श्रुतियोंमें सन्देह न करना चाहिये); जो कोई तर्क वितर्क न करके आदरसे मन लगा कर इन सनातन सत्य श्रुतियोंको पढ़ता, सुनता और भावार्थका मनन करता है वह अकिञ्चन अर्थात् देहादिक उपाधियोंसे मुक्त होकर क्षेमस्वरूप परम पदको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ मैं इसी विषयकी एक गाथा (इतिहास) तुमको सुनाता हूँ; जिसे नारदजीके पूछने पर स्वयं भगवान् ऋषिवेषधारी नारायणने कहा है। इस कथाप्रसङ्गमें ब्रह्मतत्त्वकी मीमांसा हुई है ॥ ४ ॥ एक समय भगवान्के प्रिय नारदजी अनेक लोकोंमें विचरते हुए सनातन ऋषि नारायणके दर्शनोंकी इच्छासे बदरिकाश्रमको गये ॥ ५ ॥ भगवान् नारायण, भारतवासी लोगोंके शुभ और स्वस्तिके लिये उस स्थानमें कल्पके आरम्भसे धर्मपालनपूर्वक शान्त स्वभावसे ज्ञान चर्चा करते हुए तप कर रहे हैं ॥ ६ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! नारदजीने वहाँ पहुँचकर कलापग्रामनिवासी योगी ऋषियोंकी मण्डलीमें बैठे हुए भगवान् नारायणको प्रणाम किया और उनसे यही प्रश्न किया ॥ ७ ॥ नारायणजीभी सब ऋषियोंके आगे नारदजीसे उनके प्रश्नका उत्तर देते हुए, जनलोकनिवासी महर्षियोंमें जो पहले ब्रह्मविषयकी मीमांसा हुई थी उसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ८ ॥ **नारायणने कहा।** हे नारद! पहले एक समय जनलोकमें वहाँके निवासी ब्रह्माके मानस पुत्र मुनियोंने ब्रह्मसत्रका* आरंभ किया। यद्यपि तुम भी जनलोकवासी हो, परन्तु उस समय तुम मेरी ही अनिरुद्धनामक मूर्त्तिके दर्शन करने श्वेतद्वीपको गयेथे; अतएव वहाँ उपस्थित न थे। उस ब्रह्मसत्रमें श्रुतियोंके अनुसार ब्रह्मके विचारका आरम्भ होनेपर यही प्रश्न उपस्थित हुआ, जो तुम मुझसे पूछ रहे हो। वहाँ पर उपस्थित सब महानुभावोंने शास्त्रके ज्ञानमें, तपमें और स्वभावमें समान एवं मित्र, शत्रु और उदासीन व्यक्तियोंमें समदर्शी होकर भी एकको वक्ता बनाकर सुननेकी इच्छासे यही प्रश्न किया ॥ ९–११ ॥ तब सनन्दन नाम महर्षिने इस प्रकार उक्त प्रश्नका उत्तर दिया। **सनन्दनजीने कहा।** कि जैसे

---

* विद्या—ज्ञान आदिमें समान योग्यता रखनेवाले लोग जिसमें एकको यजमान बनाकर और सब ऋत्विक् व सदस्य बनकर कर्म करते हैं उस यज्ञको कर्मसत्र कहते हैं, और वैसेही सब बातोंमें समान योग्यता रखनेवाले व्यक्ति जिसमें एकको वक्ता बनाकर और अन्य सब श्रोता बनकर ब्रह्मका विचार करते हैं उसका नाम ब्रह्मसत्र है।

अनुगत बन्दीजन निद्रित चक्रवर्त्ती राजाको प्रातःकाल आकर उसके सुयशसे पूर्ण पराक्रमोंका वर्णन करते हुए जगाते हैं वैसे ही प्रलयसमयमें निजरचित इस सम्पूर्ण विश्वको निज शक्तियों सहित अपनेमें लीन करके योगनिद्रा द्वारा निद्रित अर्थात् निश्चेष्ट परमेश्वरको श्रुतियाँ उसका प्रतिपादन करनेवाले वाक्योंसे इस प्रकार जगाने लगीं ॥ १२॥१३ ॥ ईश्वरप्रतिपादिका श्रुतियोंने यों कहा कि "हे अजित! हे अच्युत! जय जय अर्थात् उत्कर्ष प्रकट करो। हे प्रभो! स्थावर और जंगम जीवोंकी अविद्यारूपिणी मायाको दूर करो। क्योंकि आपका स्वरूप सब ऐश्वर्योंका आधार हैं एवं अविद्या भी जीवोंको मोहित करनेहीके लिये गुण ग्रहण किये अवस्थित है। अतएव परप्रतारिणी स्वेच्छाचारिणी इस मायाको विनष्ट करनाही आपका आवश्यक 'कर्त्तव्य' है। हे प्रभो! आप सबके अन्तर्यामी हैं, सकल जीवोंकी सब शक्तियोंके उद्बोधक हैं; आपके सिवा इस मोहमयी अविद्याको कौन मिटा सक्ता है? स्वामिन्! इस तत्त्वको हम (श्रुतियाँ) अवगत हैं! वेदोंमें ही आपके मायामय सृष्टि आदिके समय रक्खे गये सगुण रूप और सत्य-ज्ञानानन्दमय अखण्ड नित्य निर्गुण रूपका प्रतिपादन है ॥ १४ ॥ वेदमें इन्द्र, अग्नि आदि देवतोंका भी प्रतिपादन किया गया है सही, किन्तु वे इन्द्र आदिके प्रतिपादक वेदमंत्र इन्द्र आदिको भी आपका ही रूप मानते हैं। जैसे घटकी उत्पत्ति और लय मृतिकामें ही है, अतएव मृत्तिका ही घटकी शेष अवस्था है और इसी कारण घट मृत्तिकासे भिन्न नहीं है, ऐसा समझा जाता है, वैसेही अविकारी ब्रह्म जो आप हैं उन्हीसे सब(इन्द्र, अग्नि आदि)की उत्पत्ति और लय होता है; अतएव इनकी शेष अवस्था आप ही हैं; और इसी कारण इन्द्र आदि भी आपसे भिन्न नहीं हैं। इसी लिये वेदमन्त्र और ऋषियोंने कायिक, वाचिक और मानसिक, सब प्रकारके कर्मोंका मुख्य लक्ष्य आपहीको बताया है। कहनेका तात्पर्य यह है कि जैसे यह एक स्थिर सिद्धान्त है कि सब भूचर प्राणी पत्थर, ईंट, काष्ठ आदि जिस पर पैरका भार देकर खड़े हो सकें सो सब पृथ्वी है वैसेही यहभी अखण्डनीय सिद्धान्त है कि वेदका प्रत्येक मंत्र और प्रत्येक पद आपका ही प्रतिपादन करता है ॥ १५ ॥ हे तीनो गुणोंके ईश्वर! आपही परमार्थ हैं, यह निश्चय करके बिवेकी लोग जब सब लोगोंके पापपुंजको नष्ट करनेवाली आपकी अमृतमयी कथाके सागरमें केवल गोता लगा कर पाप-तापसे मुक्त हो जाते हैं तब हे परम! जो लोग आत्मतत्त्वके ज्ञान द्वारा राग, द्वेषादि अन्तःकरणके धर्म और जरा, मरण, यौवन आदि कालके धर्म्मोंसे मुक्त होकर अखण्ड आनन्दानुभवस्वरूप जो आपका रूप है उसको भजते हैं उनके पाप-तापसे मुक्त होनेमें क्या सन्देह है? ॥ १६ ॥ आपमें भक्ति होनेसेही मनुष्यजन्मकी सफलता होती है, नहीं तो जो आपसे विमुख हैं वे लोहारकी

धौकनीके समान वृथा साँस लेते (जीते) हैं । आपहीके अनुग्रहसे महत्तत्त्व एवं अहंकार आदिक, समष्टि–व्यष्टिरूप शरीरोंको उत्पन्न करते हैं, आप अन्नमय आदि पाँच कोषोंमें मिल कर अन्नमय आदि पञ्चकोषसे प्रतीत होते हैं, आपही अन्नमय आदि पञ्चकोषका मूल हैं, तथापि स्थूल और सूक्ष्म–दोनो प्रकारके पञ्चकोषोंसे अतिरिक्त हैं, केवल उनके साक्षीमात्र हैं। आपही इन पञ्चकोषोंकी अन्तिम अवस्था हैं, अतएव सत्य हैं। इस कारण देह–अन्तःकरण आदिमें ओतप्रोत भावसे अवस्थित जो आप हैं उनसे विमुख होने पर, मुक्तिकी कौन कहे, तुच्छ विषयसुख (भोग) भी नहीं मिल सक्ता ॥ १७ ॥ ऋषिकृत सम्प्रदाय मार्गोंमें कूर्पदृक् (स्थूलदृष्टि) सम्प्रदायवाले मणिपूरकस्थ स्थूल ब्रह्मकी उपासना करते हैं और आरुणि सम्प्रदायवाले बहुनाड़ीसङ्कुल हृदयस्थलमें सूक्ष्म परब्रह्मकी उपासना करते हैं। हे अनन्त! आपकी उपलब्धि (प्राप्ति)का स्थल ज्योतिर्मय श्रेष्ठ सुषुम्णा नाम नाड़ी है; जो कि हृदयसे उठ कर मस्तकको गई है। उस नाड़ीमें प्राप्त होकर यह जीव फिर संसारमें नहीं पड़ता* ॥ १८ ॥ हे भगवन्! आप अपनेहीसे उत्पन्न देह आदि विविध विचित्र स्थानोंका कारण है, अतएव पहलेहीसे उन सबसे आपका अलक्ष्य संबन्ध है; सुतराम् उनमें आपके प्रकृत प्रवेशकी सम्भावना न होने पर भी आप प्रविष्ट ऐसे प्रतीत होकर, स्वरूपतः विशेषशून्य अग्नि जैसे ईंधनके आकारके अनुसार विशेष २ रूपसे प्रकाशित होता है वैसे ही आप भी न्यूनाधिक भावसे प्रकाशमान होते रहते हैं। निर्मलबुद्धियुक्त, इसी कारण ऐहिक और पारलौकिक कर्मफलकी वासनासे शून्य विवेकीजन, उक्त सम्पूर्ण देहादिको मिथ्या मानते हुए, उनमें अवस्थित निर्विशेष, सन्मात्र, भगवत्स्वरूपको ही सत्य समझ कर प्राप्त होते हैं ॥ १९ ॥ अपने कर्मोंसे उपार्जित इन मनुष्यादि शरीरोंमें वर्त्तमान कार्य और कारण(स्थूल और सूक्ष्म शरीर)के आवरण से मुक्त पुरुष(आत्मा)को ही, पण्डित लोग, सर्वशक्तिमान् जो आप हैं उनका अंश मानते हैं। पृथ्वीमण्डलके सम्पूर्ण पण्डित (सदसद्विवेकी) लोग, इसी प्रकार मनुष्यतत्त्वको विचारपूर्वक अवगत होकर विश्वासपूर्वक संसारसे मुक्त करनेवाले आपके चरणोंको भजते हैं और उन्हींको सम्पूर्ण सांसारिक कर्मोंके अर्पणका एकमात्र स्थान समझते हैं ॥ २० ॥ हे ईश्वर! जिसका जानना सहज नहीं है उस आत्मतत्त्वको प्रकट करनेहीके लिये आप मनुष्यरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। आपके पवित्र चरित्ररूप सुधासागरमें गोता लगा कर जो लोग श्रमशून्य हो गये हैं और आपके कमलसम श्रीचरणोंमें हंसके समान रमनेवाले भक्तोंमें अग्रगण्य

---

* श्रुति कहती है—शार्कराक्षा उपासते हृदयं ब्रह्मेत्यारुणयो ब्रह्म हैव ता इत ऊर्द्धत्वेनोदसर्प्पत्तच्छिरो श्रयते ।

साधुओंके संगमें जिन्होने गृहको छोड़ दिया है वे थोड़ेसे निष्किञ्चन पुरुष, मुक्तिकी भी कामना न कर, भक्तिमय परमानन्दमें ही मग्न रहते हैं ॥२१॥ स्वामिन् ! आपकी सेवाके उपयुक्त यह मनुष्य शरीर ही आत्मा, बन्धु और प्रिय-जनके समान आचरण करनेवाला, अर्थात् स्वाधीन है, किन्तु हाय ! हाय ! देहधारी जन इस साधनस्वरूप देहको पाकर भी, अनुग्रहकारी हितकारी और परम प्रिय आत्मा जो आप हैं उनको इस शरीरसे सखाभाव द्वारा न भजकर, इस असत् शरीर(और शरीरसम्बन्धी परिवार)के ही लालन-पालनमें व्यग्र रहते, अतएव आत्मघात करते हुए संसारचक्रमें घूमा करते हैं ! कैसे खेद और शोककी बात है !! ॥ २२ ॥ मुनि लोग प्राण और मनको वशमें करनेके उपरान्त इन्द्रिय-संयमपूर्वक दृढ़ योगके द्वारा हृदयमें जिस तत्त्वका ध्यान करते हैं, उसी तत्वको आपके स्मरणके प्रभावसे, आपसे शत्रुता रखनेवाले लोग भी प्राप्त हुए हैं। आपके भुजगेन्द्रभोगसम विशाल बाहुओंमें कामके आवेशसे जिनका चित्त निविष्ट होगया है वे परिच्छिन्न (अविद्यासे आच्छन्न) दृष्टिवाली स्त्रियाँ (गोपिका आदि) एवं आपके श्रीचरणकमलसुधारससे छके हुए समदर्शी हम लोग, दोनो ही आपके निकट समान हैं ॥ २३ ॥ अहो ! पीछेसे जिनकी उत्पत्ति और विनाश होता है उनमेंसे कौन ऐसा है जो सृष्टिके भी पूर्ववर्त्ती जो आप हैं उनका साक्षात् निरूपण कर सके अथवा साक्षात् अवगत हो सके ? अर्थात् अनुभवयुक्त अनुमानसे ही सब आपका निरूपण करते हैं। आदिऋषि ब्रह्मा भी आपहीसे उत्पन्न हैं और आध्यात्मिक, आधिदैविक, दोनो प्रकारके देवता भी ब्रह्माके बाद आपहीसे उत्पन्न हुए हैं; आप प्रलयकालमें जब त्रैलोक्यको अपनेमें लीन करके शयन करते हैं तब सत् अर्थात् स्थूल (आकाशादि) और असत् अर्थात् सूक्ष्म (महत्तत्त्वादि) एवं (स्थूल-सूक्ष्मकृत) दोनो प्रकारके शरीर नहीं रहते, कालकृत वैषम्य और इन्द्रियादिक नहीं रहते, और शास्त्र भी नहीं रहता ॥ २४ ॥ असत् पदार्थ जगत्की उत्पत्तिका निरूपण करनेवाले, सत् आत्माके ब्रह्मत्त्वकी उत्पत्तिका निरूपण करनेवाले, 'स्वरूपतः विद्यमान इक्कीस प्रकारके दुःखोंका दूर होनाही मुक्ति है'– ऐसा कहनेवाले, आत्माको जगत्से और कार्य्य व कारणसे भिन्न माननेवाले, और कर्म्मफलहीको सत्य माननेवाले, क्रमशः वैशेषिक, पातञ्जलि, सांख्य, न्याय और मीमांसा नामक दर्शनशास्त्रोंके उक्त उपदेश आपमें भ्रमकृत आरोपमात्र हैं। आपके रूपका ज्ञान न होनेसेही पुरुषके त्रिगुणात्मक भेद प्रतीत होते हैं। और आप तो सबसे परे अखण्डज्ञानरूप हैं। ब्रह्मज्ञानही आपका रूप है, इस लिये कभी आपमें उस ज्ञानका अभाव नहीं है ॥ २५ ॥ मानसिक विलासमात्र यह त्रिगुणात्मक जड़-जीवका प्रपञ्च, वास्तवमें असत्य होने पर भी, आपमें अधिष्ठित होनेके कारण, आपकी सत्यतासे सत्य सा प्रतीत होता है। आत्म-

तत्त्वके जाननेवाले लोग, 'यह प्रपंच भी आत्मासे भिन्न नहीं हैं-, ऐसा समझकर आत्मस्वरूपसे ही इसको सत्य मानते हैं। जब कि आत्मा, निजरचित इस जगत्में कारणरूपसे प्रविष्ट है तब इसको आत्मस्वरूप समझना युक्ति-युक्तही है। देखो, सुवर्ण पानेकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति यदि सुवर्णके विकार कुण्डल आदिको पा जाता है तो सुवर्ण ही समझकर ले लेता है, छोड़ता नहीं है ॥ २६ ॥ सब प्राणियोंका आवास समझ कर जो लोग आपकी सेवा करते हैं, हे ईश्वर! वे मृत्युको तुच्छातितुच्छ समझ उसके शिर पर पर रखकर चले जाते हैं। और जो लोग आपके भक्त नहीं हैं वे चाहे महामहान् पण्डित क्यों न हों, उनको आप पशुओंकी भाँति वाणीके प्रपंचकी रस्सीमें बाँधकर इधर उधर भटकाते हैं। आपके प्रेमीजन अपनेको और औरोंको भी पवित्र और कृतार्थ करते हैं; केवल ज्ञानी आदिक और लोग वैसा नहीं कर सक्ते ॥ २७ ॥ आपके कोई इन्द्रिय नहीं है, तथापि आप सम्पूर्ण इन्द्रियशक्तिके प्रवर्त्तक हैं; क्योंकि आप निरपेक्ष भावसे स्वयं प्रकाशमान हैं। प्रजासे कर लेनेवाले छोटे २ मण्डलाधिपति नरपति लोग जैसे एक महाराजाधिराज चक्रवर्त्तीको कर देते हैं वैसेही अविद्याश्रित इन्द्रादि देवगण और ब्रह्मादि प्रजापतिगण भी आपको पूजोपहार देते हुए आपहीके भयसे आपहीके दिये हुए अपने २ अधिकारके अनुसार कर्तव्य-पालन करते रहते हैं ॥ २८ ॥ हे नित्ययुक्त! आप मायासे दूर हैं। उस मायाकी ओर निहार कर जब आप क्रीड़ा करना चाहते हैं तब इन स्थावर- जंगमरूप सम्पूर्ण जीवोंका आविर्भाव होता है। उक्त प्रकारसे जो आप मायाको देखते हैं उसीसे जीवके बन्धनस्वरूप कर्म्म अथवा वासनामय लिंगशरीरकी उत्पत्ति होती है। कर्म्म अथवा लिङ्गशरीरका यदि आविर्भाव न होता तो जीवसृष्टिमें ऐसा वैषम्य होना असम्भव था; क्योंकि आप तो करुणावरुणालय, आकाशकी भाँति सबके लिये समान और निर्लेप एवं वाक्य व मनके अगोचर हैं? आपके न कोई आत्मीय है और न कोई अनात्मीय (गैर) है ॥ २९ ॥ हे नित्य! यदि अन्य-मतानुसार जीवात्माएण वास्तवमें अनन्त हैं एवं नित्यस्वरूप हैं तो वे सभी समान हैं, अतएव उनमें शास्य- शासक भाव न होना चाहिये, सुतराम् आप भी उनके नियन्ता नहीं होसक्ते, ऐसा कहना पड़ेगा। किन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है? आप सब जीवोंके नियन्ता हैं। क्योंकि जिससे जीवमात्रका जन्म है वही जीव-मात्रका अपरित्याज्य कारण है और वही जीवमात्रका नियन्ता है। वह कौन है सो तो हम (श्रुतियाँ) ठीक बता नहीं सक्तीं, किन्तु इतना अवश्य कह सक्ती हैं कि वह सर्वत्र विद्यमान है, ज्ञानी होनेका अभिमान रखनेवाले लोगोंको अज्ञात है। उसके अज्ञात होनेका एक कारण यह भी है कि सभी ज्ञात वस्तुओंमें एक-न-एक दोष अवश्य रहता है, किन्तु वह संपूर्ण निर्दोष है ॥३०॥ वास्तवमें प्रकृति या पुरुषकी

अथवा दोनोकी जीवरूपसे उत्पत्ति नहीं होती । क्योंकि वेदमें प्रकृति और पुरुष, दोनोको अज अर्थात् जन्मरहित बताया है; इसके सिवा युक्तिसे भी यही सिद्ध होता है । प्रकृति और पुरुषके परस्पर सम्बन्धविशेषसे ही प्राणादिविशिष्ट जीवकी उत्पत्ति होती है । देखो, केवल जल या केवल वायुसे 'बुल्ला' (पानीका बुल्ला) नहीं उपजता, जब जल और वायु, दोनोका संयोग होता है तभी बुल्लेकी उत्पत्ति होती है । हे परम ! जीवका वास्तविक जन्म नहीं होता, अतएव नाना नाम और रूपोंसे युक्त जीव, आपमें ही लीन हो जाता है । कुसुमोंसे रस खींचनेवाली मधुमक्षिका(ममाखी)के सञ्चित मधु(शहद)में जैसे कुसुमरस विशेषरूपसे उपलब्ध नहीं होता—एकरूप हो जाता है, वैसेही सुषुप्ति और प्रलयके समय आपमें जीवका लय होता है; और तत्त्वज्ञान हो जाने पर जो आपमें जीवका लय होता है वह समुद्रमें नदियोंके मिलनेके समान है ॥ ३१ ॥ आपकी मायासे चलाये गये इस संसारचक्रमें सभी जीव चक्कर खारहे हैं-यह देख कर विवेकी जन, इससे छुड़ानेवाले जो आप हैं उन्हीकी अत्यन्त अनुवृत्ति अर्थात् भक्ति करते हैं । आपकी भक्ति प्राप्त होने पर फिर संसार(आवागमन)का भय नहीं रहता । क्योंकि कालस्वरूप आपकी सम्वत्सररूप भ्रुकुटी अभक्तजनोंके ही हृदयमें भयका सञ्चार करती रहती है ॥ ३२ ॥ यह अत्यन्त चञ्चल चित्तरूप घोड़ा, इन्द्रियों और प्राणोंको वशमें करलेने पर भी, नहीं वशीभूत होता । जो कोई गुरु (यथार्थ गुरु ईश्वर)के चरणोंकी शरणमें न जाकर अन्य उपायसे चित्तको वशमें करना चाहते हैं, वे, किंकर्त्तव्यविमूढ़ और लक्ष्यभ्रष्ट होकर, समुद्रके भीतर डगमगा रही बिना मल्लाहकी नाव पर चढ़ेहुए वणिक्वृन्द(सौदागरोंके झुंड)के समान, बहुत विघ्नोंसे पूर्ण अवस्थामें पड़कर संसारसमुद्रमें गोते खाते हैं ॥ ३३ ॥ आपके सेवक जो सज्जन हैं वे सदैव सच्चिदानन्दमय साक्षात् परमात्मा जो आप हैं उन्हीके पानेका प्रयत्न किया करते हैं, फिर वे स्वजन, पुत्र, देह, पत्नी, धन, घर, पृथ्वी, प्राण और यान (सवारी) आदि तुच्छ वस्तुओंकी ओर भूलकर भी नहीं दृष्टि डालते । इस सत्य सिद्धान्तको न जाननेके कारण स्त्रीसंगके सुखमेंही अपनेको धन्य माननेवाले असावधान पुरुषोंको, स्वभावतः नश्वर और सारशून्य इस संसारमें कोई भी सुखी नहीं कर सक्ता ॥ ३४ ॥ जिनके हृदयमें आपके चरणकमल निरन्तर वर्त्तमान रहते हैं, जिनके चरणोदकसे बड़े २ पापोंके पहाड़ बह जाते हैं वे निरहंकार ऋषिगण भी भगवद्भक्तोंमें अग्रगण्य गुरुओंके तीर्थरूप आश्रमोंमें अथवा (सत्संगकी लालसासे) पुण्य तीर्थक्षेत्रोंमें जाकर रहते हैं और विवेक, धैर्य्य, क्षमा, शान्ति आदि अन्तःसारके मिटानेवाले गृहों(स्त्री पुत्रादि परिवार)को छोड़ देते हैं । उनके लिये तो कुछ कहना ही नहीं है, किन्तु नित्यानन्दमय परमात्मारूप आप तक एक बार भी जिनका मन पहुँच गया है वेभी

फिर पापपूर्ण गृहमें नहीं आसक्त होते ॥ ३५ ॥ यह जगत् सत्(ब्रह्म)से उत्पन्न है, अतएव यह भी सत् है—इस प्रकारकी व्याप्ति तर्कविरुद्ध है; क्योंकि इससे ब्रह्म और जगत्के कार्य्य-कारण प्रसङ्गमें परस्पर भेदभावकी सिद्धि होती है। यदि कोई कहे कि "इस व्याप्तिसे अभेदसिद्धि हमारा अभीष्ट नहीं है, किन्तु 'कार्य्य और कारणमें भेद नहीं रहता'—यही हम दिखाना चाहते हैं," तोभी हम कह सक्ती हैं कि इस स्थलमें 'व्यभिचार' है। सुतराम् 'व्याप्ति' रह नहीं सक्ती [पुत्र, पितासे उत्पन्न होकर भी उससे भिन्न है (वैसेही ईश्वरसे उत्पन्न होकर भी यह विश्वका प्रपञ्च उससे भिन्न है), इसीको 'व्यभिचार' कहते हैं; [यदि कोई कहे कि "ब्रह्म केवल निमित्त कारणही नहीं है [जो व्यभिचार(पिता—पुत्रन्याय)से व्याप्तिका निषेध करते हो], उपादानकारण भी तो वही है; उपादानकारणसे (घटकुण्डलादिवत्) कार्य्य कभी भिन्न नहीं होता", तो इसका उत्तर यह है कि इसमें भी 'बाधा' है। मान लो, रस्सीमें साँपका भ्रम हुआ; सुतराम् सर्पका उपादानकारण वह रस्सी ही ठहरी, जो कि सत् है, तब क्या सर्प भी सत् है? सर्प तो सत् नहीं है। यदि फिर भी कोई कहे कि "वहाँ पर तो सर्पका उपादान केवल रस्सी ही नहीं, किन्तु अज्ञानयुक्त रस्सी है, अतएव सर्पमें सत्यता कैसे हो सक्ती है?," तो हम कहती हैं कि विश्वका उपादान सत् भी अविद्यायुक्त है, सुतराम् भ्रमकृत सर्पके सदृश यह विश्व भी मिथ्या सिद्ध होता है। हाँ, यह अवश्य है कि वास्तवमें न होनेपर भी, हम लोग, केवल अन्धपरम्पराक्रमसे प्रचलित व्यवहारको निबाहनेवाले संस्कार-जनित भ्रम(माया)से ही ईश्वरका जगत्से सम्बन्ध मानते हैं। हे भगवन्! आपकी वेदरूप वाणी, गौणी लक्षणा आदि वृत्तियोंसे, जिनको केवल कर्मकाण्डमें ही श्रद्धा है उनको भ्रममें डालती है—मोहित करती है (अर्थात् वेदोक्त यज्ञादि कर्मोंके स्वर्गआदिक फल भी नित्य नहीं हैं। वेदमें जहाँ पर कर्मफलको नित्य कहा है वहाँ पर वास्तवमें वेदका अभिप्राय यह नहीं है कि कर्मफल नित्य हैं। वहाँ पर लक्षणाके द्वारा यह मानना चाहिये कि ये फल प्रशस्त (उत्तम) हैं। ऐसा न समझकर जो कर्म्मफलको नित्य मान बैठते हैं वे कर्म्मफलमें आसक्त लोग भ्रममें पड़े हुए हैं ॥ ३६ ॥ यह विश्व, सृष्टिके पहले नहीं था और प्रलय हो जाने पर नहीं रहेगा; इसीसे निश्चय होता है कि मध्यावस्थामें यह विश्व, अद्वितीय जो आप हैं, उनमें प्रकट रहता है। किन्तु वास्तवमें, आपमें विश्वकी मध्यस्थिति भी मिथ्या है। इसी कारण वेदमें इस विश्वकी उपमा, मृत्तिका सुवर्ण आदिके विकार जो घट कुण्डल आदि हैं, उनसे दीगई है (अर्थात् जैसे केवल नाममात्रको घट आदिकी सत्ता है वैसेही नाममात्रको जगत्की भी सत्ता है। मनोरथके सदृश वासनामय मनके विलासमात्र इस विश्वको जो लोग सत्य समझते हैं, वे मूढ़ हैं) ॥ ३७ ॥ यह जीव, मायाके प्रभावसे अविद्याका अवलम्ब लेता हुआ, जड़ देह,

इन्द्रिय आदिको आत्मस्वरूप मानकर, देह इन्द्रिय आदिके सारूप्यको प्राप्त होता है, इसीसे इसका स्वाभाविक आनन्द-रूप आवृत रहता है और यह संसारचक्रमें चक्कर लगाया करता है। वही जीवस्वरूप आप, (जब अपने अपरिमेय ऐश्वर्य्यको अपनेमें देखते हैं, अपने नित्यप्राप्त परिपूर्ण ऐश्वर्य्यको विचारते हैं तब) सर्प अपनी केंचलीको जैसे छोड़ देता है वैसेही अपनी मायाको छोड़ देते हैं। माया आपहीका गुण या शक्ति है, परन्तु आपको उसकी अपेक्षा नहीं है। हे अपरिमित ऐश्वर्य्यसे सम्पन्न! अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंका ऐश्वर्य्य भी जिसको शिर झुकाता है उस परम ऐश्वर्य्यमें आप विराजमान हैं ॥ ३८ ॥ हे भगवन्! जितेन्द्रिय जन भी यदि हृदयस्थित विषयवासनाको दूर नहीं कर सके तो उन कच्चे योगियोंके लिये, हृदयमें रहने पर भी आप वैसेही अप्राप्य हैं जैसे गलेमें पड़ीहुई मणिमाला भूल जाने पर ढूँढे नहीं मिलती। उन टट्टीकी ओटमें शिकार करनेवाले, अर्थात् तपस्वीवेषसे विषयसुखमें लिप्त योगियोंको दोनो प्रकारसे दुःख ही मिलता है। इस लोकमें तो धनसञ्चय आदिमें क्लेशही मिलता है और 'कहीं भण्डा न फूट जाय'-यह खटका लगा रहनेसे सुख (चैन) नहीं मिलता, और परलोकमेंभी आपका स्वरूप न पाने और अपने धर्मका त्याग कर देनेके कारण आपके दिये दण्डके अनुसार नरक भोग करना पड़ता है ॥ ३९ ॥ हे छहों ऐश्वर्य्य-गुणोंसे सम्पन्न! जिन्होने आपको जान पाया है, वे, आपके सिरजे हुए शुभाशुभ कर्म्मोंके फलको अपना सुख या दुःख नहीं समझते और देहाभिमानी लोगोंके लिये कल्पित विधि-निषेधवाचक वाक्योंका भी अनुगमन नहीं करते। क्योंकि सत् सम्प्रदायके अनुसार, आप, निरन्तर मनुष्योंके कानोंमें पहुँचकरही उनको मुक्ति देते हैं। अतएव वे भी विधि-निषेधसे मुक्त हैं ॥ ४० ॥ आप अनन्त हैं, अतएव ब्रह्मादिक लोकपालभी आपका अन्त नहीं पाते। यही नहीं, किन्तु आप भी आकाशके समान अपना अन्त नहीं पासक्ते। हे देव! सप्तावरणवेष्टित ये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भी, आकाशमें वायु द्वारा धूलिकणके समान, आपमें कालचक्रके द्वारा संचालित होकर एकसाथ ही भ्रमण किया करते हैं। आपमेंही समाप्त श्रुतियाँ, असत् (जो वह सत् ब्रह्म नहीं है) का त्याग करती हुई, अपनी अवधि जो आप हैं उन्हींमें प्रतिफलित होती हैं अर्थात् प्रतिपादन करती हैं" ॥ ४१ ॥ श्रीनारायण कहते हैं। हे नारद! इस प्रकार आत्मानुशासनको सुनकर, आत्माकी गतिको अवगत होकर, सिद्धावस्थाको प्राप्त ब्रह्माके पुत्रोंने सनन्दनका पूजन किया। आकाशमें विचरनेवाले ब्रह्माके ज्येष्ठ पुत्र सनकादिकोंने यह सम्पूर्ण वेद शास्त्र और पुराणोंको मथ कर उनके रहस्यका सारांश (तात्पर्य्य) निकाला है। हे नारद! तुम श्रद्धापूर्वक सात्त्विक दृढ भक्तोंकी सब कामनाओंको या वासनाओंको जीर्ण करनेवाले इस आत्मानुशासन पर ध्यान धर, अकुतोभय हो, सर्वत्र विचरो

॥ ४२–४४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं** । हे राजन् ! नैष्ठिक ब्रह्मचारी देवर्षि नारदजीने गुरु नारायणसे प्राप्त आत्मानुशासन को श्रद्धापूर्वक हृदयमें स्थापित कर आत्मज्ञानसे कृतार्थ होकर कहा कि, "सम्पूर्ण प्राणियोंको संसारपाशसे छुड़ानेके लिये अंशकलाधारी निर्मलकीर्त्तिसम्पन्न साक्षात् परब्रह्म नारायणको मैं प्रणाम करता हूँ" । आद्य देवर्षि नारदजी, इस प्रकार नारायणरूप कृष्ण और उनके महात्मा शिष्योंको प्रणाम करके मेरे पिता वेदव्यासजीके आश्रमको गये । मेरे पिताने यथोचित पूजन और सत्कारके उपरान्त बैठनेके लिये आसन दिया । नारदजीने भी नारायणजीके मुखसे सुना हुआ यह आत्मतत्त्व मेरे पिताको सुनाया ॥ ४५–४८ ॥ हे राजन् ! 'अनिर्देश्य निर्गुण परब्रह्ममें मन कैसे पहुँच सक्ता है' इस आपके प्रश्नका उत्तर मैंने भली भाँति समझकर कह दिया ॥ ४९ ॥

योऽस्योत्प्रेक्षक आदिमध्यनिधने योऽव्यक्तजीवेश्वरो
यः सृष्ट्वेदमनु प्रविश्य ऋषिणा चक्रे पुरः शास्ति ताः ॥
यं संपद्य जहात्यजामनुशयी सुप्तः कुलायं यथा
तं कैवल्यनिरस्तयोनिमभयं ध्यायेदजस्रं हरिम् ॥ ५० ॥

जो इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और संसारका मूल कारण है; जो इस अपनी सृष्टिमें जीव (चेतन) रूपसे अनुप्रविष्ट है; जो प्रकृति और पुरुषका उपादान कारण है; जो भोगभवनके समान ब्रह्माण्डको रचकर इसका शासन करता है; जिसके चरणकमलोंको पाकर जीव–इस मोहमयी अविद्याके बन्धनसे मुक्त हो जाता है; उस कैवल्ययोनि अर्थात् अप्रच्युत स्वरूपके अवस्थानसे मायाका तिरस्कार करनेवाले अभयवरदाता हरिका ही निरन्तर ध्यान करना चाहिये । हे राजन् ! जैसे निद्रित प्राणी, किसीको और अपने(शरीर)को भी नहीं देखता वैसेही जो लोग उस ईश्वरको प्राप्त हो गये हैं अर्थात् तन्मय हो गये हैं वे जीवन्मुक्त पुरुष, ब्रह्मसे भिन्न इस जगत्को और अपने(शरीर)को भी नहीं देखते । हाँ, अन्य लोगोंकी दृष्टिमें संस्कार जन्य शरीरसे उनकासम्बन्ध अवश्य रहता है ॥ ५० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितम अध्याय ।

शम्भु-मोचन ।

राजोवाच-देवासुरमनुष्येषु ये भजन्त्यशिवं शिवम् ॥
प्रायस्ते धनिनो भोजा न तु लक्ष्म्याः पतिं हरिम् ॥ १ ॥

राजा परीक्षित्ने कहा । ब्रह्मन् ! देखा जाता है कि देवता, दैत्य और मनुष्योंमें जो कोई भोगाभिलाषशून्य शंभुको भजते हैं वेही धनी और भोग-सम्पन्न हैं और जो कोई सब भोगोंके भवनरूप साक्षात् लक्ष्मीपति विष्णुको भजते हैं वे प्रायः अकिञ्चन हैं । इस विरुद्ध फल मिलनेका कारण क्या है ? हमको यह बड़ा सन्देह है । विरुद्धशील प्रभुओंके भक्तोंकी ऐसी विरुद्ध गतिका क्या कारण है, सो हम जानना चाहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा ।** राजन् ! शिवदेव, निरन्तर शक्तियुक्त गुणमय और त्रिलिंग अर्थात् वैकारिक तैजस और तामस भेदसे त्रिविध अहंकारके अधिष्ठाता हैं; उन्हींसे दश इन्द्रिय, पाँच तत्त्व और मन, ये सोलह विकार उत्पन्न हुए हैं । अतएव विकारोपाधियुक्त शिवको भजनेसे उपाधिके अनुरूप विभूतियोंका रूप (भोगादि धनादि) मिलता है । और हरि भगवान् साक्षात् निर्गुण अर्थात् प्रकृतिसे परे परम पुरुष हैं, वह सर्वदर्शी और सबके अन्तर्य्यामी हैं । उनको भजनेसे निर्गुणत्व प्राप्त होता है ॥ ३-५ ॥ राजन् ! अश्वमेध यज्ञ समाप्त होजाने पर तुम्हारे पितामह युधिष्ठिरने भागवत धर्मोंको सुनते समय अच्युत कृष्णसे यही प्रश्न किया था । मनुष्योंको आवागमनके भ्रमजालसे छुड़ानेके लिये यदुकुलमें प्रकट होनेवाले, छः ऐश्वर्य्य गुणोंसे सम्पन्न प्रभु कृष्णचन्द्रने प्रसन्न होकर उसका उत्तर यों दिया था ॥ ६ ॥ ७ ॥ **भगवान्ने कहा ।** "हे युधिष्ठिर ! मैं जिस पर अनुग्रह करनेवाला होता हूँ उसको क्रमशः निर्धन कर देता हूँ । दुःख पर दुःख पाते देखकर उसके स्वजन उसको आपही छोड़ देते हैं । तदनन्तर बार २ धन पानेकी चेष्टा विफल होनेसे, वह विरक्त होजाता है और फिर मेरे भक्तोंसे मित्रता करता है, अर्थात् उनकी मण्डलीसे मेल बढ़ाता है । उस समय मैं उस पर विशेष अनुग्रह करके उसके चित्तमें अपना अनुराग प्रकट करता हूँ । इस प्रकार मेरी भक्ति पाकर वह धीर व्यक्ति, परम सूक्ष्म ज्ञानमात्र सत् अमृत ब्रह्मको अपनाही स्वरूप जानकर संसारसे मुक्त हो जाता है । इसीसे लोग मुझ दुराराध्यको छोड़ कर, थोड़ेही कालमें प्रसन्न हो कर कामभोग देनेवाले (मेरेही गुणकृत रूप), सुलभ, अन्यान्य वरदानी देवतोंकी उपासना करते हैं । उन आशुतोष देवतोंसे राज्य लक्ष्मी आदि विभवोंको पाकर वे उद्धत मत्त और प्रमत्त हो उठते हैं और

अन्तमें उन देवतोंको भी भूल कर उनकी अवज्ञा (तिरस्कार) करते हैं" ॥८–११॥ श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! ब्रह्मा विष्णु और महेश, तीनो देव, शाप और प्रसादके अधीश्वर हैं। उनमें ब्रह्मा और शिव, शाप भी देते हैं और अनुग्रह भी करते हैं। परन्तु शान्तरूप भगवान् विष्णु वैसे नहीं हैं, वह भजनेवाले और न भजनेवाले, दोनो पर कृपा करनेवाले हैं। यहाँ पर इसी विषय पर पुरा तत्त्ववेत्ता विद्वानोंका कहा हुआ एक इतिहास हम तुमको सुनाते हैं। जिस प्रकार वृकासुरको वर देकर शिव देव संकटमें पड़े, सो हम कहते हैं, सुनो॥ १२॥ १३॥ शकुनि नाम असुरका पुत्र दुर्मति वृकासुर, तप करनेके विचारसे जारहाथा, राहमें उसको नारद मुनि मिले। असुरने प्रणाम करके नारदसे पूछा कि, "ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन तीनमें कौन देव आशुतोष अर्थात् शीघ्र प्रसन्न होनेवाला है?" ॥ १४ ॥ नारदने कहा, "तुम देवदेव महादेवकी आराधना करो तो तुम्हारा मनोरथ शीघ्रही सफल होगा। वह थोड़ेही दोषसे कुपित और थोड़ेही गुणसे प्रसन्न होते हैं। देखो, शंकरने शीघ्र प्रसन्न हो कर बन्दीके समान स्तुति करनेवाले वाणासुर और रावणको वाञ्छित वर देदिया और अन्तको आपही संकटमें पड़े (रावणने कैलाश पर्वत उठालेना चाहा और वाणासुरके पुरका पहरेदार बनना पड़ा)" ॥ १५ ॥ १६ ॥ देवर्षि नारदके बतानेके अनुसार वृकासुरने केदारतीर्थमें जाकर अग्निमें अपने शरीरके माँसकी आहुति देकर शिवकी आराधना करना आरम्भ किया। सात दिन तक इस प्रकार आराधना करने पर भी जब शंकरके दर्शन न मिले तब वह दैत्य बहुतही खिन्न होकर केदार तीर्थमें स्नान करनेके उपरान्त खड्ग लेकर आहुतिके लिये अपना शिर काटने को उद्यत हुआ। उसी समय परम कृपालु शंकरजी साक्षात् मूर्तिमान् अग्निके समान (जैसे काष्ठसे अग्नि प्रकट होता है उस प्रकार) प्रतिमासे प्रकट हुए और हाथ पकड़ कर दैत्यको अपना शिर काटनेसे निवृत्त किया। भगवान् शंकरके सुधामय मङ्गलमय करकमलका स्पर्श पातेही वृकासुर प्रसन्नता व आनन्दसे प्रफुल्लित हो उठा, अर्थात् उसका छिन्न भिन्न शरीर फिर सांगोपांग पुष्ट और बलिष्ठ होगया॥ १७–१९॥ राजन्! शिवदेवने उससे कहा कि "बस, बस जो तेरी इच्छा है उसे पूर्ण करनेके लिये मैं प्रकट हुआ हूँ। मैं शरणागत मनुष्यों पर सदा सन्तुष्ट रहता हूँ। अहो वृथा आत्माको क्लेश न दे"॥२०॥ यह सुन कर उस पापी असुरने महादेवसे सब प्राणियोंको भय देनेवाला यह वर माँगा कि 'मैं जिसके शिर पर अपना हाथ रख दूँ वह तत्क्षण भस्म हो जावे' ॥ २१ ॥ भगवान् रुद्रने उसके मनोरथको सुन कर उदास भावसे जैसे कोई सर्पको अमृत पिलादे वैसेही 'तथास्तु' कह दिया। वह असुर अपनी प्रकृतिके अनुसार शम्भु पर ही उनके दिये वरकी परीक्षा करनेके लिये उद्यत हुआ। उस दैत्यको अपनेही शिर पर हाथ रखनेके लिये अपनी ओर बढ़ते देख कर

शंकर बहुत घबड़ाये, और अपनी चूक पर पश्चात्ताप करते हुए, भयभीत हो, प्राण लेकर वहाँसे भागे। वेगपूर्व्वक उत्तर दिशासे भाग कर दशोदिशा, स्वर्गलोक, सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल आदिमें, जहाँ २ शिव गये वहाँ२ पीछे२ वृकासुरभी दौड़ता हुआ पहुँचा ॥ २२-२४ ॥ सब सुरेश्वरगण उक्त सङ्कटके प्रतीकारका उपाय न जाननेके कारण चुपचाप खड़े २ शिवकी दुर्दशा देखते रहे, तब अन्यत्र रक्षा न देखकर भगवान् शंभु उस परमधाम वैकुण्ठ लोकमें पहुँचे जहाँ न्यस्तदण्ड (संन्यासी), शान्त, भावुक जनों की एकमात्र परमगति साक्षात् भगवान् नारायण निवास करते हैं और जहाँ पहुँचकर यह जीव फिर संसारमें नहीं आता। आर्त्तिभञ्जन हरिने हरको इस प्रकार संकटमें पड़ा हुआ देखकर आश्वास दिया और योगमाया द्वारा बौने ब्रह्मचारीका रूप धरकर दानवके सम्मुख देख पड़े। मेखला, कृष्णाजिन, कुशपुंज, दण्ड, कमण्डलु और अक्षमाला आदिसे सुशोभित, साक्षात् प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विप्रवेष हरिको सामने आते देखकर दानवने अत्यन्त नम्रतासे प्रणाम किया ॥ २५-२८ ॥ भगवान्ने कहा, "हे शकुनिके पुत्र! यह स्पष्ट जान पड़ता है कि बहुत दूर चलनेकी थकावटसे तुम शिथिल हो रहे हो। क्षणभर यहाँ ठहर कर विश्राम करलो, क्यों कि इस आत्मा(शरीर)से ही सब पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं; इस कारण इसको कष्ट देना उचित नहीं है। हे पुरुषसिंह! तुम किस कामके लिये दौड़ते हुए जा रहे हो? यदि कहने योग्य हो तो हमसे कहो। लोगोंके सभी काम दूसरेकी सहायतासे सहजमें सिद्ध हो सक्ते हैं, अतएव हमसे अपना प्रयोजन कहो; सम्भव है, हमभी तुम्हारी सहायता कर सकें" ॥ २९ ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। महाराज! भगवान्के इन सुधासम मधुर वचनोंको सुननेसे असुरकी सब थकन मिटगई और उसने सब वृत्तान्त आदिसे अन्त तक कह सुनाया ॥ ३१ ॥ तब भगवान्ने कहा कि, "यदि ऐसा है तो भाई हम शिवकी बातका विश्वास नहीं करते। वह दक्ष प्रजापतिके शापसे पिशाचप्रवृत्तिको प्राप्त हुए हैं। जो प्रेत व पिशाचोंके अधिपति हैं, जिनकी बुद्धि विष खानेसे, भंग पीनेसे नष्ट भ्रष्ट होगई है उन शिवको हे दानवेन्द्र! यदि तुम जगद्गुरु मानते हो और उनके ऊपर श्रद्धा रखते हो तो शीघ्र अपने ही मस्तक पर हाथ रखकर परीक्षा क्यों नहीं करलेते? यदि हमारे विश्वासके अनुसार शम्भुका कथन (वर) मिथ्या निकले तो मिथ्या बोलनेवाले, प्रतारक शम्भुको वह दण्ड देना जो उन्हे कभी न भूले और फिर इस प्रकार वह कभी किसीसे मिथ्या बोलनेका साहस न करें" ॥ ३२-३४ ॥ भगवान्के ऐसे मधुर, कोमल, विचित्र और मोह उपजानेवाले वाक्योंसे दानवेन्द्रकी बुद्धि भ्रष्ट होगई और उसने अपनेही ऊपर अपनी दुर्मतिका दुरुपयोग किया, अर्थात् अपनेही शिरपर हाथ रख लिया ॥३५॥ शिरपर हाथ रखते ही वज्राहत व्यक्तिके समान वह पापी असुर तत्क्षण प्राणहीन होकर पृथ्वी पर

गिरपड़ा। आकाशमें स्थित ऋषिगण, पितृगण, गन्धर्वगण आदि आकाशचारी और देवता लोग "जय जय !, नमो नमः !, साधु साधु" कहते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार हरिके बहँकानेसे वह महापापी असुर मरा और शंकर संकटसे छूटे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ सङ्कटमुक्त महादेवके निकट आकर पुरुषोत्तम हरिने कहा कि, "अहो ! हे देवदेव महादेव ! वह पापी असुर अपनेही पापसे नष्ट होगया। हे ईश्वर ! महत् लोगोंका अपराध करके क्या कोई व्यक्ति कुशल मङ्गलसे रह सक्ता है ? आप विश्वनाथ, साक्षात् जगत्के गुरु हैं, आपका अपराधी असुर कैसे बच सक्ता था ?" ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

य एवमव्याकृतशक्त्युदन्वतः
परस्य साक्षात्परमात्मनो हरेः ॥
गिरित्रमोक्षं कथयेच्छृणोति वा
विमुच्यते संसृतिभिस्तथाऽरिभिः ॥ ४० ॥

राजन्! वाणी और मनके अगोचर अर्थात् अतर्क्य और अचिन्त्य शक्तिके सागरस्वरूप साक्षात् परमात्मा हरिके इस शम्भुमोचन चरित्रको जो कोई श्रद्धापूर्वक पढ़ता या सुनता है वह भी शंभुके समान शत्रुकृत संकटसे और संसारपाशसे छूटकर परम गतिको प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धेऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितम अध्याय।

भृगुकृत त्रिदेवपरीक्षा।

श्रीशुक उवाच—सरस्वत्यास्तटे राजन्नृषयः सत्रमासत ॥
वितर्कः समभूत्तेषां त्रिष्वधीशेषु को महान् ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा। हे राजन्! एक समय सरस्वती नदीके तट पर यज्ञ कर रहे ऋषियोंकी मण्डलीमें यह तर्क उपस्थित हुआ कि "ब्रह्मा विष्णु और महेश-इन तीनो देवोंमें कौन महान् या श्रेष्ठ है ?" ॥ १ ॥ हे नृप! उन ऋषियोंने उक्त विषयकी परीक्षा करनेके लिये ब्रह्माके पुत्र महर्षि भृगुको भेजा। महात्मा भृगु पहले ब्रह्मलोकमें गये ॥ २ ॥ ब्रह्माके सत्व(महत्त्व)की

परीक्षा करनेके लिये भृगुने न उनको प्रणाम किया और न स्तुति की। यह देख कर कमलासन ब्रह्मा अपने तेजसे अत्यन्त प्रज्वलित होकर भृगु पर कुपित हुए ॥ ३ ॥ किन्तु फिर प्रभु स्वयम्भू ब्रह्माने पुत्र पर उपजे हुए क्रोधको, जैसे कोई तेजतत्त्वसे ही उत्पन्न जलसे अग्निको शान्त करे वैसे ही स्वयं (अपने विवेकसे) शान्त किया ॥ ४ ॥ तब भृगु वहाँसे चल कर कैलाश पर्वत पर पहुँचे। देवदेव महेश्वर आनन्दसहित भाईसे मिलनेके लिये उठे, परन्तु भृगुने "तुम कुमार्गगामी अर्थात् ठीक राह पर न चलनेवाले हो, मैं तुमसे मिलना नहीं चाहता" यह कह कर शंकरका तिरस्कार किया। इससे अत्यन्त कुपित हो, लाल आँखें करके शिवने भृगुको मारनेके लिये त्रिशूल उठाया ॥ ५ ॥ ६ ॥ तब देवी पार्वतीने पैरों पर गिर कर विनयपूर्वक पतिको समझा कर शान्त किया। तब वहाँसे चल कर महर्षि भृगु वैकुण्ठ लोकमें पहुँचे। जनार्दन भगवान् दिव्य पर्यङ्क पर लक्ष्मीकी गोदमें शिर धरे हुए शयन कर रहे थे। भृगुने जाते ही लक्ष्मीपतिकी छातीमें एक लात मारी। साधुजनोंकी गति भगवान् उसी क्षण उठ कर लक्ष्मीसहित पलँगसे उतर पड़े और शिर झुका कर प्रणाम करके मधुर वाणीसे बोले—"ब्रह्मन्! आपको आनेमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? इस आसनमें क्षणभर बैठकर विश्राम कर लीजिये। हे प्रभो! हमने आपके आगमनको नहीं जाना, इसीसे यह अपराध हुआ, क्षमा करिये। हे भगवन्! ये आपके चरण अत्यन्त कोमल हैं, मेरे कठिन वक्षःस्थलकी चोटसे कष्ट हुआ होगा"। यों कहकर भृगुके पैरोंको अपने हाथसे सहलाते हुए हरिने फिर कहा कि, "हे भगवन्! सम्पूर्ण तीर्थोंको भी पवित्र करनेवाले अपने चरणोदकसे मुझको और मुझमें स्थित लोकपालगणसहित समस्त लोकोंको पवित्र करिये। भगवन्! शोभाका एकमात्र आश्रय यह आपके चरणका चिन्ह मुझको प्राप्त हुआ, इससे मेरे सब पातक नष्ट हो गये। इसको मैं आभूषणके समान हृदयमें रक्खूँगा। अब लक्ष्मी निश्चल हो कर मेरे हृदयमें रहेगी"॥ ७–११॥ श्रीशुकदेवजी कहते हैं। हे राजन्! ब्रह्मण्यदेवके ऐसे गंभीर वचन सुन कर भृगु मुनि अत्यन्त तृप्त और सुखित हुए एवं अवाक् रहगये, कुछ भी न बोल सके। भक्ति और प्रेमसे भृगुजीका हृदय भर आया एवं नेत्रोंसे आनन्दके आँसू गिरने लगे ॥ १२ ॥ राजन्! वैकुण्ठ लोकसे लौटकर भृगुजी अपने यज्ञ-स्थलमें आये और ब्रह्मवादी मुनियोंके आगे, जो कुछ जहाँ हुआ था उसका आदिसे अन्त तक पूर्ण वर्णन किया ॥ १३ ॥ सुनकर सब मुनियोंको विस्मय हुआ और उनका सन्देह निवृत्त हो गया। सब महर्षिगण शान्ति और अभयकी साक्षात् मूर्त्ति विष्णु भगवान्को सर्वोत्तम, सर्वोपरि मानकर कहने लगे कि, "जो साक्षात् धर्म-

स्वरूप हैं; जिनसे चार प्रकारके* वैराग्यसे सम्पन्न ज्ञान, आठ प्रकारका ऐश्वर्य्य और आत्माको निर्मल करनेवाला यश प्राप्त होता है; जो शान्त, न्यस्तपण (संन्यस्त), समदर्शी, अकिञ्चन, परोपकारी मुनियोंकी एकमात्र गति हैं; सत्त्व जिनकी प्रिय मूर्त्ति है और ब्राह्मण जिनके इष्टदेव हैं; निपुणबुद्धिवाले, निष्काम, शान्त-स्वभाव महात्मा लोग जिनको भजते हैं, वही भगवान् नारायण, सर्वोत्तम देव हैं। यद्यपि (उन्हींकी) गुणमयी मायासे उत्पन्न सुर, असुर और राक्षस (अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश)—तीनो उन्हींकी आकृति अर्थात् मूर्तियाँ हैं, तथापि (उनका) सत्त्वमय (सुर अथवा विष्णु) रूपही सब पुरुषार्थ, अर्थात् परमार्थका हेतु है" ॥ १४–१८ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं।** राजन्! स्वयं सर्वज्ञ होकर भी अन्य साधारण मनुष्योंका सन्देह मिटानेके लिये इस प्रकार निश्चय (सिद्धान्त) करके, वे सरस्वतीतटवासी महर्षि, परमपुरुषके पादपद्मको भजते हुए भगवद्गति अर्थात् परम पदको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ **सूतजी कहते हैं।** हे शौनकजी! मुनितनय श्रीशुकदेवजीके मुखकमलसे निकले हुए, अमृततुल्य, भवभयभञ्जन इस परम पुरुषके प्रशंसनीय यशको, जो कोई संसारपथिक प्राणी, कानोंके द्वारा वारम्वार पीता है उसको फिर संसारमें भटकनेका कष्ट नहीं उठाना पड़ता, अर्थात् वह आवागमनसे मुक्त हो जाता है ॥ २० ॥ **श्रीशुकदेवजीने कहा।** हे भारत-कुलतिलक! द्वारका पुरीमें एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्रीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ और पृथ्वीमें गिरते ही मर गया ॥ २१ ॥ वह ब्राह्मण उस मृत पुत्रके शरीरको राजद्वार पर लेकर आया और वहाँ उसे रख कर अत्यन्त दुःखपूर्वक कातर स्वरसे रोता हुआ कहने लगा कि "ब्राह्मणद्रोही, शठबुद्धि, लोभी, विषयासक्त, क्षत्रियाधम राजाके ही कर्म्मदोषसे मेरा बालक मर गया। जब राजा हिंसामें रमनेवाला, दुष्टचरित्र और अजितेन्द्रिय होता है तभी प्रजाको दारिद्र्य, भाँति २ के दुःख और कष्टोंसे पीड़ित होना पड़ता है"। यों कह कर मृत पुत्रको राजद्वार पर रख कर वह ब्राह्मण अपने घरको चला गया। इसी प्रकार

---

* यतमान (विषयोंको पूर्ण रीतिसे न त्याग सकने पर भी उनके मिलनेका आग्रह छोड़ देना), पहले प्रकारका वैराग्य है। व्यतिरेक (किसी २ विषयको छोड़ देना, जैसे बिना नोनकी भी दाल खा लेना), दूसरे प्रकारका वैराग्य है। एकेन्द्रिय (प्रवृत्ति रहने पर भी मनमें विषयोंके अनुरागकी शिथिलता होनेके कारण केवल बाह्य इन्द्रियोंसेही विषय-सेवन करना), तीसरे प्रकारका वैराग्य है और वशीकृत (उसका भी अभाव अर्थात् बाह्य इन्द्रियोंसे भी विषयसेवनमें उदासीनता) चौथे प्रकारका पूर्ण वैराग्य है। यथा—

वैराग्यमाद्यं यतमानसंज्ञं कचिद्विरागो व्यतिरेकसंज्ञम्।
एकेन्द्रियाख्य हृदि रागसौक्ष्म्यं तस्याप्यभावस्तु वशीकृताख्यम्॥

क्रमशः उस ब्राह्मणका दूसरा, तीसरा और चौथा पुत्र भी उत्पन्न होते ही मर गया। उनको भी वह ब्राह्मण, राजद्वार पर, पूर्वोक्त वाक्य कह कर, पहलेकी भाँति रख आया ॥ २२-२५ ॥ राजन्! इसी प्रकार उत्पन्न होतेही मरनेवाले नवम बालकको लेकर ब्राह्मण राजद्वारमें गया और वेही पूर्वोक्त वाक्य कह कर विलाप करने लगा। इस समय वीर अर्जुन, कृष्णचन्द्रके पास बैठेथे। वह ब्राह्मणके विलापको सुनकर बाहर आये और ब्राह्मणसे बोले कि "हे विप्रदेव! आप क्यों वृथा विलाप कर रहे हैं? आपके निवासके इस स्थानमें वीर पराक्रमीकी कौन कहे, केवल धनुष धारण करनेवाला भी कोई क्षत्रिय नहीं देख पड़ता, जो आपके इन बालकोंको मृत्युसे बचावे। ये तो ब्राह्मण लोग यहाँ पर मिलकर यज्ञ कर रहे हैं। जिनके जीवित रहते राज्यमें ब्राह्मण लोग धन, पत्नी, पुत्र आदिके वियोगसे शोकाकुल होते हैं वे क्षत्रिय नहीं हैं-उनको केवल पेट पालने और विषयभोग करनेके लिये क्षत्रियवेषधारी नट समझना चाहिये। भगवन्! पुत्रशोकसे आप स्त्री, पुरुष, दोनो अत्यन्त दीन और व्याकुल हो रहे हैं। आप विश्वास करिये, मैं अबकी बार आपके पुत्रकी रक्षा करूँगा। यदि मैं अपनी इस प्रतिज्ञाका पालन न कर सकूँगा तो उसी समय अपने (प्रतिज्ञा न पाल सकनेके) पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये अग्निमें जल जाऊँगा" ॥ २६-२९ ॥ यह सुनकर ब्राह्मणने कहा, "भगवान् संकर्षण, भगवान् वासुदेव, धनुषधारियोंमें श्रेष्ठ प्रद्युम्न और जिनका सामना करनेवाला कोई योद्धा नहीं है वह भगवान् अनिरुद्ध, जिसकी रक्षा नहीं कर सक्ते उसको तुम कैसे बचा सक्ते हो? जो कर्म्म जगदीश्वरोंके लिये भी दुष्कर है उसको तुम मूर्खतावश करना चाहते हो। अतएव हमको तुम्हारी प्रतिज्ञा पर विश्वास नहीं होता" ॥ ३० ॥ ३१ ॥ राजन्! तब फिर अर्जुनने घमंडके साथ कहा कि "हे ब्रह्मन्! मैं संकर्षण, कृष्ण, प्रद्युम्न या अनिरुद्ध नहीं हूँ! मैं अर्जुन हूँ! जिसका गाण्डीव धनुष है ॥ ३२ ॥ ब्रह्मन्! मैंने जिस पराक्रमसे युद्धमें साक्षात् शिवको भी प्रसन्न कर दिया है उसका, इस प्रकार अश्रद्धा प्रकट करके, आप अनादर न करिये। हे प्रभो! मैं युद्धमें मृत्युको भी जीतकर आपके बालकको ले आऊँगा" ॥ ३३ ॥ हे शत्रुदमन! अर्जुनने यों कह कर उस ब्राह्मणको विश्वास दिलाया और वह अर्जुनके पराक्रमको सुनकर प्रसन्नचित्त हो अपने घरको गया ॥ ३४ ॥ जब विप्रपत्नीके बालक जननेका समय आगया तब वह ब्राह्मण घबड़ाहटके कारण दौड़ता हुआ अर्जुनके पास आया और कहने लगा, "हे पार्थ! अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार मृत्युसे मेरी सन्तानकी रक्षा करो, रक्षा करो" ॥ ३५ ॥ अर्जुन भी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणके साथ उसके घर गये। वहाँ जाकर अर्जुनने हाथ पैर धोकर पवित्र जलसे आचमन किया और फिर महेश्वरको प्रणाम कर, गाण्डीव धनुष चढ़ा कर, अपने वशवर्त्ती दिव्य अस्त्रोंको स्मरण कर अनेक

अस्त्रयुक्त बाणोंसे सूतिका गृहको ढँक दिया। ऊर्ध्वमुख अधोमुख और आड़े तिर्छे बाणोंसे अर्जुनने उस सूतिकागृहको बाणनिर्मित पिंजड़ा सा बना दिया ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ यथासमय विप्रपत्नीके बालक उत्पन्न हुआ और बारम्बार रोता हुआ उसी क्षण आकाशमार्गमें जाकर अदृश्य हो गया । और बार तो बालकका मृत शरीर रह जाता था, परन्तु अबकी शरीरसहित बालक अदृश्य हो गया ॥ ३८ ॥ तब वह ब्राह्मण, कृष्णके निकट (जहाँ अर्जुन भी थे) जाकर इस प्रकार अर्जुनकी निन्दा करता हुआ कहने लगा कि, "अहो! मेरी मूर्खता तो देखो कि मैंने एक नपुंसकके आत्मप्रशंसापूर्ण कथन पर विश्वास कर लिया। मैंने तो पहले ही कहा था कि कृष्ण, बलदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आदि जिसकी रक्षा नहीं करसक्ते उसकी और कोई कैसे रक्षा कर सक्ता है? मिथ्यावादी और वृथा ही अपने मुखसे अपने पराक्रम और धनुषकी प्रशंसा करनेवाले अर्जुनको एवं उसके धनुषको धिक्कार है" ॥ ३९–४१ ॥ ब्राह्मणको यों कहकर तिरस्कार करते देख, पराक्रमी अर्जुन, उसी समय योगविद्याके बलसे सयमनी पुरीको गये; जहाँ भगवान् यमराज रहते हैं ॥ ४२ ॥ वहाँ ब्राह्मणके पुत्रको न देख कर शस्त्रधारी अर्जुन क्रमशः इन्द्र, अग्नि, निर्ऋति, चन्द्र, वायु, वरुण आदि लोकपालोंके पुरोंमें तथा अतल आदि सातो रसातल और स्वर्गके ऊपर महर्लोक आदि सातो लोकोंमें एवं अन्यान्य स्थानोंमें भी गये; परन्तु उनको कहीं भी ब्राह्मणका पुत्र न मिला। तब प्रतिज्ञा पूर्ण न होते देख कर अर्जुनने चिता लगाकर अग्निमें जलनेका विचार किया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्रने आकर अर्जुनको रोका और कहा कि "मित्र! तुम क्यों अग्निमें जलने जाते हो? आपही अपनेको असमर्थ समझकर अपना अनादर न करो। चलो, मैं तुम्हे ब्राह्मणके सब पुत्रोंको दिखाऊँगा। इस कार्य्यसे मनुष्यलोकमें हमारी अक्षय कीर्त्ति स्थापित होगी" ॥ ४३–४५ ॥ हे राजन्! सर्वशक्तिमान् कृष्णचन्द्र यों कह कर, अर्जुनसहित अपने दिव्य रथ पर चढ़कर पश्चिम दिशाको चले। सात २ पर्वतोंसे युक्त सात द्वीप और समुद्रोंको नाँघकर लोकालोक पर्वतके उस पार महा अन्धकारमय मार्गमें पहुँचने पर शैव्य, सुग्रीव, मेघपुष्प और बलाहक नाम घोड़े इधर उधर भटकने लगे। यह देखकर महा योगेश्वरोंके भी ईश्वरने सहस्र सूर्यके समान तेजधारी अपना सुदर्शन चक्र आगे कर दिया ॥ ४६–४९ ॥ जैसे धनुषसे छूटकर अप्रतिहतगति रामबाण शत्रुसेनामें प्रवेश करे वैसेही मनके समान शीघ्रगामी वह चक्र अपने महा तेजसे आकाश तक छाये हुए घोर अन्धकारको हटाता हुआ आगे २ चला ॥ ५० ॥ चक्रके दिखाये हुए मार्गसे उस घोर अंधकारके पार पहुँचकर अर्जुनने देखा कि अगणित अपार सूर्य्योंकी ऐसी अपार ज्योति चारो ओर फैली हुई है। उस श्रेष्ठ ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मतेजकी ओर अर्जुनकी दृष्टि नहीं ठहरसकी और उन्होने प्रका-

शसे प्रतिहत दोनो नेत्र बंद कर लिये ॥ ५१ ॥ तदनन्तर अर्जुन और कृष्णचन्द्रने रथके द्वारा आकाशमार्ग (स्थल मार्ग) से उतर कर, बड़े वेगसे चल रहे प्रचण्ड-वायुके झोंकोंसे जिसमें बड़ी २ भय उत्पन्न करनेवाली ऊँची लहरें उठ रही हैं उस अपार जल (समुद्र) में प्रवेश करनेके उपरान्त देखा कि एक परम प्रकाश-सम्पन्न अति उत्तम अद्भुत भवन बना हुआ है । उस भवनमें, अत्यन्त चमकीली मणियाँ जिनमें जड़ीहुई हैं ऐसे हजारों सुवर्णके खंभे सुशोभित हैं ॥ ५२ ॥ भवनके भीतर भीमरूप, श्वेत पर्वतके समान अद्भुत अनन्त शेषनाग विराजमान हैं । उनके मस्तकोंमें स्थित महा मणियोंकी प्रभासे उज्वल सहस्र फण फैले हुए हैं और दो हजार भयानक नेत्र हैं एवं कण्ठ और जिह्वाओंका वर्ण नीला है ॥ ५३ ॥ और देखा कि शेषजीके शरीरकी शय्या पर सर्वव्यापक, महानुभाव, श्रेष्ठ पुरुषोंमेंभी श्रेष्ठ साक्षात् नारायण भगवान् सुखपूर्वक लेटे हुए हैं । उनके जलभरे मेघके समान श्याम शरीर पर बिजलीके समान पीतपट शोभायमान है । उनका मुखमण्डल प्रसन्न है और नेत्र कमल-दलके सदृश विशाल, अरुण और दर्शनीय हैं ॥ ५४ ॥ उनके महामणियोंके गुच्छोंसे सुशोभित सहस्र २ किरीट मुकुट और कुण्डलोंकी अपरिमित प्रभा चारो ओर फैलीहुई है । सुन्दर, विशाल जानुओं तक लंबी और मोटी २ आठ भुजाएँ हैं और वक्षःस्थलमें श्रीवत्स तथा लक्ष्मी एवं कण्ठमें कौस्तुभमणि व वनमालाकी अपूर्व शोभा हो रही है ॥ ५५ ॥ सुनन्द, नन्द आदि पार्षद्गण और मूर्त्तिमान् चक्र आदि आयुध एवं मूर्तिमती पुष्टि, श्री, कीर्त्ति, अजा (माया) तथा अणिमा आदि सम्पूर्ण सिद्धियाँ; इत्यादि सब वैभव, ब्रह्माआदि परमेष्ठी देवोंके भी स्वामी परमेश्वरकी सेवामें साक्षात् उपस्थित हैं ॥ ५६ ॥ श्रीकृष्ण और अर्जुनने देखते ही सादर शिर झुका कर उन आत्मा (अपनेही पूर्णरूप) अच्युतको प्रणाम किया । तब ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर सर्वव्यापक प्रभुने हाथ जोड़े खड़े हुए (अपनेही अंश) कृष्ण और अर्जुनसे मन्द २ मुसका कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए इस प्रकार गंभीर वाणीसे कहा कि "हे नर और नारायण ! तुम्हे देखनेकी इच्छासे मैंने ही ब्राह्मणके बालकोंको यहाँ मँगा लिया है । सनातन धर्म्मकी रक्षाके लिये तुम दोनो मेरेही अंशसे पृथ्वीतल पर प्रकट हुए हो । पृथ्वीके लिये भार हो रहे राजवेषधारी असुरोंका संहार करके* तुम शीघ्र मेरे निकट आजाओ ॥५७॥५८॥ हे नर, नारायण ! तुम श्रेष्ठ और पूर्णकाम हो, तथापि मर्य्यादापालनके लिये तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम धर्म्मका आचरण करो; जिसमें तुम्हारे आचरणसे अन्य

---

* यह घटना महाभारतसे पहलेकी है । यहाँ पर कृष्णके महत्त्ववर्णनके प्रसङ्गमें कही गई है ।

साधारण जन धर्म्मकी शिक्षा पावें" ॥ ५९ ॥ हे राजन्! परमेष्ठी परमेश्वरकी इस आज्ञाको स्वीकार करते हुए 'बहुत अच्छा' कह कर श्रीकृष्ण और अर्जुनने प्रणाम किया और फिर प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणके बालकोंको लेकर जिस राहसे गये थे उसी राहसे द्वारका पुरीको लौटे। द्वारकामें आकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्राह्मणको उसके सब बालक देदिये। जैसे थे वैसेही अपने पुत्रोंको पाकर ब्राह्मण अत्यन्त विस्मित और प्रसन्न हुआ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ विष्णु भगवान्के पूर्वोक्त परम धाम अथवा प्रभावको देख कर अर्जुनको बड़ाही विस्मय हुआ और उन्होने समझ लिया कि पुरुषोंमें जो कुछ पौरुष है सो सब कृष्णचन्द्रकी कृपामात्र है ॥ ६२ ॥ हे राजन्! कृष्णचन्द्रने इस प्रकारके महत्त्वसूचक अनेकानेक कार्य्य करते हुए पृथ्वीतल पर सम्पूर्ण सांसारिक विषयभोगोंका उपभोग किया और विधिपूर्वक महत्तम यज्ञ भी किये ॥ ६३ ॥ भगवान् कृष्ण अपनी श्रेष्ठता अर्थात् ऐश्वर्य्यके अनुसार उचित समय पर इन्द्रके समान, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णके प्रजागणकी सब कामनाएँ पूर्ण करते रहे ॥ ६४ ॥

हत्वा नृपानधर्मिष्ठान्घातयित्वार्जुनादिभिः ॥
अञ्जसा वर्तयामास धर्मं धर्मसुतादिभिः ॥ ६५ ॥

कृष्णचन्द्रने अपने हाथसे और अर्जुन आदिके द्वारा अधर्म्मी राजोंका संहार करते हुए युधिष्ठिर आदिके द्वारा फिरसे सनातन सत्य धर्म्मको स्थापित किया ॥ ६५ ॥

इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे उत्तरार्धे एकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

नवतितम अध्याय ।

संक्षेपसे कृष्णचन्द्रके लीलाविहारका वर्णन और द्वारकापुरीकी सम्पत्तिसमृद्धिका निदर्शन ।

श्रीशुक उवाच—सुखं स्वपुर्यां निवसन्द्वारकायां श्रियःपतिः ॥
सर्वसंपत्समृद्धायां जुष्टायां वृष्णिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं। राजन्! सब प्रकारकी सम्पत्तिसे सुशोभित और वीर यादवोंसे परिपूर्ण अपनी द्वारकापुरीमें साक्षात् लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक अवस्थित थे ॥ १ ॥ दामिनीदामसम कान्तिसम्पन्ना, उत्तम वेषवाली, नवयौवनसे परिपूर्ण सुन्दरी कामिनियाँ, द्वारकापुरीके ऊँचे २ महलोंमें आनन्दपूर्वक कंदुककीड़ा करतीथीं। जिनके मस्तकसे मदजल बहरहा है ऐसे

हाथियोंके झुंडोंसे, भली भाँति अलंकृत वीरवेषधारी योद्धा लोगोंसे, सुवर्ण मण्डित रथों और अश्ववृन्दोंसे द्वारकापुरीके बड़े २ चौड़े मार्ग सब समय परिपूर्ण रहते थे। वह पुरी अनेक उद्यान और उपवनोंसे अत्यन्त सुशोभित थी। उपवनोंमें फूले हुए वृक्षोंकी डालियों पर बैठे हुए पक्षीगण और मत्त मधुकरोंके झुंड अपने मनोहर गानसे वहाँके निवासियोंको प्रसन्न करते थे ॥ २-४ ॥ सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियोंके एकमात्र वल्लभ (अत्यन्त प्रिय) श्रीपति श्रीकृष्णचन्द्र, इस प्रकार सुसज्जित और सुसम्पन्न द्वारकापुरीमें निवास करते हुए महावैभवपूर्ण उन ललनाओंके सोलह हजार भवनोंमें अलग २ उतने ही रूप रख कर रमण करते थे ॥ ५ ॥ भगवान् कृष्णचन्द्र कभी फूले हुए उत्पल, कल्हार, कुमुद और पद्म आदि भाँति २ के कमलोंके मकरन्दसे सुवासित सरोवरोंके स्वच्छ जलमें घुस कर भ्रमरोंके मधुर गानको सुनते हुए उन रानियोंके साथ विहार करते थे ॥ ६ ॥ ७ ॥ उस समय किनारेके वृक्षोंकी डालियों पर बैठे हुए पक्षियोंके झुंड विचित्र बोलियाँ बोलते थे। गन्धर्व लोग मृदङ्ग, पणव, ढोलक आदि विविध बाजे बजाते और सूत, मागध, बन्दीजन गुण गाते थे। सब स्त्रियाँ हँसती हुई पिचकारियोंसे प्रियतम कृष्णको भिगोती थीं और कृष्णचन्द्र भी उनको पिचकारीसे भिगोते हुए यक्षिणीसमूहके साथ यक्षराजके समान जलविहार करते थे। इस प्रकार जलविहार करतेमें स्त्रियोंके वस्त्र हट जाते थे और कुचकलश खुल पड़ते थे, शिथिल वेणियोंसे फूल झड़ते जाते थे। स्त्रियाँ, जब पिचकारी छीननेके लिये कृष्णसे लिपट जाती थीं तब कामोद्दीपनकी सूचना देनेवाली लज्जायुक्त मुसकानकी प्रभासे उनके मुखमण्डल दमकने लगते थे ॥ ८-१० ॥ स्त्रियाँ कृष्णचन्द्रको भिगोती थीं और कृष्णचन्द्र उनको भिगोते थे। स्त्रियोंके स्तनोंसे, लिपटनेके कारण, छूटे हुए कुंकुमके द्वारा सुवासित पुष्पमालाएँ कृष्णके कण्ठसे टूट २ कर गिर जाती थीं और क्रीड़ाकी आसक्तिसे घूँघरवाली अलकोंका बंधन शिथिल होनेके कारण मुखमण्डल पर छूटी हुई अलकें लहराने लगती थीं। उस समय हथनियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे गजराजके समान कृष्णचन्द्रकी शोभा होती थी ॥ ११ ॥ कृष्णचन्द्र और उनकी पत्नियाँ, क्रीड़ाके उपरान्त, नट नर्तकी गवैये बजैये आदि याचकोंको अलंकार वस्त्र आदि देकर प्रसन्न करते थे ॥१२॥ कृष्णकी चाल, बातचीत, हँसी, चितवन, क्रीड़ा, आलिंगन आदिसे स्त्रियाँ ऐसी मोहित हो रही थीं कि उनकी आँखोंमें हृदयमें और मुखमें एकमात्र कृष्ण बस गये थे-वे सब भूल कर तन्मय हो गई थीं और कभी २ इस प्रकार पागलोंके समान मेघ आदि जड़वस्तुओंसे प्रिय-प्रेमपूर्ण वाक्य कहने लगती थीं ॥ १३॥१४ ॥ कभी कुररी (उन चिड़ियोंको कहते हैं जो प्रायः वर्षाकालमें आकाशमें काँव २ करती हुई कतार बाँधकर उड़ती हैं) को देखकर कोई रानी कहने

लगती कि, "हे कुररी! इस समय रातको कृष्णचन्द्र सुखपूर्वक सो रहे हैं और तू विलाप करके उनके सोनेमें विघ्न कर रही है! तू क्यों नहीं सो रहती? क्या तुझे नींद नहीं आती? सखी! क्या हमारे ही समान कमलनयन कृष्णके हास्यपूर्ण उदारलीलाविलासयुक्त कटाक्षरूप बाणोंसे तेरा भी हृदय भली भाँति बिंध-गया है?" ॥ १५ ॥ कभी कोई रानी चक्रवाक पक्षीकी स्त्रीको अर्द्धरात्रिके समय भी जागते देखकर कहने लगती कि, "हे चक्रवाकी! तू पतिके वियोगसे व्याकुल होकर इस समय भी पलक नहीं लगाती और दीन स्वरसे विलाप कर रही है। अथवा क्या तू भी हमारे ही समान कृष्णकी दासी हो गई है और अच्युतकी चरणसेवित मालाको अपनी वेणीमें रखनेके लिये रो रही है?" ॥ १६ ॥ कभी कोई रानी मेघको गर्जता हुआ देखकर कहने लगती कि, "हे मेघ! तुम सर्वदा शब्द किया करते हो; तुमको कभी नींद नही आती, इसीसे जागते रहते हो। अथवा जैसे हमारे कुचकुंकुमादि चिन्होंको हर कर मुकुन्दने हमारी यह दशा कर दी है वैसेही तुम्हारा बिजलीके समान प्रभाशाली कौस्तुभ आदि चिन्होंको लेकर तुम्हे भी इस दुरत्यय दशाको पहुँचाया है?" ॥ १७ ॥ कभी कोई रानी चन्द्रमाको देखकर कहने लगती कि, "हे चन्द्र! तुमको प्रबल क्षयरोगने ग्रस लिया है, इस कारण क्षीण होते चले जाते हो और अपनी क्षीण किरणोंसे घोर अन्धकारको भली भाँति दूर नहीं कर सके। अथवा हमारे ही समान केवल मुकुन्दके मधुर वचनोंका ध्यान रहनेसे प्रतिदिन क्षीण होते जाते हो? तुम कुछ उत्तर नहीं देते, अतएव हमको ऐसाही लक्षित होता है" ॥ १८ ॥ कभी कोई कामपीड़ित रानी मलयानिलसे कहने लगती कि, "हे मलयपवन! हमने तेरा क्या अप्रिय किया है जो तू गोविन्दके कटाक्षोंसे घायल हो रहे हमारे हृदयमें कामोद्दीपन करके और भी हमें व्यथित कर रहा है" ॥ १९ ॥ कभी कोई रानी श्याम घनको देख कर कहने लगती कि, "हे श्रीयुत श्यामघन! तुम अवश्यही यादवपतिके प्रीतिपात्र हो। तुम भी हमारे ही समान श्रीवत्सधारी प्रिय सखा कृष्णका ध्यान करते हो। तुम उनके प्रेममें मग्न हो रहे हो और अत्यन्त उत्कण्ठासे तुम्हारा हृदय भरा हुआ है। इसी कारण बारम्बार प्रियतमका स्मरण करते हुए रह २ कर आँसुओंकी धाराएँ (जलकी बूँदें) बहारहे हो। अजी! उनके प्रसंगमें ऐसेही दुःख झेलने पड़ते हैं!" ॥ २० ॥ कभी कोई रानी कोकिलका कूजन सुनकर कहने लगती कि—"हे कोकिल! तुम इस मृतसंजीविनी वाणीसे प्रियम्वद श्रीकृ-ष्णके समान सुललित वचन बोल रहे हो। हे कमनीयकण्ठ! कहो, हम तुम्हारी कौन प्रिय कामना पूरी करें?" ॥ २१ ॥ कभी कोई रानी निश्चल पर्वतको देख कर कहने लगती कि—"हे भूधर! तुम बड़ेही उदारमति अर्थात् गंभीर हो, न कुछ बोलते हो, और न डोलते हो; जान पड़ता है कि किसी गुरुतर विषयकी चिन्तामें

मग्न हो रहे हो। हमें जान पड़ता है कि हमारे ही समान वसुदेवनन्दनके चरण-कमलोंके पानेको कामनाही तुम्हारा चिन्तनीय विषय है" ॥ २२ ॥ कभी कोई रानी सागरमें मिलनेवाली नदियोंसे कहने लगती कि–"हे समुद्रकी पत्नियो! तुम्हारे सब गंभीर जलपूर्ण स्थल सूख गये हैं और कमलकुसुमसज्जित शोभा नष्टप्राय हो गई है। तुम अत्यन्त क्षीण हो गई हो तथापि यह कठोर समुद्र मेघ-द्वारा अमृतकी वर्षा करके तुमको प्रसन्न और सुसम्पन्न नहीं करता। जैसी हमारी वैसी ही तुम्हारी भी दशा है, जैसे हम अपने परमप्रिय स्वामी यदुपतिके प्रणयावलोकनको न पाकर–उसीके ध्यानसे अत्यन्त क्षीण हो रही हैं और हमारा हृदय (चिन्तासे) शुष्क होगया है वैसेही तुम्हारी भी दशा शोचनीय है" ॥२३॥ कभी कोई रानी राजहंसको देख कर कहने लगती कि—"हे हंस! भले आये, आओ, सुखपूर्वक बैठो और दुग्धपान करो। हे वंशावतंस! हम जानती हैं कि तुम प्रियतमके भेजे हुए दूत हो, हमारे पास उनका संदेश लेकर आये हो। अच्छा, यदुपतिका समाचार हमसे कहो। श्रीकृष्णचन्द्र सुखपूर्वक कुशलसे हैं? वह अस्थिरसौहृद कृष्ण, क्या कभी हमारा भी स्मरण करते हैं? एकान्तमें बैठ कर जो प्रेमालाप हमसे करते थे, उसका भी कभी स्मरण करते हैं? हे कपटीके दूत! यदि कहो कि उन्होने स्मरण करके तुमको बुलाया है, तो हम क्यों अपनी सौत लक्ष्मीके निकट अवस्थित कृष्णके पास जावें? अतएव उनसे जाकर कहो कि वह चाहें तो हमको धोखा देकर जिससे रमण कर रहे हैं उस लक्ष्मीको छोड़ कर अकेले हमारे पास चले आवें। यदि कहो कि लक्ष्मीके तो वह एक-मात्र प्रेमपात्र हैं, वह उनको कैसे छोड़ेगी? तो क्या हम सब स्त्रियोंमें लक्ष्मी ही ऐसी है?–हम भी तो उन्हीको अपना जीवनसर्वस्व समझती हैं" ॥ २४ ॥ **श्रीशुकदेवजी कहते हैं**। हे राजन्! योगेश्वरोंके ईश्वर कृष्णचन्द्र पर ऐसा अनन्य भाव और ऐसी आसक्ति होनेके कारण पूर्वोक्त सब स्त्रियाँ सहजमें ही उस सद्गतिको प्राप्त हुईं, जो बड़े २ ऋषि और मुनियोंको भी दुर्लभ है ॥ २५ ॥ किसीके मुखसे वारम्वार या एक बार भी जिनके गुण सुनलेने पर स्त्रियोंका चित्त बिवश होजाता है उन कृष्णको प्रतिक्षण देखने सुननेवाली स्त्रियाँ यदि इस प्रकार अपनेको भूल कर उन्हीके अपार प्रेमसागरमें मग्न होगईं तो कोई आश्चर्य्यकी बात नहीं है ॥ २६ ॥ हे नरेश! जिन्होने पतिभावसे प्रेमपूर्वक चरणसेवा आदिके द्वारा साक्षात् जगद्गुरुको सन्तुष्ट किया उन स्त्रियोंका तप वर्णनातीत है ॥ २७ ॥ साधुजनोंकी एकमात्र गति कृष्णचन्द्रने इस प्रकार वेदविहित धर्मका आचरण करके अन्यजनोंके लिये धर्म्म, अर्थ, काम सहित गृहस्थाश्रमका मार्ग स्पष्ट कर दिया ॥ २८ ॥ राजन्! गृहस्थोंको अपने आचरणोंसे उनके श्रेष्ठ धर्म्मकी शिक्षा देनेवाले कृष्णचन्द्रके सब मिला कर सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ थीं–यह

हम पहलेही कह आये हैं ॥ २९ ॥ इन स्त्रीरत्नोंमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानी और उनके पुत्रोंका पूर्ण बिवरण भी आपको सुना चुके हैं ॥ ३० ॥ अमोघरति कृष्णचन्द्रने अपनी सब स्त्रियोंमें प्रत्येकके दस २ पुत्र उत्पन्न किये* ॥ ३१ ॥ उन सब पराक्रमी पुत्रोंमें प्रद्युम्न, अनिरुद्ध (पौत्र अथवा कोई इसी नामका पुत्र), दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, भानुवृन्द, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबर्हि, वरूथ, कवि और न्यग्रोध—ये अठारह महायशस्वी महारथी थे। हे राजेन्द्र! इन कृष्णके अठारह पुत्रोंमें भी सब बातोंमें पिताके अनुरूप रुक्मिणीतनय प्रद्युम्नजी श्रेष्ठ थे ॥ ३२–३५ ॥ महारथी प्रद्युम्नने रुक्मीकी कन्यासे ब्याह किया, उसके गर्भसे प्रद्युम्नके पुत्र अनिरुद्धका जन्म हुआ। दस हजार हाथीका बल रखनेवाले अनिरुद्धने पुत्री-पुत्र होकर भी रुक्मीकी पौत्रीसे बिवाह किया, उसके गर्भसे अनिरुद्धतनय वज्रका जन्म हुआ। मौषलयुद्धमें केवल यही वज्र बचे और सब यादवोंका विनाश हो गया। वज्रके प्रतिबाहु, उनके सुबाहु, उनके उपसेन और उनके भद्रसेन हुए ॥ ३६–३८ ॥ राजन्! इस यदुकुलमें कभी कोई धनहीन, अल्पायु, अल्पवीर्य्य, अल्पसन्तान या ब्राह्मणविरोधी नहीं उत्पन्न हुआ ॥ ३९ ॥ यदुवंशमें उत्पन्न प्रसिद्ध यशस्वी पुरुषोंकी गिनती सौ हजार वर्षोंमें भी नहीं की जा सक्ती! सुना जाता है कि यदुबालकोंको शिक्षा देनेवाले गुरु केवल तीन करोड़ एक सौ अट्ठासी पण्डित विद्वान् थे! तब महात्मा यादवोंकी गिनती कौन कर सक्ता है? राजा उग्रसेनकी सभामें सर्वदा अयुतलक्ष अयुत (अर्थात् असंख्य) महावीर यादवलोग उपस्थित रहते थे। राजन्! असंख्य दारुण दैत्य, देवासुर संग्राममें मरकर मनुष्यलोकमें, राजवंशमें उत्पन्न हुए थे और महामदान्ध होकर प्रजाको पीड़ा पहुँचाते थे। उनका दमन करनेके लिये साक्षात् हरिकी आज्ञासे सब देवगण यदुवंशमें उत्पन्न हुए थे। राजन्! यादवोंमें एक सौ एक कुल थे। उन यादवोंकी प्रभुताका प्रमाण साक्षात् हरि हुए हैं, जिनके अनुगत होनेसे यादवोंका ऐसा अपूर्व्व अभ्युदय हुआ ॥ ४०–४५ ॥ कृष्णको अपना सर्वस्व समझनेवाले यादव, सर्वदा ऐसे तन्मय रहते थे कि शयन, उपवेशन, भ्रमण, वार्त्तालाप, क्रीड़ा, स्नान और भोजन आदिके समय भी अपनेको भूले रहते थे ॥ ४६ ॥ महाराज! जिनके यदुकुलमें प्रकट कीर्त्तिरूप तीर्थने उन्हींके चरणोदकरूप गंगातीर्थको नीचे कर दिया और जिनके शत्रु और मित्र, दोनोंको एक-समान सारूप्य मुक्ति मिली एवं जिनका नाम, कहने तथा सुननेसे भी सब अमंगलोंको दूर करता है और जिन्होंने आर्य्यऋषिकुलमें गोत्र-धर्म्मकी स्थापना की है उन परम कारुणीक, परम पराक्रमी एवं कालचक्रधारी कृष्णके

* इस हिसाबसे सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके एक लाख साठ हजार अस्सी पुत्र होते हैं।